5.5
अथर्ववेद—
गृहस्थाश्रम
(भाग ३ ग)

अथर्ववेद-
गृहस्थाश्रम

[भाग ३]

लेखक

म. म. ब्रह्मर्षि पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विद्या-मार्तण्ड, साहित्य-वाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

पारडी [जि. बलसाड]

अथर्ववेद-- [भाग तीसरा]

' गृ ह स्था श्र म '

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

अथर्ववेद–

भाग तीसरा

गृहस्थाश्रम

भूमिका

इस पुस्तकमें अथर्ववेदके गृहस्थाश्रम विषयक ६५ सूक्तोंका समावेश है, इन सूक्तोंमें करीब करीब ११००से अधिक मंत्र हैं।

'गृहस्थाश्रम' चारों आश्रमोंका आधार है। ब्रह्मचर्य-आश्रममें विद्या प्राप्त की जाती है, इस कारण इस ब्रह्मचर्य-आश्रममें अर्थार्जन नहीं हो सकता। कमसे कम २५ वर्ष तककी आयु इस आश्रममें चली जाती है।

वानप्रस्थ और संन्यास ये दो आश्रम भी अर्थार्जनके लिए नहीं हैं। इस तरह आयुके तीन आश्रम–ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीन आश्रमोंमें धनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस कारण ये तीनों आश्रम गृहस्थाश्रमपर ही आश्रित रहते हैं इस विषयमें मनुस्मृतिमें कहा है—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ १४ ॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ १५ ॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गं अक्षय्यं इच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥१६॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥ १७ ॥
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥१८॥
सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ३८ ॥

(मनुस्मृति)

"जिस तरह वायुका आश्रय करके सब प्राणी जीवित रहते हैं, उसी तरह गृहस्थाश्रमका आश्रय करके सब अन्य आश्रम जीवित रहते हैं। चूंकि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमोंको दान तथा अन्न देकर प्रतिदिन गृहस्थी आश्रय देकर सुरक्षित रखता है, इस कारण गृहस्थाश्रमी श्रेष्ठ है। इसलिये जिसको अक्षय स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा है, तथा जो इस जगत्में सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसे गृहस्थाश्रमका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। निर्बलोंसे इस गृहस्थाश्रमका पालन नहीं हो सकता। वेद और स्मृतिके कथनानुसार इन सब आश्रमोंमें गृहस्थ ही श्रेष्ठ है, क्योंकि वह गृहस्थी अन्य तीनोंका भरण–पोषण

करता है। जिस तरह नदी और नद समुद्रमें जाकर सुरक्षित होते हैं, उसी तरह सब अन्य आश्रम गृहस्थाश्रमके आधारसे सुरक्षित होते हैं। सेनापतिका कार्य, राज्यव्यवहारका कार्य, न्यायदानका कार्य, सब लोकोंके आधिपत्यके सब कार्य वेद–रूपी शास्त्र जाननेवाला गृहस्थी ही कर सकता है।"

इस तरह गृहस्थ आश्रमका महत्त्व स्मृतिग्रंथोंमें वर्णन किया है। सचमुच गृहस्थाश्रम ही सब राष्ट्रीयजीवनका आधार है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ गृहस्थाश्रमके विषयमें वेदमंत्रोंमें क्या कहा है, यह अवश्य देखना चाहिये। यह देखनेके लिये ही इस तीसरे खण्डकी रचना की है; इसमें अथर्ववेदके इस विषयके मंत्र संग्रहीत हैं और इसमें मंत्रोंका गूढार्थ भी स्पष्टीकरणके द्वारा बताया है। वेद स्त्रीको कितनी उच्च अवस्थामें रखना चाहता है, यह वेदके निम्न मंत्रोंसे स्पष्ट होता है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥
(ऋ. १०।८५।४६)

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः॥
(अथर्व. १४।१।४४)

'हे स्त्री! तू श्वसुर, सास, ननद, देवर आदिकोंके साथ सुसरालमें जाकर सम्राज्ञी जैसी रह।' रानी जैसे राजमहलमें आनंदसे रहती है, उसतरह तू रानी बनकर अधिकारके साथ वहां रह। कोई स्त्री दासीभावसे हीन अवस्थामें न रहे, अपितु उत्तम अधिकारसे सुसरालमें रहे, यह इन मंत्रोंका तात्पर्य है। और देखिये—

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि
शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवृकामा स्योना
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ (ऋ. १०।८५।४४)

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना
शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयै–
धिषीमहि सुमनस्यमाना॥ १७॥
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि
शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजापती वीरसूर्देवृकामा
स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥१८॥ (अथर्व. १४।२)

'हे स्त्री! तू (अ–घोर–चक्षुः) अपनी दृष्टि क्रूर न रख, (अ–पतिघ्नी) पतिको कष्ट न दे, (पशुभ्यः शिवा) घरके पशुओंका कल्याण करनेवाली बन, तथा (सुमनाः सुवर्चाः) उत्तम मनवाली तथा उत्तम तेजस्विनी हो कर रह, (वीर–सूः) वीर पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाली हो, (देवृकामा) घरमें पतिके भाई हों, ऐसी इच्छा करनेवाली हो, (स्योना) सुख देनेवाली हो, (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे दो पांववालों और चार पांव वालोंके लिये आनन्द देनेवाली हो। (शग्मा सुशेवा) सुखदायी तथा पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली हो, (गृहेभ्यः सुयमा) घरवालोंके लिये उत्तम नियमोंसे चलनेवाली बन कर रह, (प्रजावती) प्रजा उत्पन्न करनेवाली होकर इस गार्हपत्य अग्निकी उपासना कर।'

इसतरह स्त्रीको घरकी सम्राज्ञी वेद बनाता है और देखिये–

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतां
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाऽ–
धाजिव्री विदथमा वदाथः॥ (ऋ. १०।८५।२७)
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वा–
थ जिर्विर्विदथमा वदासि। (अथर्व १४।१।२१)

'अपनी प्रजासे यहां तेरा प्यार हो, इस पतिके घरमें गृहस्थ–धर्मका पालन करनेके लिये जाग्रत रह, इस पतिके साथ सुखपूर्वक रह और यज्ञमें अपने पतिके साथ भाग ले।' तथा—

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिः दुर्गमतीनां अप द्रान्त्वरातयः॥
(अ. १४।२।११ ऋ. १०।८५।३२)

जो शत्रु इनके पास रहते हों, वे इन पति पत्नीको न जानें, ये दम्पती सुगम मार्गसे कठिन कार्यको करते रहें और शत्रु इनसे दूर भाग जांय। तथा—

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापति–
राजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मंगलीः पतिलोकमा विश
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥
इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥
(ऋ. १०।८५।४३;४५)

'प्रजाका पालक ईश्वर इस स्त्रीमें प्रजा उत्पन्न करे।

अर्यमा वृद्धावस्था तक इसको ले जाय अर्थात् यह दीर्घायु हो। पतिके घर जाकर यह मंगल करनेवाली बने। द्विपाद और चतुष्पादोंके लिये यह स्त्री कल्याण करनेवाली बने। हे इन्द्र! इस स्त्रीके उत्तम पुत्र हों, ऐसा कर। यह स्त्री सौभाग्यसे युक्त हो। हे स्त्री! तेरे दस पुत्र उत्पन्न हों और पश्चात् पतिको ग्यारहवां मान।'

वेदमें दस पुत्र या दस संतान उत्पन्न करनेकी मर्यादा कही है। पर ब्राह्मण-ग्रंथोंमें 'अष्टपुत्रा' पदसे आठ पुत्र उत्पन्न करनेकी मर्यादा बताई है। वेदके समयमें और ब्राह्मण के समयमें इतना परिवर्तन संततिनियमनके विषयमें हुआ है। आज तो सरकार संततिनियमन करनेवालोंकी सहायता कर रही है। इतना समयमें परिवर्तन हो गया है। वैदिक कालमें दस पुत्रोंकी इच्छा पति और पत्नी करते थे, ब्राह्मण कालमें वह इच्छा आठ पुत्रोंकी रह गई और आज संतति-नियमन एक आवश्यकतत्त्व बन गया। अस्तु। और देखिये—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोदमानौ स्वे गृहे॥
(ऋ. १०।८५।४२)

मोदमानौ स्वस्तकौ। (अ. १४।१।२२)

'यहीं रहो, (मा वि यौष्टं) कभी विभक्त न होओ। संपूर्ण आयुका भोग करो। अपने घरमें आनंदके साथ पुत्रों और पौत्रोंके साथ खेलते हुए आनंदसे रहो।

यहां (मा वि यौष्टं) विभक्त न होओ, ऐसा कहा है। विवाह-विच्छेदका इसतरह वेद निषेध करता है। सौ सवा सौ वर्षोंतक अपने पुत्र पौत्रोंसे खेलते और आनन्द करते हुए अपने घरमें रहो। कभी विभक्त न होओ।

विवाहका विच्छेद नहीं करना चाहिये। अपने घरमें आनंदसे पुत्रों और पौत्रोंके साथ रहो। यह वेदकी आज्ञा है।

स्त्रियां कैसी हों?

स्त्रियां कैसी हों इस विषयमें वेद कहता है कि—

शुद्धाः पूताः योषितो यज्ञिया इमाः
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि॥
(अ. ६।१२२।५)

'शुद्ध पवित्र और पूजनीय ऐसी ये स्त्रियां हैं। इनको ज्ञानियोंके हाथमें पृथक् पृथक् देता हूं।' जिनको कन्या-दान करना हो, वे ज्ञानी हों, अज्ञानी न हों, तथा वे स्त्रियां विचारसे शुद्ध हों, पवित्र भाषण करनेवाली हों, और सदाचारी होनेके कारण पूजनीय हों। विचार, उच्चार और आचार में वे निर्दोष हों।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
(अ. ११।५।१८)

कन्या, कन्या-गुरुकुलमें रहकर विदुषी होती थी। इधर लडका भी गुरुकुलमें रहकर विद्वान् होता था। ऐसे दोनोंका (युवानं पतिं विन्दते) तारुण्यमें विवाह होता था। स्त्री भी तरुणी होती थी और वर भी युवा होता था। दोनों तरुण और विद्यायुक्त होते थे। इसलिये विवाहके मंत्र वे ज्ञानपूर्वक समझते थे।

'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' ये चार पुरुषार्थ हैं। धर्मका आचरण ब्रह्मचर्याश्रममें शुरू होता है। तदनंतर 'अर्थ' को-धनको प्राप्त करना होता है। धन प्राप्त करके 'काम' अर्थात् विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होना होता है। इसलिये चतुर्विध पुरुषार्थोंमें 'अर्थ' को पहिले रखा और 'काम' को उसके पश्चात् रखा है। धनहीनसे गृहस्थ-धर्मका पालन ठीकतरह नहीं हो सकता है, इसलिये कहा है कि—

भगेन सह कुमारीं आगमेत्। (अथर्व. २।३६।१)

'धनके साथ कुमारीके पास जावें और उसको पत्नीके रूपमें प्राप्त करें।' स्त्रीका और बालबच्चोंके पोषण करनेका भार पुरुषपर आता है। इसलिये विद्या प्राप्त करनेके पश्चात् पुरुष धन प्राप्त करे और पश्चात् विवाहका विचार करे। विवाहके पश्चात्—

भगस्य जुष्टा इयं नारी
पत्या अविराधयन्ती सं प्रिया अस्तु॥
(अथर्व. २।३६।४)

'ऐश्वर्यको प्राप्त हुई यह स्त्री, पतिसे विरोध न करती हुई पतिको प्रिय हो।' विवाहके पूर्व यह स्त्रीको शिक्षा मिलनी चाहिये, कि वह पतिके घर किस तरह रहे। आजकल स्वतंत्र विचार बढाये जाते हैं। स्वतंत्र विचार अवश्य चाहिये, विचारोंकी गुलामी नहीं चाहिये, परंतु वह स्वतंत्रता ऐसी नहीं चाहिये, कि जो पतिपत्नीमें विरोध पैदा करे। इसलिये कहा है कि—

पतिं गत्वा सुभगा वि राजतु
पुत्रान् सुवाना महिषी भवाति। (अथर्व. २।३६।३)

*

' यह स्त्री पतिके घर जाकर उत्तम ऐश्वर्य युक्त बने, पुत्रोंको उत्पन्न करके रानी जैसी विराजती रहे। ' यहां ' महिषी भवाति ' यह पद मुख्य है। सम्राज्ञी या रानी जैसी यह स्त्री पतिके घर विराजती रहे। स्त्रीकी यह योग्यता है। राष्ट्रका संवर्धन करनेका कार्य स्त्रियोंका है। स्त्रियां संतान उत्पन्न करती हैं, जिससे राष्ट्र बढता रहता है। जिस राष्ट्रमें केवल पुरुष ही पुरुष हों, वह राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। प्रजाकी वृद्धि करना स्त्रियोंका ही कार्य है। इसलिये स्त्रियोंको रानीके समान घरमें रखना चाहिये, ऐसा वेद कहता है। पतिके घर आयी हुई स्त्री क्या क्या इच्छा करे, इस विषयमें कहा है–

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
(अथर्व. १४।१।४२)

स्त्री पतिके घर (सौ–मनसं) उत्तम मन और उत्तम विचारोंके साथ रहे, (प्रजां) उत्तम संतान होनेकी इच्छा करे, मेरे द्वारा उत्तम संतान उत्पन्न हों ऐसा विचार मनमें धारण करे, उत्तम भाग्य और ऐश्वर्य प्राप्त हो ऐसी इच्छा स्त्री करे। घरके व्यवहार ऐसे करे कि जिससे वह घरकी रानी है ऐसा देखने वालोंको पता लगे।

पत्युः अनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्व अमृताय कम्।
(अथर्व. १४।१।४२)

' घरमें स्त्री पतिके अनुकूल बर्ताव करती रहे। और अमरत्व और आनन्द प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करे। ' अमृत और आनन्द प्राप्त करना चाहिये। अमृतत्वका अर्थ दीर्घ– जीवन और आनन्दका अर्थ मनका शान्तिपूर्ण सुख है, यह तो उस समय प्राप्त हो सकता है कि जिस समय घरमें पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली पत्नी हो और पत्नीके अनुकूल आचरण करनेवाला पति हो। घरमें परस्पर अनुकूल बर्ताव हो, तो आनन्द और शान्ति स्थापित हो सकती है। मानवोंमें मतभेद तो होते ही रहेंगे, पर उनको बढाना नहीं चाहिये, मर्यादामें रखना चाहिये, उससे घरमें शान्तिसुख बढ सकता है।

स्त्रियां सूत कातें

घरमें फुरसतके समय स्त्रियां सूत कातें और कपडा बनावें–

देवीः अकृन्तन् तन्निरे अभितः
अन्तान् अददन्त अवयन्।
सं व्ययन्तु आयुष्मती
इदं वासः परि धत्स्व॥ (अथर्व. १४।१।४५)

' देवियां घरमें फुरसतके समय सूत कातें। ताना बाना- बुनें, कपडेके अन्तोंको ठीक करें। बुनें, मिलकर बुननेका कार्य उत्तम रीतिसे करें। दीर्घ आयु प्राप्त करती हुई स्त्री इस कपडे- को पहने। '

पत्नीका बना हुआ कपडा पुरुष पहने। इस तरहके कपडे पहननेसे बुननेवाली पत्नीका स्मरण हर समय होगा और इस कारण उस पतिके मनमें अपनी पत्नीके संबंधमें कितना प्रेम रहेगा, इसका विचार पाठक कर सकते हैं। " अपनी पत्नी- का बनाया हुआ कपडा मैं पहन रहा हूं, " यह कल्पना ही कितना आनंद देनेवाली है, इसका विचार करनेसे पता लग सकता है कि, यही तो गृहस्थाश्रममें प्राप्त होनेवाला आनंद है। हरएक गृहस्थीको यह आनंद प्राप्त हो और इससे गृहस्थी लोग सुख प्राप्त करें, यही वेदका आदेश है।

निष्कपट व्यवहार

स्त्रीपुरुषका परस्पर व्यवहार निष्कपट होना चाहिये। इस विषयमें वेदका कहना है—

यत् अन्तरं तत् बाह्यम्। यत् बाह्यं तत् अन्तरम्।
(अथर्व. २।३०।४)

'जैसा मनमें हो वैसा ही बाहरका व्यवहार हो और जैसा बाहरका व्यवहार हो वैसा ही मनमें हो।' किसी तरहका छल या कपट उन दोनोंके व्यवहारमें न हो। कितना बडा आदर्श वेदने गृहस्थियोंके सामने रखा है। इससे ही जीवन अमृत– रूप और आनंदमय हो सकता है।

परस्पर प्रेम

दम्पतीका–पति–पत्नीका–परस्पर प्रेम हो। वे एक दूसरे- को चाहें, कभी उनमें परस्पर विरोध न हो, इस विषयमें कहा है—

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां
कामिनी असः यथा मन्नापगा असः॥
(अथर्व. ६।८।१)

' जिस तरह वृक्षसे बेल चारों तरफ लिपट जाती है, उसी तरह हे स्त्री ! तू मुझसे लिपट जा, मेरी इच्छा करनेवाली हो और मुझसे दूर जानेवाली न बन। '

यह दोनोंका आन्तरिक प्रेम है। इसी प्रेमके कारण यह गृहस्थाश्रम ही पृथ्वीका स्वर्गधाम बन जाता है। इस प्रेम– सुखके प्राप्त होनेपर दोनोंकी आयु भी बढती है। रोग भी मनके सामर्थ्य बढ जानेसे दूर होते हैं, जीवनमें रस आता

है और सब प्रकारसे आनंद अनुभवमें आता है। तथा और देखिये—

अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति।
(अथर्व. ७।३६।१)

'हे स्त्री! अपने हृदयमें मुझे रख, हम दोनोंके मन सदा ही परस्पर मिले रहें।' दोनोंके मनोंमें परस्पर प्रेम-भाव रहे, कभी भी विरोध उत्पन्न न हो। पत्नीके हृदयमें पति वात्सल्य करे और पतिके हृदयमें पत्नी रहे। इस तरह दोनों अन्तःकरणसे एक जैसे होकर रहें।

केश स्त्रियोंका सौंदर्य है

स्त्रियोंका सौंदर्य केशोंसे बढता है। इसलिये स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने केशोंका संरक्षण करें—

केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णः ते असिताः परिः।
(अथर्व. ६।१३७।२)

'तेरे सिरपर केश वैसे बढें जैसे घास बढती है और ये बाल श्वेत न हों, काले ही रहें।' स्त्रीको अपने बालोंका संरक्षण करना चाहिये। इस कार्यके लिए वनस्पतियां भी हैं। केशवर्धक-औषधिका वर्णन इस प्रकार है—

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि॥
(अथर्व. ६।१३६।१)

'हे औषधि! तू दिव्य गुणोंसे युक्त पृथिवी पर उगती है, हे नीचे फैलनेवाली औषधि! केशोंको बलवान् और सुदृढ बनानेके लिये हम तुझे खोदते हैं।'

इस औषधिके रससे बाल बढते हैं, टूटते नहीं, अच्छे और काले रहते हैं और सुन्दर दीखते हैं।

इस औषधिका नाम यहां 'नितत्नि' दिया है। यह कौनसी वनस्पति है, इसकी खोज करनी चाहिये। इससे जो लाभ होते हैं, वे इस सूक्तमें स्पष्ट रीतिसे लिखे हैं। यदि इस वनस्पतिकी खोजकी जाए, तो बहुत लोगोंका लाभ हो सकता है।

सूक्त ६।५९ में अरुन्धती, जीवला ये नाम भी आये हैं।

रश्मिस्नान

स्त्रीको रश्मिस्नान करनेकी भी सलाह वेद देता है। रश्मि-स्नानका अर्थ सूर्य-किरणोंका स्नान है। सूर्यके किरणोंके स्नानसे अपूर्व आरोग्य प्राप्त होता है, देखिये—

सूर्यस्य रश्मीन् अनु याः सञ्चरन्ति
मरीचीर्वा या अनुसञ्चरन्ति॥ (अ. ४।३८।५)

'सूर्यकी किरणोंमें अनुकूलतासे संचार करनेवाली अथवा सूर्य-प्रकाशमें अनुकूलतासे घूमनेवाली स्त्रियां हों।'

'सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषः च'
(ऋ. १।११५।१; वा. य. ७।४२)

'सूर्य स्थावर जंगमकी आत्मा है।' इतना सामर्थ्य सूर्यमें है, सूर्य-प्रकाशसे वह सामर्थ्य मनुष्योंको प्राप्त होता है। जो स्त्री या पुरुष सूर्य-प्रकाशमें भ्रमण करते हैं, वे इस सामर्थ्यको प्राप्त करते हैं। दीर्घायु प्राप्तिमें यह रश्मिस्नान उपयोगी होता है। इसलिये स्त्रियां अवश्य रश्मिस्नान करें, स्त्रियोंका कार्य संतान उत्पन्न करना है, यह राष्ट्ररक्षाके लिये अत्यंत महत्वका कार्य है, इसलिये स्त्रियोंकी सुरक्षा अवश्य करनी चाहिये। इस विषयमें वेदका यह आदेश है—

कर्कीं वत्सां इह रक्ष वाजिन्। (अ. ४।३८।६)

'कर्तृत्व-शक्तिसे युक्त पुत्रीकी यहां इस जगत्में सुरक्षा कर।' पुत्रीमें कर्तृत्व-शक्ति बढे, ऐसी उसको सुशिक्षा देनी चाहिये और उसकी सुरक्षा भी होनी चाहिये।

स्त्रीके पातिव्रत्यकी सुरक्षा

स्त्रीके पातिव्रत्यकी हर तरहसे सुरक्षा होनी चाहिये। राष्ट्रीय कार्योंमें यह कर्तव्य मुख्यतया उल्लेखनीय है। इस सम्बन्धमें वेदका कहना ऐसा है—

देवा वा एतस्यां अवदन्त पूर्वे
सप्त ऋषयस्तपसा ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता
दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥ ६॥
ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चावलुप्यते।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान्॥ ७॥
(अ. ५।१७)

'इस सम्बन्धमें देवोंने पहिले घोषणा करके कहा है, जो सप्त ऋषि तप करनेके लिये बैठते हैं, वे भी वैसाही कहते हैं कि, ज्ञानी की भगाई गयी स्त्री भयानक होती है, उसे परम श्रेष्ठस्थानमें भी रखना कठिन है। जो गर्भ गिराये जाते हैं, जहां चलनेवाले प्राणी नाशको प्राप्त होते हैं, जहां वीर आपसमें ही लडते भिडते हैं, भगाई गई ब्राह्मणकी स्त्री उन सबका नाश करती है।'

किसी की स्त्री भगाई जाय अर्थात् उस स्त्रीके पाति-

व्रत्यका नाश किया जाय, तो वह पातिव्रत्यका नाश सब राष्ट्रका घात करता है, ऐसा देवोंने तथा ऋषियोंने कहा है। जिस राष्ट्रमें ऐसी स्त्रियोंकी दशा होती है, वहां गर्भपात होते हैं, प्राणियोंकी हत्या होती है, आपसमें वीर लडते और अपना नाश करते हैं, इसलिये स्त्रीके कष्ट उन सबका नाश करते हैं। इसलिये स्त्रीके पातिव्रत्यकी सुरक्षाकी जानी चाहिये।

राष्ट्रके अन्दर जो प्रजाजन रहते हैं वे राष्ट्रमें सुरक्षित रहें, उनका नाश न हो, ऐसी यदि इच्छा हो, तो राष्ट्रमें स्त्रियोंके चारित्र्यका रक्षण अवश्य होना चाहिये। क्योंकि स्त्रियोंका चारित्र्य जहां सुरक्षित नहीं रहता, वहां अन्य बातें सुरक्षित रहेंगी ऐसा समझना भूल है।

कामविकारसे अपना बचाव

इस जगत्‌में 'काम' ऐसा है कि जो अनेक पाप कराता है। इस विकारसे ही जगत्‌में स्त्रियोंका अपहरण होता रहा है। इस कामके विषयमें कहा है—

सपत्नहनं ऋषभं कामं हविषा शिक्षामि।
(अथर्व. ९।२।१)

'सपत्नोंका नाश करनेवाले बलवान् कामको मैं यज्ञसे शिक्षित करता हूं।' अर्थात् यज्ञके त्यागभावसे ही कामको संयममें रखा जा सकता है। यह काम बडा मारक है। इससे बचानेवाला कवच ज्ञान है, इस विषयमें कहा है—

यत् ते काम शर्म त्रिवरूथं
उद्भु ब्रह्म वर्म विततं
अनतिव्याध्यं कृतम्। (अथर्व. ९।२।१६)

'कामका एक उत्तम कवच है, जो तीनों केन्द्रोंमें उत्तम रक्षा करता है। यह कवच पहनकर मनुष्य (अन्-अति-व्याध्यं) शत्रुके प्रहारसे बचा रहता है। यह कवच (ब्रह्म वर्म) ज्ञानरूपी कवच है।' इस कवच को पाकर ज्ञानी अपने ज्ञानसे अपनी सुरक्षा करता हुआ कामके हमलोंसे अपना बचाव करता है और सुरक्षित रहता है।

अर्थात् ज्ञानसे सुरक्षित हुआ मनुष्य कामको अपने वशमें रखता है, जिससे उसका बचाव होता है। इस कारण स्त्री-पुरुषोंको प्रथम आयुमें उत्तम ज्ञान देना चाहिये, ताकि ज्ञानके कवचसे उनका काम आदि शत्रुओंसे उत्तम बचाव हो सके। ऐसे ज्ञान कवचको पहननेवाले पुरुष यदि राष्ट्रमें हों, तो स्त्रियोंके चारित्र्यका बचाव उत्तम रीतिसे हो सकता है और जहां स्त्रियोंके चारित्र्यका बचाव होता है, वह राष्ट्र एक उत्तम व श्रेष्ठ राष्ट्र बन सकता है।

पत्नीके गुण

जिन शुभगुणोंके कारण पत्नी श्रेष्ठ समझी जाती है, वे शुभ गुण ये हैं—

मृदुः निमन्युः केवली प्रियवादिनी अनुव्रता।
(अथर्व. ३।२५।४)

१. मृदुः– स्त्री शान्त स्वभाववाली हो।
२. निमन्युः– स्त्री क्रोध करनेवाली न हो।
३. प्रियवादिनी– स्त्री प्रिय बोलनेवाली हो।
४. अनुव्रता– स्त्री पतिके अनुकूल कार्य करनेवाली हो।
५. केवली– स्त्री केवल अपने पतिकी ही बनकर रहनेवाली हो।
६. वशा– पतिके वशमें रहनेवाली स्त्री हो।
(अथर्व. ३।२५।६)
७. चित्तं उपायसि– पतिके चित्तके साथ अपना चित्त लगानेवाली स्त्री हो। (अथर्व. ३।२५।५)
८. क्रतौ असः– पति जो कर्म करे, उसमें सहायता देनेवाली स्त्री हो। (अथर्व. ३।२५।२६)
९. अक्रतुः–पतिके विरुद्ध कोई कर्म करनेवाली स्त्री न हो। (अथर्व. ३।२५।६)

इन शुभगुणोंसे युक्त धर्मपत्नी हो। गृहस्थाश्रमको उत्तम रीतिसे यशस्वी बनानेके लिये स्त्रीके अन्दर ऐसे शुभ गुण होने चाहिये। स्त्री और पुरुष एक विचारवाले हों तभी यह गृहस्थाश्रम सुखदायक हो सकता है। वेदने इस गृहस्थाश्रमको सुखपूर्ण करने लिये कितना उत्तम उपदेश दिया है।

वीर पुत्रकी उत्पत्ति

पुत्रका नाम वेदमें 'वीर' तथा कन्याका नाम 'वीरा' अथवा 'सुवीरा' है। पुत्र कैसा हो, इस विषयमें यजुर्वेदका यह वचन ध्यानमें धरने योग्य है—

जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् (वा. जु. २२।२२)

'विजयशील, रथमें बैठनेवाला, सभामें सन्मान पाने योग्य, तरुण जैसा कार्यकर्ता पुत्र इस यजमानके हो। इस मंत्रमें वीरपुत्र चाहिये, यह आकांक्षा स्पष्ट है। इसी इच्छाको इस मंत्रने और स्पष्ट रीतिसे प्रकट किया है—

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम्।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः॥ २॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्॥ ३॥
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यः तुभ्यं शं असत्
शं उ तस्मै त्वं भव ॥ ५॥ (अथर्व. ३।२३)

' हे स्त्री ! जैसे तरकशमें बाण रहता है, वैसे ही पुत्र तेरे गर्भमें रहे। तेरा पुत्र वीर बने और वह दशवें मासमें उत्पन्न हो, अर्थात् उसकी बाढ उत्तम रीतिसें हो और पश्चात् उसका जन्म हो। हे स्त्री ! पुत्रको उत्पन्न कर और उस पुत्रके पश्चात् भी तुझे पुत्र ही हो। इस तरह तू अनेक पुत्रोंकी माता बन। तुझसे जन्मे हुए पुत्र हों और भविष्यमें होनेवाले भी पुत्र ही हों। हे स्त्री ! इस तरह तू पुत्रको प्राप्त हो, वह पुत्र तुझे सुख देवे और तू उस पुत्रको सुख देनेवाली बन। '

इस तरह पुत्र होनेकी इच्छा वेदमें बताई है। घरमें पुत्र होना चाहिये, जिससे कुल चलता रहे और कुलकी वृद्धि होती रहे।

यहां ' बाण इव इषुधिं ' ये पद मननीय हैं। तरकशमें बाण रहता है, वह बाण शत्रुको मारनेके लिये ही होता है। उसी प्रकार यह पुत्र दुष्टोंको बींधनेवाला बने, शूरवीर बने यह इसका तात्पर्य है। ' वीर ' का अर्थ भी ऐसा ही शूरतादर्शक है। ' वीरयति अमित्रान् ' दुष्टोंको जो दूर करता है उसको वीर कहते हैं। पुत्र ऐसा वीर शूर प्रभावी बली हो, यह वेदका कहना है।

गर्भदोषका निवारण

स्त्रीमें गर्भ रहता है, तब नानाप्रकारके दोष उस गर्भाशयमें होते हैं, उन सब दोषोंको दूर करना चाहिये और निर्दोष पुत्र उत्पन्न करना चाहिये, इस विषयमें कहा है—

यः स्त्रियं मृतवत्सां
अवतोकां कृणोति अस्याः तं नाशय ॥ १९ ॥
ये अम्नः जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ॥१९॥
अप्रजास्त्वं मार्तवत्सं रोदं अघं आवयं प्रतिमुञ्च ॥२६॥
(अथर्व. ८।६)

' जो स्त्रीको मरनेवाले बालकोंकी माता बनाता है, अर्थात् जिस कृमिके कारण स्त्रीके पुत्र जन्मते ही मर जाते हैं, उन रोग कृमियोंको दूर करो। संतान न होना, गर्भमें ही संतानका मर जाना अथवा उत्पन्न होते ही मर जाना आदि दोष जिनसे होते हैं, वे रोग या वे रोगके कृमि स्त्रीके प्रसूति-गृहसे दूर हो जांय। अर्थात् ये रोग कृमि स्त्रीके गर्भाशयमें न जायं तथा प्रसूतिगृहमें भी न रहें। '

अर्थात् स्त्रीको इन रोगकृमियोंसे कोई हानि न पहुंचे और हर स्त्री सुसन्तानवाली हो और वह सन्तान भी उत्तम बलशाली धीर वीर और शूर बने। इस विषयमें और भी अधिक विचार वेदने कहा है—

शमीं अश्वत्थं आरूढः तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तद् स्त्रीषु आभरामसि ॥१॥
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियां अनु षिच्यते।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिः अब्रवीत् ॥२॥
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसं उ दधत् इह ॥ ३ ॥
(अ. ६।११)

' शमी (सेंवर) के वृक्षपर उगे हुए अश्वत्थ (पीपल) को औषधिरूपमें सेवन करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है, पुत्र प्राप्तिका यह उत्तम साधन है, वह औषध स्त्रीको देनी चाहिए। पुरुषका वीर्य स्त्रीमें सींचा जाता है, उससे पुत्रकी प्राप्ति होती है, ऐसा प्रजापतिने कहा है। यहां हमारे घरमें पुत्र ही उत्पन्न हों, लडकीके उत्पन्न होनेका कार्य दूसरेके घरमें हो। '

शमी वृक्षपर उगे हुए अश्वत्थ (पीपल) वृक्षका पंच अंग अर्थात् जड, छिलका, पत्ते, फल, फूल आदिका चूर्ण स्त्रीको दिया जाय, तो पुत्र न होनेवाली स्त्रीके भी पुत्र उत्पन्न होते हैं। यह पुत्र उत्पन्न करनेवाली औषध यहां कही है। वंध्या स्त्री पर इस औषधका प्रयोग करके देखना योग्य है।

इस मंत्रका दूसरा भी एक अर्थ है। (शमी) शान्त और संयमशील स्त्रीका सम्बन्ध (अश्व-त्थ) घोडे जैसे वीर्यवान् पुरुषके साथ हो तो उस स्त्रीके पुरुष संतान होती है। यहां स्त्री (शमी) अर्थात् संयमशील हो और पुरुष (अश्व-त्थ) घोडेके समान वीर्यवान् हो ऐसा कहा है। स्त्री-पुरुषोंको यह बात ध्यानमें रखने योग्य है। व्यायामादि करके पुरुष घोडेके समान वीर्यवान् बने, तथा स्त्री संयमशील बने। इस पर पुत्र ही उन दोनोंके सम्बन्धसे होते हैं।

सूर्य--चन्द्र जैसे बालक

घरमें बालक सूर्य अथवा चन्द्र जैसे हों। अदिति माताका यह विश्वरूपी घर है। इसमें सूर्य और चन्द्र जैसे पुत्र हों और वे घरमें खेलते रहें, ऐसी इच्छा वेदने प्रकटकी है, देखिये—

पूर्वापरं चरतो मायचैतौ
शिशू क्रीडन्तो परि यातोऽर्णवम्।

विश्वान्यो भुवना विचष्ट
ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ (अ. ७।८१-१)

' ये दो बालक सूर्य और चन्द्र खेलते हैं और शक्तिसे आगे पीछे चलते रहते हैं और वे भ्रमण करते हुए समुद्र-तक पहुंचते हैं। इनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ स्वयं भी नया नया बनता जाता है।

अर्थात् इन दो बालकोंमें एक संपूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है और दूसरा ऋतुओंका निर्माण करता है। ऐसे सूर्य चन्द्र जैसे पुत्र घरघरमें उत्पन्न होने चाहियें। ऐसी इच्छा पति और पत्नी अपने मनमें धारण करें, यह बोध यहां मिलता है।

मेखला-बंधन

कमरको कसनेके लिये कमरबंध बांधा जाता है। कमरको कसनेसे शक्ति बढती है और ढीली कमर रखनेसे ढीलापन उत्पन्न होता है। इसलिये वैदिक-संस्कारोंमें 'मेखला-बंधन' का विधान है। कोई पुत्र ढीलीकमरवाला न हो, सब कटिबद्ध हो कर तैयार हों और वीरता दिखानेके लिये तैयार रहें, इसलिये कहा है—

वीरघ्नी भव मेखले। (अ. ६।१३३।२)

मेखला कमर पर बांधनेसे शत्रुके वीरोंको मारनेकी शक्ति शरीरमें आजाती है। तथा और देखिये—

यां त्वा पूर्वे भूतकृतः ऋषयः परिबेधिरे।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥
(अथर्व. ६।१३३।५)

' हे मेखले! जिस तुझको भूतकालके पराक्रम करनेवाले ऋषियोंने बांधा था, वह तू मेरी दीर्घायुके लिये मेरे शरीर पर लिपटी रह।'

मनुष्य मेखलाबंधनसे दीर्घायु प्राप्त करके प्राचीन विद्वान् ऋषियोंकी तरह उत्तम प्रभावी आचरणको अपना सकता है।

मेखलाबन्धन कटिबद्धता बताता है। हरएक कार्य करनेके लिये कटिबद्धता रहनी चाहिये, जिससे उत्साहपूर्वक कार्य हो सके। वीरता बढानेके लिये मेखलाबंधन अत्यंत आवश्यक है। इसलिये कहा है—

ब्रह्मणा तपसा श्रमेण मेखलया सिनामि
(अ. ६।१३३।३)

' ज्ञान, शीत-उष्ण सहन करनेकी शक्ति, परिश्रम करनेका सामर्थ्य और कटिबद्धता इन सबसे मैं युक्त हूं।' इतने गुण तरुणोंमें होने चाहियें। ज्ञान और विज्ञान मनुष्यके लिए अत्यंत आवश्यक हैं, ज्ञान मनःशान्तिके लिये और विज्ञान ऐहिक सुखोपभोगोंके लिये। शीत-उष्ण, हानि-लाभ, जय-पराजय इन द्वंद्वोंका सहन करके भी अपना कर्तव्य करना चाहिये, श्रम करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये और कमर कसनी चाहिये। यह सब तरुणोंको तैयार रहनेकी सूचना है। कुछ भी हो सदा कर्तव्य करनेके लिये सिद्ध रहना चाहिये। यह इसका तात्पर्य है।

गृहस्थीको अपना-अपना घर बना कर उसमें रहना चाहिये। घर कैसा हो इस विषयका विचार अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त १२ में किया है। इस सूक्तमें घरका वर्णन करनेवाले ये पद हैं, जो घरका यथायोग्य वर्णन कर रहे हैं, इसलिये इन पदोंका ही यहां विचार करते हैं—

१ अश्वावती— (शाला)— अपने घरमें घोडे हों। बाहर जाने आनेके लिये घोडे ही उपयोगी हैं। (मंत्र २)

२ गोमती— घरमें गायें हों। गौका दूध पुष्टिका उत्तम साधन है। गौ और बैल ये दोनों उपयोगी पशु हैं। गाय दूध देती है और बैल खेती करके धान्य देता है। (मं. २)

३ पयस्वती— घरमें भरपूर दूध हो।

४ घृतवती— घरमें भरपूर घी हो।

५ घृतं उक्षमाणा— घर घी देनेवाला हो। (मं. १)

६ ऊर्जस्वती— घरमें विपुल अन्न हो। (मं. २)

७ धरुणी, ८ पूतिधान्या— घरमें पर्याप्त धान्य हो।

९ परिस्रुतः कुम्भः—घरमें मीठे शहदसे भरा घडा हो। (मं. ७)

१० दध्नः कलशैः— दहीसे भरे कलश घरमें हों। (मं. ७)

११ घृतस्यः कुम्भं— घीसे भरा हुआ घडा घरमें हो (मं. ८)

१२ अयक्ष्मा यक्ष्मनाशिनीः आपः— निरोग और रोगोंको दूर करनेवाला जल घरमें हो। (मं. ९)

घरमें ये पदार्थ रहने चाहिये। जिससे घरके लोग हृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग रह सकें। आजकल गायका घी और दूध मिलना मुश्किल हो गया है। इससे पोषक खाद्य वस्तु नहीं मिल पा रही। गायका दूध, दही, छाछ, मक्खन, तथा घीसे घरमें जहां घडे भरे होते थे, वहां आज पाव भर भी नहीं

मिल पा रहा है। इस समस्याका केवल एक ही हल है कि लोग अपना ध्यान गोरक्षा करनेके कार्यमें लगावें।

अतिथि--सत्कार

वेदोंमें विधान है कि अतिथि सत्कार घी की धारासे करना चाहिये—

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भं एतं
घृतस्य धारां अमृतेन संभृताम्।
इमां पातॄन् अमृतेना समङ्धि
इष्टापूर्तं अभि रक्षत्येनाम्॥ (अ. ३।१२।८)

'हे गृहपत्नी! अतिथियोंको परोसनेके लिये घीका घडा ले आओ, और अतिथियोंको जितना चाहिये उतना दो, कंजूसी न करो।' इस प्रकारका दान घरकी शोभा बढाता है। घरका महत्त्व सुरक्षित रखता है।

घरमें अतिथि आये तो उस विद्वान् अतिथिका सत्कार करना चाहिये। गृहस्थीका यह कर्तव्य ही है, विद्वान् पुरुष सत्कार्य करनेके लिये, सदुपदेश करनेके लिये, देशोद्धार करनेके लिये भ्रमण करते हैं। उनका आदर सत्कार, खान-पान आदिका प्रबंध गृहस्थी पुरुषोंको ही करना चाहिये।

गृहस्थियोंके आश्रयसे ही वे उपदेशक जीवित रह सकते हैं और राष्ट्रके उद्धारका कार्य कर सकते हैं। यदि गृहस्थी लोगोंने उनको खान पान तथा अन्य प्रकारकी सहायता न दी, तो उनका गुजारा किस तरह हो सकता है, और यदि उनका गुजारा ठीक तरह नहीं हुआ, तो वे अपना कार्य भी किस तरह कर सकते हैं? अतः इसका भार गृहस्थियोंको ही सहन करना चाहिये।

गृहस्थीको ही इन राष्ट्र सेवकोंका पालन करना चाहिये। नहीं तो वे उपदेशक कहां जांय। इस कारण गृहस्थपर यह भार है।

गौओंका संरक्षण

घरमें गौओंका संरक्षण होना चाहिये। 'गौवें' घरकी शोभा बढाती हैं और उनका उपयोग भी घरवालोंको है—

गावः! यूयं कृशं चित् मेदयथ।
अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ। (अ. ४।२१।६)

'हे गौवो! तुम कृश मनुष्यको हृष्टपुष्ट बना देती हो और निस्तेजको सतेज बनाती हो।' यह गौओंका गुण है जो घरके मानवोंके लिये बडा सहायक है।

(गावः) सूयवसे रुशन्तीः।
सुप्रपाणे शुद्धा अपः पिबन्ति। (अ. ४।२१।७)

'गौवें उत्तम घास खावें और उत्तम जलस्थानमें शुद्ध जल पीयें।' इस प्रकार गौवोंका पालन घर-घरमें होना चाहिए। आज गौवें मारी जाती हैं। वेदमें गौ, बैल और पर्वतको 'अघ्न्य' अर्थात् अवध्य कहा है। जिसका वध नहीं होना चाहिये उसका ही वध हो रहा है, इससे हमारे आरोग्यकी हानि इतनी हो रही है कि जो किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकती।

अन्न, गोपालन, गृहरक्षण आदि बहुत उपदेश इसके पश्चात् हैं। वे सब मननीय हैं। अब बात आती है ऋण-रहित होनेकी, वह अब देखिये—

ऋणरहित होना

ऋणरहित होनेके विषयमें वेदमें बडा उत्तम उपदेश है। वह देखिये—

अनृणा अस्मिन् अनृणाः परस्मिन्
तृतीये लोके अनृणाः स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः
सर्वान् पथो अनृणाः आ क्षियेम॥
(अ. ६।११७।३)

'इस लोकमें हम ऋणरहित हों, परलोकमें ऋणरहित होकर रहें, तृतीय लोकमें भी हम ऋणरहित होकर रहें, जो देवयान और पितृयान मार्ग हैं उनसे हम ऋणरहित होकर जाएं।'

इस तरह उऋण होनेके संबंधमें कहा है। यह विषय प्रत्येक गृहस्थीको ध्यानमें धारण करने योग्य है। ऋणरहित होना यह प्रत्येक गृहस्थीके लिये आवश्यक है। क्योंकि ऋणमें रहनेसे अनेक आपत्तियोंका सामना करना पडता है। इसलिये ऋणरहित होना हरएकके लिये उचित है।

विपत्तिको हटाना

ऋण एक विपत्ति है इस तरहकी अनेक विपत्तियां इस विश्वमें हैं। हरएक विपत्तिको दूर करना अत्यावश्यक है। इन विपत्तियोंको हटानेके विषयमें यह मंत्र अत्यंत विचार करने योग्य है—

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वं अराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचः ता अस्मन्नाशयामसि॥
(अ. ७।२३।१)

'दुष्ट स्वप्न, दुःखमय जीवन, हिंसकोंका उपद्रव, विकासमें होनेवाली बाधायें, निर्धनता, बुरे शब्द बोलनेका स्वभाव, सब प्रकारके दुष्ट भाषण करनेका अभ्यास ये सब विपत्तियां हमसे दूर हों।'

ये सब विपत्तियां हैं। इनसे कष्ट होते हैं, इसलिये इन विपत्तियोंको दूर करना चाहिये और भाग्य प्राप्त करना चाहिये।

तेन मा भगिनं कृणु
अप द्रान्त्वरातयः। (अ. ६।१२९।३)

'मुझे भाग्यवान् कर, सब आपत्तियां मुझसे दूर हों।' यह इच्छा हरएक गृहस्थीमें रहनी चाहिये। और इसके लिये उसके प्रयत्न होने चाहिये। अपनी सुरक्षा करनी चाहिये। गृहस्थीके विचार हों, कि—

यो नो द्वेष्टि अधरः सस्पदीष्ट
यं उ द्विष्मः तं उ प्राणो जहातु॥ (अ. ७।३२।१)

'जो अकेला हम सबसे द्वेष करता है वह नीचे गिर जाय, तथा जिस अकेलेसे हम सब द्वेष करते हैं उसके प्राण उसको छोडकर चले जायं।' अर्थात् वह मर जाय।

अपनी सुरक्षा करनेके लिये जो यत्न होना चाहिये उसमें बहु मतवालोंकी सुरक्षा हो और दुष्टोंकी अल्पमति रहें, ऐसा यत्न करना चाहिये।

इसप्रकार गृहस्थाश्रमके उपदेश-परक मंत्र इस खण्डमें आये हैं। उनका संक्षिप्त सा परिचय इस भूमिकामें देनेका हमने प्रयत्न किया। इस खण्डके सभी सूक्त मननीय व आचरणीय हैं।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष– स्वाध्याय मण्डल

अथर्ववेद-

भाग तीसरा

गृहस्थाश्रम

पवित्र गृहस्थाश्रम

कांड ६, सूक्त १२२

(ऋषिः- भृगुः । देवता- विश्वकर्मा ।)

ॐ एतं भागं परि ददामि विद्वान्विश्वकर्मन्प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥ १ ॥
ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥ २ ॥

अर्थ— हे (विश्वकर्मन्) हे समस्त जगत्के रचयिता ! तू (ऋतस्य प्रथमजाः) सत्य नियमका पहिला प्रवर्तक है, इस बातको (विद्वान्) जानता हुआ मैं (एतं भागं परि ददामि) इस अपने भागको तेरे लिये पूरी तरहसे देता हूं । (जरसः परस्तात् अस्माभिः दत्तं अच्छिन्नं तन्तुं) बुढापेके पश्चात् भी अपने द्वारा दिये हुए विच्छेदरहित यज्ञके सूत्रसे हम (अनु संतरेम) निश्चयपूर्वक अनुकूलताके साथ दुःखसे पार हो जायें ॥ १ ॥

(येषां आयनेन पित्र्यं दत्तं) जिनके आनेसे पितृसंबंधी देय ऋणभाग चुक जाता है, (एके ततं तन्तुं अनु तरन्ति) ऐसे कई लोग इस फैले हुए यज्ञसूत्रके अनुकूल रहकर दुःखसे पार हो जाते हैं। (एके अबन्धु) कई दूसरे बंधुगणोंसे रहित होकर भी (ददतः) दान देते हैं, वे (प्रयच्छन्तः च इत् दातुं शिक्षान्) दान देते हुए यदि देनेके लिये समर्थ हुए, तो (सः स्वर्ग एव) वह स्वर्ग ही है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे जगत्के रचयिता प्रभो ! तू ही सत्यधर्मका पहिला प्रवर्तक है, यह मैं जानता हूं, इसलिये मैं अपने भागको तेरे लिये समर्पित करता हूं । इस समर्पणसे जो अविच्छिन्न यज्ञ बनेगा, उसकी सहायतासे मैं दुःखके पार हो जाऊं ॥ १ ॥

इस यज्ञके आश्रयसे ही कई लोग दुःखसे पार हुए हैं । जिनका कुछ पैतृक ऋण चुकाना होता है, वे बांधवोंसे हीन होनेपर भी और कठिन समय आनेपर भी उस ऋणको वापस कर देते हैं । ऐसे लोग जहां होते हैं वहां स्वर्गधाम हो जाता है ॥ २ ॥

❀

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥ ३ ॥
यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात्तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥ ४ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥ ५ ॥

अर्थ— हे (दम्पती) स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों (अनु आरभेथां) परस्पर अनुकूल रहकर शुभ कार्यका प्रारंभ करो तथा (अनुसंरभेथां) परस्पर अनुकूलताके साथ प्रगति करो । (एतं लोकं श्रद्धानाः सचन्ते) इस गृहस्थाश्रमरूपी लोकको श्रद्धा धारण करनेवाले ही प्राप्त होते हैं । (यत् अग्नौ परिविष्टं वां पक्वं) जो अग्निद्वारा सिद्ध हुआ हुआ तुम दोनोंका परिपक्व फल हो (तस्य गुप्तये संश्रयेथां) उसकी रक्षाके लिये तुम परस्पर एक दूसरेकी सहायता करो ॥ ३ ॥

(तपसा यन्तं बृहन्तं यज्ञं) तपसे चलनेवाले बडे यज्ञकी वेदिपर (सयोनिः मनसा अनु आरोहामि) समान स्थानमें उत्पन्न हुआ मैं अनुकूलताके साथ मनसे चढता हूं । हे अग्ने ! (जरसः परस्तात् उपहूताः) बुढापेके पहिले बुलाये हुए हम (तृतीये नाके सधमादं मदेम) तृतीय स्थान अर्थात् स्वर्ग धाममें साथ साथ रहकर सुखको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

(इमाः यज्ञियाः शुद्धाः पूताः योषितः) इन पूज्य, शुद्ध और पवित्र स्त्रियोंको मैं (ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि) ज्ञानियोंके हाथोंमें पृथक् पृथक् प्रदान करता हूं । (अहं यत्कामः इदं वः अभिषिञ्चामि) मैं जिस कामनासे इस रीतिसे तुमको अभिषिक्त करता हूं, (सः महत्त्वान् इन्द्रः) वह बडा प्रभु (मे तत् ददातु) मुझे वह देवे ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों इस गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर शुभ कार्य करते रहो और उन्नतिके लिये प्रयत्न करो । इस गृहस्थाश्रममें श्रद्धावान् लोग ही सुखपूर्वक रहते हैं । जो इसमें परिपक्व हुआ हो और जो पूर्ण हुआ हो, उसकी रक्षा करनेके लिये तुम दोनों प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

जो यज्ञ तपसे होता है, उसीमें मन रखकर उसको पूर्ण करना योग्य है । इस प्रकार बुढापेतक कर्म करनेसे उच्च स्वर्गधाम प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ये पवित्र और शुद्ध कन्याएं हैं, इनको ज्ञानियोंके हाथमें पृथक् पृथक् अर्पण करता हूं । जिस कामनासे मैं यह यज्ञ करता हूं वह मेरी कामना सफल हो ॥ ५ ॥

पवित्र गृहस्थाश्रम ।

गृहस्थाश्रमको अत्यंत पवित्र बनाकर उससे आनंद प्राप्त करनेके विषयमें इस सूक्तमें बहुतसे अनमोल उपदेश हैं—

(१) संपूर्ण जगत्का निर्माता प्रभु ही सत्यनियमोंका पहिला प्रवर्तक है, ऐसा मानकर उसके लिये शुभ कर्म करना, उसके लिये यज्ञ करना और जो कुछ करना हो वह उसकी प्रीतिके लिये ही करना चाहिये । इस प्रकारके शुभ कर्मोंके करनेसे मनुष्य दुःखमुक्त होता है ।

(२) इस प्रकारके यज्ञसे ही मनुष्यका बेडापार हो सकता है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

(३) जैसे अपना किया हुआ कर्जा अदा करना चाहिये, उसी प्रकार पितृपितामहोंका किया हुआ कर्जा भी उतारना चाहिये । जहां लोग कठिनाईकी अवस्थामें भी इस प्रकार ऋण वापस कर देते हैं और ठगते नहीं; वही देश स्वर्गधाम है ।

(४) गृहस्थाश्रममें स्त्रीपुरुष मिलकर रहें और सदा शुभ कर्म करें, क्योंकि शुभ कर्मोंसे ही श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं।

(५) जो परिपूर्ण हुआ है, उसकी रक्षा करनी चाहिए और उसको देखकर अन्यकी परिपक्वताको प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

(६) सब यज्ञ तपसे ही होते हैं। इस प्रकारके यज्ञ करनेका विचार मनमें सदा करना चाहिये।

(७) यदि कोई वृद्धावस्थातक इस प्रकारके शुभ कर्म करता रहे, तो उस उत्तम स्वर्गधामका आनन्द प्राप्त हो सकता है।

(८) गृहस्थाश्रम करना हो तो पवित्र और शुद्ध स्त्रीके साथ करना चाहिये।

(९) स्त्रीको भी ज्ञानी मनुष्यके हाथमें समर्पित करना चाहिये। इस प्रकार पवित्र स्त्री और ज्ञानी पुरुषसे जो गृहस्थाश्रम बनता है, वह विशेष सुख देनेवाला होता है।

(१०) ऐसे उत्तम गृहस्थाश्रममें रहनेवाला मनुष्य ही अपनी कामनाओंको पूराकर आनंद प्राप्त कर सकता है। प्रभु उसीको सिद्धि देता है।

कुलवधू-सूक्त

कां. १, सूक्त १४,

(ऋषिः- भृग्वङ्गिराः। देवता- वरुणो यमो वा।)

भर्गमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्। महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥१॥
एषा ते राजन्कन्या वधूर्नि धूयतां यम। सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥२॥
एषा ते कुलपा राजन्तामु ते परि दद्मसि। ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥३॥

अर्थ— (वृक्षात् अधि स्रजं इव) वृक्षके फूलोंसे जिस प्रकार माला बनाकर धारण करते हैं, उसी प्रकार (अस्यः भर्गं वर्चः आदिषि) इस कन्याके ऐश्वर्य और तेजको मैं धारण करता हूं। (महाबुध्नः पर्वतः इव) बडे पायेवाले पर्वतके समान यह कन्या (पितृषु ज्योक् आस्तां) मातापिताके घर बहुत समयतक स्थित रहे ॥ १ ॥

हे (यम राजन्) नियमपालन करनेवाले स्वामिन्! (एषा कन्या) यह कन्या (ते वधूः) तेरी वधू होकर (निधूयतां) व्यवहार करे। (अथो) अथवा (सा मातुः भ्रातुः) वह माताके, भाईके (अथो पितुः) किंवा पिताके (गृहे बध्यताम्) घरमें रहे ॥ २ ॥

हे (राजन्) हे स्वामिन्! (एषा) यह कन्या (ते कुल-पा) तेरे कुलका पालन करनेवाली है। (तां) उसको हम (उ ते परिदद्मसि) तेरे लिये देते हैं। (आ शीर्ष्णः समोप्यात्) यह जबतक पैरसे सिरतक न सजायी जावे (ज्योक्) तबतक यह कन्या (पितृषु आसातै) मातापिताके घरमें निवास करे। ॥ ३ ॥

भावार्थ— वृक्षसे फूल और पत्ते निकाल कर जैसे माला बनाकर लोग पहनते हैं उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज मैं स्वीकार करता हूं और उससे अपने आपको सजाता हूं। जिस प्रकार बडी जडवाला पर्वत अपने ही आधारपर स्थिर रहता है; उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निडर होकर बहुत समयतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥

हे नियमपालक पति! यह हमारी कन्या तेरी वधू होकर नियमपूर्वक व्यवहार करे। जिस समय वह तेरे घर न रहे उस समय वह पिता, माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥

हे पति! यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पित करते हैं। जबतक इसका सिर सजानेका समय न आवे तबतक यह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥

असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च । अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (आसितस्य) बंधन रहित, (कश्यपस्य) द्रष्टा (च) और (गयस्य) प्राण साधन करनेवाले (ते) तुझ (ब्रह्मणा) ज्ञानीके साथ मैं [जामयः अंतः कोशं इव] स्त्रियां अपनी पिटारीको जैसे बांधती हैं उसी प्रकार [ते भगं अपि नह्यामि] तेरे ऐश्वर्यको बांधता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ— बंधनरहित, द्रष्टा और प्राणोंको स्वाधीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका सम्बन्ध मैं करता हूं । जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने जेवर संदूकमें सुरक्षित रखती हैं, उसी प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

कुलवधू--सूक्त

पहला प्रस्ताव ।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं । पहले मंत्रमें भावी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है । पति कन्याके रूपको और तेजको पसंद करता है और उस तेजको स्वीकार करना चाहता है । इस विषयमें मंत्रका रूपक अतिस्पष्ट है—

' वृक्षवनस्पतियोंसे पत्ते फूल और मंजरियां लेकर लोग माला बनाते हैं, और उस मालाको गलेमें धारण करते हैं । उसी प्रकार यह कन्या सुगंधित फूलोंकी वेल है, इसके फूल और पत्ते (मुखकमल और हस्तपल्लव) अथवा इसका सौंदर्य और तेज लेकर उससे मैं सुशोभित होना चाहता हूं । अर्थात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाश्रम करनेकी इच्छा करता हूं । जैसे पर्वत अपने विशाल आधारपर रहता है, उसी प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुदृढ आधार-पर रहे । अर्थात् मातापिताओंसे सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और पश्चात् मेरे (पतिके) घर आजावे । '

यह भाव प्रथम मंत्रका है । इसमें भावी पतिका प्रथम प्रस्ताव है । भावी पति कन्याका सौंदर्य और तेज पसंद करता है और उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता करता है । अर्थात् भावी पति कन्याके माता पिताके पास जाकर कन्याकी याचना करता है । और साथ यह भी कहता है है कि, कन्या कुछ समयतक मातापिताके घर ही रहे अर्थात् योग्य समय आनेतक कन्या मातापिताके घर रहे, तत्पश्चात् मेरे घर आवे । योग्य समयकी मर्यादा आगे तृतीय मंत्रमें कही जायगी ।

इस मंत्रके विचारसे पता लगता है कि पुरुष अपनी सह-धर्मचारिणीको पसंद करता है । पुरुष अपनी रुचिके अनुसार कन्याको चुनता है और अपनी इच्छा कन्याके मातापिताके सामने प्रकट करता है । कन्याके मातापिता इस प्रस्तावका विचार करते हैं और भावी पतिको योग्य उत्तर देते हैं ।

इस सूक्तसे यह स्पष्ट नहीं होता कि कन्याको भी अपने पतिके विषयमें पसंदगी नापसंदगीका विचार प्रदर्शित करने का अधिकार है वा नहीं । प्रस्ताव होनेपर भी कन्याका मातापिताके घरमें देरतक निवास करना यह [पितृषु कन्या ज्योक् आस्तां] बता रहा है कि, यह प्रस्ताव कन्याके रजोदर्शनके पूर्व ही कन्याके मातापिताके सामने रखा जाता है । आजकल जिसको ' मंगनी ' कहते हैं, उसके समान ही यह बात दीखती है । इस सूक्तमें कन्याका एक भी कथन नहीं है, अपितु भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकोंका ही कथन है । इससे अनुमान होता है कि, कन्याको उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिको है ।

तीसरे मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम (ते तां परि दद्मसि) तेरे लिये इस कन्याका समर्पण करते हैं ।' यह मंत्रभाग स्पष्ट बता रहा है कि, कन्या इस विषयमें परतंत्र है । मंत्रमें दो बार आया है कि ' कन्या पिता माता अथवा भाईके घरमें रहे ' अथवा आगे जाकर हम कह सकते हैं कि, विवाह होनेपर वह पतिके घर रहे । परन्तु वह कभी स्वतन्त्रतासे न रहे ।

जिस प्रकार वृक्षका आधार उसकी जडें हैं, अथवा पर्व-तका आधार उसकी अति विस्तृत बुनियाद है, उसी प्रकार कन्याका पहला आधार मातापिता अथवा भाई है, और पश्चात्का आधार पति ही है । इससे भिन्न किसी अन्यका आधार स्त्रीको लेना उचित नहीं है ।

प्रस्तावका अनुमोदन ।

प्रथम मंत्रमें कथित भावी पतिके प्रस्तावको सुननेके

पश्चात् कन्याके माता पिता विचार करके भावी पतिसे कहते हैं; कि—

‘ हे नियमसे चलनेवाले स्वामिन् ! यह कन्या तेरे साथ नियमपूर्वक व्यवहार करे। इससे पूर्व यह माता पिता अथवा भाईके घरमें रहे ॥ हे स्वामिन् ! यह कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये हम तेरे लिये इसको प्रदान करते हैं। यह तबतक मातापिताके घर रहे, जबतक इसके सिर सजानेका समय न आजाय ॥ तू बंधनरहित, द्रष्टा और प्राणशक्तिसे युक्त है, इसलिये तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका सम्बन्ध हम जोड देते हैं। जैसे स्त्रियां अपने जेवर संदूकमें सुरक्षित रखती हैं, उसी प्रकार इसके साथ तेरा भाग्य सुरक्षित रहे। ’

यह तीनों मंत्रोंका तात्पर्य है, यह बहुत ही विचार करनेयोग्य है। इन मंत्रोंमें वरके गुण भी बताए हैं। जो इस प्रकार हैं—

वरकी परीक्षा ।

इस सूक्तमें पतिके गुण धर्म बताये हैं, वे यहां प्रथम देखने योग्य हैं—

१ यमः— यमनियमोंका पालन करनेवाला, धर्मनियमोंके अनुकूल अपना आचरण रखनेवाला ।

२ राजन्— राजा (रञ्जयति।) अपनी धर्मपत्नीका रंजन करनेवाला। राजा शब्दका अर्थ ‘ प्रकृतिका रंजन करनेवाला ’ है। गृहस्थधर्ममें धर्मपत्नी ही पुरुषकी प्रकृति है। उस धर्मपत्नीका संतोष बढानेवाला पति ही राजा है।

३ असितः— (अ-सितः अबद्धः) बंधनरहित। अर्थात् जिसका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है। गुलामीके भाव जिसके मनमें नहीं हैं।

४ कश्यपः— (पश्यकः) देखनेवाला। अपनी परिस्थितिको उत्तम रीतिसे जाननेवाला और अपने कर्तव्यको ठीक प्रकार समझनेवाला ।

५ गयः— (प्राणबलयुक्तः) प्राणायामादि योगसाधनद्वारा जिसने अपने प्राणोंका बल बढाया है।

६ ब्रह्मणा युक्तः— ज्ञानसे युक्त। ज्ञानी।

ये छः शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं।

पतिके गुणधर्म ।

धर्मनियमोंके अनुकूल आचरण करना, धर्मपत्नीको संतुष्ट रखना, स्वाधीनताके लिये यत्न करना, अपनी परिस्थितिको ठीक प्रकार जानना, योगादि साधनद्वारा अपनी दीर्घआयु नीरोगता तथा सुदृढताका संपादन करना, तथा ज्ञान बढाना, ये गुण पतिकी योग्यता प्रदर्शित कर रहे हैं।

अपनी कन्याके लिये वर ढूंढना हो, तो उसे उक्त छः गुणोंकी कसौटी पर कस करके ही उसे पसंद करना चाहिये। जिसका आचरण धर्मानुकूल हो, जो धर्मपत्नीके साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव करनेवाला हो, जो स्वाधीनताके लिये प्रयत्नशील हो, जो अपनी अवस्थाको जाननेवाला और तदनुकूल कार्य व्यवहार करनेवाला हो, जो बलवान् तथा नीरोग हो और स्वास्थ्य रक्षा कर सकता हो, तथा जो ज्ञानवान् और प्रबुद्ध हो, उस वरको ही अपनी कन्या प्रदान करनी चाहिए।

जो धर्मानुकूल आचरण नहीं करता, जो किसीके साथ प्रेममय आचरण नहीं करता, जो पराधीनतामें रहता है, जो अपनी अवस्थाके प्रतिकूल आचरण करता है, जो निर्बल और रोगी हो, तथा जो ज्ञानी न हो, उसको किसी भी अवस्थामें अपनी कन्याके लिये वर रूपमें पसंद नहीं करना चाहिये। अब वधूके गुणोंका विचार करते हैं।

वधू-परीक्षा ।

इस सूक्तमें वधूपरीक्षाके निम्नलिखित मंत्र भाग हैं—

१ कन्या— (कमनीया) कन्या ऐसी हो, कि जिसको देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो। रूप, तेज, अवयवोंकी सुंदरता, स्वच्छता, ज्ञान आदि सब बातें ‘ कन्या ’ इस शब्दमें निहित हैं।

२ वधू— (उह्यते पतिगृहं)— जो पतिके घर जाकर रहना पसंद करती है। जो पतिके घरको ही अपना सच्चा घर मानती है।

३ कुलपा— कुलका पालन करनेवाली। पिताके तथा पतिके कुलोंकी मर्यादाओंका पालन करनेवाली। जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका यश बढाती है।

४ ते (पत्युः) भगम्— धर्मपत्नी ऐसी होनी चाहिये, कि जो पतिका भाग्य बढावे। जिससे पतिको धन्यता अनुभव हो।

५ पितृषु आस्ताम्— कन्या विवाहके पूर्व अथवा आपत्कालमें मातापिता अथवा भाई इनके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली हो। किसी अन्यके घर जाकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये।

६ वृक्षात् स्रक्— वृक्षकी पुष्पमालाके समान कन्या हो, पिताके कुलरूपी वृक्षको पुष्पमालारूप कन्या सुगंधित करे।

ये छः मंत्रभाग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं।

कन्याके गुणधर्म।

कन्या सुरूप तथा तेजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रहनेवाली हो, दोनों कुलोंका यश अपने सदाचरणसे बढानेवाली हो, पतिका भाग्य बढानेवाली, यौवनके पूर्व पिताके घरमें तथा यौवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा पुष्पमालाके समान अपने कुलकी शोभा बढानेवाली हो। इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसको ही पसंद करना चाहिए।

जो फीकी, निस्तेज, दुर्मुखी, पतिके घर जानेकी इच्छा न करनेवाली, दुराचारिणी, पतिके भाग्यको घटानेवाली, तथा दोषयुक्त हो, यह कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है।

मंगनीका समय।

इस सूक्तसे विवाहके समयका ठीक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसका ज्ञापक कोई प्रमाण यहां नहीं है। 'कन्या सिर सजानेके समयतक माताके घर रहे' इस तृतीय मंत्रके कथनसे ऐसा प्रतीत होता है, कि मंगनीका समय ऋतुप्राप्तिके कुछ ही वर्ष पूर्व अधिकसे अधिक एक दो वर्ष पूर्व ही है। तथापि वधूपरीक्षाके जो छः लक्षण ऊपर बताये हैं, उन लक्षणोंके स्पष्टतया व्यक्त होनेके लिये यौवन दशाकी प्राप्तिकी अत्यंत आवश्यकता है। 'पतिके घर जानेकी कल्पना' जिस अवस्थामें कन्याके मनमें आती है वह अवस्था मंगनीकी प्रतीत होती है। ये छः शब्द अच्छी, युवती, प्रबुद्ध, कन्याकी अवस्था बता रहे हैं। इन शब्दोंसे कन्याकी मंगनीकी आयुका निश्चय हो सकता है।

भावी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोक्त लक्षणोंका खूब विचार करके भावी पतिके प्रस्तावको स्वीकार या अस्वीकार करें। इस सूक्तमें वरके मातापिताको तथा कन्याको अपना मत देनेके अधिकारका कोई भी उल्लेख नहीं है।

सिरकी सजावट।

तृतीय मंत्रमें कहा है 'ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात्।' (देरतक मातापिताके घरमें कन्या रहे, जबतक सिर सजानेका समय न आजावे।) यहां एक बात कहना आवश्यक है, कि जिस समय स्त्री ऋतुमती होती है, उस समय उसको 'पुष्पवती' भी कहते हैं। पुष्पवतीका अर्थ फूलोंसे अपने आपको सजाने योग्य। प्रथम रजोदर्शन, प्रथम ऋतुप्राप्ति अथवा प्रथम पुष्पवती होते ही उसको फूलोंद्वारा सजानेकी प्रथा विशेषतः उसका सिर फूलोंसे सजानेकी प्रथा भारतवर्षमें इस समयमें भी है। मैसूर और मद्रासकी ओर तो प्रथम प्रसंगके लिये सैकडों रुपयोंके फूल इस पुष्पवती स्त्रीकी सजावटके लिये लाये जाते हैं। बंबईमें भी कई जातियोंमें यह प्रथा है। अन्य जातियोंमें कम है, परंतु सिरमें फूल पहननेका रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विशेष है। यह रिवाज प्रतिदिन कम हो रहा है। एक तो धनाभावके कारण और दूसरा उत्साहके अभावके कारण यह रिवाज कम होता जा रहा है। धनी लोग इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फूल बनाते हैं और पुष्पवती स्त्रीके चतुर्थ दिनमें उसका सिर सजाते हैं। जिन प्रांतोंमें घूंघट निकालनेका रिवाज है, उन प्रांतोंमें यह रिवाज कम है ऐसा हमारा ख्याल है, परंतु सच्ची बात वहां के लोग ही जान सकते हैं। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि घूंघटकी प्रथा अवैदिक है, पर आज वह समाजमें घुस गई है।

मंगनीके पश्चात् विवाह।

इस सूक्तके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मंगनीके पश्चात् विवाहका समय बहुत दूरका नहीं है। प्रथम मंत्रमें वरसे पहला प्रस्ताव अर्थात् मंगनीका प्रस्ताव हुआ है। और द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें ही कन्याके अर्पणका विषय आ गया है। देखिये—

१ एषा कन्या ते वधूः निधूयताम्— यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बनाकर व्यवहार करे। तथा—

२ एषा [कन्या] ते कुलपा, तां उ ते परिदद्मसि— यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं।

३ ते भगं अपि नह्यामि— तेरा भाग्य [इस कन्याके साथ] बांधता हूं, अर्थात् इससे तू अलग न हो।

ये मंत्रभाग स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीके स्वीकार कर लेनेके पश्चात् शीघ्र ही विवाहका समय आजाताहै। यद्यपि इसमें समयका साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि [१] मंगनी, [२] कन्या दानकी संमति, [३] सिर सजानेके समयतक अर्थात् पुष्पवती होनेतक कन्याके पितृघरमें निवासका विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनीके पश्चात् विवाह होनेके बाद ऋतुमती और पुष्पवती होनेके अनंतर कन्याका पतिके घर निवास होनेका क्रम दिखाई देता है। यह विषय अन्यान्य सूक्तोंके साथ संबंधित है, इसलिये इस विवाहप्रकरणके सूक्त जहां जहां आवेंगे, वहां वहां इसके साथ संबंध देखकर ही सब बातोंका निर्णय होगा।

कन्याके लिये वर

कां. ६, सूक्त ८२

(ऋषिः- भगः । देवता- इन्द्रः ।)

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः । इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥ १ ॥
येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा । तेन मामब्रवीद्भगो जायामा वहतादिति ॥ २ ॥
यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः । तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥ ३ ॥

अर्थ— (आगच्छतः) आनेवाले, (आगतस्य) आये हुए और (आयतः) अति समीप आनेवाले (वृत्रघ्नः वासवस्य शतक्रतोः इन्द्रस्य) शत्रुका नाश करनेवाले, धनवाले और सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्रका (नाम गृह्णामि) नाम मैं लेता हूं और (वन्वे) पसंद करता हूं ॥ १ ॥

(येन पथा) जिस मार्गसे (अश्विना) अश्विदेवोंने (सूर्यां सावित्रीं ऊहतुः) सूर्यप्रभा सावित्रीका विवाह किया, (तेन) उसी मार्गसे (जायां आवहतात् इति) भार्याको प्राप्त कर ऐसा (भगः मां अब्रवीत्) भगने मुझसे कहा है ॥ २ ॥

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ते हिरण्ययः वसुदानः बृहन् अंकुशः) जो तेरा सुवर्णका धन देनेवाला बडा अंकुश है; हे (शचीपते) शक्तिके स्वामी इन्द्र ! (तेन जनीयते मह्यं) उस अंकुशसे स्त्रीकी इच्छा करनेवाले मुझे (जायां धेहि) भार्या दे ॥ ३ ॥

भावार्थ— पहिलेसे ही इच्छा करके मेरे पास आया हुआ, शत्रुपर विजय करनेवाला, धनवान्, सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाला जो शूरवीर है, उसीको मैं अपनी पुत्रीके लिये वरके रूपमें पसंद करता हूं ॥ १ ॥

जिस प्रकार अश्विदेवोंने सूर्यप्रभाका विवाह किया, उसी प्रकार धनवान् वधूका पिता 'इस कन्याको स्वीकार कीजिये' ऐसा कहकर मुझे विवाह करनेके लिये कहता है ॥ २ ॥

हे प्रभो ! तेरे पास जो धनकी प्राप्ति करानेवाला जो उत्तम शस्त्र है, उसके बलसे पत्नीकी इच्छा करनेवाले मुझ वरको भार्या प्राप्त हो ॥ ३ ॥

कन्याके लिये वर

कन्याके लिये वर निम्नलिखित गुणोंका विचार करके पसंद किया जावे—

(१) जनीयते— वर ऐसा हो कि जिसके मनमें धर्मपत्नीको प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई हो । (मं० ३)

(२) आगच्छतः— कन्याके पिताके पास जानेकी इच्छा करनेवाला । (मं० १)

(३) आगतस्य— कन्याके पिताके पास पहुंचनेवाला । (मं० १)

(४) आयतः— कन्याके पिताके पास पहुंचा हुआ । (मं० १)

ये तीनों शब्द वरकी उत्कट इच्छा बताते हैं । आजकल कन्याका पिता वरको ढूंढनेके लिए एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाता है । यह प्रथा अवैदिक प्रतीत होती है । वधूका पिता अथवा वधू वरकी खोजके लिये भ्रमण न करे अपितु वर ही अपनी योग्यता सिद्ध करे और वधूको मांगने के लिये वधूके पिताके पास जावे । यह बात इन चार शब्दों से व्यक्त होती है । वरमें कौनसे गुण होने चाहिये, इसका विचार इस तरह किया है—

(५) वासवः— वसु अर्थात् धन पास रखनेवाला। (मं० १)

(६) शतक्रतुः— सैंकडों उत्तम पुरुषार्थ करनेवाला। (मं० १)

(७) वृत्रघ्नः— शत्रुका नाश करके विजय प्राप्त करनेमें समर्थ। (मं० १)

(८) इन्द्रः— शत्रुका नाश करनेवाला शूरवीर। (मं० १)

ये चार शब्द वरके गुणोंका वर्णन करते हैं। विवाहके पूर्व वरने धन कमाया हो और शौर्य भी प्रकट किया हो। अपरीक्षित वर न हो।

वधूका पिता ऐसे वरका आदर करे और उसे कहे कि, (जायां अवहतात्) इस मेरी कन्याको स्वीकार कीजिये। आप स्वीकार करेंगे तो मैं बडा अनुगृहीत होऊंगा इत्यादि वचन वरके साथ बोले और कन्या देनेकी इच्छा प्रकट करे। कन्याका दान भी ऐसा ही हो कि जिस प्रकार प्रभाका सूर्यके साथ होता है, अर्थात् कन्याका मोल लेना या पतिके लिये धन देना आदि शर्तें न हों; वरके गुणोंका विचार मुख्य हो। (मं० २)

वर भी मनमें यही समझे कि मैं अपने शौर्य और वीर्यसे धन कमाऊंगा और जब मैं धन कमाऊंगा और मेरा शौर्य प्रकट होगा तब मेरा विवाह हो ही जायगा।

इस सूक्तमें जो वरकी पसंदगीके और विवाह विषयके अन्य विचार कहे हैं वे बडे उत्तम हैं।

बिना शौर्यवीर्यके वैदिक विवाह होना असंभव है, ऐसा इस सूक्तके विचारसे स्वयं सिद्ध होता है। वरको उचित है कि वह अपने विवाहका विचार करनेके पूर्व धन कमावे। 'धीः श्रीः स्त्रीः' यह नियम ध्यानमें रखना चाहिये, बुद्धिका विकास करके धनको प्राप्त करनेके पश्चात् स्त्रीकी प्राप्तिका विचार मनमें लाना चाहिये। इन सूक्तोंके मननसे ज्ञात होता है कि आजकल प्रचलित बालविवाह सर्वथा अनुचित है, और वेद ऐसे विवाहोंका समर्थन नहीं करता।

विवाहका मंगल कार्य

कां. २, सूक्त ३६

(ऋषिः- पतिवेदनः। देवता-अग्नीषोमौ।)

आ नो॑ अग्ने सुम॒तिं सं॑भ॒लो ग॑मेदि॒मां कु॑मा॒रीं स॒ह नो॒ भगे॑न।
जु॒ष्टा व॒रेषु॒ सम॑नेषु व॒ल्गुरो॒षं पत्या॒ सौभ॑गमस्त्व॒स्यै ॥ १ ॥
सोम॑जुष्टं ब्र॒ह्मजु॑ष्टमर्य॒म्णा संभृ॑तं॒ भग॑म्। धा॒तुर्दे॒वस्य॑ स॒त्येन॑ कृणो॒मि॑ प॒तिवे॑दनम् ॥ २ ॥

अर्थ— हे अग्ने! (भगेन सह) धनके साथ (सं-भलः) उत्तम वक्ता वर (इमां नः नः सुमतिं कुमारीं) इस हमारी उत्तम बुद्धिवाली कुमारी कन्याको (आ गमेत्) प्राप्त करे। और (अस्यै पत्या सौभगं अस्तु) इस कन्याको भी पतिके साथ सौभाग्य प्राप्त होवे। क्योंकि यह कन्या (वरेषु जुष्टा, समनेषु वल्गु) श्रेष्ठोंमें प्रिय और उत्तम मनवालोंमें मनोरम है ॥ १ ॥

(सोमजुष्टं) सोम द्वारा और (ब्रह्मजुष्टं) ब्राह्मणों द्वारा सेवित, तथा (अर्यम्णा संभृतं भगं) श्रेष्ठ मनवालेसे इकट्ठा किये हुए इस धनको (धातुः देवस्य सत्येन) धारक देवके सत्य नियमसे (पति-वेदनं कृणोमि) केवल पतिके द्वारा प्राप्त होनेके योग्य बनाता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— जिसने धन प्राप्त किया है, ऐसा उत्तम विद्वान् वक्ता पति इस हमारी बुद्धिमती कुमारीको प्राप्त होवे। यह हमारी कन्या श्रेष्ठोंको प्रिय और उत्तम मनवालोंमें सुंदर है, इसलिये इस कन्याको इस पतिके साथ उत्तम सुख प्राप्त होवे ॥ १ ॥

सौम्यता, ज्ञान और श्रेष्ठ मन द्वारा संगृहित और सत्यमार्गसे प्राप्त किया हुआ यह धन केवल पतिके लिये है ॥ २ ॥

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान्महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥ ३ ॥
यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्याविराधयन्ती ॥ ४ ॥
भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् । तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ॥ ५ ॥
आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु । सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ॥ ६ ॥
इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः । एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥ ७ ॥
आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः । त्वमस्यै धेह्योषधे ॥ ८ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! (इयं नारी पतिं विदेष्ट) यह स्त्री पतिको प्राप्त करे । (हि सोमः राजा सुभगां कृणोति) क्योंकि सोमराजा इसको सौभाग्यवती करता है। यह (पुत्रान् सुवाना महिषी भवाति) पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई घरकी रानी होवे । यह (सुभगा पतिं गत्वा विराजतु) सौभाग्यवती पतिको प्राप्त करके शोभित हो ॥ ३ ॥

हे (मघवन्) इन्द्र ! (यथा एव आखरः) जैसे यह गुहा (मृगाणां प्रियः सुषदाः बभूव) पशुओंके लिये प्रिय और बैठने योग्य है (एवा) ऐसे ही (पत्या अ-विराधयन्ती) पतिसे विरोध न करती हुई और (भगस्य जुष्टा इयं नारी) ऐश्वर्यसे सेवित हुई यह स्त्री पतिके लिये (सं प्रिया) उत्तम प्रिय (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

हे स्त्री ! (पूर्णां अनुप+दस्वतीं) पूर्ण और न टूटनेवाली (भगस्य नावं आरोह) ऐश्वर्यकी इस नौकापर चढ और (तया उपप्रतारय) उससे उसके पास तैर कर जा कि (यः वरः प्रतिकाम्यः) जो वर तेरी कामनाके योग्य है ॥ ५ ॥

हे धनपते ! (वरं आक्रन्दय) अपने वरको बुला और (आ-मनसं कृणु) अपने मनके अनुकूल वार्तालाप कर (यः वरः प्रतिकाम्यः) जो वर तेरी कामनाके योग्य है (सर्वं प्रदक्षिणं कृणु) उसे सब धन दे ॥ ६ ॥

(इदं गुल्गुलु हिरण्यं) यह उत्तम सुवर्ण है, (अयं औक्षः) यह बैल है और (अथो भगः) यह धन है। (एते त्वां पतिकामाय वेत्तवे) ये सब तुझे पतिकी कामनाके लिये और तेरे लाभके लिये (पतिभ्यः अदुः) पतिको देते हैं ॥ ७ ॥

(सविता ते आ नयतु) सविता तुझे प्रेरणा दे (यः पतिकाम्यः पतिः) जो कामना करने योग्य पति है वह (नयतु) तुझे ले जावे । हे औषधे ! (त्वं अस्यै धेहि) तू इसे धारण कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह स्त्री पतिको प्राप्त करे, परमेश्वर इसे सुखी बनावे; यह स्त्री घरमें रानीके समान बनकर पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई सुखी होकर शोभित होवे ॥ ३ ॥

यह स्त्री पतिसे कभी विरोध न करे और ऐश्वर्यसे शोभित होती हुई सबको प्रिय होवे ॥ ४ ॥

स्त्री इस गृहस्थाश्रम रूपी पूर्ण और सुदृढ नौका पर चढे और अपने प्रिय पतिके साथ संसारका समुद्र पार करे ॥५॥

जो वर अपने मनके अनुकूल हो उस वरको बुलाकर उसके साथ अपने मनके अनुकूल वार्तालाप करके उसके साथ सन्मान पूर्वक व्यवहार करे ॥ ६ ॥

यह उत्तम सुवर्ण है, यह गाय और बैल है, और यह धन है। यह सब पतिको देते हैं इसलिये कि तुझे पति प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

सविता तुझे मार्ग बतावे, तेरा पति तेरी कामनाके अनुकूल चलता हुआ तुझे उत्तम मार्गसे ले चले । औषधियोंसे तुझको पुष्टि प्राप्त हो ॥ ८ ॥

विवाहका मंगल कार्य

वरकी योग्यता

विवाहका कार्य अत्यंत मंगलमय है, इसलिये उसके संबंधके जो जो कर्तव्य हैं, वे भी मंगल भावनासे करने उचित हैं। विवाहके मंगल कार्यमें वर और वधूका सबसे प्रधान स्थान होता है। इसलिये इनके विषयमें इस सूक्तके आदेश प्रथम देखेंगे। वरके विषयमें इस सूक्तमें निम्न-लिखित बातें कही हैं—

१ संभलः— (सं+भलः) उत्तम प्रकार व्याख्यान देनेवाला। (मं. १) जो किसी भी विषयका उत्तम प्रतिपादन कर सकता है। विशेष विद्वान्।

यह शब्द वरकी विद्वत्ता बता रहा है। वर विद्वान् हो, शास्त्रका ज्ञाता हो, चतुर और सन्मान्य विद्वान् हो। केवल विद्वत्ता ही पर्याप्त नहीं है, अपितु कुटुंब पोषणके लिये आव-श्यक धन कमानेवाला भी उसे होना चाहिये, इस विषयमें कहा है—

२ भगेन सह कुमारीं आगमेत्— धनके साथ आकर कन्याको प्राप्त करो। धन प्राप्त न होनेकी अवस्थामें विवाह न करे, क्योंकि विवाह होनेके पश्चात् परिवार बढेगा, इसलिये उसके पोषण करनेकी योग्यता इसमें अवश्य होनी चाहिये।

३ पतिः नयतु— पति अपनी धर्मपत्नीको सन्मार्गसे चलावे। धर्म नीतिके मार्गसे चलावे, परंतु साथ साथ वह (प्रति-काम्यः) पत्नीकी मनोकामनाके अनुकूल भी चले। इसका तात्पर्य यह है कि पति अपनी धर्मपत्नीके साथ अल्प कारणसे कभी झगडा न करे, धर्मपत्नीपर प्रेम करे, परंतु उसको सच्चे धर्म मार्गपर चलानेका यत्न करे। (मं. ८)

इस सूक्तमें इतने आदेश पतिके लिये दिये हैं। इससे पूर्व विवाह विषयक कई सूक्त आ चुके हैं, उनमें पतिके गुण धर्म और कर्म बताये हैं; उनके साथ इस सूक्तके आदेशोंका विचार करना चाहिये।

वधूकी योग्यता

वधूके विषयमें बहुतसे उपदेश इस सूक्तमें कहे हैं, जो पारिवारिक जगत्में रहनेवालोंके द्वारा अवश्य मनन करने योग्य हैं।

१ कुमारी— कुमार और कुमारी ये शब्द बडे महत्व पूर्ण हैं। पूर्ण ब्रह्मचर्यको स्थिर रखनेका भाव सूचित करने-वाले ये शब्द हैं। तरुण स्त्री पुरुषोंमें होनेवाले विकारी भाव जिनके मनमें उत्पन्न नहीं हुए, उनको 'कुमार' कहते हैं। यह शब्द अखंड स्थिर ब्रह्मचर्य धारण करनेवालेका द्योतक है। जबतक मनमें कुमार भाव रहता है, तबतक वीर्यदोष उत्पन्न होता ही नहीं। इस प्रथम मंत्रमें 'कुमारी' शब्द आया है, जो कन्याका बोध कराता है। कन्या ऐसी हो कि जो कुमारी हो अर्थात् पुरुष विषयक काम विकार संबंधी चंचल भाव जिसके मनमें किंचित् भी उत्पन्न न हुए हों। यहां विवाहके लिये योग्य कुमारीका वर्णन किया है। छोटी आयुमें विवाह करनेकी पद्धतिको मानना अयुक्त है, क्योंकि इससे पूर्व बताया ही है कि 'पतिकी इच्छा करने-वाली स्त्रीका विवाह है।' [देखो कां. २ सू. ३०] इसलिये इस सूक्तमें छोटी आयुमें विवाहके विधान करनेकी संभावना नहीं है। इस कारण यहांका 'कुमारी' शब्द ऐसी कन्याका बोध कराता है कि जो युवती तो हो, पतिकी इच्छा तो करती हो, परंतु मनके चंचल विकारोंसे पूर्णतया अलिप्त हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि वेदकी दृष्टिसे कन्याओंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये और विवाहके पूर्व उनके मन कैसे पवित्र रहने चाहिये। (मं. १)

२ सुमतिः— कन्या उत्तम मतिवाली हो, उत्तम बुद्धि-वाली हो, जिसके मनपर सुसंस्कार पडे हुए हों। (मं० १)

३ समनेषु वरेषु जुष्टा वल्गु— उत्तम मनवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें सेवा करने योग्य और सुंदर कन्या हो। समताके विचार मनमें रखनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें सेवा करने योग्य और सुंदर कन्या हो। समताके विचार मनमें रखनेवाले, विषम भावना मनमें न रखनेवाले श्रेष्ठ लोगोंमें जाकर विद्याका मनन करनेवाली और अपने स्त्रीत्वके कारण मनोहर और परिशुद्ध विचारवाली कन्या हो। 'श्रेष्ठोंमें जाने योग्य' (वरेषु जुष्टा) शब्दोंसे कन्याका धार्मिक दृष्टिसे पावित्र्य बोधित होता है। कन्या ऐसी हो कि जिसका आचरण काया वाचा मनसे कभी बुरा नहीं हुआ हो। शुद्ध आचारसे संपन्न हो और साथ साथ मनोरम तथा दर्शनीय भी हो। कन्याएं ऐसीं बनें, इस प्रकारकी शिक्षा उनको मिलनी चाहिये। (मं० १)

इस रीतिसे कन्याके शुद्धाचारके विषयमें वेदका आदेश है। कुमार और कुमारिकाओंको पवित्र रखकर उनको विवाह संबंधसे जोडना वेदको अभीष्ट है। इसलिये विवाहके पूर्व

कुमार और कुमारिकाओंका इस प्रकारका मेल, कि जो अनीतिके मार्गमें उनको ले जानेवाला हो, वेदको अभीष्ट नहीं है।

विवाहके पश्चात्

विवाह होनेके पश्चात् स्त्रीपुरुषोंके परस्पर बर्तावके विषयमें भी इस सूक्तमें अत्यंत उत्तम उपदेश हैं—

भगस्य जुष्टा इयं नारी,
पत्या अविराधयन्ती,
संप्रिया अस्तु ॥ (मं० ४)

' ऐश्वर्यको प्राप्त हुई हुई यह स्त्री, पतिसे विरोध न करती हुई, पतिको अत्यंत प्रिय हो। ' विवाह होनेके पश्चात् स्त्री अधिक ऐश्वर्यमें जाती है, इसलिये यह मंत्र सूचित करता है, कि विशेष भाग्य और ऐश्वर्यमें पंहुचनेके कारण यह स्त्री उन्मत्त न हो, अपितु पतिके साथ प्रेमसे रहे और पतिसे कभी विरोध न करे। घमंडमें आकर पतिका अपमान कभी न करे, अपितु ऐसा आचरण करे कि जिससे दोनोंका प्रेम दिन प्रतिदिन बढता जाय। तथा—

सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः। (मं०६)

' जो कुछ करना है वह अपने कामना रूप वर–पतिकी प्रदक्षिणा करके ही करे।' प्रदक्षिणा करनेका आशय है सन्मान करना, आदर प्रदर्शित करना, सत्कार करना। जो कुछ करना हो, उसे पतिका सत्कार करते हुए ही करना चाहिये। पत्नीका ' प्रति–काम ' पति ही होता है। अपने मनके अंदर जो (काम) इच्छा होती है, उसका जो बाह्य स्वरूप होता है उसको ' प्रति काम ' कहते हैं। अपना रूप होता है और शीशेमें जो दिखाई देता है उसको ' प्रतिरूप ' कहते हैं, लेखकी दूसरी प्रति करनेका नाम ' प्रति लेख ' है। इसी प्रकार स्त्रीके मनके अंदरके कामका ' प्रतिकाम ' पति है। पत्नी अपने पतिको अपना ' प्रतिकाम ' समझे और उसका सत्कार करके हर कर्तव्य करे। तथा—

पत्या अस्यै सौभाग्यं अस्तु। (मं० ३)

' पतिसे इसको शोभा प्राप्त हो ' स्त्री की शोभा पतिही है। पतिविरहित स्त्री शोभारहित होती है। अतः धर्मपत्नी मनमें समझे कि उसकी संपूर्ण शोभा पतिके कारण ही है और उस कारण मनसे पतिका सदा सत्कार करे। तथा—

पतिं गत्वा सुभगा विराजतु
पुत्रान् सुवाना महिषी भवाति। (मं० ३)

' यह स्त्री पतिको प्राप्त करके ऐश्वर्यमें विराजती रहे और उत्तम पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई घरकी रानी बने। ' यहां पतिको प्राप्त करके पतिके साथ रहना, पतिके ऐश्वर्यसे अपने आपको ऐश्वर्यवती समझना, पुत्रोंको उत्पन्न करना और घरकी स्वामिनी बनना स्त्रीका कर्तव्य बताया है। कई शिक्षित स्त्रियां संतान उत्पन्न करनेके कर्तव्यसे परावृत्त होती हैं। यह योग्य नहीं है। स्त्रीकी शरीर रचनाही इस कर्तव्यकी सूचना देती है कि वह सन्तानकी माँ बने, सुसंतति, सुदृढ संतान उत्पन्न करना विवाहित स्त्रीका कर्तव्य ही है। अति उत्तम संतति निर्माण करने योग्य अपना शरीरस्वास्थ्य रखनेमें स्त्रियां प्रथमसे ही दत्तचित्त हों। जो स्त्रियां पहलेसे अपने स्वास्थ्यका विचार नहीं करती, वे आगे संतानोत्पत्ति करनेमें असमर्थ हो जाती हैं। इसलिये स्त्रियोंके स्वास्थ्यका विचार प्रारंभसे ही करना चाहिए।

ऐश्वर्यकी नौका

पञ्चम मन्त्रमें गृहस्थाश्रमको ऐश्वर्यकी नौकाकी उपमा दी है। यह उपमा बडी बोधप्रद है—

पूर्णां अनुप–दस्वतीं भगस्य नावं आरोह।
यः प्रतिकाम्यः वरः, तया उप प्रतारय॥
(मं० ५)

' यह सब प्रकारसे परिपूर्ण और कभी न टूटनेवाली ऐश्वर्यकी नौका है, उसपर चढ और जो तेरा पति है उसको इस नौकाके आश्रयसे दूसरे किनारे पर ले जा। ' यह गृहस्थाश्रम रूपी नौका है, जिसपर पति–पत्नी वस्तुतः इकट्ठे ही सवार होते हैं, परंतु घरकी सम्राज्ञी होनेके कारण इस स्त्रीको ही नौका चलानेवाली इस मंत्रने कहा है। यह स्त्रीका बडा भारी सन्मान वेदने किया है और साथ साथ स्त्रीके हाथमें बडा भारी अधिकार भी दिया है। वास्तविक घर गृहिणी ही है, ईंटोंका घर घर नहीं है। इसी प्रकार स्त्रीके होनेसे ही गृहस्थाश्रम होता है और स्त्रीके न होनेसे गृहस्थाश्रम नहीं रहता। इसलिये गृहस्थाश्रममें स्त्रीका महत्त्व विशेष ही है। इस हेतुसे इस मंत्रमें स्त्रीको उद्देश्य करके कहा है कि इस गृहस्थाश्रम रूपी नौकापर स्त्री चढे और इस नौकाको ऐसे ढंगसे चलावे कि यह नौका अपने पहुंचनेके स्थानपर सीधी पहुंचे और मार्गमें कोई कष्ट न हो। इसी प्रकार स्त्रीके अधिकारके विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखने योग्य है—

धनपते ! वरं आक्रन्दय। आमनसं कृणु। (मं. ६)

' हे गृहस्थाश्रमके संपूर्ण धनकी स्वामिनि ! अपने पतिको बुलाकर उसको अपने मनके अनुकूल कर। ' यह अधिकार

है गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट स्त्रीका। यह स्त्री गृहस्थाश्रमके संपूर्ण ऐश्वर्यकी स्वामिनी है और यदि पति हीनमार्गपर चलने लगे, तो उसको सन्मार्गपर लानेका उसको अधिकार है।

पुरुषका स्थान

जब स्त्रीको गृहस्थाश्रममें इतना अधिकार प्राप्त है, तब, पुरुषका स्थान गृहस्थाश्रममें कहां है, इसका भी विचार करना यहां आवश्यक है—

यः प्रतिकाम्यः पतिः नयतु। (मं. ८)

'कामनाके अनुकूल पति (गृहस्थाश्रम) चलावे' अर्थात् गृहस्थाश्रमका रथ चलावे। स्त्रीको सन्मार्गपर चलावें, गृहस्थाश्रममें यदि कुछ त्रुटियां हों, तो उनको ठीक करे, गृहव्यवस्थाको दोषयुक्त रहने न दे। यह पुरुष—

सविता ते आ नयतु। (मं. ८)

'सूर्यके समान स्त्रीको लावे।' यह पति घरमें सूर्यके समान है। जिस प्रकार सूर्य अपनी ग्रहमालाका संचालक है, उसी प्रकार यह गृहस्थाश्रमका सूर्य-पति-संपूर्ण गृहस्थाश्रमका चालक है। यह पत्नीको साथ लेकर संपूर्ण गृहस्थाश्रमको चलावे। यहां यह स्मरणीय है कि गृहस्थाश्रम न केवल पतिसे ही हो सकता और न ही केवल स्त्रीसे ही, यह तो दोनोंके द्वारा चलाया जाता है। इसीलिये इस सूक्तमें स्त्रीको भी कहा है कि वह गृहस्थाश्रम चलावे और पुरुषको भी वैसा ही कहा है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि, दोनों मिलकर गृहस्थाश्रम चलावें। दोनोंका समान अधिकार होनेसे दोनोंको समान आज्ञा दी है। अतः गृहस्थाश्रमके स्त्री पुरुष अपने अपने अधिकारोंको समझ कर मिलजुलकर समानतया अपने कार्यका बोझ उठावें और आनंदसे इस संसारयात्राको पूर्ण करें। तथा—

सोमो हि राजा सुभगां कृणोति। (मं. ३)

'सोम राजा इस स्त्रीको ऐश्वर्य युक्त करता है।' यह पति घरमें राजाके समान है। पत्नीको महारानी इससे पूर्व कहा ही है। जब पत्नी रानी है, तब पतिके राजा होनेमें कोई शंका ही नहीं है। ये राजा-रानी एक मतसे इस गृहस्थाश्रमका राज्य चलावें। परस्पर विरोध न होने दें। एक दूसरेके सहायक बनकर उन्नति करते जायें।

इस ढंगसे वेदने पतिका स्थान गृहस्थाश्रममें निश्चित किया है। दोनोंको उचित स्थान दिया गया है।

पतिके लिये धन।

पत्नीकी ओरसे अथवा वधूके घरसे कुछ धन वरको दिया जाता है। दहेजके रूपमें यह धन वधूके घरसे वरके पास आता है, इस विषयमें सप्तम मंत्र बडा स्पष्ट है—

इदं गुल्गुलु हिरण्यं, अयं औक्षः, अथो भगः,
एते त्वा पतिभ्यः अदुः॥ (मं. ७)

'यह सुंदर सुवर्ण है, ये गौवें और बैल हैं, यह सब पतिको दिया जाता है।' यहां सन्मानके लिये पति शब्द बहुवचनमें प्रयुक्त हुआ है। विवाहके मंगल कार्यमें पतिका ही विशेष सन्मान होना उचित है। यहां स्मरण रहे कि यद्यपि यह दहेज स्त्रीके घरसे पतिके घर आना है, तथापि यह धन कुमार्गसे कमाया नहीं होना चाहिये। इस विषयमें द्वितीय मंत्र देखिये—

सोमजुष्टं, ब्रह्मजुष्टं, अर्यम्णा संभृतं भगम्।
धातुर्देवस्य सत्येन पतिवेदनं कृणोमि॥ (मं, २)

'सौम्यवृत्तिसे, ज्ञानसे और श्रेष्ठ मनोवृत्तिसे प्राप्त और इकट्ठा किया हुआ धन विधाता ईश्वरकी सत्यनिष्ठासे पतिको प्राप्त होने योग्य करता हूं।'

'सोम, ब्रह्म और अर्यमा' ये तीन शब्द क्रमशः 'सौम्य वृत्ति, विद्या-ज्ञान और श्रेष्ठ मन' के बोधक हैं। 'अर्य + मन' का अर्यमन् बना है, जो श्रेष्ठ मनवालेका द्योतक है। जिसका मन उच्च है वह अर्यमा कहलाता है। ब्रह्म शब्द ज्ञान और विद्याका वाचक प्रसिद्ध है, सोम शब्द सौम्यताका द्योतक है। ये तीन शब्द शांत और श्रेष्ठ विद्यासे सुसंस्कृत मनोवृत्तिके वाचक हैं। इस मनोवृत्तिसे कमाया हुआ, संग्रहीत किया हुआ और बढाया हुआ धन परमेश्वर विषयक सत्यनिष्ठाके साथ पतिको समर्पित किया जाना चाहिये। अथवा इस प्रकार प्राप्त किया हुआ धन पतिको समर्पित करना चाहिये। हीनवृत्तिसे इकट्ठा किया हुआ धन पतिको नहीं देना चाहिये। यहां कन्या विचार करे कि जो धन पतिको दहेजके रूपमें दिया जाता है, वह किस रीतिसे कमाया हुआ है। हीनवृत्तिसे कमाया धन पतिके घरमें हीनता उत्पन्न करेगा। इसलिये सावधानीसे और विचारसे दहेजका धन पतिको देना चाहिये। जो दिया जाय वह पवित्र विचारसे कमाया हुआ हो और पवित्र विचारके साथ दिया जाय।

इस प्रकार इस विवाहके मङ्गल कार्यका विचार इस सूक्त में दर्शाया है।

विवाह

कां. ६, सूक्त ६०

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– अर्यमा ।)

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद्विषितस्तुपः । अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये ॥ १ ॥
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती । अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ॥ २ ॥
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् । धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥ ३ ॥

अर्थ— (अयं विषितस्तुपः अर्यमा) यह प्रशंसनीय सूर्य (अस्मै अग्रुवै) इस कन्याके लिये (पतिं इच्छन्) पतिकी इच्छा करता हुआ (उत अजानये जायां) और स्त्रीरहित पुरुषके लिये स्त्रीकी इच्छा करता हुआ (पुरस्तात् आयाति) सामने आता है ॥ १ ॥

हे (अर्यमन्) सूर्य ! (अन्यासां समनं यती) अन्य कन्याओंके सम्मानको अर्थात् विवाहरूपसे होनेवाले सम्मानित उत्सवमें जानेवाली (इयं अश्रमत्) यह स्त्री बहुत थक गई है। हे (अंगो अर्यमन्) सूर्य ! इसलिये (अस्याः समनं अन्याः तु आयति) इसके विवाह सम्मानमें दूसरी कन्याएं भी आवें ॥ २ ॥

(धाता पृथिवीं दाधार) परमेश्वरने पृथ्वीको धारण किया है (उत धाता सूर्यं द्यां) और उसी ईश्वरने सूर्यको और द्युलोकको धारण किया है। इसलिये वही (धाता) देव (अस्यै अग्रुवै) इस कन्याके लिये (प्रतिकाम्यं पतिं दधातु) उसकी इच्छाके अनुरूप पतिको देवे ॥ ३ ॥

भावार्थ— सूर्य उदयको प्राप्त होकर अस्तको जाता है। इस कारण कन्या और पुत्रकी आयु बढती है। और जैसे जैसे आयु बढती है उसीके अनुसार स्त्रीपुरुषमें पतिपत्नीकी प्राप्ति करनेकी इच्छा भी प्रदीप्त होती जाती है ॥ १ ॥

कन्याएं जिस समय दूसरी कन्याके विवाहसंस्कारमें जाती हैं, उस समय उनके मनमें अपने विवाहका विचार उत्पन्न होता है और उनको एक प्रकारका कष्ट होता है। इसलिये कन्याके मनमें इस विचारके उत्पन्न होने पर उस कन्याका विवाह कर देना चाहिये ॥ २ ॥

ईश्वरने पृथ्वी सूर्य और द्युलोकको यथास्थान धारण किया है, इसलिये वह निःसंदेह इस कन्याके लिये अनुरूप पति भी दे सकता है ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें निम्नलिखित बातें कही हैं– (१) विशिष्ट आयुमें पुरुषमें स्त्रीकी, और स्त्रीमें पुरुषकी इच्छा होती है। इसके पश्चात् विवाहका समय होता है। (२) विवाहादि संस्कारोंमें संमिलित होनेसे कन्याओंमें विवाहविषयक आतुरता उत्पन्न होती है। यह समय कन्याके विवाहका है। (३) पत्नी पतिकी इच्छा करनेवाली और पति (अनुकामः) पत्नीको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला होनेपर दोनोंका विवाह हो। विपरीत अवस्थामें कदापि न हो।

विवाह–प्रकरण

कां. १४, सूक्त १

(ऋषिः– सूर्या सावित्री । देवता– आत्मा ।)

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः । ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही । अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम् । सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥

यत्त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः । वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥

अर्थ— (सत्येन भूमिः उत्तभिता) सत्यने भूमिको ऊंचा उठाया और (सूर्येण द्यौः उत्तभिता) सूर्यने द्युलोकको उठाया, (ऋतेन आदित्याः तिष्ठन्ति) ऋतके कारण आदित्य स्थिर हैं और (सोमः दिवि आधि श्रितः) सोम द्युलोकमें आश्रित है ॥ १ ॥

(सोमेन आदित्याः बलिनः) सोमके कारण आदित्य बलवान् हुए । तथा (सोमेन पृथिवी मही) सोमके कारण ही पृथ्वी बडी हुई । (अथो एषां नक्षत्राणां उपस्थे) और इन नक्षत्रोंके पास (सोमः आहितः) सोमको रखा गया ॥ २ ॥

(यत् ओषधिं संपिंषन्ति) जब सोम नामक औषधिको पीसते हैं, तब (पपिवान् सोमं मन्यते) सोमपान करनेवाला सोमरसका सम्मान करता है । (ब्रह्माणः यं सोमं विदुः) ज्ञानी लोग जिसको सोम समझते हैं । (तस्य पार्थिवः न अश्नाति) उसका भक्षण कोई पृथ्वीपर रहनेवाला मनुष्य नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

हे (सोम) सोम ! (यत् त्वा प्रपिबन्ति) जब तुझे पीते हैं, (ततः पुनः आप्यायसे) उसके पश्चात् पुनः तू वृद्धिको प्राप्त करता है । (वायुः सोमस्य रक्षिता) वायु सोमका रक्षक है, और (समानां आकृति मासः) वर्षोंकी आकृति महिना ही हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— सत्यसे मातृभूमिका उद्धार किया जाता है, सूर्यके प्रकाशसे आकाश तेजस्वी होता है, सरलताके कारण आदित्य अपने स्थानमें स्थिर रहते हैं और सोम द्युलोकके प्रकाशमें आश्रय लेकर रहा है । (इसी प्रकार ये वधूवर सत्य, सूर्यप्रकाश, सरलता और द्युलोक अर्थात् स्वर्गके आधारसे अपना जीवनक्रम चलावें ।) ॥ १ ॥

सोमके कारण आदित्यमें बल आया और पृथ्वीका विस्तार हुआ है, और नक्षत्रोंमें भी सोम ही तेज बढा रहा है । इसी तरह ये वधूवर सोम आदि वनस्पति भक्षण कर अपने बल, महत्त्व और तेजकी वृद्धि करें ॥ २ ॥

जब यज्ञमें सोमका रस निकालने लगते हैं, तब सोमरस पीनेका निश्चय सबको होता है । परंतु जिसको ज्ञानीजन सोम समझते हैं, वह भिन्न ही है, कोई साधारण मनुष्य उसका रस नहीं पी सकता । (वे वधूवर उसी सोमरसको पीनेके लिए पुरुषार्थ करें) ॥ ३ ॥

यह सोम पिये जानेके बाद भी वृद्धिको प्राप्त होता है । यह नष्ट नहीं होता । क्योंकि प्राण ही इसका रक्षक है । जैसे क्रमसे आनेवाले महिनासे वर्ष बनता है, (उसी तरह नये पत्ते आनेसे सोम वल्ली पूर्ववत् हरीभरी हो जाती है, ऐसे ही वधूवर सांसारिक आपत्ति आनेपर हताश न हों, अपितु द्विगुणित उत्साहसे अपना जीवन व्यतीत करें ।) ॥ ४ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः । ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् । द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥
रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी । सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥
स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः । सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥ ८ ॥
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा । सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात् ॥ ९ ॥

अर्थ— हे सोम ! (आच्छत् विधानैः गुपितः) आच्छादनोंसे सुरक्षित और (बार्हतः रक्षितः) बडोंसे रक्षित हुआ हुआ तू (ग्राव्णां इत् शृण्वन् तिष्ठसि) इन रस निकालनेवाले पत्थरोंका शब्द सुनता हुआ स्थिर रहता है। (पार्थिवः ते न अश्नाति) कोई मर्त्यलोकका निवासी तेरा भक्षण नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

(यत् सूर्या पतिं अयात्) जब सूर्या अपने पतिके पास गयी, तब (चित्तिः उपबर्हणं आः) संकल्प तकिया हुआ, (चक्षुः अभि अञ्जनं आः) आंख अञ्जन बना तथा (द्यौः भूमिः कोशः आसीत्) द्यौ और पृथिवी खजाना बने ॥ ६ ॥

(रैभीः अनुदेयी आसीत्) रैभी ऋचा विदाई-गान बनी, (नाराशंसी न्योचनी) नाराशंसी मंत्र स्वागतका गान बना। (सूर्यायाः वासः भद्रं इत्) सूर्याका वस्त्र बहुत कल्याणकारी है। वह सूर्या (गाथया परिष्कृता एति) गाथाओंसे सुशोभित होकर चलती है ॥ ७ ॥

(स्तोमाः प्रतिधयः आसन्) स्तुतिके मंत्र अन्न बने, (कुरीरं छन्दः ओपशः) कुरीर नामक छन्द उसके सिरके भूषण बने। (अश्विनौ सूर्यायाः वरौ) दोनों अश्विदेव सूर्याके साथी थे और (अग्निः पुरोगवः आसीत्) अग्निदेव अग्रणी था ॥ ८ ॥

(यत् सविता मनसा शंसन्तीं सूर्यां पत्ये अदात्) जब सविताने मनसे (अपने पतिकी) स्तुति करनेवाली सूर्याको पतिके हाथमें दिया, उस समय (सोमः वधूयुः अभवत्) सोम वधूको इच्छा करनेवाला था, (उभौ अश्विनौ वरौ आस्तां) दोनों अश्विदेव साथी थे ॥ ९ ॥

भावार्थ— सोम सब प्रकारसे सदा सुरक्षित है, आंतरिक और बाह्य रक्षण साधनोंसे वह सुरक्षित हुआ है। इस सुरक्षित हुए दिव्य सोमका भक्षण कोई साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। (ये वधूवर इसी तरह अपने आपको सुरक्षित रखें और अपने आपको किसीका भक्ष्य होने न दें) ॥ ५ ॥

जब वधू वरके घर जाती है, तब उसका मनही उसका तकिया और आंख ही अञ्जन होता है, (अर्थात् बाह्य साधन उसके सुखके कारण नहीं होते, उसके मनके भाव ही उसको सुख देते हैं) मानो उसके लिये यह सब आकाशका अवकाश खजानेके समान प्रतीत होता है, क्योंकि पतिका घर ही उसको सब सुख देनेवाला होता है ॥ ६ ॥

वेदमंत्रोंसे उस वधूकी पितृगृहसे विदाई होती है और उसी प्रकार मंत्रोंसे ही उसका पतिगृहमें स्वागत होता है। मंत्रोंद्वारा पुनीत हुआ पतिके घरका वस्त्र उस वधूका कल्याण करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

पतिके घरके यज्ञ ही वधूके लिये भोग और वेदमंत्र ही उसके भूषण होते हैं। जो वधूकी मंगनीके लिये जाते हैं, वे मानो अश्विदेव होते हैं। और जो पहिले बातचीतके लिये जाता है, वह सबका प्रकाशक अग्निदेव ही है ॥ ८ ॥

जो वर है वह मानो सोम है, मंगनी करनेवाले अश्विनीदेव हैं और वधूका पिता सूर्य है, जो अपनी पुत्रीको वरके हाथमें देता है। वधू भी पतिके विषयमें मनमें प्रशंसाके भाव रखती है। (वधूवरकी परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये।) ॥९॥

मनो॑ अस्या अन॑ आसी॒द् द्यौरा॑सीदु॒त च्छ॒दिः। शु॒क्राव॑न॒ड्वाहा॑वास्तां॒ यदया॑त्सू॒र्या पति॑म् ॥ १० ॥
ऋ॒क्सा॒माभ्या॑म॒भिहि॑तौ॒ गावौ॑ ते सा॒मना॒वैता॑म्। श्रोत्रे॑ ते च॒क्रे आ॑स्तां दि॒वि पन्था॑श्चराच॒रः॥ ११ ॥
शुची॑ ते च॒क्रे या॒त्या व्या॒नो अक्ष॒ आह॑तः। अनो॑ मन॒स्मयं॑ सू॒र्यारो॑हत्प्रय॒ती पति॑म् ॥ १२ ॥
सू॒र्याया॑ वह॒तुः प्रागा॑त्सवि॒ता यम॒वासृ॑जत्। म॒घासु॑ ह॒न्यन्ते॒ गाव॒ः फल्गु॑नीषु॒ व्यु॑ह्यते ॥ १३ ॥
यद॑श्विना पृ॒च्छमा॑ना॒वया॑तं त्रिच॒क्रेण॑ वह॒तुं सू॒र्यायाः॑। क्वैकं॑ च॒क्रं वा॑मासी॒त्क्व दे॒ष्ट्राय॑ तस्थतुः ॥ १४ ॥

अर्थ— (यत् सूर्या पतिं अयात्) जब सूर्या पतिके पास गयी, तब (अस्याः मनः अनः आसीत्) इसका मन रथ बना (उत द्यौः छदिः आसीत्) और द्युलोक उस रथका छत अर्थात् ऊपरका भाग बना। और (शुक्रौ अनड्वाहौ आस्तां) इस रथमें दो बलवान् बैल जोते गये। ॥ १० ॥

(ऋक्—सामाभ्यां अभिहितौ ते गावौ) ऋग्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए हुए तुझ सूर्याके दोनों बैल (सामनौ ऐतां) शान्तिसे चले। (श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां) दोनों कान तेरे रथके दो चक्र बने। (दिवि पन्थाः चराऽचरः) द्युलोकमें तेरा मार्ग चर और अचर रूप समस्त संसार था ॥ ११ ॥

(ते यात्याः चक्रे शुची) तेरे जानेके रथके दोनों चक्र शुद्ध थे। (अक्षे व्यानः आहतः) उसके अक्षके स्थानपर व्यान नामक प्राण था। (पतिं प्रयती सूर्या) पतिके पास जानेवाली सूर्या इस तरहके (मनः-मयं आ रोहत्) मनोमय रथ पर चढी ॥ १२ ॥

(यं सविता अवासृजत्) जिसको सविताने भेजा था, वह (सूर्यायाः वहतुः प्रागात्) सूर्याका दहेज आगे भेज दिया गया है। (मघासु गावः हन्यन्ते) मघा नक्षत्रोंमें गौवें भेजीं जाती हैं। और (फल्गुनीषु व्युह्यते) फल्गुनी नक्षत्रोंमें विवाह होता है ॥ १३ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (यत् सूर्यायाः वहतुं) जब सूर्याका दहेज लेकर (पृच्छमानौ त्रिचक्रेण अयातं) तुम दोनों पूछते हुए तीन चक्रोंवाले रथसे चले; तब (वां एकं चक्रं) तुम्हारा एक चक्र (क्व आसीत्) कहां था, और तुम दोनों (देष्ट्राय क्व तस्थतुः) दर्शानेके लिये कहां ठहरे थे ? ॥ १४ ॥

भावार्थ— जब वधू अपने पतिके घर जाये तब वह रथमें बैठकर जाये। उसमें दो उत्तम बैल (या घोडे) जोडे गए हों। यथासंभव वे उत्तम और श्वेतवर्णके हों। (वस्तुतः वधूका मन ही यह रथ है, बाह्य रथकी अपेक्षा वधूका मन ही ऐसा चाहिये कि जिसमें ये रथ आदि बाह्य आडम्बर कल्पनासे ही पूर्ण हों।) ॥ १० ॥

इस वधूके रथके वाहक वेदमंत्रों द्वारा चलाये जांय, साथ साथ सामवेद मंत्रोंका गायन होता रहे। यह वधू इसलिये गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेके लिये पतिके घर जाती है, कि इसका स्वर्गका मार्ग सुगम हो अर्थात् पतिपत्नी मिलकर ऐसा आचरण करें कि जिससे उनको सहज स्वर्ग प्राप्त हो जाय ॥ ११ ॥

यह वधू पतिके घर जाते समय जिस मनोमय रथपर बैठती है, उसके चक्र शुद्ध हों। (यहां चालचलनकी शुद्धता और मनोरथोंकी पवित्रता वधू धारण करे यह बात सूचित होती है।) ॥ १२ ॥

वधूका पिता वरको अर्पण करनेके लिये गौरूपी दहेज पहिले वरके स्थानपर पहुंचावे। वह पहिले वहां पहुंचे और पश्चात् विवाह हो। मघा नक्षत्रमें गौवें भेजी जायें, और फल्गुनी नक्षत्रमें विवाह हो ॥ १३ ॥

वधूकी ओरसे जो दहेज वरके पास लेजाना हो, वह कोई दो सज्जन (यहां दो अश्विनी देव) अपने रथमें बैठकर लें जावें। पूछ पूछ कर ठीक वरके स्थानपर पहुंच जायें। ये ही वधूके रथको वरके स्थानका मार्ग दर्शानेवाले होनेके कारण किसी योग्य स्थानपर ठहरें ॥ १४ ॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप। विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं ऋतुथा विदुः। अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥ १६ ॥
अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाऽबध्नात्सविता सुशेवाः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥ १९ ॥

अर्थ— हे (शुभस्पती) शुभ करनेवाले अश्विनौ ! तुम दोनों (यत् वरेयं सूर्यां उप अयातं) जब पतिके द्वारा वरण करने योग्य सूर्याके समीप गये, तब (वां तत् विश्वे देवाः अन्वजानन्) तुम्हारा वह कर्म सब देवोंने पसंद किया था, तथा (पुत्रः पितरं पूषा अवृणीत) जिस प्रकार पुत्र पिताको स्वीकार करता है, उसी प्रकार पूषाने तुम्हें स्वीकार किया ॥ १५ ॥

हे (सूर्ये) सूर्या ! (ते द्वे चक्रे ब्रह्माणः ऋतुथा विदुः) तेरे दोनों चक्रोंको ज्ञानी लोग ऋतुके अनुसार जानते हैं। (अथ यत् एकं चक्रं गुहा) और जो एक चक्र गुप्त है, (तत् अद्धातयः इत् विदुः) उसको निःशेष ज्ञानी ही जान सकते हैं ॥ १६ ॥

(सुबन्धुं पतिवेदनं) उत्तम बन्धुबांधवोंसे युक्त, पतिका ज्ञान देनेवाले तथा (अर्यमणं यजामहे) श्रेष्ठ मनवाले मनुष्यका हम सत्कार करते हैं। (उर्वारुकं बन्धनात् इव) खरबूजेको जैसे बेलके बन्धनसे अलग किया जाता है, उस प्रकार (इतः प्र मुञ्चामि) इस पितृकुलसे तुझे छुडाता हूं, (न अमुतः) परंतु पतिकुलसे नहीं, अर्थात् पतिकुलसे जोडता हूं ॥ १७ ॥

(इतः प्रमुञ्चामि न अमुतः) यहां [पितृकुल] से तुझे मुक्त करता हूं, परंतु वहां (पतिकुल) से नहीं। (अमुतः सुबद्धां करं) वहां तो मैं उत्तम प्रकार बांधता हूं। हे (मीढ्वः इन्द्र) दाता इन्द्र ! (यथा इयं) जिससे यह वधू (सुपुत्रा सुभगा असति) उत्तम पुत्रवाली और उत्तम भाग्यसे युक्त होवे ॥ १८ ॥

(येन त्वा सुशेवाः सविता अबध्नात्) जिससे तुझे सेवा करने योग्य सविताने बांधा था। (त्वा वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चामि) उस वरुणके पाशसे तुझे मैं मुक्त करता हूं (ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके) सदाचारीके घरमें और सत्कर्म कर्ताके लोकमें (सह-संभलायै ते) पतिके सहवर्तमान तुझे (स्योनं अस्तु) सुख होवे ॥ १९ ॥

भावार्थ— वरकी ओरसे मंगनी करनेवाले (दोनों अश्विनीकुमार) दो वैद्य वधूके पिताके पास कन्याकी मंगनी करनेके लिये जायें, अन्य सब लोग उनको संमति देवें। जैसे पुत्र पिताका आदरके साथ स्वागत करता है, वैसे ही उन मंगनी करनेके लिये आये हुओंका स्वागत वधूका पिता करे ॥ १५ ॥

सूर्या नामक सविताकी पुत्री तीन चक्रोंवाले रथपर बैठकर अपने पतिके घर गई थी। इसी तरह वधू रथमें बैठकर पतिके घर जाये। रथके व्यक्त और गुप्त चक्रोंको ज्ञानी लोग जानें ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ मनवाले बन्धुबांधवोंसे युक्त सज्जनही वरका पता दें। वरका पता किसी हीन मनुष्यसे कभी न लिया जाय। जैसे फल अपने बंधनसे मुक्त होता है, उसीप्रकार वधू अपने पितृकुलसे अपना संबन्ध छोड देवे, परंतु पतिकुलसे वधूका संबंध कभी न छूटे ॥ १७ ॥

वधूका संबंध पितृकुलसे छूटे, परंतु पतिके कुलसे न छूटे। पतिकुलसे संबंध सुदृढ होवे। परमेश्वर इस वधूको पतिकुलमें उत्तम पुत्रोंसे युक्त और उत्तम भाग्यसे युक्त करे ॥ १८ ॥

विवाह होते ही कन्या वरुणके बन्धनोंसे मुक्त होती है। सविता देवने ही कन्याको वरुणके धर्मपाशोंसे बांधा होता है। कन्याका विवाह होते ही वह पतिके घर सदाचारी और सत्कर्म करनेवालोंके घरमें पहुंचती है। पतिका घर वधूको धर्मशिक्षा देनेवाला बने ॥ १९ ॥

*

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २० ॥
इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥

अर्थ— (भगः त्वा हस्तगृह्य इतः नयतु) भग तुझे हाथ पकडकर यहांसे ले जाये, आगे (अश्विनौ त्वा रथेन प्र वहतां) अश्विदेव तुझे रथमें बिठलाकर पहुंचावें। अपने पतिके (गृहान् गच्छ) घरको जा। (यथा त्वं गृहपत्नी वशिनी असः) वहां तू घरकी स्वामिनी और सबको वशमें रखनेवाली हो। वहां (त्वं विदथं आवदासि) तू उत्तम ज्ञानकी बातें कर ॥ २० ॥

(इह ते प्रजायै प्रियं समृध्यतां) यहां तेरे संतानके लिये प्रियकी वृद्धि हो, (अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि) इस घरमें गृहस्थधर्मके लिये तू जागती रह। (एना पत्या तन्वं संस्पृशस्व) इस पतिके साथ अपने शरीरका स्पर्श कर (अथ जिर्विः) और वृद्ध होनेपर तू (विदथं आ वदासि) उत्तम उपदेश कर ॥ २१ ॥

(इह एव स्तं) यहीं रहो। (मा वि यौष्टं) कभी वियुक्त न हो। (पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ) पुत्रों और नातियोंसे खेलते हुए (मोदमानौ स्वस्तकौ) आनंदित होकर अपने घरबारसे युक्त होते हुए (विश्वं आयुः व्यश्नुतं) पूर्ण आयुका भोग करो ॥ २२ ॥

(एतौ शिशू क्रीडन्तौ) ये दोनों बालक खेलते हुए (मायया पूर्वापरं चरतः) शक्तिसे आगे पीछे चलते हैं और (अर्णवं परि यातः) समुद्रतक भ्रमण करते हुए पहुंचते हैं। (अन्यः विश्वा भुवना विचष्टे) उनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और (अन्यः ऋतून् विदधत् नवः जायते) दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ स्वयं भी नया नया बनता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— वधूका हाथ पकडकर भाग्यका देव उसको पहिले चलावे, बादमें अश्विनीदेव रथमें बिठलाकर विवाहके पश्चात् इसको पतिके घर पहुंचावें, इस तरह वधू पतिके घर पहुंचे। वहां पतिके घरकी स्वामिनी और सबको अपने वशमें रखनेवाली होकर रहे। ऐसी स्त्री ही योग्य प्रसंगमें उत्तम संमति दे सकती है ॥ २० ॥

इस धर्मपत्नीके संतान उत्तम सुखमें रहें। यह धर्मपत्नी अथवा गृहस्थाश्रम उत्तम रीतिसे चलावे और अपने पतिके साथ सुखसे रहे। जब इस तरह धर्ममार्गसे गृहस्थाश्रम चलाती हुई यह स्त्री वृद्ध हो, तब यह योग्य संमति देने योग्य हो ॥ २१ ॥

स्त्री पुरुष अपने ही घरमें रहें, कभी विभक्त न हों। अपने बालबच्चोंके साथ खेलें, अपने घरमें आनंद मनावें और धर्मानुसार गृहस्थाश्रम चलाते हुए संपूर्ण आयुका उपभोग लें ॥ २२ ॥

इन गृहस्थियोंके बालक छोटी बडी आयुवाले अपनी शक्तिसे खेलते कूदते हुए बडे होकर समुद्रतक पुरुषार्थ करते हुए चलें। एकने सब जगत्को प्रकाशित किया, तो दूसरा ऋतुके अनुसार नवीन नवीन होकर उदयको प्राप्त हो। अर्थात् गृहस्थियोंके पुत्र अपने पुरुषार्थसे जगत्को प्रकाशित करें ॥ २३ ॥

नवोंनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन्प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु । कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते । एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥
अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया । पतिर्यद्वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥
आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् । सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥

अर्थ— (जायमानः नवः नवः भवसि) प्रकट होता हुआ नया नया होता है। (अह्नां केतुः उषसां अग्रं एषि) दिनोंको बतानेवाला और उषाओंके अग्र भागमें होता है। (आयन् देवेभ्यः भागं विदधासि) आता हुआ देवोंके लिये विभाग समर्पण करता है। तथा हे चन्द्रमा! (दीर्घं आयुः प्र तिरसे) तू दीर्घ आयु देता है ॥ २४ ॥

(शामुल्यं परा देहि) यह उत्तम वस्त्र दान कर। (ब्रह्मभ्यः वसु विभज) ब्राह्मणोंको धन दे। जब (एषा पद्वती कृत्या जाया भूत्वा) यह पांववाली कृत्या अर्थात् विनाशक स्वभाववाली स्त्री (पतिं विशते) पतिके पास आती है ॥ २५ ॥

(नीललोहितं भवति) नीला और लाल होता है, क्रोधयुक्त होता है तब (कृत्यासक्तिः व्यज्यते) विनाशकी इच्छा बढती है, (अस्या ज्ञातयः एधन्ते) इसकी जातिके मनुष्य बढते हैं पर (पतिः बन्धेषु बध्यते) पति बन्धनमें बांध दिया जाता है ॥ २६ ॥

(यत् वध्वः वाससः) जब स्त्रीके वस्त्रसे (पति स्वं अंगं अभि ऊर्णुते) पति अपने शरीरको आच्छादित करता है, तब (अमुया पापया) इस पापी रीतिसे (रुशती तनूः) सुन्दर शरीरके होनेपर भी वह (अश्लीला भवति) शोभारहित होता है ॥ २७ ॥

(आशसनं विशसनं) धारीवाले, सिरके तथा (अथो अधिविकर्तनं) सर्वांगपर रहनेवाले वस्त्रमें (सूर्यायाः रूपाणि पश्य) सूर्यके रूपको देख। (उत तानि ब्रह्मा शुम्भति) इन वस्त्रोंको ब्राह्मण तेजस्वी करता है ॥ २८ ॥

भावार्थ— गृहस्थी लोग नये नये उत्साहसे पुरुषार्थ करते हुए उषाओंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके समान सबके मार्गदर्शक बनें। यज्ञमें देवोंका भाग उनको समर्पण करें और यज्ञमय जीवन व्यतीत करते हुए संपूर्ण आयुका उपभोग लेवें ॥ २४ ॥

विवाहके समय उत्तम उत्तम वस्त्र विद्वान् ब्राह्मणोंको दान दिये जांये, और उनको धन भी बांटा जाये। (ये ब्राह्मण वधूको सुशिक्षा देवें। यदि वधूको उत्तम शिक्षा न मिली) तो यह वधू पतिके घर प्रवेश करके सब कुलका विनाश कर सकती है। (वधूके अधर्माचरणसे कुलका नाश होता है) ॥ २५ ॥

[पतिकुलमें वधू यदि अधर्माचरण करने लगे, तो] खून खराबा होता है, उस दुराचारी वधूकी विनाशक बुद्धि बढ जाती है, उसके पिताके संबंधी लोग जमा हो जाते हैं, और इस प्रकार बिचारा पति बन्धनमें फंसता है। [इसलिये कन्याको सुशिक्षा देनी चाहिये।] ॥ २६ ॥

स्त्रीका वस्त्र पुरुष कभी न पहने। यदि किसीने पहना तो उससे पतिका तेजस्वी शरीर भी शोभारहितसा हो जाता है ॥ २७ ॥

एक वस्त्र धारीवाला होता है. दूसरा दुशाले जैसा चमकदार होता है, तीसरा ओढनेका वस्त्र होता है। इन वस्त्रोंसे वधूके रूपकी सुंदरता बढाई जावे। इन वस्त्रोंके सम्बन्धका योग्य ज्ञान ब्राह्मण गृहस्थियोंको देवे, जिससे वस्त्रोंके दोष दूर हो जायें ॥ २८ ॥

तृष्टमेतत्कटुकमपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे । सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद्वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥
स इत्तत्स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् । प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥
युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥ ३१ ॥
इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥ ३२ ॥
इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अर्थ— (एतत् तृष्टं) यह तृषा उत्पन्न करनेवाला है, (कटुकं) यह कडुवा है, (अपाष्ठवत् विषवत्) यह घृणित और यह विषयुक्त अन्न है, अतः (एतत् अत्तवे न) यह खानेके योग्य नहीं है। (यः ब्रह्मा सूर्यां वेद) जो ब्राह्मण सूर्याको इस तरह सिखाता है, (सः इत् वाधूयं अर्हति) वह निःसंदेह वधूकी ओरसे वस्त्र लेने योग्य है ॥ २९ ॥

(यः प्रायश्चित्तिं अध्येति) जो प्रायश्चित्त प्रकरण अर्थात् चित्त शुद्ध करनेका अध्ययन कराता है, (येन जाया न रिष्यति) जिससे पत्नी नष्ट नहीं होती (सः इत्) वही निश्चयसे (तत् सुमंगलं स्योनं वासः हरति) उस मंगल और सुखकर वस्त्रको ले सकता है ॥ ३० ॥

(युवं ऋत-उद्येषु ऋतं वदन्तौ) तुम दोनों सत्य व्यवहारोंमें रह कर सत्य बोलते हुए (समृद्धं भगं संभरतं) समृद्धियुक्त भाग्य प्राप्त करो। हे ब्रह्मणस्पते ! (पतिं अस्यै रोचय) पतिके विषयमें इस स्त्रीके मनमें रुचि उत्पन्न कर। (संभलः एतां वाचं चारु वदतु) पति इस वाणीको सुन्दरतासे बोले ॥ ३१ ॥

हे (गावः) गौवो ! (इह इत् असाथ) तुम यहीं रहो। (परः न गमाथ) दूर मत जाओ। (इमं प्रजया वर्धयाथ) इस वधूको उत्तम संततिके साथ बढाओ। हे (उस्रियाः) गौवो ! (शुभं यतीः सोमवर्चसः) शुभको प्राप्त करानेवाली और चन्द्रके समान तेजस्वितासे युक्त होवो। (विश्वे देवाः वः मनांसि इह क्रन्) सब देव तुम्हारे मनोंको यहां स्थिर करें ॥ ३२ ॥

हे (गावः) गौवें ! (इमं प्रजया सं विशाथ) इसके घरमें अपनी संतानके साथ प्रवेश करो। (अयं देवानां भागं न मिनाति) यह यजमान देवोंके भागका लोप नहीं करता है। (पूषा सर्वे मरुतः) पूषा और सब मरुत (धाता सविता) विधाता और सविता (अस्मै अस्मै वः वः सुवाति) इसी मनुष्यके लिये तुमको उत्पन्न करते हैं ॥ ३३ ॥

भावार्थ— एक अन्न तृष्णाको बढानेवाला, दूसरा कडुवा, तीसरा सडा हुआ और चौथा विषयुक्त होता है। इस प्रकारके अन्न गृहस्थियोंके खानेयोग्य नहीं हैं। इस तरह की शिक्षा देनेवाले ब्राह्मणको वधूकी ओरसे वस्त्र दिये जावें ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण चित्त शुद्ध करनेका ज्ञान जानता है, जिस ज्ञानके प्राप्त होनेसे स्त्री विगडती नहीं, इस प्रकारकी सुशिक्षा देनेवाले अध्यापक ब्राह्मणको ही मंगल और सुंदर वस्त्र देना योग्य है और ऐसा ब्राह्मण ही वस्त्रका दान लेवे ॥ ३० ॥

गृहस्थी स्त्रीपुरुष सीधे व्यवहार करें, सदा सत्य बोलें, और धनसंपत्ति कमावें। पत्नीके मनमें पतिके विषयमें बडा आदरभाव रहे और पति भी सुंदर और मधुर भाषण करे ॥ ३१ ॥

गृहस्थीके घरमें गौवें रहें, वहांसे गौवें भाग न जावें। गौवें बछडे देती रहें। उनकी संख्या बढे। गौवें सुखभाववालीं और तेजयुक्त हों और गौवें भी घरवालोंपर प्रीति करें ॥ ३२ ॥

गौवें अपने बछडोंके साथ घरमें प्रवेश करें। गृहस्थ देवयज्ञ प्रतिदिन करें, कभी यज्ञका लोप न हो। सब देव इस गृहस्थीके घरमें गौवोंकी संख्या बढावें ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४ ॥
यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् । यद्गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥
येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा । येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥
यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ॥ ३७ ॥
इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि । यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन्प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ— (येभिः नः सखायः वरेयं यन्ति) जिनसे हमारे सब मित्र कन्याके घर पहुंचते हैं (पन्थानः अनृक्षराः ऋजवः सन्तु) वे सब मार्ग कण्टकरहित और सरल हों, (धाता भगेन अर्यम्णा वर्चसा सं सं सं सृजतु) विधाता, भग और अर्यमा तेजसे इसे संयुक्त करें ॥ ३४ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (यत् वर्चः अक्षेषु) तो तेज आंखोंमें है और (यत् सु-रायां आहितं) जो तेज संपत्तिमें होता है, (यत् च वर्चः गोषु) जो तेज गौवोंमें है, (तेन वर्चसा इमां आवतं) उस तेजसे इस वधूकी रक्षा करो ॥ ३५ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (येन महानघ्न्याः जघनं) जिससे बडी गौका जघन अर्थात् निचला दुग्धाशयका भाग, (येन वा सुरा) जिससे संपत्ति, (येन अक्षा अभ्यषिच्यन्त) जिससे आंखें भरपूर रहती हैं (तेन वर्चसा इमां आवतं) उस तेजसे इस वधूकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

(यः अप्सु अन्तः अनिध्मः दीदयत्) जो जलोंमें इन्धनोंके बिना चमकता है, (यं विप्रासः अध्वरेषु ईडते) जिसकी ज्ञानी लोग यज्ञोंमें स्तुति करते हैं और (याभिः वीर्यावान् इन्द्रः वावृधे) जिनसे वीर्यवान् इन्द्र बढता है, हे (अपां नपात् ! मधुमतीः अपः दाः) जलोंको न गिरानेवाले देव ! वैसा मधुर तेज हमें दे ॥ ३७ ॥

(इदं अहं तनूदूषिं रुशन्तं ग्राभं अपोहामि) यह मैं शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले विनाशक रोगको दूर करता हूं । और (यः भद्रः रोचनः तं उदचामि) जो कल्याणमय तेज है, उसको धारण करता हूं ॥ ३८ ॥

(ब्राह्मणाः अस्यै स्नपनीः आपः आहरन्तु) ब्राह्मण लोग इस वधूके लिये स्नानका जल ले आवें । (अवीरघ्नीः आपः उदजन्तु) वीरका नाश न करनेवाला जल वे लावें । (अर्यम्णः अग्निं पर्येतु) वह अर्यमाकी अग्निकी प्रदक्षिणा करे । हे (पूषन्) पूषा ! (श्वशुरः देवरः च प्रतीक्षन्ते) ससुर और देवर इस वधूकी प्रतीक्षा करें ॥ ३९ ॥

भावार्थ— वरके तथा वधूके घर जानेके मार्ग कंटकरहित और सरल हों । परमेश्वर इन गृहस्थियोंको तेजस्वी करके समृद्ध करे ॥ ३४ ॥

जो तेज आंखोंमें, ऐश्वर्यमें और गौवोंमें होता है, उस तेजसे यह वधू युक्त हो । यह स्त्री तेजस्विनी हो ॥ ३५ ॥

जिस तेजसे गौका दुग्धाशय तेजस्वी हुआ है, जो तेज ऐश्वर्यमें और आंखमें होता है, उस तेजसे यह स्त्री युक्त होवे और यह स्त्री धर्माचरणमें सुरक्षित रहे ॥ ३६ ॥

जलोंमें इन्धनोंके बिना चमकनेवाला तेज है, यज्ञोंमें द्विजोंका ज्ञानरूप तेज है, और जलोंमें मधुरता है और वीर्य भी है । इन तेज, ज्ञान, माधुर्य और वीर्यसे ये गृहस्थी युक्त हों । इन्द्र इन्हींके आधिक्यसे सबसे महान् हुआ है ॥ ३७ ॥

शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले रोगबीजोंको दूर करके जिनसे शरीर नीरोगी और आनन्दप्रसन्न होता हो उन गुणोंको धारण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण लोग बतावें कि यह जल स्नान करनेयोग्य है, यह जल भीरुताका नाश करके बल बढानेवाला है । वधूवर श्रेष्ठ भग धारण करके अग्निकी प्रदक्षिणा करें । श्रेष्ठ गुणवाली वधूकी प्रतीक्षा पतिगृहमें ससुर और देवर करें ॥ ३९ ॥

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो । अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् । पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा । एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥
सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु । ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥
या अकृन्तन्नवयन्याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥

अर्थ— (ते हिरण्यं शं) तेरे लिये सुवर्ण कल्याणकारी हो, (उ आपः शं सन्तु) और जल सुखकर हों, (मेथिः शं भवतु) गौ बांधनेका स्तंभ सुखदायी हो। तथा (युगस्य तर्द्म शं) जुएका छिद्र सुखकर हो, (ते शतपवित्राः आपः शं भवन्तु) तेरे लिये सौ प्रकारसे पवित्रता करनेवाला जल सुखदायी हो। (पत्या तन्वं शं संस्पृशस्व) पतिके साथ अपने शरीरका स्पर्श उत्तम रीतिसे कर ॥ ४० ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (रथस्य खे) रथके छिद्रमें, (अनसः खे) गाडीके छिद्रमें और (युगस्य खे) जुएके छिद्रमें (अपालां त्रिः पूत्वा) अयोग्य रीतिसे पाली हुई युवतीको तीन बार पवित्र करके उसे (सूर्यत्वचं अकृणोः) सूर्यके समान तेजस्वी त्वचासे युक्त तूने किया ॥ ४१ ॥

(सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिं आशासाना) उत्तम मन, संतान, सौभाग्य और धनकी आशा करनेवाली तू (पत्युः अनुव्रता भूत्वा) पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली होकर (अमृताय कं सं नह्यस्व) अमरत्वके लिये अच्छी तरह सिद्ध हो ॥ ४२ ॥

(यथा वृषा सिन्धुः) जिस प्रकार बलशाली समुद्र (नदीनां साम्राज्यं सुषुवे) नदियोंका साम्राज्य चलाता है, (एव त्वं पत्युः अस्तं परेत्य) उसी प्रकार तू पतिके घर पहुंचकर (साम्राज्ञी एधि) सम्राज्ञी होकर वहां रह ॥ ४३

(श्वशुरेषु सम्राज्ञी एधि) ससुरोंमें स्वामिनी होकर रह। (उत देवृषु सम्राज्ञी) देवरोंमें भी महारानीके समान आदरसे रह। (ननान्दुः सम्राज्ञी एधि) ननदके साथ भी रानीके समान रह और (उत श्वश्र्वाः सम्राज्ञी) सासके साथ भी सम्राट्की स्त्रीके समान होकर रह ॥ ४४ ॥

(याः देवीः अकृन्तन्) जिन देवियोंने स्वयं सूत काता है, (याः च अवयन्) जिन्होंने बुना है, (याः च तत्निरे) जो ताना तानती हैं, (याः च अभितः अन्तान् ददन्त) और जो चारों ओरके अन्तिम भागोंको ठीक रखती हैं, (ताः त्वा जरसे सं व्ययन्तु) वे तुझे वृद्धावस्थातक रहनेके लिये बुनें। तू (आयुष्मती इदं वासः परि धत्स्व) दीर्घ आयुवाली होकर इस वस्त्रको धारण कर ॥ ४५ ॥

भावार्थ— सुवर्ण, जल, गौका बंधनस्तंभ, जुएके भाग आदि सब कुटुंबके कल्याण करनेवाले हों। जल तो सौ प्रकारसे पवित्रता करनेवाला है। गृहस्थके घरमें धर्मपत्नी पतिके साथ दिल लगाकर रहे ॥ ४० ॥

गृहस्थ तथा स्त्री अपनी तीन प्रकारकी शुद्धता प्रभुकी कृपासे कराके सूर्यके समान तेजस्वी बनकर यहां विराजे ॥ ४१ ॥

गृहस्थके घरमें स्त्री उत्तम मन, संतान, सौभाग्य व धनकी इच्छा करती हुई, पतिके अनुकूल कर्म करती हुई, अमरत्व प्राप्तिके श्रेष्ठ सुखदायी मार्ग पर चले ॥ ४२ ॥

जैसे महासागर नदियोंका सम्राट् है, उसी प्रकार पतिके घर पहुंचकर यह वधू गृहस्थको सम्राट् और अपनेको उसकी साम्राज्ञी बनाकर व्यवहार करे ॥ ४३ ॥

ससुर, देवर, ननद और सास आदि सबके साथ रानीके समान बर्ताव करे और सबको सुख देवे ॥ ४४ ॥

घरमें देवियां सूत कातें, कपडा बुनें, ताना तानें, कपडेके अन्तिम भाग ठीक करें। ऐसा उत्तम कपडा बुनें कि जो वृद्धावस्थातक काम देवे। स्त्री दीर्घायु बनकर इस कपडेको पहने ॥ ४५ ॥

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः जनये परिष्वजे ॥४६॥
स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४७॥
येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥४८॥
देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥४९॥

अर्थ— (जीवं रुदन्ति) जीवित मनुष्यकी विदाई पर लोग रोते हैं, (अध्वरं वि नयन्ति) यज्ञको साथ ले जाते हैं, (नरः दीर्घां प्रसितिं अनु दीध्युः) मनुष्य दीर्घ मार्गका विचार करते हैं। (ये पितृभ्यः इदं वामं समीरिरे) जो स्त्रियें अपने मातापिताके लिये यह सुन्दर कार्य करती हैं, वे ही अपने (पतिभ्यः मयः जनये परिष्वजे) पतियोंके लिये सुखदायी होती हैं जो स्त्रीको आलिंगन करता है ॥ ४६ ॥

(देव्याः पृथिव्याः उपस्थे) पृथ्वी देवीके पास (ते प्रजायै स्योनं ध्रुवं अश्मानं धारयामि) तेरी संतानके लिये सुखदायी और पत्थर जैसे स्थिर आधारको स्थापित करता हूं (तं आतिष्ठ) उसपर तू खडा रह, (अनुमाद्याः) आनंदित हो, (सुवर्चाः) उत्तम तेजसे युक्त हो। और (सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु) सविता तेरी आयु लंबी करे ॥ ४७ ॥

(येन अग्निः) जिस उद्देश्यसे अग्निने (अस्याः भूम्याः दक्षिणं हस्तं जग्राह) इस भूमिका दायां हाथ ग्रहण किया, (तेन ते हस्तं गृह्णामि) उसी उद्देश्यसे तेरा हाथ मैं पकडता हूं, (मा व्यथिष्ठाः) दुःखी मत हो, (मया सह प्रजया च धनेन च) मेरे साथ प्रजा और धनके साथ रह ॥ ४८ ॥

(सविता देवः ते हस्तं गृह्णातु) सविता देव तेरा पाणिग्रहण करे। (राजा सोमः सुप्रजसं कृणोतु) राजा सोम तुझे उत्तम सन्तानयुक्त करे। (जातवेदाः अग्निः पत्ये सुभगां पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु) जातवेद अग्नि पतिके लिये सौभाग्ययुक्त स्त्रीको वृद्धावस्थातक जीनेवाली करे ॥ ४९ ॥

भावार्थ— विदाईपर मनुष्य रोया करते हैं। परंतु यह कन्या यद्यपि पितृकुलसे विदा होती है, तथापि पतिके घरमें गृहयज्ञ करनेके लिये जा रही है, अतः इस गृहस्थाश्रमके दीर्घ मार्गका लोग विचार करें और न रोयें। पितृघरके लोगोंको तो यह सुखका दिन है, क्योंकि यह वधूके यज्ञका प्रारंभ है। यह वधू पतिको सुख देती है और पति इसको आलिंगनसे सुख देता है। परस्पर सुखवृद्धि करना ही गृहस्थका यज्ञ है ॥ ४६ ॥

इस भूमिपर तेरी संतान सुखपूर्वक दीर्घकालतक रहे, इसलिये यह पत्थरका आधार स्थापित करता हूं। इसपर चढ, आनंदित और तेजस्वी हो। इस तरह गृहस्थाश्रममें सुदृढ रहनेसे तेरी आयु दीर्घ हो ॥ ४७ ॥

जैसे अग्नि और भूमिका संबंध है, वैसे ही संबंधके लिये मैं इस वधूका पाणिग्रहण करता हूं। वधूको कष्ट न हो। यह वधू मेरे साथ प्रजा, धन और ऐश्वर्यसे युक्त हो ॥ ४८ ॥

सविता जैसे तेजस्वी बनकर पति स्त्रीका पाणिग्रहण करे, और सोम जैसे कलायुक्त होकर धर्मपत्नीमें संतान उत्पन्न करे। पतिपत्नी मिलकर दोनों इस गृहस्थाश्रममें वृद्धावस्थातक आनन्दसे रहें ॥ ४९ ॥

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥
भगस्ते हस्तमग्रहीत्सविता हस्तमग्रहीत् । पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

अर्थ— (ते हस्तं सौभगत्वाय गृभ्णामि) तेरा हाथ मैं सौभाग्यके लिये पकडता हूं। (यथा मया पत्या जरदष्टिः असः) जिससे तू मुझ पतिके साथ वृद्धावस्थातक जीनेवाली होकर रह। (भगः अर्यमा सविता पुरंधिः देवाः) भग, अर्यमा, सविता, पुरंधि और सब देवोंने (त्वा मह्यं गार्हपत्याय अदुः) तुझको मेरे हाथमें गृहस्थाश्रम चलानेके लिये दिया है ॥ ५० ॥

(भगः ते हस्तं अग्रहीत्) भगने तेरा हाथ पकडा है, (सविता हस्तं अग्रहीत्) सविताने तेरा हाथ पकडा है, (त्वं धर्मणा पत्नी असि) तू धर्मसे मेरी पत्नी है, और (अहं तव गृहपतिः) मैं तेरा गृहपति हूं ॥ ५१ ॥

(इयं मम पोष्या अस्तु) यह स्त्री मेरे द्वारा पोषण करनेयोग्य हो। (बृहस्पतिः त्वा मह्यं अदात्) बृहस्पतिने तुझे मुझको दिया है। हे (प्रजावति) संतानवाली स्त्री ! (मया पत्या शरदः शतं संजीव) मुझ पतिके साथ तू सौ वर्षतक जीवित रह ॥ ५२ ॥

(त्वष्टा वासः) त्वष्टाने यह वस्त्र (शुभे कं) कल्याण और सुखके लिये (बृहस्पतेः कवीनां प्रशिषा) बृहस्पति और कवियोंके आशीर्वादके साथ (व्यदधात्) बनाया है। (तेन इमां नारीं) उससे इस स्त्रीको (सविता भगः) सविता और भग (सूर्यां इव) सूर्याके समान (प्रजया परिधत्तां) उत्तम संतानके साथ संयुक्त करें ॥ ५३ ॥

(इन्द्राग्नी) इन्द्र, अग्नि, (द्यावापृथिवी) द्युलोक, भूमि, (मातरिश्वा) वायु, मित्र, वरुण भग, (उभौ अश्विनौ) दोनों अश्विनीकुमार, बृहस्पति, मरुत, ब्रह्म, सोम ये सब (इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु) इस स्त्रीको संतानके साथ बढावें ॥ ५४ ॥

भावार्थ— हे स्त्री ! मैं पति तेरा पाणिग्रहण सौभाग्यप्राप्तिके लिये करता हूं। मुझ पतिके साथ तू वृद्धावस्थातक रह। सब देवोंने तुझको गृहस्थाश्रम चलानेके लिये मेरे हाथमें सौंपा है ॥ ५० ॥

भग अर्थात् धनवान् होकर और सविता जैसा समर्थ और तेजस्वी होकर तेरा पाणिग्रहण मैं करता हूं। अबसे तू धर्मके अनुसार मेरी धर्मपत्नी है और मैं तेरा गृहपति हूं ॥ ५१ ॥

यह धर्मपत्नी मेरे (पतिके) द्वारा पोषणके योग्य है। परमेश्वरने यह कन्या मेरे हाथमें दी है। यहां मेरे घरमें यह वधू सन्तानोंसे युक्त होकर मुझ पतिके साथ सौ वर्षतक आनन्दसे रहे ॥ ५२ ॥

इस कारीगरके द्वारा इसके लिये बनाया यह वस्त्र है, ज्ञानी ब्राह्मणोंने इसको आशीर्वाद दिया है। यह धर्मपत्नी इसको पहने और ईश्वरकी कृपासे उत्तम संतानोंसे युक्त होवे ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्न्यादि सब दैवी शक्तियां इस नारीको उत्तम संतानोंके साथ बढावें ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥५५॥
इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान्विद्वान्वि चचर्त पाशान् ॥५६॥
अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥५७॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८॥

अर्थ—(बृहस्पतिः प्रथमः) बृहस्पतिने सबसे प्रथम (सूर्यायाः शीर्षे केशान् अकल्पयत्) सूर्याके सिरपर केशोंको बढाया । (तेन) उसी तरह (अश्विनौ) हे अश्विनी कुमारो ! हम (इमां नारीं पत्ये सं शोभयामसि) इस स्त्रीको पतिके लिये सुशोभित करें ॥ ५५ ॥

(यत् योषा अवस्त, तत् रूपं इदं) जो वस्त्र स्त्रीने धारण किया उसके कारण उसका यह रूप है । (मनसा चरन्तीं जायां जिज्ञासे) मनसे भ्रमण करनेवाली स्त्रीको मैं जानता हूं (नवग्वैः सखिभिः तां अन्वर्तिष्ये) यज्ञों और ऋत्विजोंके साथ उसका मैं अनुसरण करता हूं । (कः विद्वान् इमान् पाशान् वि चचर्त) कौन ज्ञानी इन पाशोंको काट सकता है ? ॥ ५६ ॥

(मनसा कुलायं पश्यन्) मनसे अपने कुलकी वृद्धिको देखता हुआ (अहं) मैं (अस्याः रूपं मयि विष्यामि) इस कन्याके रूपको अपने अन्दर स्थापित करता हूँ, यह भी (इत् वेदत्) मेरे प्रेमके व्यवहारको जाने । मैं (मनसा स्तेयं उदमुच्ये) मनसे भी इस वधूके साथ चोरीका व्यवहार छोड देता हूँ, और उससे चोरी करके कोई भी चीज (न अद्मि) नहीं खाऊंगा । और (स्वयं) मैं स्वयं (वरुणस्य पाशान् श्रथ्नानः) वरुणके पाशोंको शिथिल करता हूँ ॥५७॥

हे (वधु) स्त्री ! (येन सुशेवाः सविता त्वा अबध्नात्) जिससे सेवा करनेयोग्य सविताने तुझे बांध दिया था, (त्वा वरुणस्य पाशात् प्रमुञ्चामि) उस वरुणके पाशसे मैं तुझे मुक्त करता हूं । (तुभ्यं सहपत्न्यै) तुझ सहधर्मचारिणीके लिये (अत्र उरुं लोकं सुगं पन्थां कृणोमि) यहां विस्तृत स्थान और उत्तम गमनयोग्य मार्ग बनाता हूं ॥ ५८ ॥

भावार्थ— कन्याके सिरपर उत्तम बाल हों और वह नारी पतिकी प्राप्तिके लिये सुशोभित हो ॥ ५५ ॥

स्त्रीका उत्तम वस्त्र धारण करनेसे जो रूप बनता है, वही देखनेयोग्य है । मनका चालचलन कैसा है, यही स्त्रीके विषयमें देखना चाहिये । पति यज्ञकर्मोंमें धर्मपत्नीको अपने साथ सदा रखे । विषयोंके पाशोंको कौन विद्वान् काट सकता है ? ॥ ५६ ॥

मैं इन बन्धनोंको खोलता हूं । इस मेरी धर्मपत्नीका रूप केवल मेरे लिये है । इसके मनकी परीक्षा करके ही मैंने यह जान लिया है । मैं जो भोग करूं वह इस वधूको बताकर ही करूं, चोरीके धनका भोग मैं नहीं करूं । मैं वरुणके पाशोंको शिथिल करता हुआ मनके बलसे युक्त होऊं ॥ ५७ ॥

सविताने तुझे इस समयतक जिन पाशोंसे बांध रखा था, उन वरुणके पाशोंको मैं खोलता हूं । तुझ जैसी सुयोग्य धर्मपत्नीके लिये यहां विस्तृत लोक है और उन्नतिका मार्ग भी सुगम है ॥ ५८ ॥

*

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित्पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥
भगस्ततक्ष चतुरः पादान्भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥
सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥
अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते । इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥
मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि । शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—(उद् यच्छध्वं) अपने शस्त्रोंको ऊपर उठाओ। (रक्षः अपः हनाथ) राक्षसोंको मारो। (इमां नारीं सुकृते दधात) इस स्त्रीको पुण्य कर्ममें लगाओ। (विपश्चित् धाता अस्मै पतिं विवेद) ज्ञानी विधाताने इसके लिये पति प्राप्त कराया है। (भगः राजा प्रजानन् पुरः एतु) राजा भग जानता हुआ आगे बढे ॥ ५९ ॥

(भगः चतुरः पादान् ततक्ष) भगने चार पांवोंको बनाया, उनपर (भगः चत्वारि उष्पलानि ततक्ष) भगने चार कमलोंको बनाया। (त्वष्टा मध्यतः वर्ध्रान् अनु पिपेश) त्वष्टाने मध्यमें कमरपट्टोंको बनाया। (सा नः सुमंगली अस्तु) वह कन्या हमारे लिये उत्तम मंगल करनेवाली हो ॥ ६० ॥

हे (सूर्ये) सूर्ये ! (सुकिंशुकं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं वहतुं आरोह) उत्तम पुष्पोंसे युक्त, अनेक रूपवाले सोनेके रंगके समान चमकनेवाले, उत्तम वेष्टनोंसे युक्त और उत्तम चक्रोंसे युक्त इस रथपर चढ। (अमृतस्य लोकं आरोह) अमृतके लोकपर चढ। (त्वं वहतुं पतिभ्यः स्योनं कृणु) तू इस रथको पतियोंके लिये सुखदायी कर ॥ ६१ ॥

हे (वरुण बृहस्पते इन्द्र सवितः) देवो ! (अभ्रातृघ्नीं) भाईयोंका वध न करनेवाली, (अपशुघ्नीं, अपतिघ्नीं, पुत्रिणीं अस्मभ्यं आ वह) पशुका वध न करनेवाली, पतिका नाश न करनेवाली और पुत्र उत्पन्न करनेवाली इस वधूको हमारे लिये प्राप्त कराओ ॥ ६२ ॥

हे (स्थूणे) दोनों स्तंभो ! (देवकृते पथि) देवोंके बनाये मार्गपर चलनेवाले (कुमार्यं मा हिंसिष्टं) इस कुमारी वधूकी हिंसा न करो। (देव्याः शालायाः द्वारं वधूपथं स्योनं कृण्मः) घररूप देवताके द्वारमें वधूके आनेके मार्गको हम सुखकर करते हैं ॥ ६३ ॥

भावार्थ— इस धर्मपत्नीको कष्ट देनेवाले राक्षसोंका नाश करनेके लिये तुम लोग हथियार सदा सुसज्जित रखो। सदा इस स्त्रीको पुण्यकर्ममें लगाओ, ज्ञानी विधाताकी संमतिसे इसको यह पति प्राप्त हुआ है, राजा भी यह जानता हुआ विवाहमें अग्रगामी हुआ था ॥ ५९ ॥

भगने पांवोंके चार आभूषण और शरीरपर धारण करनेके चार फूल बनाये और कमरमें धारण करनेयोग्य कमरपट्टा बनाया है। इनको धारण करके यह स्त्री उत्तम मंगलमयी बने ॥ ६० ॥

यह वधू उत्तम फूलोंसे युक्त, सुंदर, सोनेके कामसे सुशोभित और उत्तम चक्रवाले रथपर चढकर अमर पदके मार्ग पर चले। यह धर्मपत्नीका विवाहमंगल पतिके घरवालोंके लिये सुखकारक होवे ॥ ६१ ॥

यह स्त्री पतिके घरमें पतिके भाई, पशु आदिकोंको सुख देवे। पतिको सुख देवे। पुत्रोंको उत्पन्न करे। और सबका आनन्द बढानेवाली बने ॥ ६२ ॥

यह वधू देवोंके मार्गसे जा रही है अतः इसको किसी तरह कष्ट न हों। इसके पतिके घरका मार्ग और इसके पतिके घरका द्वार इसके लिये सुखदायी होवे ॥ ६३ ॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥

[२]

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा । दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥
सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥
सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (अपरं पूर्वं अन्ततः मध्यतः सर्वतः ब्रह्म युज्यतां) आगे, पीछे, अन्तमें, बीचमें, अर्थात् सर्वत्र ब्रह्म अर्थात् ईशप्रार्थनाके मंत्रोंका प्रयोग किया करो । हे वधू ! तू (अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य) व्याधिरहित देवनगरीको प्राप्त होकर (पतिलोके शिवा स्योना वि राज) अपने पतिके स्थानमें कल्याणकारिणी और सुख देनेवाली होकर प्रकाशित हो ॥ ६४ ॥

[२]

हे अग्ने ! (अग्ने तुभ्यं) आरंभमें तेरे लिये (वहतुना सह सूर्यां पर्यवहत्) दहेजके साथ सूर्याको ले जाते थे । (सः) वह तू (नः पतिभ्यः) हम सब पतियोंको (प्रजया सह जायां दाः) संतानसहित पत्नीको प्रदान कर ॥ १ ॥

(आयुषा वर्चसा सह) दीर्घायुष्य और तेजके साथ (अग्निः पत्नीं पुनः अदात्) अग्निने पत्नीको पुनः प्रदान किया । (अस्याः यः पतिः) इसका जो पति है, वह (दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति) दीर्घायु बनकर सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ २ ॥

(प्रथमं सोमस्य जाया) यह सबसे प्रथम सोमकी स्त्री है, (ते अपरः पति गन्धर्वः) तेरा दूसरा पति गन्धर्व है । (ते तृतीयः पतिः अग्निः) तेरा तीसरा पति अग्नि है और (ते तुरीयः मनुष्यजाः) तेरा चतुर्थ पति मानव है ॥ ३ ॥

जिसको (सोमः गन्धर्वाय ददत्) सोमने गन्धर्वको दी और (गन्धर्वः अग्नये ददत्) गन्धर्वने अग्निको दी, (अथो इमां) और बादमें इसी कन्याको तथा (रयिं च पुत्रान् च अग्निः मह्यं अदात्) धन और पुत्रोंको अग्निने मुझे प्रदान किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस वधूके चारों ओर ज्ञान और ईशप्रार्थनाका वायुमंडल हो । व्याधिसे रहित पतिके घररूप देवनगरीको यह वधू प्राप्त हो । पतिके घरमें सुखयुक्त और कल्याणयुक्त बनकर यह विराजे ॥ ६४ ॥

[२]

दहेज पतिके घर भेजनेके पूर्व कन्या प्रथम अग्निकी उपासना करती है, जिससे उस कन्याको पतिके घर सुख और उत्तम संतान प्राप्त हो ॥ १ ॥

अग्नि की उपासना अर्थात् यजन अथवा हवन करनेसे दीर्घ आयुष्य, और शारीरिक कान्ति प्राप्त होती है । कन्याका पति भी इस हवनसे दीर्घजीवी अर्थात् शतायु हो सकता है ॥ २ ॥

सोम, गन्धर्व और अग्नि ये बचपनमें कन्याके तीन पति हैं । और पश्चात् उस कन्याका विवाह मनुष्यके साथ होता है ॥ ३ ॥

सोम गन्धर्वको देता है, गन्धर्व अग्निके हाथमें समर्पण करता है और अग्नि पुत्रोत्पादनशक्तिके साथ मनुष्यके स्वाधीन इस कन्याको करता है ॥ ४ ॥

आ वांमगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥ ५ ॥
सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥
या ओषधयो या नद्योइ यानि क्षेत्राणि या वना । तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥
एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् । यस्मिन्वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥

अर्थ— (वां सुमतिः आगन्) आपकी उत्तम मति प्राप्त हुई है। हे (वाजिनीवसू अश्विनौ) बल और धनयुक्त अश्विनी देवो ! (कामाः हृत्सु नि अरंसत) हमारी शुभ इच्छाएं हृदयोंमें स्थिर हो गईं हैं। हे (शुभस्पती) शुभके पालको ! (मिथुना गोपा अभूतं) तुम दोनों इन्द्रियोंके पालक बनो । (अर्यम्णः प्रियाः दुर्यान् अशीमहि) आर्य मनवाले तथा श्रेष्ठ देवोंके प्रिय होकर हम उत्तम घरोंको प्राप्त हों ॥ ५ ॥

(सा मन्दसाना) वह आनन्दित रहनेवाली स्त्री (शिवेन मनसा) शुभ भावनायुक्त मनसे (सर्ववीरं वचस्यं रयिं धेहि) सर्व वीरोंसे युक्त प्रशंसनीय धनको धारण करे । हे (शुभस्पती) शुभके पालको ! हमारे लिये (तीर्थं सुगं) तैरनेका स्थान सुगम हो, (सुप्रपाणं) जल पीनेका स्थान उत्तम हो, तथा (पथिष्ठां स्थाणुं) मार्गमें रुकावट डालनेवाले स्तंभ जैसे (दुर्मतिं) दुष्ट बुद्धिवाले शत्रुको (हतं) मार कर दूर करो ॥ ६ ॥

हे वधु ! (याः ओषधयः) जो औषधियां, (याः नद्यः) जो नदियाँ, (यानि क्षेत्राणि) जो क्षेत्र, और (या वना) जो वन हैं (ताः) वे सब पदार्थ (प्रजावतीं त्वा पत्ये) संतानयुक्त तुझको पतिके लिये (रक्षसः रक्षन्तु) राक्षसोंसे सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

(यस्मिन् वीरः न रिष्यति) जिसमें वीरका नाश नहीं होता और (अन्येषां वसु विन्दते) दूसरोंकी अपेक्षा जहां धन अधिक मिलता है । (इमं पन्थां आरुक्षाम) ऐसे इस मार्गसे हम चलें, यह (सुगं स्वस्तिवाहनं) सुगम और गाडीके लिये भी सुखकर है ॥ ८ ॥

भावार्थ—उक्त देवोंके आधिपत्यमें कन्याको उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। पश्चात् उसके हृदयमें कामको स्थान मिलता है । उस समय अश्विनी देव इन वधुवरोंके रक्षक होते हैं । इस समय अपना मन श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त करके अपने घरोंमें सबको वास करना उचित है ॥ ५ ॥

अपने पतिके घरमें आनन्दसे रहनेवाली धर्मपत्नी अपने मनमें शुभसंकल्प धारण करे और वीरभावयुक्त संतान और प्रशंसा योग्य धनकी स्वामिनी बने । इस दंपतीके मार्ग सुगम हों, इनको पर्याप्त खानपान प्राप्त हो, और इनके उन्नतिके मार्ग निष्कण्टक हों और दुष्ट बुद्धि इनसे दूर हो ॥ ६ ॥

औषधियां, नदियां, खेत, स्थान, वन आदि सब स्थानोंमें संतानोंवाली और पतिके घर जानेवाली इस स्त्रीकी रक्षा हो, अर्थात् कोई राक्षस इसको दुःख न पहुंचावे ॥ ७ ॥

जो मार्ग सुगम और निर्भय हो उससे आगे बढो। और उस मार्गसे जाओ कि जिसमें उत्तम निवासके साधन मिलते हों ॥ ८ ॥

इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दंपती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु । पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ १० ॥
मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती । सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥
सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत्कृणोतु ॥ १२ ॥
शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

अर्थ— हे (नरः) मनुष्यो ! (मे इदं सुशृणुत) मेरा यह भाषण सुनो। (यया आशिषा) जिस आशीर्वादसे (दम्पती वामं अश्नुतः) ये वर और वधू सुखको प्राप्त होते हैं। (एषु वानस्पत्येषु) इन वनोंमें (ये गन्धर्वाः देवीः अप्सरसः अधि तस्थुः) जो गन्धर्व और अप्सराएं हैं, (ते अस्यै वध्वै स्योनाः भवन्तु) वे इस वधूके लिये सुखदायी हों और (उह्यमानं वहतुं मा हिंसिषुः) दहेज ले जानेवाले इस रथका नाश न करें ॥ ९ ॥

(ये यक्ष्माः जनान् अनु) जो रोग मनुष्योंके संबन्धसे (वध्वः चन्द्रं वहतुं यन्ति) वधूके तेजस्वी दहेजके रथके पास पहुंचते हैं, (तान् आगताः यज्ञियाः देवाः) उन रोगोंको यहां आये हुए यज्ञके देव (यतः आगताः पुनः नयन्तु) जहांसे आये थे, फिरसे वहीं ले जावें ॥ १० ॥

(ये परिपन्थिनः आसीदन्ति) जो लुटेरे समीप प्राप्त हों, वे (दम्पती मा विदन्) इस पतिपत्नीको न जानें। ये वधूवर (सुगेन दुर्गं अतीतां) सुगमतासे कठिन प्रसंगसे पार हो जांय। और इनके (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर भाग जायें ॥ ११ ॥

(वहतुं) वधूके दहेजयुक्त रथको (गृहैः ब्रह्मणा अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा) चारों ओरके घरवाले लोग ज्ञानपूर्वक शांत और मित्रताकी आंखसे देखें, मैं (सं काशयामि) इनको प्रकाशित करता हूं। (यत् विश्वरूपं पर्याणद्धं अस्ति) जो विविध रूपवाला और बन्धा हुआ रथ है, उसको (सविता पतिभ्यः स्योनं कृणोतु) ईश्वर पतिके लिये सुखदायी बनावे ॥ १२ ॥

(इयं शिवा नारी अस्तं आगन्) यह कल्याणकारिणी स्त्री पतिके घर आगयी है। (धाता अस्यै इमं लोकं दिदेश) ईश्वरने इसे पतिलोकका मार्ग दिखाया है। (अर्यमा भगः उभा अश्विना प्रजापतिः) ये सब देव (तां प्रजया वर्धयन्तु) उसको प्रजाके साथ बढावें ॥ १३ ॥

भावार्थ— सब लोग इस घोषणाको सुनें, कि ये विवाहित स्त्रीपुरुष इस संसारमें सुखपूर्वक रहें। वनवासी तथा ग्रामवासी कोई भी इनको दुःख न दें। ये दूसरी जगह जायें, तो भी इनको किसी प्रकार दुःख न हो ॥ ९ ॥

जनसमुदायमें जानेसे जो रोग संसर्गके कारण होते हैं, और वधूको मार्गमें भी जो रोग होने संभव हैं, वे सब रोग यज्ञसे दूर हों ॥ १० ॥

मार्गपर जो लुटेरे हों, उनसे इस दम्पतीको कष्ट न हों, ये पतिपत्नी सुगमतया कठिन प्रसंगोंके पार हो जायें। और इनके सब शत्रु दूर हों ॥ ११ ॥

जब दहेजका रथ या पत्नीका पतिके घर जानेका रथ मार्गसे चले, तब दोनों ओरके घरवाले उस कन्याको प्रेमकी और मित्रदृष्टिसे देखें। जो भी कुछ विविध रंगरूपवाले पदार्थ हों, वे सब ईश्वरकी कृपासे इस पतिपत्नीके लिये सुखदायी बनें ॥ १२ ॥

यह सुखभाववाली स्त्री पतिके घर जाती है, क्योंकि विधाताने यही स्थान इसके लिये निर्दिष्ट किया था। सब देव इसको उत्तम संतान दें ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद्वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥ १४ ॥
प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥
उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत । मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥
अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥

अर्थ—(आत्मन्वती ऊर्वरा इयं नारी आगन्) आत्मिक बलसे युक्त तथा सुपुत्र उत्पन्न करनेवाली यह नारी पतिके घर आगई है । (नरः तस्यां अस्यां बीजं वपत) हे मनुष्यो ! उस स्त्रीमें बीज बोओ, वीर्यका आधान करो । (सा वः) वह तुम्हारे लिये (ऋषभस्य दुग्धं रेतः बिभ्रती) वीर्यवान् पुरुषका वीर्य धारण करती हुई (वक्षणाभ्यः प्रजां जनयत्) अपने गर्भाशयसे संतान उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

हे स्त्री ! तू (प्रति तिष्ठ) यहां प्रतिष्ठित हो, तू (विराट् असि) विशेष तेजस्विनी है । तेरा पति (इह विष्णुः इव) यह विष्णुके समान है । हे (सरस्वति, सिनीवालि) विद्या और अन्नसे युक्त देवी ! इसे (प्रजायतां) संतान हो और यह (भगस्य सुमतौ असत्) भाग्यके देवकी सुमतिमें रहे ॥ १५ ॥

(वः ऊर्मिः शम्याः उत् हन्तु) आपकी लहर शान्तिका–स्थिरताका भंग करे । हे (आपः) उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्य ! (योक्त्राणि मुञ्चत) जुओंको छोड दो । (अदुष्कृतौ व्येनसौ अघ्न्यौ) दुष्ट कर्म न करनेवाले, गाडीसे छोडे हुए दोनों बैल (अशुनं मा आरतां) अशुभको प्राप्त न हों ॥ १६ ॥

हे वधू ! (गृहेभ्यः) अपने घरोंके लिये (अघोरचक्षुः अपतिघ्नी स्योना) क्रूर दृष्टि न रखनेवाली, पतिकी हत्या न करनेवाली, सुखकारिणी (शग्मा सुशेवा सुयमा) कल्याणकारिणी, सेवा करने योग्य, सुनियमोंसे चलनेवाली, (वीरसूः देवृकामा) वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, देवरकी इच्छा पूर्ण करनेवाली और (सुमनस्यमाना) उत्तम अन्तःकरणसे युक्त (त्वया एधिषीमहि) तुझसे हम संपन्न हों ॥ १७ ॥

(अदेवृघ्नी अपतिघ्नी) देवरका नाश न करनेवाली, पतिका घात न करनेवाली, (पशुभ्यः शिवा) पशुओंका हित करनेवाली, (सुयमा सुवर्चाः) उत्तम नियमोंसे चलनेवाली और उत्तम तेजसे युक्त, (प्रजावती वीरसूः) संतान युक्त, वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, (देवृकामा स्योना) घरमें देवर रहे ऐसी कामना करनेवाली, सुखदायिनी तू (इमं गार्हपत्यं अग्निं सपर्य) इस गार्हपत्य अग्निकी पूजा कर ॥ १८ ॥

भावार्थ— यह स्त्री आत्मिक बलसे युक्त है और पुत्र उत्पन्न होनेकी शक्तिसे युक्त है अर्थात् यह वंध्या नहीं है। पति इस स्त्रीमें अपने वीर्यका आधान करता है और पश्चात् वह स्त्री उस वीर्यको धारण करती हुई अपने गर्भाशयसे संतानोत्पत्ति करती है ॥ १४ ॥

स्त्री अपने पतिगृहमें प्रतिष्ठाको प्राप्त हो, स्त्री घरकी सम्राज्ञी है, उसका पति देव है और यह उसकी देवी है । इस पतिपत्नीको उत्तम संतान प्राप्त हो और ये दोनों उत्तम बुद्धि धारण करें ॥ १५ ॥

प्रवासमें जब शान्तिका भंग हो, अर्थात् मनको कष्ट प्रतीत हो, उस समय वाहनके बैल छोड दिए जायें और उनको उत्तम स्थानमें सुरक्षित रखा जाय ॥ १६ ॥

यह स्त्री पतिके घरमें आकर आनन्दसे रहे, आंखें क्रोधयुक्त न करे, पतिकी हितकारिणी बने, धर्मनियमोंका पालन करे, सबको सुख देवे, अपनी संतानोंको वीरताकी शिक्षा देवे, देवर आदिको संतुष्ट रखे, अन्तःकरणमें शुभ भाव रखे। ऐसी स्त्रीसे घर सुसंपन्न होता है ॥ १७ ॥

स्त्री पतिगृहमें आकर देवर और पतिका हित करे, पशुओंका पालन उत्तम रीतिसे करे, धर्म नियमोंके अनुसार चले, तेजस्विनी बने, अपनी संतानोंको वीरताकी शिक्षा दे और अग्निकी हवनद्वारा उपासना करे ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद्गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥१९॥
यदा गार्हपत्यमसपर्यैत्पूर्वमग्निं वधूरियम् । अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥२०॥
शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥२१॥
यं बल्वजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन । तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥२२॥
उप स्तृणीहि बल्वजमधि चर्मणि रोहिते । तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥२३॥

अर्थ— हे (निर्ऋते) दरिद्रते ! (उत् तिष्ठ) उठ और कह कि (किं इच्छन्ती) तू क्या चाहती हुई (इदं आगाः) यहां आई है । (अहं अभिभूः) मैं तेरा पराभव करनेवाला (स्वात् गृहात् त्वा ईडे) अपने घरसे तुझे भगाता हूं। (या शून्य-एषि) जो घरको शून्य करनेकी इच्छा करती हुई तू (आजगन्धाः) यहां आई है, हे (अ-राते) शत्रुभूत दरिद्रते ! (उत्तिष्ठ) यहांसे उठ और (प्र पत) दूर भाग जा। (इह मा रंस्थाः) तू यहां मत रम ॥ १९ ॥

(यदा इयं वधूः) जब यह स्त्री (गार्हपत्यं अग्निं पूर्वं असपर्यैत्) गार्हपत्य अग्निकी पहिले पूजा करे (अधा) तत्पश्चात् हे (नारि) स्त्री ! तू (सरस्वत्यै पितृभ्यः च नमस्कुरु) सरस्वतिको और पितरोंको नमन कर ॥ २० ॥

(अस्यै नार्यै) इस स्त्रीके (उपस्तरे एतत् शर्म वर्म) बिछानेके लिये यह सुख और संरक्षण (आहर) लेआ। हे (सिनी-वालि) अन्न देनेवाली देवी ! (प्र जायतां) यह स्त्री उत्तम रीतिसे संतति उत्पन्न करे और (भगस्य सुमतौ असत्) भगवान्‌की उत्तम मतिमें रहे ॥ २१ ॥

(यं बल्वजं न्यस्यथ) जो चटाई नीचे बिछाते हैं (च चर्म उपस्तृणीथन) और चर्म ऊपर बिछाते हैं । (या कन्या पतिं विन्दते) जो कन्या पतिको प्राप्त करती है, वह (सुप्रजा तत् आरोहतु) उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली होकर उसपर चढे ॥ २२ ॥

(बल्वजं उपस्तृणीहि) पहिले चटाई फैलाओ, फिर (अधि चर्मणि रोहिते) मृगचर्मके ऊपर (तत्र सुप्रजा उपविश्य) सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली यह स्त्री बैठकर (इमं अग्निं सपर्यतु) इस अग्निकी उपासना करे ॥ २३ ॥

भावार्थ— स्त्री पतिगृहमें आकर देवर और पतिका हित करे, पशुओंका पालन उत्तम रीतिसे करे, धर्मनियमोंके अनुसार चले, तेजस्विनी बने, अपनी संतानोंको वीरताकी शिक्षा दे और अग्निकी हवनद्वारा उपासना करे ॥ १८ ॥

गृहस्थीके घरमें दरिद्रता न रहे । गृहस्थ अपने प्रयत्नसे दारिद्र्य दूर करे । जो घर पुरुषार्थसे शून्य होता है, उसमें दारिद्र्य रहता है । अतः प्रयत्नद्वारा दरिद्रताको दूर करना चाहिए ॥ १९ ॥

स्त्री पतिघरमें प्रतिदिन सबसे पहिले गार्हपत्याग्निकी हवनद्वारा उपासना करे, पश्चात् विद्यादेवीकी और पश्चात् पितरोंकी पूजा करे ॥ २० ॥

पति अपनी स्त्रीके लिये हरएक प्रकारसे सुख देवे, और उसकी उत्तम रक्षा करे । यह स्त्री उत्तम अन्न सेवन करके उत्तम संतान उत्पन्न करे और ऐसा आचरण करे कि ईश्वरका आशीर्वाद इसे प्राप्त हो ॥ २१ ॥

पहिले घासकी चटाई बिछाई जावे, उसपर कृष्णाजिन बिछाया जावे । जो पतिको प्राप्त करती है, वह सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली स्त्री इस बिछोनेपर चढे ॥ २२ ॥

पहिले चटाई फैलाओ, उसपर चर्म बिछा दो, वहां उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली स्त्री बैठकर अग्निकी उपासना करे ॥ २३ ॥

आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्यें अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत्पुत्रस्त एषः ॥ २४ ॥
वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः । स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान्विशेमान् ॥ २६ ॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः । स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥

अर्थ— (चर्म आरोह) इस चर्मपर चढ, (अग्निं उप आसीद) अग्निके समीप बैठ। (एषः देवः सर्वाः रक्षांसि हन्ति) यह देव सब राक्षसोंका नाश करता है। (इह अस्मै पत्ये प्रजां जनय) यहां इस पतिके लिये संतान उत्पन्न कर। (ते एषः पुत्रः सुज्यैष्ठ्यः भवत्) तेरा यह पुत्र उत्तम श्रेष्ठ बने ॥ २४ ॥

(अस्याः मातुः उपस्थात्) इस माताके पास (जायमानाः नानारूपाः पशवः वि तिष्ठन्तां) उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके पशु हों। (सुमंगली संपत्नी इमं अग्निं उपसीद) उत्तम मंगल कामनावाली और उत्तम पतिके साथ रहनेवाली यह स्त्री इस अग्निकी उपासना करे और (इह देवान् प्रतिभूष) यहां देवोंकी सेवा करे और शोभा बढावे ॥ २५ ॥

हे वधू! (सुमंगली) उत्तम मंगल आभूषण धारण करनेवाली (गृहाणां प्रतरणी) घरोंको दुःखसे दूर करनेवाली (पत्ये सुशेवा) पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली (श्वशुराय शंभूः) श्वशुरको सुख देनेवाली, (श्वश्र्वै स्योना) सासको आनंद देनेवाली तू (इमान् गृहान् प्रविश) इन घरोंमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

हे वधू! तू (श्वशुरेभ्यः स्योना भव) श्वशुरोंके लिये सुख देनेवाली हो, (पत्ये गृहेभ्यः स्योना) पति और घरके लिये हितकारिणी हो, (अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना) इस सब प्रजासमूहको सुखदायिनी हो और इस प्रकार (स्योना एषां पुष्टाय भव) सुखदायक होकर इन सबकी पुष्टिके लिये हो ॥ २७ ॥

(इयं सुमंगली वधूः) यह मङ्गलयुक्त वधू है। (सं एत, इमां पश्यत) इकट्ठे होओ और इसको देखो। (अस्यै सौभाग्यं दत्त्वा) इसको सौभाग्यका आशीर्वाद देकर (दौर्भाग्यै वि परेतन) दुष्ट भाग्यको दूर करते हुए वापस जाओ ॥ २८ ॥

भावार्थ— उस चर्मपर चढ, अग्निकी पूजा कर। यह अग्निदेव सब दुष्ट राक्षसोंका नाश करता है। इस संसारमें अपने पतिके लिये संतान उत्पन्न कर। यह तेरा पहिला पुत्र उत्तम श्रेष्ठ बने ॥ २४ ॥

जब यह स्त्री माता होगी, तब उसके साथ विविध रंगरूपवाले गौ आदि पशु रहेगें। यह स्त्री उत्तम मंगल धारणाकी कामना करके अग्निकी उपासना करे और देवोंको सुभूषित करे ॥ २५ ॥

उत्तम मंगल कामनावाली, गृहवालोंको दुःखसे छुडानेवाली, पतिकी सेवा करनेवाली, श्वशुरको सुख देनेवाली, सासका हित करनेवाली स्त्री अपने घरमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

यह स्त्री श्वशुरोंका हित करे, पतिको सुख दे, सब घरवालोंका हित करे और सबको पुष्ट रखे ॥ २७ ॥

सब भाईबंधु इकट्ठे होकर यहां आवें और इस वधूका दर्शन करें। यह वधू बहुत कल्याण करनेवाली है। अतः वे इस वधूको शुभाशीर्वाद देकर, इसके जो दुष्ट भाग्य हैं, उनको दूर करके वापस अपने घर जावें ॥ २८ ॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि । वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥
रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् । आरोहत्सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥
आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥
देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥

अर्थ— (या दुर्हार्दः युवतयः) जो दुष्ट हृदयवाली स्त्रियां हैं और (याः च इह जरतीः अपि) जो यहां वृद्ध स्त्रियां हैं, ये (अस्यै नु वर्चः सं दत्त) इसको निश्चयपूर्वक तेज देवें, (अथ अस्तं विपरेतन) और अपने घरको वापस जावें ॥ २९ ॥

(रुक्मप्रस्तरणं) सोनेके बिछोनेसे युक्त (विश्वा रूपाणि बिभ्रतं) अनेक सुंदर सजावटोंको धारण करनेवाले (कं वह्यं) सुखदायक रथपर (सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय आरोहत्) सूर्या सावित्री बडे सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये चढी ॥ ३० ॥

(सुमनस्यमाना तल्पं आरोह) मनमें उत्तम भाव धारण करती हुई स्त्री बिस्तरेपर चढे। (इह अस्यै पत्यै प्रजां जनय) यहां इस पतिके लिये संतान उत्पन्न कर । (इन्द्राणी इव सुबुधा) इन्द्राणीके समान उत्तम ज्ञानवाली होकर (ज्योतिः अग्राः उषसः बुध्यमाना) सूर्यकी ज्योतिके पहले आनेवाली उषाओंके पूर्व ही (प्रति जागरासि) निद्रा छोडकर उठ ॥ ३१ ॥

(अग्रे देवाः पत्नीः नि अपद्यन्त) पूर्व समयमें देव लोग अपनी स्त्रियोंके साथ सोते थे । (तन्वः तनूभिः सं अस्पृशन्त) अपने शरीरोंसे स्त्रियोंके शरीरको स्पर्श करते थे। उसी प्रकार हे (नारि) स्त्री ! तू (इह) इस संसारमें (सूर्या इव) सूर्यप्रभाके समान (महित्वा विश्वरूपा) महत्वसे अनेक रूपवाली होकर (प्रजावती पत्या संभव) प्रजायुक्त होकर पतिके साथ संतान उत्पन्न कर ॥ ३२ ॥

हे (विश्वावसो) सब धनसे युक्त वर ! (इतः उत्तिष्ठ) यहांसे उठ, (त्वा नमसा ईडामहे) तेरी नमस्कारोंसे पूजा करते हैं । (पितृषदं न्यक्तां जामिं इच्छ) पिताके घरमें रहनेवाली सुशोभित वधूको तू प्राप्त करनेकी इच्छा कर । (सः ते भागः) वह तेरा भाग है । (तस्य जनुषा विद्धि) उसका जन्मसे ज्ञान प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

भावार्थ— जो दुष्ट हृदयवाली और बूढी स्त्रियां हैं, वे भी सब स्त्रियां इस वधूको अपना तेज अर्पण कर अपने घरको जावें ॥ २९ ॥

जिसपर सोनेके कलाबत्तूके कामवाले गद्दे लगे हुए हैं और विविध हुनरोंसे जिसकी शोभा बढाई गई है, ऐसे सुन्दर रथपर यह वधू चढे और पतिके घर प्राप्त होकर बडा सौभाग्य प्राप्त करे ॥ ३० ॥

यह स्त्री मनके उत्तम भाव धारण करती हुई बिस्तरेपर चढे, और पतिके लिये उत्तम संतान निर्माण करे । उत्तम ज्ञान संपादन करके उषःकालके पूर्व जागकर निद्रासे निवृत्त होकर उठे ॥ ३१ ॥

पूर्व समयमें देव भी अपनी धर्मपत्नियोंके संग सोते रहे, अपने शरीरसे स्त्रीके शरीरका आलिंगन करते रहे। उसी प्रकार यह स्त्री भी अनेक प्रकार अपने रूपकी सजावट करती हुई, उत्तम प्रजानिर्माण करनेकी इच्छासे पतिके साथ मिलकर रहे ॥ ३२ ॥

हे धनवाले पुरुष ! वहांसे उठकर यहां आ, हम आपका स्वागत करते हैं । यह वधू इस समयतक पिताके घर रहती थी, आप इस वधूको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, तो यह आपका भाग हो सकता है । इस आपके भागके— इस स्त्रीके— जन्मसे अबतकका सब वृत्तान्त आप चाहे तो जान सकते हैं ॥ ३३ ॥

*

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥
नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥
राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्सः देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥
सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥

अर्थ— (हविर्धानं अन्तरा सूर्यं च) हविर्धान और सूर्यके मध्यमें (अप्सरसः सधमादं मदन्ति) अप्सराएं साथ साथ मिलकर आनन्दित होनेवाले कर्ममें आनन्दित होती हैं । (ताः ते जनित्रं) वह तेरा जन्मस्थान है । (ताः अभि परेहि) उनके पास जा । (गन्धर्व-ऋतुना ते नमः कृणोमि) गन्धर्वके ऋतुओंके साथ तुझे मैं नमन करता हूं ॥ ३४ ॥

(गन्धर्वस्य नमसे नमः) गंधर्वकी विनम्रताको हम नमस्कार करते हैं । उसकी (भामाय चक्षुषे च नमः कृण्मः) तेजस्वी आंखके लिये हम नमन करते हैं । हे (विश्वावसो) सब धनसे युक्त ! (ते ब्रह्मणा नमः) तुझे हम ज्ञानके साथ नमन करते हैं । (अप्सरसः जाया अभि परेहि) अप्सरा जैसी स्त्रियोंके साथ परे जा ॥ ३५ ॥

(वयं राया सुमनसः स्याम) हम धनके साथ उत्तम मनवाले हों (इतः गंधर्वं उत् आवीवृताम) यहांसे गंधर्वको घेरें, स्वीकार करें । (सः देवः परमं सधस्थं अगन्) वह देव परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुआ है । (यत्र आयुः प्रतिरन्तः अगन्म) जहां आयुको दीर्घ बनाते हुए हम पहुंचते हैं ॥ ३६ ॥

हे (पितरौ) मातापिताओ ! (ऋत्विये संसृजेथां) ऋतुकालमें संयुक्त होवो ! (रेतसः माता च पिता च भवाथः) वीर्यके योगसेही तुम माता और पिता बनोगे । (मर्यः इव एनां योषां अधिरोहय) मर्दके समान इस स्त्रीके साथ बिस्तरेपर चढ । (इह प्रजां कृण्वाथां) यहां संतान उत्पन्न करो और (रयिं पुष्यतं) धनको पुष्ट करो अर्थात् बढाओ ॥ ३७ ॥

भावार्थ— इस यज्ञस्थानभूमि और सूर्यके बीच अन्तरिक्षमें अप्सराएं (सूर्य प्रभाएं) एक घरमें आनन्दसे रहकर बहुत आनन्द प्राप्त करती हैं । इस प्रकार गृहस्थ अपने घरमें आनन्दसे रहे । स्त्रियां ही सबकी उत्पत्तिका स्थान है, अतः उनके साथ पुरुष रहे और ऋतुके अनुसार आदरपूर्वक ऋतुगामी होवे ॥ ३४ ॥

दूसरेके नमस्कार करनेपर उसको नमन करना उचित है, उसकी तेजस्वी आंखके साथ अपनी आंख मिलाकर नमन करना उचित है । इस तरह परस्परको जानकर नमस्कार किया जावे । और युवती स्त्रीके साथ पुरुष दूर जाकर एकान्त करे ॥ ३५ ॥

मनुष्यको जैसे जैसे धन मिले, वैसे वैसे वह मनके शुभ संस्कारोंसे युक्त बने । और वह ईश्वरको माननेवाला हो । वह ईश्वर परम उच्च स्थानपर विराजमान है, जहां हम आयुको दीर्घ करते हुए पहुंच सकते हैं ॥ ३६ ॥

हे स्त्री पुरुषो ! तुम अपने रजवीर्यके बलसे ही मातापिता बन सकते हो, अर्थात् सन्तान उत्पन्न कर सकते हो । अतः ऋतुकालमें संयुक्त होवो । मर्दके समान स्त्रीसे युक्त होवो, सन्तान उत्पन्न करो और धन भी प्राप्त करो और बढाओ ॥ ३७ ॥

तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्याऽ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥ ३९ ॥

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद्रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२ ॥

अर्थ— हे (पूषन्) पूषा ! (यस्यां मनुष्याः बजिं वपन्ति) जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं। (तां शिवतमां एरयस्व) उस कल्याणमयी स्त्रीको प्राप्त कर। (या उशती नः ऊरू विश्रयाति) जो इच्छा करती हुई हमारे लिये अपना शरीर देती है। (यस्यां उशन्तः शेपः प्रहरेम) जिसकी कामना करनेवाले हम विषय-सेवन करें ॥ ३८ ॥

(उरुं आरोह) ऊपरकी ओर चढ, (हस्तं उप धत्स्व) हाथ लगा। (सुमनस्यमानः जायां परि ष्वजस्व) उत्तम मनसे युक्त होकर स्त्रीको आलिङ्गन कर। (इह मोदमानौ प्रजां कृण्वाथां) यहां आनंद भोगते हुए प्रजाको उत्पन्न करो। (सविता वां प्रजां दीर्घं आयुः कृणोतु) सविता आप दोनोंकी दीर्घ आयु करे ॥ ३९ ॥

(प्रजापतिः वां प्रजां जनयतु) प्रजापति ईश्वर तुम दोनोंकी संतान उत्पन्न करे। (अर्यमा अहोरात्राभ्यां समनक्तु) अर्यमा तुम दोनोंको दिनरात संयुक्त करे। (अ-दुर्मंगली इमं पतिलोकं आविश) अशुभभावको न धारण करनेवाली तू स्त्री इस पतिस्थानको प्राप्त कर। तू (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे द्विपाद और चतुष्पादके लिये सुखदायी हो ॥ ४० ॥

(देवैः दत्तं) देवोंद्वारा दिया हुआ (मनुना साकं) मनुके साथ प्राप्त हुआ (एतत् वाधूयं वासः) यह विवाहके समयका वस्त्र (वध्वः च वस्त्रं) और वधूका वस्त्र है, यह (यः चिकितुषे ब्रह्मणे ददाति) जो ज्ञानी ब्राह्मणको दान करता है। (स इत् तल्पानि रक्षांसि हन्ति) वह निश्चयसे बिस्तरपर रहनेवाले राक्षसोंका नाश करता है ॥ ४१ ॥

हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! और (साकं इन्द्रः च) साथ रहनेवाले इन्द्र ! तुम दोनों (वधूयोः वाधूयं वासः) वधूका विवाहके समयका वस्त्र और (वध्वः च वस्त्रं) जो वधूका वस्त्र है (यं ब्रह्मभागं मे दत्तः) उस ब्राह्मणके भागको तुम दोनों मुझको देते हो। (युवं ब्रह्मणे अनुमन्यमानौ ब्रह्मणे दत्तं) तुम दोनों ब्राह्मणको प्रदान करनेकी संमति देनेवाले ब्राह्मणको उक्त वस्त्र प्रदान करते हो ॥ ४२ ॥

भावार्थ— शुभ संस्कारोंसे युक्त वधूको पुरुष प्राप्त करे। मनुष्य उत्तम स्त्रीमें ही बीज बोते हैं। पुरुषप्राप्तिकी इच्छासे स्त्री अपना शरीर पुरुषको समर्पण करती है, जिसमें पुरुष वीर्याधान करे ॥ ३८ ॥

पुरुष स्त्रीके साथ प्रेमसे मिले, उसका आदरके साथ आलिंगन करे, दोनों स्त्रीपुरुष आनन्दसे रममाण होवें और सन्तान उत्पन्न करें। इन स्त्रीपुरुषोंकी आयु सविता अति दीर्घ बनावे ॥ ३९ ॥

प्रजापालक ईश्वर इन स्त्रीपुरुषोंमें संतान उत्पन्न करे। वही दिन रात इनको प्रेमके साथ इकट्ठे रखे। वधूके कोई दुर्गुण न हो और उत्तम शुभगुणवाली स्त्रीही पतिको प्राप्त करे। इस स्त्रीसे घरके सब द्विपाद चतुष्पादका कल्याण हो ॥ ४० ॥

वधूके पहननेके लिये लाया गया वस्त्र विद्वान् ब्राह्मणको दान देनेसे शयनस्थानमें उत्पन्न होनेवाले कुसंस्कार दूर हो सकते हैं ॥ ४१ ॥

वधूके पहननेके लिये लाया गया वस्त्र ब्राह्मणका भाग है। वह अनुमतिपूर्वक ब्राह्मणको दिया जावे ॥ ४२ ॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ ४३ ॥
नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात्पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥
शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते । आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ ४७ ॥

अर्थ— (हसामुदौ महसा मोदमानौ) हास्यविनोद करनेवाले, महत्त्वके विचारसे आनंदित होनेवाले (स्योनात् योनेः अधि बुध्यमानौ) सुखदायक शयनमंदिरसे जागकर उठनेवाले, (सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ) उत्तम इंद्रियों और गौओंसे युक्त, उत्तम बाल बच्चोंवाले, उत्तम घरवाले (जीवौ) दो जीवों अर्थात् स्त्री और पुरुषो ! तुम दोनों (विभातीः उषसः तराथः) प्रकाशमय उषःकालवाले दीर्घ आयुष्यके दिनोंको सुखके साथ तैर जाओ ॥ ४३ ॥

मैं (नवं वसानः सुरभिः सुवासाः जीवः) नवीन वस्त्र पहनता हुआ सुगंध धारण करके उत्तम वस्त्र पहननेवाला जीवधारी मनुष्य (विभातीः उषसः उदागां) तेजस्वी उषःकालोंमें उठता हूं। (अण्डात् पतत्री इव) अण्डसे निकलनेवाले पक्षीके समान मैं (विश्वस्मात् एनसः परि अमुक्षि) सब पापसे मुक्त होऊं ॥ ४४ ॥

(द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते शुम्भनी) द्यौ और पृथिवी ये दोनों लोक समीपसे सुख देनेवाले, बडे नियम पालन करनेवाले, और शोभावाले हैं। ((देवीः सप्त आपः सुस्रुवुः) दिव्य सातों जलप्रवाह चल पडे हैं। (ताः अंहसः नः मुञ्चन्तु) वे जलप्रवाह पापसे हम सबका बचाव करें ॥ ४५ ॥

(सूर्यायै देवेभ्यः मित्राय वरुणाय च) उषा, अग्नि आदि देव, सूर्य, वरुण तथा (ये भूतस्य प्रचेतसः) जो भूतोंके ज्ञानदाता देव हैं (तेभ्यः इदं नमः अकरं) उनके लिये यह नमस्कार मैं करता हूं ॥ ४६ ॥

(यः ऋते अभिश्रिषः) जो चिपकनेके विना तथा (चित् जत्रुभ्यः आतृदः) गर्दनकी हड्डीमें सुराख करनेके विना (संधिं संधाता) जोडको जोडनेवाला और (विह्रुतं पुनः निष्कर्ता) फटे हुएको पुनः ठीक करनेवाला और (पुरूवसुः मघवा) उत्तम पर्याप्त धन देनेवाला बलवान् ईश्वर है ॥ ४७ ॥

भावार्थ— स्त्रीपुरुष हास्यविनोद करते हुए, आनंद मनाते हुए, सुखदायक शयनमंदिरमें सोकर योग्य समयमें जागते हुए, उत्तम गौवोंसे युक्त, उत्तम पुत्रोंसे युक्त और उत्तम घरवाले होकर, दीर्घ आयुके सब दिन आनंदपूर्वक व्यतीत करें ॥४३॥

मैं उत्तम वस्त्र पहनकर, सुगंध धारण करता हुआ, शरीरको सुशोभित करके, ऐसे सदाचारसे रहूं कि जिससे सब प्रकारके पाप दूर हो जायें ॥ ४४ ॥

द्युलोक और पृथ्वी लोक सबको सुख देनेवाले हैं, वे अपने नियमसे चलते हैं। इनके मध्यमें सात प्रवाह बह रहे हैं। ये हम सबको पापसे बचावें ॥ ४५ ॥

सूर्य, अन्य देव, मित्र, वरुण आदि सबको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ४६ ॥

जो ईश्वर मानवी शरीरमें दो हड्डियोंको विना चिपकाये और विना सुराख किये जोडता है, वही सबको जोडनेवाला है। वह सब टूटे हुएकी मरम्मत करता है ॥ ४७ ॥

अपास्मत्तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्य१स्मिन्तां स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८ ॥
यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन्ता स्थाणावधि सादयामि । ॥ ४९ ॥
या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥ ५० ॥
ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥ ५१ ॥
उशती कन्यला इमाः पितृलोकात्पतिं यतीः । अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥

अर्थ— (यत् नीलं पिशंगं उत लोहितं तमः) जो नीला, पीला अथवा काले रंगका मैलापन है, वह (अस्मत् अप उच्छतु) हम सबसे दूर होवे । (या निर्दहनी पृषातकी अस्मिन्) जो जलानेवाली दोषस्थिति इसमें है, (तां स्थाणौ अधि आ सजामि) उसको इस स्तंभमें लगा देता हूं ॥ ४८ ॥

(यावतीः कृत्याः उपवासने) जो हिंसाकृत्य उपवस्त्रमें हैं, (यावन्तः राज्ञः वरुणस्य पाशाः) जितने राजा वरुणके पाश हैं, (याः व्यृद्धयः याः असमृद्धयः) जो दरिद्रताएं और दुरवस्थाएं हैं, (ताः अस्मिन् स्थाणौ अधि सादयामि) उन सबको मैं इस स्तम्भमें स्थापित करता हूं ॥ ४९ ॥

(याः मे प्रियतमा तनूः) जो मेरा अत्यंत प्रिय शरीर है, (सा मे वाससः बिभाय) वह मेरे वस्त्रसे डरता है। इसलिये हे (वनस्पते) वृक्ष ! (अग्रे त्वं तस्य नीविं कृणुष्व) पहिले तू उसकी ग्रंथी बना, जिससे (वयं मा रिषाम) हम दुखी न हों ॥ ५० ॥

(ये अन्ताः यावतीः सिचः) जो झालरें हैं और किनारियां हैं, (ये ओतवः ये च तन्तवः) जो बाने हैं और जो धागे हैं, (यत् वासः पत्नीभिः उतं) जो वस्त्र स्त्रियोंने बुना है, (तत् वः स्योनं उपस्पृशात्) वह हमारे शरीरको सुख देनेवाला बने ॥ ५१ ॥

(उशतीः इमाः कन्यलाः) पतिकी इच्छा करनेवाली ये कन्याएं (पितृलोकात् पतिं यंतीः) पिताके घरसे पतिके घर जाती हुई (दीक्षां असृक्षत, सु-आहा) दीक्षाव्रतको धारण करें, यह उत्तम उपदेश है ॥ ५२ ॥

भावार्थ— जो सब प्रकारका हमारा अज्ञान है वह हम सबसे पूरी तरह दूर हो जावे । जो हृदयको जलानेवाली दोषस्थिति है, वह भी हम सबसे दूर हो ॥ ४८ ॥

जो कुछ हिंसा और घातपातके कृत्य हैं, जो दरिद्रताएं और दुष्ट स्थितियाँ हैं, वे सबकी सब हमसे दूर हों ॥ ४९ ॥

मेरा शरीर सुडौल और हृष्टपुष्ट है । वस्त्रधारणसे उसकी शोभा घटती है, तथापि जोडकर हम वस्त्र धारण करते हैं, जिससे हमें कोई कष्ट न हो ॥ ५० ॥

जो हमारे स्त्री वर्गने उत्तम वस्त्र बुना है, जिसमें सुंदर किनारियां और झालरें लगी हुई हैं, वह वस्त्र हमें सुख देने-वाला हो ॥ ५१ ॥

ये कन्यायें उपवर होनेके कारण पतिकी कामना करती हैं और पतिके पास पहुंचती हैं । अर्थात् गृहस्थधर्मकी दीक्षाएं स्वीकार करती हैं ॥ ५२ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । वर्चो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । तेजो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । यशो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । पयो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥

यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥

यत्ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥

अर्थ— (बृहस्पतिना अवसृष्टां) बृहस्पतिके द्वारा रची हुई इस दीक्षाको (विश्वे देवाः अधारयन्) सब देवोंने धारण किया। (यत् वर्चः गोषु प्रविष्टं) जो बल गौवोंमें प्रविष्ट हुआ है, (तेन इमां सं सृजामसि) उससे इसको संयुक्त करते हैं ॥ ५३ ॥

बृहस्पति द्वारा रची हुई इस दीक्षाको सब देवोंने धारण किया। जो (तेजः ... भगः ... यशः ... पयः ... रसः) तेज, भाग्य, यश, दूध और रस गौवोंमें प्रविष्ट हैं, उससे इसको संयुक्त करते हैं ॥ ५४–५८ ॥

(यदि इमे केशिनो जनाः) यदि ये लंबे बालवाले लोग (ते गृहे समनर्तिषुः) तेरे घरमें नाचते रहे और (रोदेन अघं कृण्वन्तः) रोनेसे पाप करते रहे० ॥ (यदि इयं दुहिता) यदि यह पुत्री (विकेशी तव गृहे अरुदत्) बालोंको खोलकर तेरे घरमें रोती रही और (रोदेन अघं कृण्वती) रो रोकर पाप करती रही० ॥ (यत् जामयः यत् युवतयः) जो बहिनें और स्त्रियां तेरे घरमें रोती रहीं और रोकर पाप करती रहीं० ॥ (यत् ते प्रजायां पशुषु यत् वा गृहेषु निष्ठितं) जो तेरी प्रजामें, पशुओंमें और जो तेरे घरमें (अघकृद्भिः अघं कृतं) पापियोंने पाप किया है, (अग्निः सविता च) अग्नि और सविता (तस्मात् एनसः त्वा प्रमुञ्चतां) उस पापसे तुझे बचावें ॥ ५९–६२ ॥

भावार्थ— यह गृहस्थाश्रमकी दीक्षा बृहस्पतिने शुरू की है। जो बल, तेज, भाग्य, यश, दूध और रस गौओंमें है, वह सब इस गृहस्थाश्रममें रहनेवालोंको प्राप्त हो ॥ ५३–५८ ॥

जो बालोंवाले लोग, जो कुमारिकाएं, जो स्त्रियां रोते पीटते पाप करती हैं, जो बाल खोलकर चिल्लाती हैं, इस प्रकारका जो पाप घरों, संतानों और पशुओंके संबंधमें हो रहा है, वह सब पाप दूर होवे ॥ ५९–६२ ॥

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका । दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥
यदासन्द्यामुपधाने यद्वोपवासने कृतम् । विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
यद्दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् । तत्संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् । अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥
कृत्रिमः कण्टकः शतदन्य एषः । अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥
अङ्गादङ्गाद्वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत्पृथिवीं मोत देवान्दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत्पितॄंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥

अर्थ— (इयं नारी पूल्यानि आवपन्तिका) यह स्त्री फूले हुए धान्यकी आहुति देती हुई (उप ब्रूते) कहती है कि (मे पतिः दीर्घायुः अस्तु) मेरा पति दीर्घायु होवे और वह (शरदः शतं जीवाति) सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥

हे इन्द्र ! (चक्रवाका इव) चक्रवाक पक्षीके जोडेके समान (इमौ दम्पती इह सं नुद) इन पतिपत्नियोंको इस संसारमें प्रेरित कर। (एनौ सु-अस्तकौ प्रजया) ये दोनों उत्तम घरवाले होकर संतानके साथ (विश्वं आयुः व्यश्नुतां) सब आयुका उपभोग लें ॥ ६४ ॥

(यत् आसंद्यां) जो पाप बैठकपर, कुर्सीपर, (यत् उपधाने) जो बिस्तरेपर, सिरहानेपर, और (यत् वा उपवासने कृतं) उपवस्त्रपर किया था, तथा (विवाहे यां कृत्यां चक्रुः) विवाहमें जिस हिंसक प्रयोगको किया था, (तां आस्नाने नि दध्मसि) उसको हम स्नानमें धो डालते हैं ॥ ६५ ॥

(यत् विवाहे यत् च वहतौ) जो विवाहमें और जो बरातके रथमें (दुष्कृतं यत् शमलं) जो दुष्ट कृत्य और मलिन कर्म किया (तत् दुरितं संभलस्य कम्बले मृज्महे) वह पाप हम संभलके कंबलमें धो देते हैं ॥ ६६ ॥

(संभले मलं सादयित्वा) संभलमें मल डालकर, और (दुरितं कंबले) पापको कंबलमें रखकर, (वयं यज्ञियाः शुद्धाः अभूम) हम यज्ञ करनेयोग्य शुद्ध हों। वह (नः आयूंषि प्र तारिषत्) हमारी आयुओंको दीर्घ बनावे ॥ ६७ ॥

(यः एषः शतदन् कृत्रिमः कंटकः) जो यह सैकडों दांतवाला कृत्रिम कंघा है वह (अस्याः शीर्षण्यं केश्यं मलं अप अप लिखात्) इसके मस्तकके मलको दूर करे ॥ ६८ ॥

(वयं अस्याः अंगात् अंगात् यक्ष्मं) हम इसके प्रत्येक अंगसे रोगको (अप निदध्मसि) दूर करते हैं (तत् पृथिवीं मा प्रापत्) वह रोग पृथ्वीको न प्राप्त हो, (उत देवान् मा) और देवोंको भी न प्राप्त हो, (दिवं उरु अन्तरिक्षं मा प्रापत्) द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकको भी न प्राप्त हो । हे अग्ने ! (एतत् मलं अपः मा प्रापत्) यह मल जलको प्राप्त न हो, (यमं सर्वान् पितॄन् च मा प्रापत्) यमके और सब पितरोंको न प्राप्त हो ॥ ६९ ॥

भावार्थ— यह नारी धानका हवन करती हुई ईश्वरसे प्रार्थना करती है कि मेरा पति दीर्घायु बनकर सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥

हे प्रभो ! पतिपत्नी मिलकर सदा एक विचारसे रहें। चक्रवाकपक्षीके जोडेके समान आनंदसे रहें। उत्तम घरबार बनाकर और उत्तम संतान निर्माण कर संपूर्ण आयु आनंदसे व्यतीत करें ॥ ६४ ॥

बैठक, सिरहाना, बिस्तरा, वस्त्र तथा विवाहके विषयमें जो कुछ पाप या घातक दोष होते हों, वे सबके सब आत्मशुद्धिसे दूर किये जावें ॥ ६५ ॥

विवाहमें और बरातमें जो कुछ पाप या दोष होता है, वह भी विचारके साथ दूर किया जावे ॥ ६६ ॥

अपने मल और दोष दूरकर हम सब पूज्य पवित्र और दोषरहित तथा दीर्घायु बनें ॥ ६७ ॥

कंघा लेकर स्त्रीके मस्तकका मल दूर किया जावे और वहांकी स्वच्छता की जावे ॥ ६८ ॥

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० ॥
अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥
जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥
ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् । ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ७३ ॥
येदं पूर्वागन्रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥ ७४ ॥

अर्थ— (त्वा पृथिव्याः पयसा संनह्यामि) तुझे पृथ्वीके पोषक पदार्थसे मैं युक्त करता हूं । (त्वा औषधीनां पयसा संनह्यामि) तुझे औषधियोंके पौष्टिक सत्त्वसे युक्त करता हूं । (त्वा प्रजया धनेन संनह्यामि) तुझे प्रजा और धनसे युक्त करता हूं । (सा संनद्धा इमं वाजं सनुहि) वह तू स्त्री उक्त गुणोंसे युक्त होकर इस बलको प्राप्त कर ॥७०॥

(अहं अमः अस्मि) मैं प्राण हूं और (सा त्वं) शक्ति तू हैं । (साम अहं ऋक् त्वं) साम मैं हूं और ऋचा तू है, (द्यौः अहं पृथिवी त्वं) द्युलोक मैं हूं और पृथ्वी तू है । (तौ इह संभवाव) वे हम दोनों इकट्ठे हों और (प्रजां आ जनयावहै) संतान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

(अग्रवः नौ जनियन्ति) हमारे मातापिता आदि वृद्ध मनुष्य हम दोनों (दम्पती) को पैदा करते हैं अर्थात् संयुक्त करते हैं, और बादमें हम (सुदानवः पुत्रियन्ति) दाता लोग पुत्रकी कामना करते हैं । (अरिष्टासू बृहते वाजसातये सचेवहि) प्राण रहनेतक हम दोनों बडे बलप्राप्तिके लिये साथ साथ मिलकर रहें ॥ ७२ ॥

(ये वधूदर्शाः पितरः) जो वधूको देखनेकी इच्छा करनेवाले बडे लोग (इमं वहतुं आगमन्) इस रथको देखने आये हैं, (ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै) वे इस वधू अर्थात् उत्तम पत्नीके लिये (प्रजावत् शर्म यच्छन्तु) प्रजा-युक्त सुख प्रदान करें ॥ ७३ ॥

(या रशनायमाना पूर्वा इदं आ अगन्) जो रशनाके समान अच्छे संबंधसे युक्त पहिली स्त्री इस स्थानपर प्राप्त हुई, वह (अस्यै प्रजां द्रविणं च इह दत्त्वा) इसके लिये संतान और धन यहां देकर (तां अगतस्य पंथां अनु वहन्तु) उसको भविष्यकालके मार्गसे सुरक्षित ले जावें । (इयं विराट् सुप्रजा अति अजैषीत्) यह वधू तेजस्विनी और उत्तम प्रजावाली होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

भावार्थ— इसी प्रकार स्त्रीके शरीरका प्रत्येक भाग स्वच्छ किया जावे, यह मल पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश, जल, वनस्पति आदिके पास न जावे, अपितु ऐसे स्थानपर मल गाड दिया जावे कि जिससे यह फिर किसीको कष्ट न दे सके ॥६९॥

स्त्रीको पृथ्वी और औषधियोंके पौष्टिक रससे पुष्ट किया जावे । उसको धन दिया जावे ताकि उत्तम संतान उत्पन्न हो । स्त्री बलशालिनी होकर घरमें विराजे ॥ ७० ॥

पुरुष प्राण है और स्त्री रयि है, पुरुष सामगान है और स्त्री मंत्र है । पुरुष सूर्य है और स्त्री पृथ्वी है । ये दोनों मिलकर इस संसारमें रहें और उत्तम संतान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

अविवाहित स्त्री पुरुष अपने सहधर्माचरणके लिये योग्य पुरुष और योग्य स्त्रीकी अपेक्षा करते हैं जो उदार दाता होते हैं उनकी ही उत्तम संतानें होती हैं । ये मनुष्य उत्तम बलकी प्राप्तिका यत्न करें ॥ ७२ ॥

नव वधूको देखनेके लिये बरातके समय अनेक स्त्री पुरुष जमा होते हैं । वे सब नववधूको सुसंतान होनेका शुभ आशीर्वाद देवें ॥ ७३ ॥

जैसे डोरीमें अनेक धागे होते हैं, वैसे ही गृहस्थाश्रम मिलकर रहनेका आश्रम है । गृहस्थाश्रममें इकट्ठे हुए सब लोग स्त्रीको धन और सुसंतान प्राप्त होनेका शुभाशीर्वाद देकर उसको शुभ मार्गसे चलावें; इस तरह यह स्त्री तेजस्विनी, यश-स्विनी तथा सुसंतान युक्त होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५॥

अर्थ— हे वधू ! तू (सुबुधा बुध्यमाना) उत्तम ज्ञानयुक्त तथा जागृत रहकर (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय प्र बुध्यस्व) सौ वर्षके दीर्घ जीवनके लिये जागती रह । (गृहान् गच्छ) अपने पतिके घरको जा, (यथा गृहपत्नी असः) गृहस्वामिनी जैसी बनकर रह । (सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु) सविता तेरी आयु दीर्घ बनावे ॥ ७५ ॥

भावार्थ— स्त्री विदुषी होवे, सबेरे प्रातःकाल उठे, सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये ज्ञानप्राप्तिपूर्वक प्रयत्न करे । अपने पतिके घरमें रहे । अपने घरकी स्वामिनी बनकर विराजे । परमात्मा इसको दीर्घायु करे ॥ ७५ ॥

विवाह--प्रकरण

वैदिक विवाहका स्वरूप

प्रथम--सूक्त ।

अथर्ववेदके इस चतुर्दश काण्डमें वैदिक विवाहका स्वरूप और वैदिक विवाह–पद्धति दर्शायी है । प्रथम सूक्तके प्रारंभमें पांच मंत्र केवल सामान्य उपदेश देनेवाले हैं। इनमें सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी और सोम आदिका वर्णन है, परंतु इन मंत्रोंमें इन देवताओंका वर्णन करते हुए विवाहका तथा पतिपत्नीका आदर्श बताया है ।

द्यौः और भूमि ।

प्रथममंत्रमें भूमिको पत्नीके रूपमें और सूर्य अथवा द्युलोकको पतिके रूपमें बताया गया है । मानो सबकी माता पृथ्वी है और सबका पिता सूर्य है । यह सब संसार मानो पृथ्वी और सूर्यरूपी मातापिताकी संतानरूप है । एक ही परिवारके हम सब हैं । जितने भी संसारके मनुष्य या पशु-पक्षी हैं, ये सब एक ही परिवारके हैं । संपूर्ण मनुष्योंमें भाईभाईका नाता है । पतिका आदर्श सूर्य है या द्युलोक है। द्युलोक वह है जो खगोल है, सदा प्रकाशित है । वह सबको प्रकाश देता है । इसी प्रकार पति अपने परिवारको उत्तम ज्ञानका प्रकाश देवे और सब संतानोंको ज्ञानवान् करे । इसी तरह भूमि सबको आधार देती है, फल और अन्न देकर सबकी तृप्ति करती है । इसी तरह माता सब संतानोंको अपने प्रेमका आधार देवे और सबको खानपान द्वारा योग्य रीतिसे पुष्ट करे । इस तरह विचार करने पर तथा द्यावा-भूमिके आदर्शका मनन करनेसे स्त्री पुरुषके अथवा पतिपत्नीके आदर्श सबन्धी उपदेश इस मंत्रमें स्पष्ट रीतिसे ज्ञात हो सकते हैं ।

गृहस्थधर्मका आधार सत्य है, यह बात इस सूक्तके प्रारंभमें ही ‘ सत्य ’ शब्द द्वारा बतायी है । स्त्रीपुरुषका व्यवहार सत्यका ही होवे, उसमें असत्य, कपट, छल आदि कभी न आवें । इसीसे आदर्श गृहस्थधर्म हो सकता है । दूसरा बल ‘ ऋत ’ है। ऋतका अर्थ सरलता है । सत्य और ऋत ये दो ही उन्नतिके नियम हैं । सब धर्मनियमोंका यही सार है ।

सोम

द्वितीय मंत्रमें ‘ सोम ’ के महात्म्यका वर्णन किया है । यह सोम स्वर्गमें, पृथ्वीपर और नक्षत्रोंमें भी है । नक्षत्रोंमें जो सोम है वह चन्द्र ही है। यह सब नक्षत्रोंकी शोभा है, रात्रीके समय इसकी अवर्णनीय शोभा होती है । यह शान्तिका आदर्श है । मनुष्य इस शान्तिके आदर्शको सदा मनमें धारण करें और शान्त रहें, क्रौर्य अशांति आदि दुर्गुणोंको दूर रखें । सोम द्वारा यह आदर्श मंत्रने पतिके सामने रखा है ।

पृथ्वीपर भी ‘ सोम ’ है, यहां सोमका अर्थ ‘ वनस्पति तथा अन्न ’ है । यह पृथ्वीपर रहनेवाला सोम आकाशके सोमका प्रतिनिधि है । यह पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्यों और पशुपक्षियोंकी तृप्ति करता है । यद्यपि दोनोंका नाम सोम है, परंतु ये दोनों एक नहीं हैं । सोमके अनेक अर्थ हैं और सोम शब्द द्वारा अनेक पदार्थोंका बोध वेदमें होता है । अतः सर्वत्र सोम शब्दसे एक ही पदार्थका बोध लेना अयोग्य है ।

आगे तृतीय मंत्रके पूर्वार्धमें सोमरसका पान करनेका वर्णन है। यह सोमपान यज्ञमें होता है इसको सब जानते ही हैं। परंतु इसी मंत्रके उत्तरार्धमें विशेष अर्थमें सोमपानका उल्लेख है। वहां कहा है कि 'जो सोमपान ब्रह्मज्ञानी करते हैं, वह सोमपान कोई अन्य मनुष्य कर नहीं सकता।' यहांका सोमपान ब्रह्मानंदका पान है। जो ब्रह्मज्ञानी ही कर सकता है। यह भी सोम है। यही परमात्माका अखंड आनंदका रस है। परमात्माको एकरस कहते ही हैं। यही अन्तिम और अतिश्रेष्ठ सोमपान है। धर्म मनुष्यको इसी सोमपानके लिये योग्य बनाता है। साधारण मनुष्य इस सोमको नहीं पी सकता, क्योंकि विशेष उच्च अवस्था प्राप्त होनेपर ही यह सोम पीना संभव है।

परमात्माके अखंडानन्दरसरूप सोमके विचारके साथ साथ वनस्पतिके सोमतकको अनेक सोमविषयक कल्पनाएं वेदने यहां बतायीं हैं। इनके बीच सब प्रकारके सोम आ जाते हैं। इस प्रकार इस सोमपानका महात्म्य है। इसका वर्णन यहां करनेका उद्देश्य यह है कि गृहस्थी लोग अपने घरमें सोमपान करें। सर्वसाधारणतया सोमपानका अर्थ है औषधिरसका सेवन करना। यह सब गृहस्थी करें। गृहस्थियोंका यह अन्न है। वनस्पति, धान्य फल, शाक आदिका सेवन गृहस्थियोंके परिवारोंमें होता रहे। मांस, रक्त, अण्डे आदिका सेवन निषिद्ध है। पृथ्वी माता जिस सोमरससे सबकी पुष्टि कर रही है, वह यही वानस्पत्य सोम है।

इसके पश्चात् ऋषि, मुनि, साधु, संत आदि अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते हुए परमात्माके आनंदका रसपान करते हैं। यह भी सोमपान ही है। इनकी योग्यता सर्वसाधारण गृहस्थियोंके पास नहीं होती। गृहस्थाश्रमका धर्म इस योग्यताको मनुष्यमें उत्पन्न करता है। अर्थात् गृहस्थधर्मका पालन उत्तम रीतिसे कर चुकनेपर गृहस्थी वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश करता है, उस आश्रममें भी अपने धर्मोंका अच्छी तरह पालन करके वह इस सोमपानके योग्य होकर संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होता है। गृहस्थाश्रमसे आगे चलकर साध्य होनेवाली यह बात है, यह सूचित करनेके लिये और गृहस्थियोंपरकी जिम्मेवारी बतानेके उद्देश्यसे ये सब प्रकारके सोमपान यहां इन मंत्रोंमें बताये हैं।

बरातका रथ

आगे मंत्र ६ से १२ तक बरातके रथका वर्णन है। यह सब आलंकारिक वर्णन है। यह तो मनका ही काल्पनिक ('अनो मनस्मयं। मं. १२' तथा 'मनो अस्य अन आसीत्। मं. १०') रथ है। तथापि यह काल्पनिक रथका वर्णन इसलिये दिया है कि मनुष्य विवाहके समय ऐसे उत्तम रथ बनावें और बरात निकालें और वधूको पतिके घर बडे ठाटसे ले आवें। इस बरातके रथके विषयमें इन मंत्रोंका वर्णन देखने योग्य है।

जब (**सूर्या पतिं अयात्**) सूर्यकी पुत्री अपने पतिके घर गई, तब इस प्रकारके सुंदर रथपर वह बैठकर गई थी। इस समय (**उपबर्हणं। मं. ६**) उत्तम तकिया रथमें था, स्त्रियोंने अपनी आंखोंमें (**आञ्जनं**) काजल लगाया था, पर्याप्त (**कोशः**) धन साथमें ले लिया था। यह धन चाहे आभूषण हो या मुद्रारूपमें। परंतु यह इसमें अवश्य होना चाहिये। जब रथ चलने लगा तब सब लोगोंने (**अनुदेयी। मं. ७**) अनुकूल आशीर्वाद दिये, सब लोगोंने वधूकी प्रशंसा (**नाराशंसी**) की। इस तरह सब वायुमंडल अनुकूल बन गया था। उस मंडलीमें एक भी मनुष्य इनके प्रतिकूल न था। न कोई विरोध करनेवाला था। सब आनन्दप्रसन्न थे और सभी वधूवरका हित एकचित्तसे चाहते थे।

(**भद्रं वासः**) इस समय सूर्याका वस्त्र उत्तम था, बहुत ही सुंदर वस्त्र था। ऐसे सुंदर वस्त्रोंसे युक्त होकर सब स्त्रियां वधूके साथ थीं।

इस बरातमें आगे उत्तम गायक थे, वे सुंदर छंदोंमें और मधुर स्वरमें मंगल पद्य गाते हुए आगे चल रहे थे। सबसे आगे दो वैद्य चल रहे, उनके साथ अग्नि मार्गदर्शक था। इसके प्रकाशमें यह बरात चल रही थी।

जिस रथमें यह वधू बैठी थी, उस रथपर सुंदर छत थी, मंदिर जैसा उसका शिखर था, यह छत अंदरसे सुंदर आकाशके समान दिखाई देती (**द्यौ छदिः। मं. १०**) थी। दो श्वेत बैल (**शुक्रौ अनड्वाहौ**) इस रथमें जोडे गए थे। यह बरात सोमके घर चल रही थी। क्योंकि सोम ही इस सूर्याका पति था। सोमने ही इस सूर्याकी मंगनी की थी और सोमके साथ इस सूर्याका विवाह हुआ था।

जब सोमने मंगनी की थी, उस समय वहां दोनों अश्विनी कुमार देवोंके वैद्य थे। अर्थात् वैद्योंके सामने यह मंगनी हुई थी। इस मंगनीको सूर्याके पिताने स्वीकार किया था।

सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्॥ (मं. ९)

'सविताने मनसे पतिके विषयमें पूज्यभाव रखनेवाली अपनी पुत्री सूर्याका दान पतिके हाथमें किया था।' यह ब्राह्मविवाहका आदर्श वेदने मनुष्योंके सन्मुख रखा है। इसमें

वधूका पिता अपनी कन्याका दान करता है और इस दान विधिसे कन्या वरको प्राप्त होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गांधर्व विवाहका आदर्श वेदको मान्य नहीं है। वर अपने लिये वधूकी मंगनी करता है, वधूका पिता उस मंगनीको स्वीकार करता है, और सुमुहूर्तपर अपनी पुत्रीका दान करता है। इससे स्पष्ट है कि कन्यापर अधिकार पहिले पिताका होता है और इस कन्यादानविधिसे कन्यादानके पश्चात् इसपर पतिका अधिकार हो जाता है। स्त्री स्वतंत्र अर्थात् स्वेच्छाचारिणी न रहे। या तो वह पिताके अधिकारमें रहे अथवा पतिके आधीन रहे। इन दोनोंकी अनुपस्थितिमें वह ज्येष्ठ पुत्र, भाई या अन्य श्रेष्ठ पुरुषकी आज्ञामें रहे, परंतु स्वतंत्र न रहे। (अदात्) दान जो होता है वह स्वतंत्रका नहीं हुआ करता। पुरुषका दान कभी नहीं होता, क्योंकि वह स्वतंत्र है। कन्याकाही दान यहां लिखा है।

सूर्यां सविता पत्ये अदात्। (अथर्व. १४।१।६१)
मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्याय देवाः। (ऋ. १०।८५।३६; अथर्व. १४।१।५०)

इन दोनों स्थानोंपर अर्थात् ऋग्वेदमें और अथर्ववेदमें (अदात्, अदुः) कन्यादान ही लिखा है। अतः जो लोग समझते हैं कि वैदिक कालमें स्त्रियां स्वतंत्र थीं, यह उनकी भूल है।

न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।

यह स्मृतियोंका कथन वेद संमत है, जो लोग इस स्मृतिवचनका उपहास करते हैं, वे इस वेदवचनका अधिक मनन करें। स्त्रियां स्वतंत्र न रहें, बालपनमें मातापिताकी शिक्षामें रहें, विवाहित होनेपर पतिसे शिक्षा प्राप्त करें। वर कन्याकी याचना वधूके पितासे करे और पिता (मनसा अदात्) अपने मनसे संमति दे। तब विवाह हो। कन्या स्वयं पिताकी अनुमतिके बिना अपना स्वयंवर न करे, स्वयंवर करना भी हो, तो उसके लिये भी पिताकी संमति ले ले। वेदमें स्वयंवरके मंत्र किसी स्थानपर अबतक देखनेमें नहीं आये हैं। इससे प्रतीत होता है कि स्वयंवरकी प्रथा पीछेसे चली है, अस्तु।

इस तरह कन्यादानपूर्वक विवाह होनेके पश्चात् वधूके अपने पतिके घर जानेका समय आता है। उस समय सुंदर रथ तैयार किया जावे। उसमें गाडियां और तकिये हों, रथ सुंदर सजाया जावे। उत्तम बैल उसमें जोते जायें। उनमें घोडे भी जोडे जा सकते हैं। रथके चक्र भी (शुची) सुंदर स्वच्छ और सजावटसे युक्त हों। इस तरह सब प्रकारसे सुंदर और सजावटसे मनोरम बनाये गए उस सुखदायी रथपर आरूढ होकर वधू अपने पतिके घर जावे।

दहेज।

विवाह होनेके पूर्व वधूका पिता अपने दामादके लिये अपने सामर्थ्यके अनुसार (वहतुः) दहेज भेज दे। मंत्र १३ में (गावः) गौवोंको दहेजके रूपमें भेजनेका उल्लेख है। गौवें ही बडा धन है। अन्य धन इससे कम योग्यतावाला है। गौवोंके दूधसे घरके सब आबालवृद्धोंकी पुष्टि होती है, इसलिये वधूका पिता अपनी कन्याके पतिको उत्तम उत्तम गौवें देवे और ये गौवें विवाहके पूर्व पतिके घर पहुंचें। पश्चात् विवाह होवे और तत्पश्चात् वधू अपने पतिके घर जावे। मघा नक्षत्रके समय दहेज भेज दिया और चन्द्रमा जब फल्गुनी नक्षत्रमें आजाए तब विवाह हो। प्रायः यह कमसे कम पंद्रह दिनका समय है, दामादके घर गौवें पहुंचानेके पश्चात् विवाह हो, यह तात्पर्य है। जब यह वधू अपने पतिके घर चली जायगी, तब उसको अपनी ही परिचित गौवें मिलेंगी। और गौवोंको भी अपने परिचयकी स्वामिनी मिलनेसे परस्पर प्रेम रहेगा। इस तरह यह कन्यादानके पूर्व गौओंका दान वैदिक विवाहमें एक मुख्य बात है।

मंत्र १४ और १५ में कहा है कि वधूपक्षके दो मनुष्य (अश्विनौ) घोडोंपर सवार होकर वरपक्षके पास पहुंचते हैं। वरको वह दहेज समर्पित करते हैं। इस तरह इस परस्पर संमेलनको सब पारिवारिक लोग संमति और अनुमति देते हैं और सब जातिकी संमति उसमें रहती है। मंगनीके समय, विवाहके समय और बरातके समय सब पारिवारिक जन, सब जातिके सज्जन उपस्थित होते हैं। यह बात 'देवाः' पदसे सिद्ध होती है। सूर्यदेव और सोमदेवके पारिवारिक जन जातिके सज्जन (देवाः) देव हैं। इसी तरह मनुष्योंमें विवाह होनेके समय वधू और वर पक्षके पारिवारिक तथा जातिके लोग संमिलित होने चाहिये, यह बात उसी वर्णनसे स्वयंसिद्ध है। क्योंकि सूर्यने जैसा विवाह अपनी पुत्री सूर्याका सोमके साथ किया, वैसा ही मानवोंको अपनी पुत्रियोंका करना है। वस्तुतः सूर्यने जो अपनी पुत्री सूर्याका विवाह किया वह एक आलंकारिक बात है। वह वर्णन इसलिये वेदमें किया है कि इसको देखकर लोग अपने विवाह इस विधिके अनुसार करें। वेदका यह रूपक सूर्यका किरण चन्द्रमाको प्रकाशित करता है, इस मूल बातको लेकर रचा गया है। और विवाहके आवश्यक सिद्धांत इस आलंकारिक वर्णनमें उत्तम रीतिसे संग्रहीत किये गये हैं।

पुराना और नया संबंध ।

मंत्र १७ और १८ में वधूका संबंध पितृकुलसे और पति-कुलसे होनेका उत्तम वर्णन है—

इतः बंधनात् प्रमुञ्चामि, न अमुतः । (मं. १७)
इतः प्रमुंचामि न अमुतः, अमुतः सुबद्धां करम् । (मं. १८)

इन मंत्रोंमें स्पष्ट कहा है कि ' इस पुत्रीको हम पितृकुलमें छुडाते हैं, और पतिकुलके साथ ऐसा सुसंबद्ध करते हैं कि यह पतिकुलसे कभी न छूट सके। ' कन्याका पितृकुलसे छूटना तो आवश्यक ही है, परंतु प्रश्न यहां यह उत्पन्न होता है कि यह कन्या पतिकुलसे किसी प्रकार छूट सकती है, या नहीं ? इस प्रश्नके उत्तरमें वेदका यह कथन है कि कन्या पतिकुलसे अपना संबंध नहीं छोड सकती। किसी भी अवस्थामें उसका संबंध पतिकुलसे छूटना वैदिक धर्मकी दृष्टिसे असंभव है । उक्त मंत्रोंमें सुस्पष्ट रीतिसे कहा है कि (न अमुतः, अमुतः सुबद्धां करं) नहीं, पतिकुलसे तो उसको उत्तम पक्की रीतिसे बांधता हूं । इस सुबद्ध कर-नेका तात्पर्य यह है कि वह पतिकुलसे कभी विमुक्त न होवे। नियोगकी रीतिमें नियुक्त पुरुषके साथ संबंध होनेसे भी पति-कुलका संबंध सुदृढ रहता है और संतान तो पूर्व पतिकी ही होती है। परंतु पतिके जीवित रहते हुए स्त्रीका पुनर्विवाह तो सर्वथा असंभव है, क्योंकि पुनर्विवाहसे तो पतिकुलका संबंध छूट जाता है। इस कारण वैदिक धर्ममें पतिके जीवित रहते हुए स्त्रीका पुनर्विवाह संभव नहीं है । वैदिकधर्मी द्विजातियोंमें तो सर्वथा पुनर्विवाह असंभव है ।

आजकलका पतित्याग (तलाक) या पत्नीत्याग तो नितांत अवैदिक है। आजकल यूरोप, अमरीकाका अनुकरण करने-वाले कई थोडे भारतीय लोग विवाहित संबंध अदालतसे तोडनेके पक्षपाती दीखते हैं। परंतु यह रीति वैदिक धर्मके अनुकूल नहीं है। स्वयंवरकी प्रथामें भी पतिपरित्याग या पत्नीपरित्याग संमत नहीं है, फिर ब्राह्मविवाहके अनुसार तो कैसे संभव हो सकता है ? पूर्वोक्त मंत्रमें उपमा दी है कि जैसे कोई फल (उर्वारुकं बंधनात्) अपने वृक्षसे या बेलसे परिपक्व होनेपर बंधनसे छूटता है, वैसे यह कन्या पितृकुलके संबंधसे विवाहके समय मुक्त हो गयी है। इसका संबंध पतिकुलसे हुआ है और वह संबंध सुबद्ध अर्थात् दृढतर हो चुका है, वहांसे मुक्तता नहीं हो सकती ।

आगे १९ वें मंत्रमें कहा है कि यह कन्या वरुणके पाशसे पितृकुलसे सुसंबद्ध हुई थी। विवाहके समय ये पाश तोड दिये गये हैं। वरुणके पाश किसी अन्य कारणसे टूट नहीं सकते। पितृकुलसे संबंध तोडकर पतिके कुलसे नया संबंध जोड दिया है। यह संबंध जो पतिके कुलसे हो गया है, वह (सह-सं-भलायै) इस कुलकी देखभालके लिये है। पतिके कुलके परिवारके साथ इस स्त्रीकी देखभाल होती रहे। अर्थात् यह कन्या बाल्यमें पितृकुलसे पाशोंके साथ बांधी गई थी, वरुणदेवके पाशोंसे बांधी गई थी, और वरुणके पाश ऐसे होते हैं कि उन्हें तोडनेका सामर्थ्य किसीके अन्दर नहीं होता। वे वरुणके पाश विवाहविधिसे टूट जाते हैं, परंतु वही वधू पतिकुलसे ऐसी बांधी जाती है कि वहांसे आमरण वह अपना संबंध छोड नहीं सकती। इस पतिकुलमें रहती हुई—

ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनम् ॥ (मं. १९)

' सत्यके घरमें और पुण्यवानोंके स्थानमें जो सुख प्राप्त हो सकता है, वह इसको पतिके घर प्राप्त हो। ' अर्थात् यह पतिके घरमें रहती हुई सत्य मार्गसे चले और पुण्य कर्म करती हुई सुखको प्राप्त हो। यह स्त्रीका धर्म है। पतिके रहने-तक या पतिके मरनेके पश्चात् भी स्त्रीका यही धर्म है, इस धर्मसे वह पतित न हो, और इस धर्मका आचरण करती हुई वह सुखको प्राप्त करे। स्त्रीका स्वतंत्र आचार या स्वेच्छाचार सर्वदा गर्हित है। स्त्री न पितृघरमें स्वतंत्र है और न पतिके घरमें ही और न पतिके मरनेके पश्चात् ही वह स्वतंत्र हो सकती है।

बालकपनमें तो सविता देवने वरुणके पाशसे उसे पितृ-कुलसे बांध रखा था (मं. १९), विवाह होनेके समय वे पाश तो टूट गये, परंतु भगदेवतने उसका हाथ पकडकर बरातके रथतक चलाया, पश्चात् जब वह पतिके घर जानेके लिये रथमें बैठी, तब अश्विनीदेव उसके रक्षक बने (मं. २०), जबतक यह वधू पतिके घर नहीं पहुंचती, वहांतक अश्विनी देवोंकी रक्षामें वह रहती है। पश्चात्—

गृहान् गच्छ, गृहपत्नी यथाऽसो वशिनी त्वम् ॥ (मं. २०)

पतिके घर यह नव वधू पहुंचती है और वहां वशिनी होकर रहती है। वह स्वयं अपनी इंद्रियां वशमें रखती है, घरके परिवारको वशमें रखती है और स्वयं बडे लोगोंकी आज्ञामें रहती है। इस तरह यह पतिके घर पहुंचनेके पश्चात् बर्ताव

करती है। तत्पश्चात् यह पितृगृहमें वरुणके पाशोंसे बंधी रहती है। स्वतंत्र नहीं होती। इसके ऊपर प्रथम पिता और माता निगरानी रखते हैं, फिर देवताओंकी निगरानी रहती है, और अन्तमें पतिकी निगरानी होती है। नियमबद्ध परतंत्रतासें जितनी स्वतंत्रता हो सकती है, उतनी तो अवश्य है। विद्या, कला, संस्कृति आदिके विकासके लिये जितनी आवश्यक है, उतनी स्वतंत्रता होनी ही चाहिये, पर स्वेच्छा आहार विहारकी स्वतंत्रता वेदके लिए अभिमत नहीं है। वैदिक समयमें प्रत्येक कुमारी अपने मातापितासे आवश्यक शिक्षा पाती थी और पश्चात् पतिसे। स्वतंत्र रीतिसे कालेजोंमें रहना और कुमारोंके साथ मिलकर शिक्षा पाना, उत्तम शिक्षाका रूप नहीं है।

गृहस्थाश्रमका आदर्श

आगे मंत्र २१–२३ तक गृहस्थाश्रमका सुंदर वर्णन है। प्रत्येक गृहस्थी इस सुखका अधिकारी है। जो धर्मानुकूल रहे और गृहस्थी धर्मका पालन करे, वह इस सुखको प्राप्त कर सकता है।

(१) अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। (मं. २१)

इस पतिके घरमें अपने गृहस्थ–धर्मका जागते हुए पालन कर ' अपने गृहस्थ–धर्म पालनमें प्रमाद न कर, दक्षतासे अपने पतिके घरमें रह और अपना कर्तव्य कर।

(२) इह ते प्रजायै प्रियं समृद्ध्यताम्। (मं. २१)

' इस गृहस्थाश्रममें रहते हुए अपने संतानका प्रिय, शुभ और कल्याण करना तेरा मुख्य कर्तव्य है। ' सुसंतान निर्माण करना गृहस्थका धर्म है। गृहस्थधर्मका यह पुष्प और फल है, इसे सुयोग्य बनानेके लिये जो यत्न किया जाये, वह थोडा है। मातापिताके सब संस्कार अंशरूपसे संतानमें आते हैं, अतः मातापितापर यह जिम्मेवारी है कि वे अपनेपर कोई अशुभ संस्कार न होने दें। शरीरके रोग, बुरी आदतें और अन्य कुसंस्कार संतानोंमें अंशरूपसे उतरते हैं, अतः मातापिताओंको उचित है कि वे स्वयं परिशुद्ध रहें और शुभ संतान निर्माण करनेका यत्न करें। इस तरह प्रयत्न करनेपर संतानोंके लिये शुभसंस्कार ही मिलेंगे, और उनकी संतानें क्रमशः सुधरती और सुसंस्कारसंपन्न होती जायेंगी।

(३) एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्व। (मं. २१)

' हे वधू! इस पतिके साथ आनंदप्रसन्न होकर रह। ' वधू सब प्रकारके धर्मानुकूल उपभोग प्राप्त करे। सदा प्रसन्नतासे दिनचर्या व्यतीत करे। दुःखी रहनेसे वैसा चिडचिडापन भी संतानमें आ जायगा, इसलिये प्राप्त ऐश्वर्यके उपभोगसे चित्तकी प्रसन्नता रखे और अन्तःकरण सदा शुभवृत्तिमें ही रखे। इस संसारमें रहनेका यही मुख्य नियम है।

(४) अथ जिर्विः विदथं आ वदासि। (मं. २१)

' इस ढंगसे गृहस्थाश्रममें रहते हुए जब तारुण्य चला जाय, और वृद्ध अवस्था प्राप्त हो, अर्थात् बहुत अनुभव आ जाय, तब तू अपने अनुभव उपदेशद्वारा दूसरोंको बता। ' इससे पूर्व नहीं। इसके पूर्वका समय ज्ञानग्रहण करनेका है, उपदेश देनेका नहीं। उपदेश देनेका काम अनुभवी वृद्धोंका ही है। इस संसारमें पर्याप्त अनुभव आनेपर ही मनुष्य उपदेश करे। इसके पूर्व जो उपदेश करते हैं, उससे लाभकी अपेक्षा हानिकी अधिक संभावना हो सकती है।

(५) इहैव स्तं, मा वियौष्टं, विश्वमायुर्व्यश्नुतम् (मं. २२)

' पतिपत्नी इस गृहस्थाश्रममें रहें, उनमें वियोग न हो, पूर्ण आयुकी समाप्तितक वे दोनों एक विचारसे रहें। ' यह है विवाहित कुटुंबका आदर्श। विवाह होते ही वैवाहिक संबंधको तोडनेकी कुप्रथा, जो अनार्य देशोंमें चली आती है, वह वैदिक विवाहमें सर्वथा नहीं है। वेद चाहता है कि जो विवाह एक समय हुआ वह जीवनके अन्ततक स्थिर रहे, उनमें किसी तरह विरोध न खडा हो, झगडे होकर उनके वैवाहिक संबंध न टूटें।

(६) स्वस्तकौ मोदमानौ पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ। (मं. २२)

' पतिपत्नी उत्तम घरवाले हों, आनंदप्रसन्न हों और पुत्रोंके तथा नातियोंके साथ खेलते हुए सुखसे गृहस्थाश्रमका कर्तव्य करते रहें। गहस्थाश्रममें रहनेवाले दुःखी चिडचिडे न हों, मन आनन्दप्रसन्न रखकर सुखके साथ अपने कर्तव्य गृहस्थी लोग करते रहें।

(७) सूर्यचन्द्रके समान तेजस्वी पुत्र हों। (मं. २३)

' जैसे सूर्य और चन्द्र सब जगत्को प्रकाश देनेवाले हैं, वैसे ही गृहस्थीके घरमें उत्तम तेजस्वी संतान हों, वे विविध खेलोंमें (क्रीडन्तौ) प्रवीण हों, (मायया चरतः) कौशल्यके साथ जगत्में भ्रमण करें, अर्थात् कुशलताके कर्म करें, कलावान् हों और विश्वका भ्रमण करें। अपनी कलाका खूब विकास करें, चंद्रमा कलायुक्त होता है, उसको कलानिधि कहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थीकी सन्तति भी कलाओंकी

निधि बने। और कलाकुशलतासे अपनी तथा अपने राष्ट्रकी उन्नति सिद्ध करे। अपनी संतानोंको कला-कारगिरीकी शिक्षा दे।

ब्राह्मणोंको धन और वस्त्रदान

मंत्र २५ में (ब्राह्मणेभ्यो वसु विभज, शामुल्यं च देहि। मं. २५) ब्राह्मणोंको धन दान दो और वस्त्रका दान करो। ब्राह्मणोंको दान करनेकी यहां आज्ञा की है। विवाहके समय सुयोग्य विद्वान् ब्राह्मणोंको धन और वस्त्र देना चाहिये। गौ, भूमि आदिका भी दान दिया जावे। यह दान वधूके समक्ष दिया जावे, और इसका सात्त्विक परिणाम वधूके ऊपर होवे। दान देनेकी बात इस प्रकार नव वधूके मनपर प्रतिबिंबित हो। दान देनेमें वधूका मन न लगकर केवल भोगमें ही उस वधूका मन रमने लगे, तो वह एक कुटुंबका नाश करनेवाली राक्षसी सिद्ध होगी। ऐसी भोगी स्त्री पतिके कुलका नाश करनेवाली होती है।

एषा पद्वती कृत्या जाया पतिं विशते ॥ (मं. २५)

'यह दो पांववाली विनाशक राक्षसी भार्यारूपसे पतिके घर प्रवेश करती है।' जिस स्त्रीके मनमें दान देनेके भाव नहीं आते, वह भोगी स्त्री ऐसी ही घात करने राक्षसी बनती है। गृहस्थीका भूषण उदार स्त्री है। उदारताकी शिक्षा उस वधूको अपने पिताके घरमें मिलनी चाहिये और पतिके घरमें भी मिलनी चाहिये। इसलिये दान देनेका महत्त्व उस स्त्रीके मनपर स्थिर करना चाहिये। गृहशिक्षाका यह एक विशेष महत्त्वका भाग है।

जिसमें दानभाव स्थिर नहीं हुआ, उसके मनमें (कृत्या-सक्तिः) विनाश करनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है। किसी स्त्रीमें ऐसी क्रूर बुद्धि न हो इसलिये दानकी बुद्धि वधूमें बढानी चाहिये। यदि ऐसा न होकर स्त्री स्वैराचरण करनेवाली हुई तो अन्तमें पतिकुलका नाश ही होता है—

एधन्ते अस्याः ज्ञातयः, पतिर्बन्धेषु बध्यते। (मं. २६)

'इसकी जातियोंमें कलह प्रबल होता है, और अन्तमें बिचारा पति कलहके बंधनमें बांधा जाता है।' इसलिये कन्या और वधूमें प्रारंभसे ही दानकी बुद्धि, परोपकार करनेकी बुद्धि स्थिर होनी चाहिये। अपने सुखका त्याग करके भी सज्जनोंकी सेवा करनेकी सुबुद्धि स्थिर होनी चाहिये। धर्म-सेवा, रुग्णसेवा, आदि सेवाभाव सबमें बढे और वे इस सेवासे ही सब द्वेषभाव दूर करें।

पुरुष स्त्रीका वस्त्र न पहने

मंत्र २७ में कहा है कि पुरुष कभी स्त्रीका वस्त्र न पहने। पुरुषका शरीर कितना भी सुंदर हो, परंतु स्त्रीका वस्त्र पहननेसे वह अश्लील बनता है, शोभारहित हो जाता है।

इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंके वस्त्र आरोग्यकी दृष्टिसे पहननेके अयोग्य होते हैं। यहां एक स्त्रीका वस्त्र दूसरी स्त्री पहने या न पहने, इस विषयमें भी कुछ नहीं लिखा है। स्त्रीका वस्त्र पुरुष न पहने यह बात यहां स्पष्ट और असंदिग्ध है।

विविध वस्त्र पहननेसे स्त्रीके रूप विशेष शोभायुक्त होते हैं, यह बात मं. २८ में कही है। (आशसनं) धारीवाला वस्त्र, (विशासनं) सिरपर ओढने योग्य ओढनी, और (अधिविकर्तनं) यह सर्वांगपर ओढनेका वस्त्र है। स्त्रियोंके पहननेके ये तीन वस्त्र हैं। इनके विविध रंगरूपोंके कारण स्त्रियोंके स्वरूपकी सुंदरता बढती है।

कन्याका गुरु

कन्याकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये, यह आजका एक मुख्य प्रश्न है। आजकल तो कन्या और पुत्र एक ही पाठशालामें पढते हैं और उनकी पाठविधि समान होती है। वस्तुतः देखा जाय तो पुरुषों और स्त्रियोंके कार्य इस संसारमें विभिन्न होते हैं, अतः एक ही पाठविधि दोनोंके लिये लाभ देनेवाली नहीं हो सकती। आजकल स्त्रियोंका पुरुषीकरण और पुरुषोंका स्त्रीकरण हो रहा है। मिश्रपाठविधिका और सहशिक्षाका यह दोष है। वेदके उपदेशानुसार स्त्रीपुरुषोंकी पाठविधि भिन्न भिन्न होनी चाहिये। स्त्रियोंको विशेषतः पाक शास्त्र अर्थात् अन्न पकानेकी विधिका उत्तम ज्ञान होना चाहिये। (एतत् तृष्टं) यह पदार्थ तृषा उत्पन्न करनेवाला अर्थात् पित्तकारक हैं, (एतत् कटुकं) यह कटु है, (एतत् अपाष्ठवत् विषवत्) यह पदार्थ स्वास्थ्य बिगाडनेवाला है, ये पदार्थ विषके समान मृत्यु लानेवाले हैं, (एतद् अत्तवे न) ये पदार्थ खानेयोग्य नहीं हैं, इसी तरह निषिद्ध पदार्थोंका ज्ञान कन्याओंकी पाठविधिमें देना चाहिये। तथा खाने योग्य पौष्टिक और सात्त्विक पदार्थोंका भी योग्य ज्ञान स्त्रियोंको दिया जावे। स्त्रियोंके ऊपर बालबच्चोंके लालन पालनका भार रहता है, इसलिये उनको भक्ष्य भोज्य लेह्य पेय आदि खाद्यपदार्थोंका उत्तम ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकारकी पाठविधि स्त्रियोंके लिये होनी चाहिये और उनपर जो कार्यका भार आनेवाला है, उसे पूर्ण करनेकी योग्यता उनमें उत्पन्न करनी चाहिये।

जो गुरु इस तरहकी शिक्षा कन्याओंको देता है उसको उस कन्याके विवाहके समय उत्तम वस्त्र दान देना योग्य है। इसी तरह मंत्र ३० में कहा है कि, जो गुरु (प्रायश्चित्तिं अध्येति) चित्तशुद्ध करनेका उपदेश देता है, चित्तके बुरे मार्गसे जानेपर उसे धर्ममार्गपर लानेका विवेक जिस सद्‌गुरुकी कृपासे मनमें उत्पन्न होता है, उस शिक्षकका सन्मान करना चाहिये। उस कन्याके विवाहके समय (सुमंगलं स्योनं वासः) उत्तम मंगल और शुभ वस्त्र उस ब्राह्मणको अवश्य दिया जाना चाहिए। क्योंकि इसी ज्ञानसे (येन जाया न रिष्यति) उस स्त्रीकी गिरावट नहीं होती। वह शिक्षित स्त्री अपने धर्मपथमें रहती हुई सबको आनन्द देती है। यह शिक्षाका प्रभाव है, ऐसी शिक्षा स्त्रीको देनी चाहिये।

स्त्रीको योग्य शिक्षा यदि न दी गई तो वह पतिकुलका किस प्रकार नाश करती है, इसका वर्णन मं. २५-२६ में किया है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंको सुशिक्षा देना अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा न होनेसे बडे भयानक परिणाम होते हैं।

सद्‌व्यवहारसे धन कमाओ

गृहस्थाश्रममें धनकी आवश्यकता सदा रहती है। कोई कर्म धनके बिना नहीं हो सकता। अतः गृहस्थीको धन कमानेकी अत्यंत आवश्यकता है। यह धन कैसे कमाया जावे, यह एक समस्या गृहस्थियोंके सन्मुख सदा रहती है। इसका उत्तर ३० वें मंत्रमें दिया है।

(ऋत—उद्येषु ऋतं वदन्तौ) सरल व्यवहारोंमें सरल भाषण करो। उसमें छलकपट न हो। सबसे प्रथम टेढे व्यवहारमें न जाओ। जो व्यवहार करना हो, वह सरल व्यवहार हो और उसके करनेके समय सरल भाषण भी करो। और इस प्रकारके धर्मानुकूल सरल व्यवहार करके (समृद्धं भगं संभरतं) बहुत धन प्राप्त करो। अपने लिये जितने धनकी आवश्यकता है उतना धन कमाओ। धर्मानुकूल व्यवहार करनेसे निःसंदेह यश प्राप्त होगा और समृद्धि भी होगी।

पतिपत्नी अपने घरमें प्रेमके साथ रहें। पति (संभलः चारु वाचं वदतु) अपनी धर्मपत्नीके साथ मीठा भाषण बोले, मंगल भाषण करे, सुंदर वचन कहे तथा (अस्यै पतिं रोचय) इस स्त्रीको पतिके विषयमें बडी रुचि हो, बडा प्रेम हो। इस तरह दोनों प्रेमके साथ रहें, व्यवहार करें और उन्नति करते रहें।

गौरक्षा

मंत्र ३२ और ३३ में उपदेश है, कि गृहस्थी लोग गौरक्षा करें, गौवें घरकी शोभा हैं, बालकोंकी उन्नति इसीसे होती है। सब प्रकारका उत्कर्ष गौवोंसे होता है, इसलिये गौपालन गृहस्थीका धर्म है।

सरल मार्ग

सबके चलनेके मार्ग सरल और निष्कंटक हों, इस विषयमें ३४ वें मंत्रका आदेश ध्यानमें धरने योग्य है—

पन्थानः अनृक्षराः ऋजवः सन्तु ॥ (मं. ३४)

'मार्ग कंटकरहित और सरल हों।' घरको पहुंचनेके मार्ग, घरके पासके मार्ग, राष्ट्रमें जाने आनेके सब मार्ग निष्कंटक और सीधे हों। मनुष्यके सब व्यवहारके मार्ग भी सीधे ही हों। यहां 'मार्ग सीधे हों' इस कथनका तात्पर्य केवल इतना ही नहीं है कि आने जानेके मार्ग सीधे हों, क्योंकि वह मार्ग तो जैसी भूमि होगी वैसा ही बनेगा। परंतु मनुष्योंके व्यवहारके मार्ग सीधे हों, यह बात विशेषतया यहां कही है। बीचमें कांटे न बिछाये जावें। आजकलके राष्ट्रके और समाजके व्यवहार देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मनुष्य स्वयं ही अपनी मतिहीनतासे अपने मार्गपर कांटे बिछाते हैं और सीधा व्यवहार होनेकी संभावना होनेपर भी टेढेपनसे व्यवहार करते हैं और इस कारण सुखप्राप्तिके प्रयत्न करते हुए भी सदा दुःख ही प्राप्त करते हैं। इस तरह ये गृहस्थी अपनी उन्नतिके मार्गमें कांटे न डालें यह उपदेश वेद यहां गृहस्थाश्रमके प्रारंभमें दे रहा है। सब गृहस्थी इसको अवश्य स्मरणमें रखें। इस प्रकारके सीधे मार्गसे चलनेपर (धाता भगेन वर्चसा सं सृजतु) परमेश्वर धन और तेज देगा। वह परमात्मा तो सरल व्यवहार करनेवालोंको यह फल अवश्य ही देगा। इसमें किसीको संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं है। परमेश्वरकी सहायता प्राप्त करनेका मार्ग भी सीधा और निष्कंटक है। यही धर्ममार्ग है। इससे चलकर सब मनुष्य सुखधामको पहुंच सकते हैं। इस प्रकार इस मंत्रका उपदेश बडा मनन करने योग्य है और प्रत्येक गृहस्थीको सदा ध्यान रखनेयोग्य है, क्योंकि सबकी उन्नति सरल और निष्कंटक मार्गसे ही होनी संभव है। उन्नतिका दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

तेजस्वी बनो

गृहस्थी तेजस्वी बनें, उत्साही बनें, कदापि निरुत्साही न हों। गृहस्थीका धर्म उत्साहका है, यह तेजस्वी मनुष्योंका धर्म है इसलिये वेद उपदेश देता कि गृहस्थी तेजस्वी बने।

यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि गृहस्थी तेजस्वी कैसे बने? उत्तरमें वेद कहता है कि—

यत् वर्चः अक्षेषु सुरायाम् (मं. ३५)

' जो तेज आंखोंमें अथवा द्यूतके पासोंमें होता है और जो मद्यमें होता है ' वह तेज इन गृहस्थियोंमें आवे। यह पढकर पाठक कहेंगे कि यह क्या अनर्थ है? वेद ऐसा उपदेश क्यों देता है? क्या वेद इस उपदेशसे गृहस्थियोंको जुआरी और मद्यपी बनाना चाहता है? कदापि नहीं। वेद तो इन दुर्व्यसनोंसे गृहस्थियोंको बचाना चाहता है, परंतु यहां तेजस्वी उत्साहका वर्णन है। किन लोगोंमें तेजस्वी उत्साह अत्यधिक होता है? उत्तरमें जुआरी और मद्यपीमें होता है, ऐसा ही कहना पडेगा। जुआ खेलनेके कार्यपर सरकारी प्रतिबंध है, जुआरीको राजपुरुष पकडते हैं और कारागृहमें डालते हैं, न्यायालयोंमें इनको दण्ड दिया जाता है, घरवाले इस जुआरीके विरोधी होते हैं। इष्ट मित्र तथा परिवारके लोग चाहते हैं कि यह जुआ न खेले, इस तरह सब लोग विरोध करते रहते हैं, तथापि जुवेबाज मनुष्य रातके समय, अंधेरेमें, कष्ट सहन करते हुए, छिपते और छिपाते हुए जुवेके घरमें पहुंचता है, न उसको किसीका भय होता है और न भूख प्यास होती है एकमात्र निश्चय पर अटूट होता है कि मैं जुआ खेलूंगा। सब जगत्के विरुद्ध होनेपर भी वह अपने निश्चय पर अटूट रीतिसे स्थिर रहता है; यह इसका निश्चय, प्रयत्न, उत्साह और एकाग्र मन देखने योग्य है। यदि येही तेजस्वी गुण, जो इसके पासोंके खेलमें लगे हुए हैं, श्रेष्ठ पुरुषार्थके कर्ममें लग जांय, तो उसका बेडा पार होनेमें क्या संदेह है? अतः वेद कहता है कि जो तेज और उत्साह तथा निश्चय जुआरी लोग अपने खेलमें बताते हैं, वही तेज और उत्साह गृहस्थी, मनुष्य अपने गृहस्थधर्मपालनमें बतावें, उतना मनोनिग्रह, उतना निश्चय, उतना उत्साह, उतना प्रयत्न गृहस्थी अपने धर्मपालनमें दर्शावें, यह उपदेश यहां है।

मद्यपी भी इसी तरह मद्यपानके समय पर मद्यपानके स्थानपर जाता है और मद्य पीता ही है, समय टालता नहीं, अपने साथ इष्ट मित्रोंको भी पिलाता है, यह उदारता भी मद्यपीमें होती है। इस मद्यपीमें समयपर वह कार्य करनेकी जो आतुरता होती है और अपने साथियोंको पिलानेकी जो उदारता होती है, वह आतुरता गृहस्थियोंमें भी अवश्य रहे। गृहस्थी अपने कर्तव्य बडी आतुरतासे करें और उदारतासे दान देते रहें। यह उपदेश गृहस्थी लोग ले सकते हैं।

यही सुरा और पासोंका दृष्टांत मंत्र ३६ में पुनः अन्य रीतिसे आया है। उसका भी भाव यही है। इसमें जो उपदेश योग्य है वही लेना चाहिये। बडे महात्मा लोग कुत्तेसे और चीटियोंसे भी उपदेश लेते रहते हैं। जाग्रत, निद्रा और स्वामिनिष्ठाका उपदेश कुत्तेसे और प्रयत्नशीलताका उपदेश चीटियोंसे लिया जाता है। इसके अन्य दुर्गुणोंकी ओर महात्मा लोग देखते नहीं हैं, केवल गुणोंको अपनाते हैं। इसी तरह मद्यपी और जुआरी भी गृहस्थियोंको पूर्वोक्त उपदेश देते हैं। ये उपदेश इनसे गृहस्थी प्राप्त करें और अपने गृहस्थ धर्मका पालन उत्तम रीतिसे करके कृतकृत्य बनें।

पाठक पूछेंगे कि ये ही उपदेश यहां क्यों दिये हैं? क्या उत्तम उदाहरण जगत्में नहीं मिलेंगे? उत्तरमें निवेदन है कि मनुष्यकी तन्मयता जैसी व्यसनोंमें होती है वैसी सदाचारमें नहीं होती। प्रायः यही नियम सर्वत्र है। संसारमें रहते हुए मनुष्य परमार्थसाधन कैसे करे? इसके उत्तरमें व्यभिचारिणी स्त्रीके समान करे ऐसा उत्तर शास्त्रकार देते हैं। जैसी व्यभिचारिणी स्त्री अपने विवाहित पतिके सब कार्य करती हुई अपने मनमें परपुरुषका ध्यान सदा करती है और समय मिलते ही उसके पास चली जाती है, उसी प्रकार संसारी जीव संसारके कार्य करते हुए अपना सब ध्यान परमात्मामें रखें और जो समय मिल जावे उस समय परपुरुष परमात्माकी उपासना करें, वही पर पुरुष किंवा परम पुरुष और उपास्य सबके लिये है। यह उपमा यद्यपि हीन है तथापि पूर्ण है। ऐसे ही जुआरी और मद्यपीकी उपमा भी पूर्ण है। मनुष्योंको चाहिये कि वे उनकी कार्यतत्परता अपनेमें लावें और उससे सुयोग्य कार्य करके कृतकृत्य बनें।

मंत्र ३५ और ३६ में गौओंके स्तनोंमें तेजस्विता दुग्धरूप से रखी हुई है, इस तेजस्वितासे सब गृहस्थ युक्त हों, ऐसा कहा है। ' (गोषु वर्चः। महानघ्न्या जघनं) ' इन शब्दोंद्वारा गौका दुग्धस्थान दर्शाया है। सचमुच गौका दूध अत्यंत तेजस्वी होता है। भैंसका दूध सुस्ती लानेवाला है, गौका दूध सुस्ती हटानेवाला है। अतः सब गृहस्थी और उसके घरके बालबच्चे गौका ही दूध पीकर तेजस्वी, वर्चस्वी, ओजस्वी, आयुष्मान् और पुरुषार्थी बनें।

मंत्र ३७ में कहा है कि जलोंमें एक प्रकारका तेज है जिससे तेजस्विता, माधुर्य, वीर्य और सामर्थ्य बढता है। गृहस्थियोंको इस जलसे ये गुण प्राप्त हो सकते हैं। वेदमें अन्यत्र जलको जीवनका एक मात्र साधन बताया है, रोगनाशक

कहा है, आरोग्यवर्धक माना है, वही सब आशय इस मंत्रमें सरांशरूपसे कहा है। गृहस्थी इसमंत्रका उत्तम मनन करें।

मंत्र ३८ तो सब लोगोंके द्वारा मनन करने योग्य मंत्र है।

[१] रुशन्तं तनूदूर्षिं ग्रामं अपोहामि॥
[२] अद्रः रोचनः तं उदचामि॥ (मं. ३८)

'(१) जो शरीरको क्षीण करनेवाला, शरीरमें विष उत्पन्न करनेवाला और शरीरमें आकर स्थिर रहनेवाला रोग-बीज या दोष है उसको मैं हटाता हूं, और (२) जो शरीरका तेज बढानेवाला और अपना कल्याण करनेवाला है, उसको मैं अपने पास करता हूं।' यह नियम तो सब मनुष्योंको सदा सर्वदा ध्यानमें धारण करना चाहिये और इसी प्रकार आचरण करना चाहिये। हरएक स्थानमें दोषोंको दूर करना और गुणोंको अपनेमें बढाना योग्य है। उन्नतिका यही एकमात्र उपाय है। वधूवर अपने घरमें इसी नियमका पालन करें।

मंत्र ३९ में कहा है कि (श्वशुरः देवरः च प्रतीक्षन्ते) पतिके घरमें श्वशुर और देवर वधूके आनेके मार्ग की प्रतीक्षा करते हैं। वधूका स्वागत करनेके लिये सब लोग उत्सुक रहते हैं। यह मंगल वधू अपने पतिके घर प्रविष्ट हो, वहां पहुंचते ही अग्निकी प्रदक्षिणा करे, अग्निको नमन करे और पश्चात् श्वशुर आदिका दर्शन करे। वहां ब्राह्मण मंत्रपूत जलसे इस वधूको अभिषेक करे। यह जल वधूके अंदर जो भीरुता (अवीरघ्नीः आपः) हो, उसको दूर करे। यह अत्यंत महत्त्वकी बात है। आर्योंमें भीरुता नहीं होनी चाहिये। आर्य तो सदा निडर और धैर्यके मेरु होने चाहिये। इसलिये वधू गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर पतिके घर जो प्रथम स्नान करती है, वह स्नान ब्राह्मणों द्वारा वेदमंत्रसे पवित्र और निर्दोष हुए जलसे करे। जिस मंत्रपवित्र जलके स्नानसे इस वधूके भीरुता आदि सब दोष दूर हों और वह पवित्र, मंगल और धैर्यवाली बने। ऐसी सुयोग्य गृहस्वामिनी बने कि जो अपनी संतानोंको सुयोग्य उपदेश द्वारा उत्तम आर्य बनावे।

पतिके घरके सुवर्ण रत्न आदि आभूषण इस नववधूके लिए कल्याणकारी हों, गिरानेवाले न हों। नहीं तो धन मनुष्यको गिराता है। धनसे उत्पन्न हुआ घमंड मनुष्यकी अधोगति करता है। इसलिये सावधानताकी सूचना देनेके लिये यहां कहा है कि सुवर्ण आदि धन वधूकी गिरावट न करे। दूसरे घरकी स्त्रियोंके उत्तमोत्तम आभूषण देखकर अपने लिये भी वैसे ही आभूषण बनवानेका हठ स्त्रियां करती हैं और पतिको बडे क्लेश देती हैं, ऐसा कोई स्त्री न करे और प्राप्त सुवर्णमें ही वह संतुष्ट रहे। सुवर्ण, आभूषण, गाडी, घोडे आदि सुखसाधन सबके सब भोगवर्गमें आते हैं। भोगेच्छाके कारण घरमें विविध झगडे होते हैं, अतः कहा है कि इन भोगसाधनोंसे कोई झगडे न हों, अपितु (शं भवतु) पतिके घरमें शान्ति रहे, झगडे होकर अशांति न बने। और पत्नी (पत्या तन्वं शं स्पृशस्व) अपने पतिके साथ सुखसे आनन्दप्रसन्न रहे। पतिपत्नी ऐसे एक विचारसे रहें कि वहां किसी भी कारण विवाद न हो, घरमें अशांति न बढे और दोनोंको कौटुंबिक सुख यथायोग्य प्राप्त हो।

स्त्रीकी इच्छा

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्॥
(मं. ४२)

पतिके घर आयी हुई नववधू अर्थात् गृहिणी किस बातकी आशा करती है, अर्थात् क्या चाहती है, यह प्रश्न कोई पूछे तो उसके उत्तरमें निवेदन है कि वह स्त्री (सौमनसं) अपने घरके सब लोग आनन्दप्रसन्न रहें, झगडे न हों, परस्परका व्यवहार प्रेमपूर्वक हो, घरमें उत्तम शान्ति, आनंद और प्रसन्नताका राज्य रहे, यही इच्छा कुलीन स्त्री की हो। दूसरी इच्छा यह होनी चाहिये कि, (प्रजां) उत्तम संतान उत्पन्न होवे, अपनी संतान सुयोग्य बने, अपनी सुसंततिसे कुलका वृक्ष हरभरा रहे। तीसरी इच्छा यह होवे कि (सौभाग्यं) उत्तम भाग्य प्राप्त हो, अपने पतिके घरमें उत्तम भाग्य वृद्धिंगत होता रहे। सौभाग्यमें विशेष कर उस भाग्यका समावेश होता है कि जो पतिके कारण पत्नीको और पत्नीके कारण पतिको सुख होता है और जिस सुखके लिये विवाह होता है। यह सौभाग्य अपने घरमें बढे यही इच्छा धर्मपत्नीकी हो। इसके पश्चात् चतुर्थ इच्छा यह है कि (रयिं) धन प्राप्त हो, अपने पतिके घर किसी प्रकार दरिद्रता न रहे। ऐश्वर्य धन सुवर्ण आभूषण आदि सब विपुल रहे और इस अर्थसे सबको सुख प्राप्त होता रहे। धर्मपत्नी की पतिके घरमें यही चार प्रकारकी इच्छा हो। यहां सबसे प्रथम उत्तम मनकी इच्छा की है, उसके नंतर पतिपत्नीके उत्तम सुखकी इच्छा है, और अन्तमें धनकी इच्छा है। क्योंकि धन सुखका साधन तो है, परन्तु वह धन सु-मन न होनेपर, घरमें सुसंतान न होनेकी अवस्थामें, पतिपत्नी संबंधकी विपरीततामें कोई सुख नहीं देता, इसके

विपरीत इन अवस्थाओंमें वह दुःखदायी ही होता है। इस लिये कौनसी आशा प्रथम करनी चाहिये और कौनसी अन्तमें करनी चाहिये, इसका विचार गृहस्थी लोग इस मंत्रके मननसे जानें।

स्त्री कैसी हो ?

(पत्युः अनुव्रता) पतिके अनुकूल रहकर नियम पालन करनेवाली स्त्री हो। स्त्री कभी पतिके प्रतिकूल आचरण न करे। इस नियमके अन्दर यद्यपि स्त्रीके लिये पतिके अनुकूल होनेकी आज्ञा कही है तथापि इसीसे पति भी स्त्रीके अनुकूल रहे यह भी भाव निकलता है। पति जैसा चाहे वैसा आचरण करे और केवल पत्नी ही पतिके आधीन रहे, यह भाव इस मंत्रका नहीं है। धर्मोपदेश समान हुआ करता है और वह एकके निर्देशसे दूसरेके लिए भी लेना योग्य है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार धर्मपत्नी पतिके अनुकूल रहे उसी प्रकार पति भी पत्नीके अनुकूल रहे। दोनों परस्पर अनुकूल रहकर एक दूसरेका सुख बढावें और गृहको स्वर्गधाम बनावें। उस घरमें (अमृताय कं संनह्यस्व) अमृत की प्राप्ति हो। धर्मपत्नी और पति ये दोनों अपने साध्य अमृतत्त्व अर्थात् मोक्षको नित्य प्रति ध्यानमें रखें। उस अमृतमय मोक्षधामको पहुंचनेका जो मार्ग है उस मार्ग पर सुखसे चलनेके लिये इस गृहस्थाश्रमकी सहायता है यह कोई गृहस्थी न भूले। इस बातके लिये सब गृहस्थी सिद्ध हो। सब व्यवहार वे इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये करें। अर्थात् धर्मानुकूल व्यवहार करते हुए मोक्षकी सिद्धि प्राप्त करें। प्रत्येक गृहस्थीका यह कर्तव्य है। प्रत्येक गृहस्थी प्रत्येक व्यवहार करनेके समय स्मरण रखे कि मेरा यह कर्म मोक्षका साधक हो, और कभी बाधक न हो प्रत्येक कर्म योग्य रीतिसे करने पर मोक्षके लिये साधक हो सकता हैं। यदि प्रत्येक कर्म फलत्यागपूर्वक किया जाय, लोभका त्याग किया जाय, तो सभी कर्म उसी मोक्षधामको प्राप्त करानेमें सहायक हो सकते हैं। फलभोगकी स्वार्थेच्छासे ही मनुष्यकी गिरावट होती है, अतः कहा है कि (मा गृधः। यजु. ४०।१) मत ललचाओ, सब प्रकारका लोभ छोड दो और कर्म करो इस तरह निर्लोभतासे किया हुआ कर्म मोक्षके मार्गमें सुख देनेवाला होता है। गृहस्थधर्मके सभी कर्म सुख देते हुए मोक्षमार्गके साधक हैं।

गृहस्थीका साम्राज्य

गृहस्थीका घर एक बडा भारी साम्राज्य है। साधारण राज्य नहीं है, बडा साम्राज्य है। यजमान गृहस्थी स्वयं सम्राट् है। पत्नी उसकी सम्राज्ञी है। यह गृहस्थीकी सहधर्मचारिणी उसकी मंत्रणा देनेवाली है, इसमें जो परिवार है वे सब प्रजाजन हैं। गौ, घोडे आदि जो घरके उपयोगी पशु पक्षी हैं, वे भी सब इस साम्राज्यकी प्रजा हैं और इस प्रजाका योग्य पालन करना गृहस्थीका आवश्यक कर्तव्य है। (साम्राज्यं सुषुवे वृषा। मं. ४३) जो बलवान् होगा वही इस साम्राज्यका पालन और संवर्धन कर सकता है। अशक्तका यहां कार्य नहीं है। (वृषा) जो बलयुक्त होगा वही इस गृहस्थधर्ममें यशस्वी होगा। बलवानोंका ही साम्राज्य हो सकता है। अशक्तोंका साम्राज्य नष्ट होगा। यह नियम इस स्थानमें पाठक देख सकते हैं।

पति सम्राट् बने और उसकी धर्मपत्नी साम्राज्ञी बने। इसका अर्थ पूर्व अनुसंधानसे यह है कि पति भी बलवान् बने और पत्नी भी बलशालिनी बने और दोनों मिलकर इस गृहस्थाश्रमके साम्राज्यको योग्य रीतिसे चलावें। (मंत्र ४४ में) नववधूसे कहा है कि वह ससुर, देवर, ननद तथा सास आदि पारिवारिक जनोंके साथ योग्य बर्ताव साम्राज्ञी बनकर करे, इसका अर्थ यह है कि पतिके घर इस स्त्रीका वही दर्जा रहे कि जो साम्राज्यमें साम्राज्ञीका रहता है। स्त्रीका अधिकार असाधारण श्रेष्ठ है। पूर्व स्थानमें कहा है कि स्त्री स्वतंत्र नहीं है, या तो वह मातापिताके आधीन रहेगी अथवा पतिके आधीन रहेगी, इस कथनके साथ यह विधान विरोधक नहीं है। क्योंकि कोई सम्राट् या साम्राज्ञी पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती। साम्राज्यके नियमोंसे बंधी होती है। वह साधारण स्त्रीके समान इधर उधर जा नहीं सकती। उसके साथ सदा शरीररक्षक रहते हैं। इस प्रकार साम्राज्ञी परतंत्र होती हुई भी विशेष संमानित होती है। यही बात स्त्री की भी है। धर्मनियमोंसे बंधी हुई धर्मपत्नी परतंत्र होती हुई भी पूर्ण रीतिसे साम्राज्ञी है। धार्मिक उन्नति करनेके लिये स्वतंत्र है। मनुष्यको अपने मुक्तिधामके मार्ग पर चलना है, यही उसका ध्येय है। इस ध्येयकी सिद्धिके लिये जितनी स्वतंत्रता चाहिये उतनी स्त्रीको देनेका विधान है। इससे जो अधिक स्वातंत्र्य है वह स्त्रीको गिरानेका कारण बनता है।

स्त्रियोंका सूत कातना

वैदिक धर्मानुसार सर्वसाधारणतया स्त्रीपुरुषोंका और विशेषकर स्त्रियोंका घरेलू व्यवसाय सूत कातना और उसका कपडा बुनना है। प्रत्येक गृहस्थीके घरकी सब स्त्रियां इस सूत्र निर्माणके कर्मको अवश्य करें। (देवीः अकृन्तन्। मं. ४५) घरकी देवियां सूत कातें, जो सूत्र कातती हैं वे ही देवियाँ हैं। ये ही देवियां (तत्निरे) ताना तानती हैं, सूत्रको ठीक करके योग्य रीतिसे ताना तानती हैं तथा (अभितः

अन्तान् ददन्त) चारों भागोंके अन्तिम भागोंको ठीक करती हैं। इस तरह सब उत्तम रीतिसे ठीक होनेपर (अव-यन, संव्ययन्तु) देवियां कपडा बुनें, ठीक तरह बुनें, तारुण्यकी अवस्थामें कपडा विशेष श्रमके साथ बुनें, ताकि (जरसे) वृद्धावस्थामें, जब कि विशेष श्रम होना संभव नहीं है, काममें आवे। (आयुष्मती इदं वासः परि-धत्स्व) दीर्घ आयु प्राप्त करती हुई यह स्त्री अपने प्रयत्नसे बुना हुआ वस्त्र पहने। यही वस्त्र स्त्रियोंका और पुरुषोंका भूषण है। प्रत्येक परिवार इस तरह वस्त्रके विषयमें स्वावलंबी बने। अपने वस्त्रके लिये दूसरोंपर निर्भर रहना सर्वथा अयोग्य है। यह उपदेश यहां वेद दे रहा है। यहां वेदने घरेलू उद्योग धन्धोंपर अधिक जोर दिया है। प्रत्येक घर हर तरहसे स्वावलम्बी बने। प्रत्येक गृहस्थी घरेलू उद्योग धन्धोंके द्वारा समृद्ध हो। यह वेदके द्वारा बताया गया उपाय अभ्यु-दयका एक सर्वोत्तम उपाय है।

मंत्र ४६ में कहा है कि स्त्री पुरुष अपने दीर्घ जीवनके मार्गको (दीर्घां प्रसितिं अनुदीध्युः) ध्यानमें रखकर, अपने (पितृभ्यः वामं) मातापिताके लिये सुख देवे और स्त्री पुरुष परस्परको सुख देते हुए आनन्दसे अपना कर्तव्य करें। गृहस्थाश्रमका मार्ग अतिदीर्घ है, कमसे कम सौ वर्ष तक इस मार्गपर चलना पडता है। सौ वर्ष चलनेपर भी यह धर्ममार्ग समाप्त नहीं होता। इतना लंबा मार्ग गृहस्थि-योंके सामने है। इतने लंबे मार्गपर सुखके साथ प्रवास करना चाहिये। इस कारण अपने मातापिताको सुख देना चाहिये। मातापिताका सत्कार करना एक आवश्यक कर्तव्य है। यदि कोई गृहस्थी अपने मातापिताकी देखभाल नहीं करेगा, तो उसके बालबच्चे भी उसकी देखभाल नहीं करेंगे। स्वयं अपने मातापिताकी देखभाल करनेसे अपनी संतानोंको भी सुयोग्य शिक्षा मिलती है, जिससे वे भी अपने माता-पिताका आदरसत्कार करनेमें प्रवृत्त होते हैं। सब गृहस्था-श्रम सुखमय करना हो तो वृद्धों और बालकोंकी पालना उसमें उत्तम रीतिसे होनी चाहिये। गृहस्थाश्रममें सुखवृद्धि करनेका यह महातत्त्व है।

गृहस्थियोंके ऊपर सुप्रजा निर्माणका बडा भारी भार है। प्रत्येक गृहस्थीको उचित है कि वह (प्रजायै स्योनं ध्रुवं) अपनी संतानके लिये सुख और स्थैर्य प्राप्त करनेका प्रबंध करे। अपनी सब संतानें सुखी हों, और स्थिर हों, सुदृढ हों तथा दीर्घायु बनें। संतानकी आयु दीर्घ किस रीतिसे हो सकती है? इसके उत्तरमें वेदका कहना है कि (सविता आयुः दीर्घं कृणोति। मं. ४७) सूर्य ही मनुष्यकी आयु दीर्घ बनाता है। सूर्यप्रकाशसे मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त हो सकती है। मनुष्य सूर्यकिरणोंमें विचरे, सूर्यस्नान करे, सूर्यकी उपा-सना करे और अपनी आयु दीर्घ बनावे।

पाणिग्रहण

पुरुष स्त्रीका पाणिग्रहण करता है। यह पाणिग्रहण होते ही स्त्री पुरुषके बीच पत्नी और पतिका नाता शुद्ध होता है। इस समय पति अपनी पत्नीसे प्रेमके साथ बातचीत करे और उससे कहे—

(१) ते हस्तं गृह्णामि, (२) मा व्यथिष्ठाः,
(३) मया प्रजया धनेन सह॥ (मं. ४८)

'हे पत्नी! तेरा हाथ मैं पकडता हूं, दुःखी मत हो और मेरे साथ तथा संतानों और धनोंके साथ सुखसे निवास कर।' इस तरह प्रेमपूर्वक पति अपनी धर्मपत्नीके साथ भाषण करे। नववधू दूसरेके कुलसे आती है, उसका कोई परिचित यहां नहीं होता है, इसलिये पतिके घरके लोग उस नववधूके साथ प्रेमका बर्ताव करें। पति नववधूसे कहे कि 'हे पत्नी! मैंने तेरा हाथ पकडा है, इससे तू समझ कि तुझे मैंने सब अवस्थाओंमें आधार दिया है। हाथ पकडनेका अर्थ आधार देना है, अतः जबतक मैं हूं तबतक तुझे डरनेकी कोई जरूरत नहीं। तू यहां सब तरहसे सुरक्षित है। मेरा जो धन है, वह भी तेरा ही धन है। उससे तुझे भी हर तरहका सुख प्राप्त हो सकता है। हम दोनोंकी जो संतानें उत्पन्न होंगी उनका यथायोग्य पालन करना हम दोनोंका कार्य है। यदि हम वह कार्य करें तो वे सब हमारी संतानें भी हमारे सुखके हेतु हो सकती हैं। इस तरह हे पत्नी! मेरे साथ रहकर तू इस संसारमें सुखसे रह और हम दोनों गृहस्थधर्मका पालन करते हुए मोक्षके मार्ग पर चलें।' इस ढंगसे पति और पतिके लोग नववधूके साथ मधुर, प्रिय और सुखकारक भाषण करें और उसके मनमें पतिके घरके विषयमें प्रेम उत्पन्न करें।

जहां जहां वेदमें पाणिग्रहणका विषय आया है, वहां वह पति पत्नीका पाणिग्रहण करता है, ऐसे ही शब्द प्रयोग हैं।

(१) ते हस्तं गृह्णामि। (अथर्व. १४।१।४८; ५०)
(२) ते हस्तं गृह्णातु। (अथर्व. १४।१।४९)
(३) ते हस्तं गृभ्णामि। (ऋग्वेद १०।८५।३६)
(४) ते हस्तं अग्रहीत्। (अथर्व. १४।१।५१)

इन स्थानोंमें हाथ पकडनेवाला पुरुष है और जिसका हाथ पकडा जाता है, वह स्त्री है। इससे भी गृहस्थाश्रममें

पुरुषकी विशिष्टता है, यह बात स्पष्ट होती है। वेदमें किसी भी स्थानपर स्त्री द्वारा पुरुषके हाथ पकडे जानेका विधान नहीं है, अपितु सर्वत्र पुरुष ही स्त्रीका हाथ पकडता है। पाणिग्रहण करनेका अधिकार पुरुषका है, यह इन मंत्रोंसे निश्चित होता है। इसीलिये मंत्र ४३ में (सिन्धुः नदीनां साम्राज्यं सुषुवे) कहा है। एक समुद्र अनेक नदियोंका सम्राट् होता है, अर्थात् एक पति अनेक स्त्रियोंका पाणिग्रहण करता हुआ गृहस्थाश्रमरूपी बडे साम्राज्यका सम्राट् होता है। पति ही स्त्रीका पाणिग्रहण करनेवाला है, इस कथनसे भी पतिका ही मुख्य होना सिद्ध है। स्त्रीका दान पतिको किया जाता है, इस विषयके मंत्र भी हमने पूर्वस्थानपर देखें हैं। इन सब बातोंसे निःसंदेह वैदिक धर्मके द्वारा गृहस्थाश्रममें पुरुषका मुख्य स्थान है, यह दर्शाया है।

आगेके तीनों मंत्रोंमें पाणिग्रहणका ही विषय है और उन मंत्रोंमें स्त्रीका हाथ पुरुष पकडता है ऐसा ही भाव है। तथा आगे विशेष स्पष्ट करके कहा है कि—

त्वं धर्मणा पत्नी असि, अहं तव गृहपतिः ॥
(मं. ५१)

इयं मम पोष्या, मह्यं त्वा प्रजापतिः अदात् ॥
(मं. ५२)

'पुरुषकी स्त्री धर्मसे पत्नी है, और पति स्त्रीका गृहपालक है। यह स्त्री पतिके द्वारा पोषणके योग्य है, क्योंकि इस पतिके अधिकारमें प्रजापतिने इस स्त्रीको सौंप दिया है।

स्त्रीके पोषणका भार पतिके ऊपर है, यह बात इस मंत्रसे स्पष्ट है। पति पत्नीका पालनपोषण करे। पालन—पोषणका विचार पत्नी न करे। पोषणकी सामग्रीके घरमें आनेके पश्चात् पत्नी उस सामग्रीका योग्य विनियोग करके सबको यथायोग्य अन्न भाग पहुंचावे।

सुपुत्र निर्माण करनेमें देवताओंकी सहायता प्राप्त होनी चाहिये। वह सहायता इस स्त्रीको प्राप्त हो, इस प्रकारका आशीर्वाद मंत्र ५३ और ५४ में है। इन्द्र, अग्नि आदि सब देवता इस स्त्रीको अपना तेज अर्पण करें और इस स्त्रीके अन्दर उत्तम संतान उत्पन्न करें और ऐसे सुसन्तानोंके साथ यह स्त्री उन्नत होती रहे।

केशोंकी सुंदरता

सिरपर (शीर्षे केशान् अकल्पयत्) परमेश्वरने बडे बडे केश बनाये हैं। विशेषतः स्त्रीके सिरकी शोभा केशोंकी सुव्यवस्थासे बढती है। (तेन इमां नारीं पत्ये संशोभयामसि) अतः पतिके लिये सुंदर दीखने योग्य स्त्री सिरकी सजावट करे और अपने सिरकी शोभा बढावे। स्त्री अपने सिरपरके बालोंकी सुव्यवस्था रखे और शोभाके लिये सजावट करे।

(मनसा चरन्तीं जायां जिज्ञासे) मनसे चालचलन स्त्रीका कैसा है यह जानना चाहिये। केवल बाह्य चालचलन द्वारा किसीकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। मन कैसा है, विचार कैसे हैं, मनसे किस बातका विचार करती है, मनमें किसका मनन करती है, यह देखना चाहिये। जो मनसे शुद्ध है, उसे ही शुद्ध समझना चाहिये। अतः मनको शुद्ध रखनेके लिये जो शिक्षा देनी योग्य है वही देनी चाहिये। स्त्री हो या पुरुष, उनके मन शुद्ध रखनेयोग्य पाठविधि बनानी चाहिये।

(योषा यत् अवस्त, तत रूपं) स्त्री जो वस्त्र परिधान करती है, उससे उसका रूप शोभावान् होता है। अर्थात् स्त्रीको इस प्रकारके वस्त्र परिधान करनेके लिये देने चाहिये कि जिससे उसकी सुंदरता बढे। यहां सूर्यासावित्रीका उदाहरण पाठक देखें। संध्यासमयमें कितने विविध रंगके वस्त्र यह सूर्यपुत्री संध्या पहनती है और अपने रूपकी शोभा बढाती है। पति अपनी शक्तिके अनुसार स्त्रियोंको उत्तम वस्त्र पहनावे। यह कोई आवश्यक नहीं है कि स्त्री प्रतिदिन नये नये वस्त्र पहने, परंतु जो वस्त्र पहने वे ऐसे सुव्यवस्थित हों कि उनसे उस स्त्रीकी शोभा बढे। घरकी देवी स्त्री है और घरघरमें इस गृहस्वामिनीकी मंगल वस्त्र भूषणोंसे पूजा होती रहे और वह पूजा घरके स्वामीकी आर्थिक अनुकूलताके अनुसार होती रहे।

(नवग्वैः सखिभिः तां अन्वर्तिष्ये) जिनमें नौ गौवों अर्थात् सब इंद्रियोंका समर्पण किया जाता है, उन यज्ञोंके साथ और जो हमारे मित्रजन उन यज्ञोंमें भाग लेते हैं उनके साथ यज्ञमय जीवन बनाकर उस स्त्रीके साथ मैं सब व्यवहार करता हूं। अर्थात् मैं स्वयं और मेरी धर्मपत्नी दोनों मिलकर अपना सब जीवन हम यज्ञरूप बनाते हैं। जो जो कर्म हम करते हैं वह यज्ञरूप करते हैं। इससे हम दोनों यज्ञरूप बनेंगे और अन्तमें हमारे यज्ञसे यज्ञस्वरूप परमेश्वर प्रसन्न होगा और हम कृतकृत्य बनेंगे।

(विद्वान् पाशान् विचर्चत) स्त्री पुरुष विद्वान् होकर अपने पाशोंको काटें और बंधनसे मुक्त हों। सब प्रयत्न बंधनसे मुक्त होनेके लिये होने चाहिये। मनुष्य अनेक प्रकारके प्रलोभनोंमें फंसता है, और स्वयं अपने लिये बंधन निर्माण करता है और उन बंधनोंसे बंध जाता है। ये सब

बंधन काटने चाहिये और मुक्त होना चाहिये। यह मुक्त होनेका ज्ञान जिसको होता है उसीको ज्ञानी अथवा विद्वान् कहते हैं। मनुष्य-स्त्री या पुरुष- इस मुक्तिकी विद्याको प्राप्त करें और उसकी सहायतासे मुक्त हो जांय।

प्रत्येक मनुष्य कहे कि (अहं विष्यामि) मैं ये सब बंधन तोडता हूं, मैं बंधनसे मुक्त होनेका यत्न करता हूं। क्योंकि मनुष्य-जन्मकी सार्थकता बंधनमुक्त होनेमें ही है। मनुष्यका जन्म ही इस कार्यके लिये है। ये सब बंधन मनके कारणसे होते हैं अतः कहा है कि (मनसः कुलायं पश्यन् वेदत्) मनका यह घोंसला है वह बात मनुष्य देखें और मनद्वारा उत्पन्न हुए ये सब बंधन हैं, ऐसा जानें। यदि मनुष्यको इस बातका ज्ञान होगा कि (मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः) मन ही मनुष्योंके बंधन अथवा मोक्षका कारण है, तो वह मनुष्य कभी बंधनोंमें नहीं पडेगा। साधारण मनुष्योंको ऐसा प्रतीत होता है कि अपने बंधन बाह्य कारणोंसे हैं, परंतु वस्तुतः वह असत्य है। बाह्य कारण मनुष्यको बंधनमें डालनेमें असमर्थ हैं। मनुष्यका मन ही अपने बंधन तैयार करता है और उसमें स्वयं फंसता है और मनुष्यको फंसाता है। इसलिये बंधनसे मुक्त होनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह अपने मनको ज्ञानसे शुद्ध करे और उस शुद्ध मनसे वह अपने सब पाश काट देवे। निश्चय यह है कि (मनसा उत् अमुच्ये) अपने मनसे ही मनुष्य उन्नत होता हुआ मुक्त होता है। मनुष्य अपने मनसे बंधनोंमें बांधा जाता है और अपने मनसे ही बंधनोंसे मुक्त होता है। इतनी शक्ति मनुष्यके मनमें है। इतनी शक्ति प्रत्येक मनुष्यके मनमें होती हुई भी मनुष्य अपने आपको असमर्थ मानता है और सहाय्यताकी याचना करता रहता है। परंतु यदि यह स्वयं अपने कार्योंसे बंधनमें पडा है तो वह अपने ही कार्योंसे बंधनोंको तोडकर मुक्त भी हो सकता है। अर्थात् मुक्त होनेकी शक्ति इसीके अन्दर है। अतः कहा कि (स्वयं श्रथ्नानः) 'स्वयं मैं अपने पाशोंको शिथिल करता हूं।' तुम्हारे पाशोंको दूसरा कोई शिथिल कर नहीं सकता। यदि तुम अपने बंधनोंको तोडना चाहते हो तो तुम ही तोड सकते हो, यदि बंधनमें ही पडे रहना चाहते हो तो वैसा भी हो सकता है। जो तुम्हारे मनमें होगा वही यहां हो सकता है। तुम ही अपने उद्धारक और तुम ही अपने घातक हो। दूसरा तुम्हें कष्ट देता है यह बडा भारी भ्रम है। यह बात जैसे वैयक्तिक मुक्तिमें सत्य है वैसे ही सामाजिक और राष्ट्रीय मुक्तिमें भी सत्य है। अतः सब स्त्री पुरुषोंको उचित है कि वे अपने बंधन शिथिल करनेका स्वयं यत्न करें और प्रयत्न करके स्वयं मुक्त हों। यदि प्रयत्न किया जाय तो यह सिद्ध हो सकता है।

चोरीका अन्न न खाओ

इस योग्यताको प्राप्त करनेकी इच्छा है तो यह नियम करना चाहिये कि (न स्तेयं अद्मि) मैं चोरीका अन्न नहीं खाता हूं। आज अधिकांश जनसंख्या जो अन्न खाती है वह चोरीका होता है, जिसपर दूसरेका अधिकार होता है। यदि हम उसको भक्षण करेंगे तो वह चोरी है। यह चोरी घरमें भी होगी और समाजमें भी होगी। यदि कोई पदार्थ घरमें लाता है और वह सब मनुष्योंको न बांटते हुए अकेला ही उसको खाता है तो वह चोरीका अन्न खाता है। अपने ग्राममें जो अन्न उत्पन्न होता है वह ग्रामके सब लोगोंके लिये होता है। यदि ग्रामके कई लोगोंने अपने पास अन्नसंग्रह अधिक किया और इस कारण ग्रामके कई लोग भूखे मरने लगे, तो निःसन्देह अधिक संग्रह करनेवाले चोरीका अन्न ही खायेंगे। यह सब विचार करके कुटुंबियोंको निश्चय करना चाहिये कि हम चोरीका अन्न खाते हैं वा यज्ञका अन्न खाते हैं। मनुष्यको उचित है कि वह यज्ञशेष अन्न खावे और पवित्र बने। जो मनुष्य यज्ञ न करके स्वयं अपने लिये ही पकाता है वह चोर है। मनुष्य मात्रको जो शिक्षा मिलनी चाहिये, वह यह है।

येन त्वा अवध्नात्, पाशात् त्वा प्रमुञ्चामि॥
(मं. ५८)

'जिस बंधनसे तुझे बांध रखा था, उस बंधनसे तुझे मैं मुक्त करता हूं।' यह वचन पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है, और उसको विश्वास देता है कि मेरी सहायतासे तू अब (उरुं लोकं) विस्तृत लोकको प्राप्त हुई है, तेरे लिये विस्तृत कर्मभूमि यहां प्राप्त हुई है और (अत्र तुभ्यं सुगं पंथां कृणामि) यहां तेरे लिये सुगममार्ग मैं बना देता हूँ। इस मार्गसे तू जायगी तो तेरा कल्याण होगा। यह गृहस्थाश्रम एक अति विस्तृत कार्यक्षेत्र है, पुरुषार्थी मनुष्य यहां पुरुषार्थ करके अपना भाग बढा सकता है। यहां अनेक मार्ग हैं परंतु सरल मार्गपर ही मनुष्यको चलना चाहिए। अस्तु। पतिको उचित है कि वह अपनी स्त्रीको सुशिक्षा देवे, उसको सीधे मार्गसे चलावे और उसके बंधन तोडनेके लिये जो जो पुरुषार्थ करने आवश्यक हैं वे सब स्त्रीसे करावे। पुरुषपर यह इतनी भारी जिम्मेवारी है। पुरुष भी अपनेको मुक्त रखे और अपनी स्त्रीको भी मुक्तिके पथपर चलावे।

स्त्रीके योग्य अथवा अयोग्य आचरणका उत्तरदायित्व पुरुषपर है। स्त्रीशिक्षाका सब भार पुरुषपर है यदि स्त्री विद्याहीन है, तो उसका दोष पुरुषपर है। यही अगले ५९ वें मंत्रमें कहा है—

(इमां नारीं सुकृते दधात । मं. ५९) इस स्त्रीको पुण्यमार्गसें चलावो, इससे पुण्यकर्म हो ऐसी व्यवस्था करो यदि स्त्री बुरा व्यवहार करती है, तो उसका दोष पुरुषपर ही जाता है। पुरुषका यह कर्तव्य है कि वह स्त्रीको अपने कर्तव्यका आवश्यक ज्ञान करा दे और स्त्रीको धर्मशील बना दे! (धाता अस्यै पतिं विवेद) परमेश्वरने इस स्त्रीके लिये पति प्राप्त करा दिया है, अतः वह पति (रक्षः अप हनाथ) इसके अन्दरके राक्षसी भावोंका नाश करे। पति स्त्रीको ऐसी सुशिक्षा देवे कि जिससे स्त्रीके अन्दरकी सब आसुरी वृत्तियां दूर हों और उसमें दैवी वृत्तियां स्थिर हो जायें और वह सचमुच 'देवी' बने। इस स्त्रीको (उत् यच्छध्वं) उच्च बनानेके लिये अपने आपको सज्ज रखो, तैयार रखो, अपने शस्त्रास्त्र ऊपर उठाओ, इसका उत्तम रक्षण करो, इसको उत्तम धर्मनियमसें रखो। जिन प्रयत्नोंसे स्त्रीकी सच्ची उन्नति हो सकती है वे सब प्रयत्न करो। स्त्रीकी उन्नतिका भार छोटेपनमें पितृकुलपर और विवाह होनेके पश्चात् पतिकुलपर है। इसकी उन्नति करनेके लिये ही (धाता पतिं विवेद) ईश्वरने इसको पति प्रदान किया है, अतः पतिका कर्तव्य है कि वह अपनी धर्मपत्नीकी सर्वांगीण उन्नतिके लिये यत्न करे।

(सा सुमंगली अस्तु। मं. ६०) वह स्त्री उत्तम मंगल करनेवाली बने, मंगलकी मूर्ति बने, उस स्त्रीके कारण घरका और कुलका मंगल हो, इस स्त्रीकी मंगलमूर्ति देखकर सब लोग आनंदित हों। इसकी उन्नतिके लिये सब देवताएं (भग, धाता, त्वष्टा आदि) सहायता दें।

बरातका रथ

बरातके रथका वर्णन पुनः मंत्र ६१ में है। यह रथ उत्तम (सु-किंशुकं) फूलोंसे सुशोभित किया जावे, तथा उत्तम सुंदर लाल पुष्पोंसे सजाया जावे।

(विश्व-रूपं) अनेक प्रकारकी सजावट उसपर की जावे, (हिरण्य-वर्ण) सुवर्णके रंगका वह रथ हो, उत्तम चमकदमक उसपर हो, सुवृतं सुचक्रं) उत्तम झालरें लगी हों और उसके चक्र उत्तम हों। इस तरहका सजासजाया रथ (वहतुं) बरातके काममें लाया जावे। यह बरात पतिके घर पहुंचे और वहांके स्थानको (अमृतस्य लोकं कृणु) अमर लोक, सुखपूर्ण स्थान बनावे। धर्मपत्नी अपने पतिके घर पहुंचकर वहांका सुख बढावे। (अ-भ्रातृ-घ्नी) भाईयोंका नाश न करनेवाली, (अ-पशु-घ्नी) पशुओंका पालन करनेवाली, (अ-पति-घ्नी) पतिका पालनपोषण करनेवाली, पतिको कष्ट न देनेवाली, (पुत्रिणी) संतानसे युक्त, ऐसी स्त्री पतिके घर इस रथसे जाए। यह स्त्री (देवकृते पथि) देवोंके द्वारा बनाये गए सन्मार्गसे जाना चाहती है, अतः इसका विवाह हुआ है, इस कारण (कुमार्य मा हिंसिष्टं) इस समयतक कुमारी रही हुई वह नववधू है, इसको यहां पतिके घरमें किसी प्रकारका कष्ट न हो। (वधूरथं स्योनं कृण्मः) इस वधूका मार्ग हम सुखदायक करते हैं। इसका चलनेका जो देवमार्ग है वह इस वधूके लिये सुखदायी हो, ऐसा प्रबंध हम करते हैं। (शालायाः द्वारं स्योनं कृण्मः) इस स्त्रीके लिये गृहप्रवेशके समय पतिके घरका द्वार हम सुखमय बनाते हैं। इस स्त्रीको पतिगृहमें उत्तम सुख प्राप्त हो और वह अपनी उन्नति यथायोग्य रीतिसे प्राप्त करे, निर्विघ्नतासे यह देवी उत्कर्षको प्राप्त हो।

इस स्त्रीको (अपर पूर्व मध्यतः ब्रह्म युज्यतां। मं. ६४) आगे, पीछे, बीचमें और सब ओरसे ज्ञान प्राप्त हो। ज्ञानसे ही सबकी उन्नति होती है। यहां 'ब्रह्म' शब्दके अर्थ 'ईश्वर, मंत्र, वेदज्ञान, यज्ञ, शक्ति, तप, धर्म पवित्रता, ब्रह्मचर्य, धन, शब्द' ये हैं। स्त्री पतिघरमें जहां जावे वहां ये पदार्थ उपस्थित हों, इनसे विमुखता कभी न होने पावे। यह धर्मपत्नी (अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य) व्याधिरहित दिव्य नगरीको अर्थात् पतिके स्थानको प्राप्त होकर, पतिगृहमें रोगरहित रहकर, नीरोगताके साथ अपना सब व्यवहार करके (शिवा स्योना पतिलोके विराज) शुभमंगलमयी गृहदेवता होकर पतिके स्थानमें विराजती रहे। यह स्त्री पतिके घरकी शोभा बढावे, सुखकी वृद्धि करे और वहांके मंगलका हेतु बने।

यहांतक प्रथम सूक्तके मंत्रोंका विचार किया। अब हम द्वितीय सूक्तका विचार करते हैं—

द्वितीय सूक्तका विचार

द्वितीय सूक्तमें भी विवाहका ही विचार है। पहिले चार मंत्रोंमें कुमारिकाके चार पति होनेका उल्लेख है। इस विषयमें इस तरह स्पष्ट कहा है—

सोमस्य जाया प्रथमं गंधर्वस्तेऽपरः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥
(मं. ३)

'कुमारिकाका पहिला पति सोम, दूसरा पति गंधर्व, तीसरा अग्नि और चौथा मनुष्य-योनिमें उत्पन्न (अर्थात् मनुष्य) होता है।' यहां कौमार्यमें चार पतिके होनेका उल्लेख है। ऋग्वेदमें यह मंत्र इस प्रकार है—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥
(ऋग्वेद १०।८५।४०)

इस मंत्रका अर्थ वैसा ही है जैसा ऊपर दिया है। इस कन्याको सोमने पहिले प्राप्त किया, फिर दूसरी वार गन्धर्वने इस कन्याको पत्नीरूपमें स्वीकार किया, तीसरा पति अग्नि हुआ और चतुर्थ मानव हुआ। इस मंत्रमें चतुर्थ पतिको 'मनुष्य' कहा है। इस बातसे ही पूर्वके पति मनुष्य योनिके नहीं हैं इसकी सिद्धि होती है। अतः यद्यपि इस मंत्रमें चार पतियोंका उल्लेख है, तथापि यह मंत्र नियोग अथवा बहुपतित्वकी सिद्धि करता है ऐसा मानना असंगत है। क्योंकि इस बातकी सिद्धिके लिये तीनों पति भी 'मनुष्य-ज' होने चाहिये। यहां स्पष्ट मंत्रमें कहा है कि पहिले तीन पति मनुष्यज नहीं हैं, केवल चतुर्थ पति ही मनुष्य है। इस कारण इससे नियोग अथवा पुनर्विवाह सिद्ध होना असंभव है।

चतुर्थ मंत्रमें स्पष्ट कहा है कि सोमने यह कन्या गंधर्वके पास दी, गंधर्वने अग्निके सुपुर्द की और अग्निने मानवी पतिके हाथमें दी। इसलिये पहिले तीनों पति दैवी शक्तिके केन्द्र हैं यह सिद्ध है। मातापिताके घर रहती हुई कन्या बाल्य अवस्थामें इन देवताओंके आधीन रहती है किंवा इनका प्रभाव उसपर रहता है। जब विवाह होम होता है, तब वह हवनाग्नि इस कन्याको मानवी पतिके हाथमें देती है।

कई विद्वान् भी इस मंत्रपर ऐसी विचित्र कल्पना कर बैठे हैं, कि पूर्वकालमें विवाह होनेके पूर्व कन्याको सोम, गंधर्व और अग्नि संज्ञक जातियोंके पुरुषोंके पास रखा जाता था और तत्पश्चात् वह कन्या उनकी अनुमतिसे मानवको प्राप्त होती थी !! सचमुच यह कल्पना विचित्र और हास्यास्पद है। इस कल्पनासे तो व्यभिचार ही धर्म सिद्ध होता है ! परंतु हमें अभीतक सोम और अग्नि नामकी कोई जाति थी, इस विषयमें प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। अतः यह कल्पना निराधार एवं असंगत है।

इसके अतिरिक्त संपूर्ण वैदिक वाङ्मयमें स्त्रीको इतना स्वातंत्र्य भी नहीं दिया है। इस प्रकार अन्य पुरुषोंके पास जाकर रहनेके लिये उसको समय ही नहीं है। वेदमें किसी

भी अन्य स्थानमें इस तरह विवाहके पूर्व तीन पति होनेका निर्देश भी नहीं है, अतः यह भयानक कल्पना असत्य है। क्योंकि मंत्रमें स्पष्ट है कि मनुष्योंसे पूर्वके ये तीनों पति अमानुष हैं अर्थात् दैवत हैं। देवताओंका स्वामित्व किसी भी प्रकार दोषमय नहीं हो सकता। जैसे कोई भक्त अपने उपास्य देवको अन्न समर्पण करके पश्चात् वह अन्न स्वयं भक्षण करता है, उसमें उच्छिष्ट भक्षणका दोष नहीं होता, क्योंकि वह अन्न समर्पण एक भावनाकी बात है। इसी तरह मातापिता कन्याके बालकपनमें समझें कि अपनी कन्या इस समय सोमदेवताके प्रभावमें है, पश्चात् वह गंधर्व देवताके प्रभावमें होगी, तदनंतर वह अग्निदेवताके प्रभावमें होगी और तत्पश्चात् वह मानवी पतिके आधीन होगी। कुमारीका जीवन इस प्रकार देवतामय होना चाहिये। देवताओंके समीप होनेका अर्थ पवित्राचरणका होना है। यदि कोई मनुष्य राजाके समीप किंचित् काल रहेगा, तो वह उस समय अधिक पवित्र रहेगा, इसी तरह जब यह कन्या इन देवोंके पास रहेगी तो उसकी पवित्रता अधिक होनेमें कोई संदेह ही नहीं है। देवता सर्वज्ञ होते हैं। अतः अपना पाप उनसे छिपाना असंभव है, इस सब कथनका तात्पर्य यह है कि ये तीन दैवी पति केवल मनोभावनाके बलवृद्ध्यर्थ हैं। चतुर्थ मानवी पति ही सच्चा पति है। अर्थात् इस मंत्रपर जो अनेक पतिकी कल्पना की जाती है, वह निराधार है।

विवाहका समय

अगले दो मंत्रोंसे विवाहके समय वधू और वरकी आयु कितनी होनी चाहिये, अर्थात् कितनी आयुमें विवाह हो, इसका निर्णय हो सकता है। (सुमतिः आगन्। मं. ५) इस मंत्रभागसे यह ज्ञात होता है कि उत्तम बुद्धिके प्राप्त होनेके बाद ही विवाह हो, अथवा कहना चाहिए कि बुद्धिके परिपक्व हो जाने पर ही विवाह हो। इससे विद्याके संस्कार बुद्धिपर होनेकी बात सिद्ध होती है। उत्तम विद्या प्राप्त होने पर विवाहका विचार करना चाहिये। (हृत्सु कामाः अरंसत। मं. ५) हृदयमें कामने अपना स्थान जमाया हो। इतनी युवा अवस्था प्राप्त हुई हो, तब विवाह करना चाहिये। हृदयमें कामका बीज उत्पन्न होना चाहिये। (वाजिनी वसू) अन्न और धनसे युक्त होना चाहिये। तत्पश्चात् विवाह हो। विद्या प्राप्त होनेके पश्चात् धन प्राप्त करके जवानीमें विवाहका विचार करना चाहिये। (मिथुना शुभस्पती गोपा अभूतं) साथ साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले, उत्तम पालक संरक्षक जब हों, तब विवाहका विचार करें। (अर्य-

स्णः = अर्य-मनः) आर्य अर्थात् श्रेष्ठ मनवाले वधूवर हों; तब विवाहका समय होगा।

विवाहके समय स्त्री भी (मन्दसाना। मं. ६) आनन्द-प्रसन्न, आनन्दित चित्तवाली, (शिवेन मनसा) शुभ मन-वाली, कल्याणपूर्ण विचारसे युक्त हों। (सर्ववीरं वचस्य रयिं) सब प्रकारके वीरताके भाव उसमें हों, उत्तम वक्तृत्व उसमें हो और हर तरहकी शोभा वह धारण करे और (दुर्मतिं हतं) दुष्ट बुद्धिका नाश करे। इस तरह स्त्रीकी योग्यताके विषयमें निर्देश हमें मिलते हैं।

अर्थात् विवाहके समय स्त्री और पुरुष विद्या, धन, बल, सुविचार आदि गुणोंसे युक्त होने चाहिये। कुटुंबका सब भार सिरपर लेनेकी शक्ति उनमें होनी चाहिये। इस निर्देशका विचार करनेपर पता चलता है कि वधूवर युवावस्थामें ही विवाह करें अर्थात् बालकपनमें उनका विवाह न हो। वैवाहिक मंत्रोंका अर्थ और मंत्रोक्त प्रतिज्ञाका भाव समझने योग्य बुद्धिवाले वधूवर हों। वैदिक मंत्रोंमें मातापिताका अधिकार कुमार-कुमारिकाओंपर पूर्ण है, तथा कन्यादान भी वेदमें कहा है। इससे कुमार-कुमारियोंका स्वयंवर वेदको अभीष्ट नहीं है यह बात सिद्ध होती है। स्वयंवरका उल्लेख वेदमें किसी स्थानपर स्पष्टतया नहीं है। और कन्यादान-पद्धतिमें स्वयंवरका स्थान मिलना असंभव है। जहां स्वयंवर हो वहां कन्याका दान कैसे हो सकता है? कन्यादानकी प्रथा वैदिक होनेके कारण मातापिताका अधिकार कुमार कुमारीपर है और इस कारण मातापिताकी अनुमतिसे ही वैदिक विवाह हो सकता है। अतः जो समझते हैं कि वेदमें युरोपीयनोंके समान स्वयंवरकी रीति है और जो स्वयंवरको वैदिक विवाह कहते हैं और जो 'प्रथम दर्शनसे ही प्रेम' होनेकी संभावना वैदिक विवाहमें मानते हैं, वे सब वैदिक धर्मके उच्छेदक हैं। अस्तु। इस तरह वैदिक विवाहमें कुमार कुमारिकाओंका युवा और सुमनस्क होना सिद्ध है, तथापि मातापिताकी संमति भी उतनी ही प्रबल है यह बात विशेषतया ध्यानमें धारण करनी चाहिये।

आगे मंत्र ७ से ९ तक नवविवाहित वधूवरोंको आशीर्वाद दिया है। राक्षस, दुष्ट, दुराचारियोंसे वधूकी रक्षाकी प्रार्थना सातवें मंत्रमें है। सब मार्ग वधूके लिये सुरक्षित होनेका आशीर्वाद अष्टम मंत्रमें है। और नवम मंत्रमें यह इच्छा प्रकट की है कि वधूवरोंको गंधर्व, अप्सरस्, देवी आदि सुखदायक हों और इन वधूवरोंकी कोई हिंसा न करे।

यज्ञसे यक्ष्मनाश

दशम मंत्रमें यज्ञसे यक्ष्मरोगके नाश होनेका संदेश बडी काव्यमयी वाणीसे दिया है। उसका विचार किंचित् विशेष विचारके साथ करना उचित है।

> ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु।
> पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः॥
> (मं. १०)

'जो (यक्ष्मा) यक्ष्म रोग (जनान् अनु यान्ति) मनुष्योंके साथ साथ चलते हैं, वे (वध्वः चन्द्रं वहतुं) वधूके तेजस्वी बरातके रथके साथ यदि आ गये हों, तो (तान्) उन यक्ष्म रोगोंको (यज्ञियाः देवाः नयन्तु) यज्ञके देव दूर ले जावें, अर्थात् वधू या वरके साथ आने न दें।' यज्ञके देव अग्नि, वनस्पति आदि हैं, जिनसे यज्ञ होता है और यज्ञमें जिनका नामनिर्देश हुआ करता है। वे सब देव मनुष्योंके साथ आये यक्ष्म रोगोंको दूर करें। इस मंत्रके मननसे यह बात सिद्ध होती है कि जहां मनुष्योंकी भीड होती है वहां रोगी मानवोंके साथ यक्ष्मादि रोगके बीजोंका आना संभव है। बरातमें जहां सैकडों आदमी इकट्ठे होते हैं वहां किसको कौनसा रोग है इसका ज्ञान होना भी असंभव है। अतः ऐसे भीडके प्रसंगमें स्पर्शजन्य रोगकी बाधा होनेकी संभावना होती है, इसलिये ऐसे प्रसंगमें बृहत् हवन करके ऐसे यक्ष्मोंका शमन करना योग्य है। जहां जहां बरात जैसे बहुत मनुष्योंके समाज जमा होते हैं वहां वहां यही नियम ध्यानमें रखना योग्य है।

शत्रु दूर हों

ग्यारहवें मंत्रमें शत्रुको दूर करनेका उपदेश है। पूर्व मंत्रमें व्याधिरूप शत्रुको दूर करनेका उपाय कहा और इस मंत्रमें मानवी शत्रुओंको दूर करनेकी सूचना दी है। (परिपंथिनः मा विदन्) दुष्ट मार्गसे जानेवाले दुराचारी इस दंपतिको न प्राप्त हों। दुराचारी अनेक प्रलोभन बताकर मनुष्यको धोखा देते हैं, ठगते हैं, फंसाते हैं, लूटते हैं और अपना मतलब साधते हैं। अतः ऐसे दुष्टोंके संबंधसे नवविवाहित वधूवर तथा अन्य लोग भी दूर रहें। यह सर्व सामान्य उपदेश है। (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर भाग जावें, अनुदार मनुष्य जो इस नवविवाहित स्त्रीपुरुषोंको फंसानेके इच्छुक हों वे दूर हों। इनसे ये दंपति सुरक्षित रहें। तथा ये स्त्री पुरुष (सुगेन दुर्गं अतीतां। मं. ११) सुखपूर्वक सभी कठिन प्रसंगोंसे मुक्त हो जांय।

बारहवें मंत्रमें प्रार्थना है कि 'सबका उत्पत्तिकर्ता सविता-देव इस सब विश्वके रूपको इस पतिपत्नीके लिये सुखदायक बनावे।' अर्थात् यह सब विश्व इस दंपतिको सुख देवे, इससे दुःख न होवे। यहां पाठक स्मरण रखें कि जगत् के सब पदार्थ सुखदायक भी हो सकते हैं और दुःखदायक भी हो सकते हैं। अपने व्यवहारपर ही सुख या दुःखकी प्राप्ति अवलंबित है। अतः वधूवर ऐसे धार्मिक सुनियमोंसे व्यवहार करें कि जिससे उनको सदा सुख होता रहे और दुःख कदापि न हो।

विवाहमें ईश्वरका हाथ

तेरहवें मंत्रमें (धाता इमं लोकं अस्यै दिदेश। मं. १३) विधाताने यह पतिका स्थान इस वधूके लिये निर्दिष्ट किया है, ऐसा कहा है। इसका सरल आशय यह है कि जब स्त्री या पुरुष उत्पन्न होता है, तब उसके लिये विवाहकी योजना विधाताद्वारा निश्चित होती है। विधाताके संदेशको लेकर जो चलते हैं, उनके लिये यथायोग्य धर्मपत्नी मिलती है। जो स्वयं अपना हठ बीचमें लाते हैं, वे कष्ट भोगी हैं। जो ब्रह्मचर्य आजन्म पालते हैं उनका वह हेतु भी ईश्वरीय कृपासे ही सिद्ध होता है। जो विवाहेच्छुक होता है उनको उचित है कि वे अपना आचरण धर्मानुकूल रखें, उत्तम सुनियमोंका पालन करें और समयकी प्रतीक्षा करें। विधाताके निमयानुसार सुयोग्य वधूके साथ अवश्य संबंध होगा। धर्मानुकूल संयमपूर्वक व्रती मनुष्यका सब योगक्षेम ईश्वरीय नियमानुसार चलता है। जिसका परम पिता एकमात्र सहायक सखा होता है उनको किसी बातकी न्यूनता नहीं होगी।

(इयं शिवा नारी अस्तं आगन्) यह शुभ आचारवाली स्त्री पतिके घर आयी है। यह शुभ आचारवाली स्त्री ऐसे ही धर्मात्मा पुरुषको प्राप्त होती है और उसका गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक चलानेमें सहायक होती है। धर्मपत्नीका शुभ आचारवाली मिलना एक भाग्यका लक्षण है और वह धर्माचारसे ही सिद्ध होता है।

(देवाः प्रजया वर्धयन्तु। मं. १३) सब देव इस दंपतीको उत्तम संतानके साथ बढावें, सुसंतति देवें, अन्य सब प्रकारका भाग्य देवें और हरएक सुख इस दंपतिको मिले। यह सब ईश्वर भक्तिसे ही प्राप्त होता है। विधाताकी कृपासे ही यह होता है।

गर्भाधान।

विवाहके पश्चात् गर्भाधान प्रकरणका आना स्वाभाविक और क्रमप्राप्त है। उस संबंधका निर्देश १४ वें मंत्रमें है। (आत्मन्वती उर्वरा नारी) आत्मिक बलवाली, सुपुत्र या सुसंतान उत्पन्न करनेवाली होनेसे कठिन प्रसंगमें जिसका धैर्य नष्ट नहीं होता, ऐसी स्त्री होवे। 'उर्वरा' शब्द उपजाऊ अर्थमें यहां है। जिसप्रकार भूमि उत्तम उपजाऊ होती है, उसी प्रकार स्त्री भी उत्तम हृष्टपुष्ट सुमतियुक्त संतति उत्पन्न करनेवाली हो। रोगी संतति उत्पन्न न हो। जैसा आयुर्वेदमें कहा है वैसा आचरण स्त्रीपुरुष करेंगे, तो उत्तम संतति हो सकती है।

(तस्यां नरो बीजं वपत) ऐसी सुगुणी कुलवती, आत्मबलशालिनी उत्तम संतान उत्पन्न करनेमें समर्थ स्त्रीमें ही पुरुष गर्भाधान करे। किसी अन्य स्थानमें वीर्यका निक्षेप न करे। धर्मपत्नीको छोडकर किसी अन्य स्थानमें वीर्यका नाश करना सर्वथा अयोग्य, अधार्मिक और अवनतिकारक है। पुरुष (वृषभः) बैलके समान वीर्यवान् हो। वृषभ वृषण ये शब्द वीर्यदर्शक हैं। वीर्यवान् सुगुणी पुरुष ही गर्भाधान करे। रोगी, दुर्गुणी, निर्वीर्य पुरुष गर्भाधान करेगा तो उसकी संतान भी वैसी ही क्षीण और दीन होगी। अतः यह सावधानता आवश्यक है।

स्त्री अपने पतिके घर (विराड्) विशेष तेजस्विनी होकर अपने सब व्यवहार करे, (सरस्वती) विद्यादेवी की मूर्ति बनकर रहे अर्थात् विदुषी कहलवाने योग्य ज्ञानवाली बने। (सिनीवाली) विविध अन्नरस पास रखनेवाली गृहस्वामिनी बने। अपना पति (विष्णुः इव) साक्षात् विष्णुभगवान् ही है और मैं उसकी धर्मपत्नी हूं ऐसा भाव मनमें रखे। जैसे विष्णु सब जगत्का पालनहारा है, वैसे ही मेरा पति भी अपने परिवारका उत्तम पालक है यह विचार मनमें रखकर पतिके विषयमें बडा आदरका भाव अपने अंतःकरणमें रखे। और (भगस्य सुमतौ असत्। मं. १५) अपने पतिकी उत्तम मतिमें अपने आपको रखे अर्थात् उसके विषयके उत्तम विचार मनमें धारण करे और उसके मनमें अपने विषयमें उत्तम विचार रहें ऐसा अपना आचरण करे। पति भी अपनी स्त्रीके विषयमें बडा आदर रखे। इस तरह पतिपत्नी परस्परका सत्कार करते हुए गृहस्थधर्मका पालन करें।

पतिपत्नीकी व्यवहारशैली ऐसी हो कि उनमें आपसमें झगडा न हो, शान्तिका भंग न होवे। दोनो बडे प्रेमके साथ मिलजुलकर रहें। (अदुष्कृतौ) दोनों पति और पत्नी बुरा कामधंदा, दुराचार कभी न करें, सदा अच्छे शुभ कर्मोंमें दत्तचित्त रहें, (वि-एनसौ) वे दोनों सदा निष्पाप

रहें, कभी प्रमादसे भी पापमार्गमें न प्रवृत्त हों, (अशुनं मा आर्ताम् ।) अशुभ व्यवहार कभी न करें। दोनों मिलजुलकर परस्परको धर्म करनेमें सहायता देते हुए अपने उन्नतिके मार्ग पर चलें।

पतिके घरमें पत्नीका व्यवहार

अब पतिके घरमें स्त्रीका निवास स्थिर होकर गर्भधारणा होती है तब वधूका दिल पतिघरमें जम जाता है। तबतक वह अपने पिताके घरका स्मरण करती है। जब गर्भधारण होता है तब पतिके घर पर प्रेम बढ जाता है। ऐसी अवस्थामें वह नारी पतिके घरमें किस तरह व्यवहार करे, इस विषयमें उत्तम उपदेश मंत्र १७ से प्रारंभ होता है।

(अ-घोर-चक्षु) क्रूर दृष्टि करनेवाली स्त्री न बने, सदा सौम्य आनंद प्रसन्न दृष्टिसे अपने घरके कार्य करती रहे, किसीपर क्रोध न करे, वक्र (टेढी) दृष्टिसे किसीकी ओर न देखे, (अ-पति-घ्नी) पतिका घात, अपमान तथा विरोध कभी न करे, सदा पतिके हितमें दक्ष रहे; (स्योना शिवा) स्त्री सबको सुख देवे, सबका हित करे, सबका कल्याण करनेके कार्योंमें दत्तचित रहे; (शग्मा) सदा शुभ कार्य करे, सर्वहितकारी कार्योंमें अपने मनकी लगन रखे, (सु-यमा) स्त्री अपने पतिके घरमें उत्तम धर्मनियमोंके अनुकूल आचरण करे, कभी अनियमका आचरण न करे, (सु-सेवा) गुरुजनोंकी सेवा उत्तम रीतिसे करे, सेवा करनेवालोंपर क्रोध न करे, प्रसन्नतासे सेवकोंके साथ बर्ते, (वीरसूः, प्रजावती) वीर संतान उत्पन्न करनेके लिये जो जो पथ्य व्यवहार करना आवश्यक हो, वह करती रहे, अपने मनमें वीरताके विचार धारण करे और बालकपनमें अपनी संतानोंको वीरताकी शिक्षा देती रहे। इस तरह अपनी संतानको सुवीर बनानेके लिये जो जो उपाय करना आवश्यक हो वह करती जाय। (देवृ-कामा, अ-देवृ-घ्नी) अपने पतिके भाइयोंका हित करे, उनसे कभी द्वेष न करे, देवरका कभी घात न करे, (सुमनस्यमाना) अन्तःकरणमें उत्तम भावना रखनेवाली तथा उत्तम मनोवृत्तिवाली स्त्री हो, अर्थात् विद्या और सुनियमोंके द्वारा स्त्री अपना मन उत्तम, शांत, गंभीर और विनययुक्त बनावे और घरमें सबके मन अपनी ओर आकर्षित करे। (सुवर्चाः) स्त्री उत्तम तेजस्विनी बने, घरकी शोभा बनकर पतिके घरमें रहे, (पशुभ्यः शिवा) पशु आदियोंका भी हित गृहिणी करे, पशुओंको घास दानापानी मिला है या नहीं, उनका आरोग्य कैसा है इत्यादि विचार कर इस संबंधमें जो आवश्यक कर्तव्य हो वह करे। (गार्हपत्यं सपर्य) गार्हपत्याग्निमें प्रतिदिन हवन करे, ईश्वर उपासना करे। आगे मं. २६ और २७ में भी यही विषय पुनः आया है। उसमें इसी तरह गृहपत्नीके कर्तव्य शब्दोंद्वारा इसी तरह कहे हैं; स्त्री (सुमंगली) उत्तम मंगल करनेवाली शुभमंगल कामनावाली, (प्र-तरणी) दुःखसे पार होनेवाली (सुसेवा) उत्तम सेवा करनेवाली, उत्तम सेवनीय, (पत्ये श्वशुराय शंभूः) पतिका और ससुरका हित करनेवाली, (श्वश्र्वै स्योना) सासका सुख बढानेवाली, (श्वशुरेभ्यः, गृहेभ्यः पत्ये, अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना) ससुर, घरवाले पति और सब पारिवारिक लोगोंके लिये सुख देनेवाली गृहिणी हो।

दरिद्रताको दूर करो

पतिके घर धर्मपत्नीका प्रवेश होनेके पश्चात् वधू और वरका मिलकर प्रयत्न इसलिये होना चाहिये कि अपने घरका दारिद्र्य दूर हो। इस विषयका संदेश देते हुए १९ वें मंत्रमें कहा है कि—

हे निर्ऋते! प्रपत, इह मा रंस्थाः। अभिभूः स्वात् गृहात्। त्वा ईडे। (मं. १९)

वधू और वर कहें कि ' हे दरिद्रते! हमसे दूर भाग जा यहां हमारे घरमें न रह, मैं तेरा पराभव करूंगा। और अपने घरसे तुझे निकाल दूंगा, यह सच सच कहता हूं। ' इस प्रकारके निश्चयपूर्ण वाक्य दरिद्रतासे कहे जांय। इसका तात्पर्य यह है कि पति और पत्नी अपने घरका दारिद्र्य दूर करनेका निश्चय करें और तदनुसार प्रयत्न करें।

बडोंको नमस्कार

बीसवें मंत्रमें कहा है कि, जब वधू अग्निकी पूजा करे और अपनी ईश्वरोपासना समाप्त करे, तब वह (पितृभ्यः नमस्कुरु। मं. २०) अपने घरके बडे स्त्री पुरुषोंको नमस्कार करे और पश्चात् अपने कार्यमें लगे। यहां एक बडा भारी वैदिक आदर्श दर्शाया है। स्त्री प्रातःकाल उठे शरीरशुद्धिके स्नानादि कर्म करे, ईश्वर उपासना हवन आदिसे निवृत्त होकर अपने घरके बडे लोग अर्थात् पति, पतिके मातापिता उसके बडे भाई तथा अन्यान्य गुरुजन जो भी घरमें हों उनको यथायोग्य रीतिसे नमस्कार करे, उनका आशीर्वाद लेवे और पश्चात् अपने कार्यमें लगे। यह नियम न केवल नव वधूके लिये ही उत्तम है, अपितु यह घरके सब कुमार कुमारिकाओंके लिये भी अत्यंत उत्तम है।

इस तरह गुरुजनोंको सबेरे नमस्कार करना यह एक

(शर्म वर्म एतत्। मं. २१) सुखदायक और संरक्षक कवच है। यह रीति अनेक आपत्तियोंसे कुमारों और कुमारिकाओंकी रक्षा करती है। अतः इस पद्धतिका प्रचार आर्यगृहोंमें होना युक्त है।

(सूचना— मंत्र १५ वें का दूसरा भाग यहां मंत्र २१ में पुनः आया है।)

नववधू ईश्वर उपासना और अग्निमें हवन करनेके समय चर्मपर– प्रायः कृष्णाजिन पर–बैठे और अपनी उपासनाका कार्य करे। (देखो मं. २२–२४)

रोहिते चर्मणि उपविश्य सुप्रजा अग्निं सपर्यतु। (मं. २३)

'कृष्णाजिनपर बैठकर उत्तम प्रजा निर्माण करनेवाली स्त्री अग्निकी उपासना करे' अग्निकी उपासना करनेका लाभ वेदमंत्रने इस तरह बताया है—

एष देवः सर्वा रक्षांसि हन्ति। (मं. २४)

'यह अग्नि देव सब रोगबीजरूपी राक्षसोंका नाश करता है' और कुटुंबियोंको नीरोगी बनाता है। यह अग्नि उपासनाका महत्त्व है। अतः हवन प्रत्येक कुटुंबमें होना चाहिये। इस तरह जो स्त्री करती है उसका (सुज्येष्ठः पुत्रः। मं. २४) उत्तम श्रेष्ठ पुत्र होता है। सुप्रजा निर्माण करनेके लिये ईश्वर उपासनाकी अत्यंत आवश्यकता है, इससे मातापिता और कुटुंबियोंके मन सुसंस्कार संपन्न होते हैं और उसका परिणाम सुप्रजा निर्माण होनेमें होता है। २५ वें मंत्रमें भी इसी कारण पुनः—

प्रतिभूष देवान्। (मं. २५)

'देवोंको सुभूषित करो' ऐसी आज्ञा दी है। ईश्वरोपासना करनेके लिये ही यह आज्ञा प्रेरित करती है। देवताओंको आभूषणोंसे सुभूषित करो, यह आज्ञा यहां है। मातृदेव, पितृदेव, अतिथिदेव, पतिदेव आदि अनेक देव घरमें होते हैं, उनको सुभूषित करनेके विषयमें यह आज्ञा होना संभवनीय है। घरमें जो जो देवता हों उनकी शोभा बढाना गृहस्थियोंका परम कर्तव्य ही है।

कई लोग 'देवताओंकी मूर्तियोंकी सजावट करो' ऐसा इस मंत्रका अर्थ मानते हैं और इस मतके लोग कहते हैं कि वेदमें इंद्रादि देवताओंकी मूर्तियां वर्णित हैं, इस विषयमें उनके प्रमाण ये होते हैं—

क इमं दशभिर्ममेंद्रं क्रीणाति धेनुभिः। (ऋ. ४।२४।१०)

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥ (ऋ. ८।१।५)

'(इमं इन्द्रं) इस इन्द्रको (दशभिः धेनुभिः) दस गौवें देकर (क्रीणाति) खरीद लेता है। मैं सैंकडों और सहस्रों गौवें मिलनेपर भी (शुल्काय न परा देयां) अथवा बहुतसा मूल्य मिलनेपर भी इस इन्द्रको नहीं बेचूंगा।' इन मंत्रोंसें ये लोग कहते हैं कि इन्द्रकी मूर्ति खरीदने और बिकनेका उल्लेख है। श्री० बाबू अविनाशचन्द्र दास एम्. ए., पीएच्. डी. ने अपनी 'वैदिक कल्चर' नामक पुस्तकमें पृ. १४५-१४८ पर इन मंत्रोंका विचार किया है। अन्तमें उन्होंने इतने मंत्र देकर भी वेदमें निःसन्देह मूर्तिपूजा है ऐसा अपना मत नहीं दिया। इसलिये उनके मतसे भी वेदमें मूर्तिपूजाका होना सिद्ध नहीं हुआ। अतः जिस विषयमें इस पक्षके उत्थापकको ही संदेह है उस विषयका खंडनमंडन हमें यहां करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हमने यह मत यहां इसलिये दिया है कि इन मंत्रोंपर पूर्वोक्त बाबू महाशय यह कल्पना करते हैं। जो पाठक खोजकी दृष्टिसे अध्ययन करते हों वे इन मंत्रोंका अधिक विचार करें। उक्त बाबू महाशयजीका और भी कथन यह है कि (ऋ. ८।६९। १५-१६ जैसे) मंत्रोंमें जहां इन्द्रके रथमें बैठनेका उल्लेख है वहां इन्द्रमूर्तिका रथपर सवार होना ऐसा अर्थ समझना चाहिये। यदि इस तरह कल्पना करनी हो तो प्रायः सभी देवताओंकी मूर्तियां वेदमें वर्णित हैं, ऐसा ये कह सकते हैं, क्योंकि वेदमें अनेक देवताओंके वर्णनोंमें उनके रथमें बैठनेका वर्णन है। देवताके रथमें बैठनेका आध्यात्मिक अर्थ क्या है इसकी चर्चा हमने 'वैदिक अग्निविद्या' नामक पुस्तकमें अग्निदेवताके विषयमें की है। इसी प्रकार इन्द्रदेवतापर स्वतंत्रतया एक पुस्तक लिखकर उसमें इन्द्रदेवताके रथपर बैठनेका आशय क्या है इसका विचार किया है। वह विचार यहां संक्षेपसे कहनेसे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इसलिये वह विषय हम यहां नहीं लेते। हमारे विचारसे यहांके 'देवान् प्रति भूष' का अर्थ अपने परिवारमें जो गुरुजन हैं उनको सुभूषित करो, ऐसा है। आगे खोज होकर जो बात सिद्ध होगी वह प्रकाशित करेंगे। अस्तु।

उक्त प्रकारकी सुमंगल वधूको सज्जन स्त्रीपुरुष देखें और आशीर्वाद दें, उसका भला चाहें और उसकी सहायता करें, यह भाव २८ वें मंत्रका है। जो दुष्ट हृदयवाली (दुर्हार्दः युवतयः) स्त्रियां तरुणोंको धोखा देती रहती हैं और उनको

कुमार्गमें प्रवृत करती हैं, ऐसी दुष्ट युवतियां इस नव विवाहित वधूवरके समीप न आवें। अर्थात् ऐसी दुष्ट स्त्रियोंके और दुष्ट पुरुषोंके प्रभावसे ये नवविवाहित स्त्रीपुरुष बचे रहें।

गुप्त बात

इसके पश्चात् मंत्र ३० से मंत्र ४० तक स्त्रीपुरुष संबंधका अर्थात् गर्भाधान प्रसंगका वर्णन है। इसमें उत्तम मनन करने योग्य अनेक निर्देश हैं, तथापि यह विषय केवल गृहस्थियोंके ही उपयोगी हैं और ब्रह्मचारी इसको पढ नहीं सकते, अतः यह गुह्य विषय है। इस कारण इसका विवरण हम यहां नहीं करते। जो पाठक इसको जानना चाहें वे मंत्रके अर्थसे विचार करके जानें।

वधूका वस्त्र

वधूके विवाहके समय ज्ञानी ब्राह्मणको वस्त्रका दान करनेका आदेश मंत्र ४१ और ४२ में है। यह वस्त्र देना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह (ब्रह्मभागः) ब्राह्मणका भाग है, दान (देवैः दत्तं) देवोंद्वारा दिया था (मनुना साकं) मनुके साथ यह प्रथा है, या मनुके साथ यह वस्त्र आया है, यह (ब्रह्मणे) ब्राह्मणको देने योग्य दान है। (चिकितुषे ब्रह्मणे यः ददाति) जो ज्ञानी ब्राह्मणको इस वस्त्रका दान करता है उसको लाभ होता है। इस तरह वस्त्रदानकी महिमा इन मंत्रोंमें वर्णन की है। ब्राह्मणोंको इस तरह वस्त्रदान किये जायें यह इसका तात्पर्य है। विद्वान् ब्राह्मणोंको ऐसे दान देकर उनका योगक्षेम चलाना चाहिये, यह उपदेश यहां इन मंत्रोंसे मिलता है। यह गृहस्थियोंपर एक प्रकारका धार्मिक भार है। इस प्रकारके दान गृहस्थी देते रहेंगे तो उस दानसे बडे बडे गुरुकुल चल सकते हैं और विद्याका प्रसार भी बडा हो सकता है।

गृहस्थियोंके घर

४३ वें मंत्रसे गृहस्थियोंके घर कैसे हों, इस विषयके आदेश मिल सकते हैं। (सुगृहौ) स्त्री पुरुष उत्तम घरमें रहें, घर अंदर बाहरसे उत्तम सुव्यवस्थित हो, जैसा वैसा न हो, प्रत्येक कमरा और घरके बाहरका भाग सब यथायोग्य स्वच्छ, सुंदर और सुडौल हो। (स्योनात् योनेः अधि बुध्यमानौ) स्त्रीपुरुषोंका शयन करनेका कमरा अत्यंत सुखदायक हो, गर्मीके दिनोंमें वह शान्त रहे और शीतके दिनोंमें वही सुखदायक बने, वृष्टिसे कोई कष्ट उसमें रहनेवालोंको न हो। ऐसे सुखदायी कमरेमें गृहस्थी स्त्री पुरुष सोया करें। इस कमरेका वातावरण उत्तम होनेसे जो स्त्री पुरुष उसमें सोयेंगे, उनको उत्तम निद्रा आवेगी और वे ब्राह्ममुहूर्तमें (अधि बुध्यमानौ) अपने शयनमंदिरसे उठ सकते हैं और अपने धर्मकर्मको प्रारंभ कर सकते हैं। वे स्त्री पुरुष अपने सुंदर मंदिरमें रहें और (हसामुदौ) हास्यविनोद करते हुए अपना दैनिक व्यवहार करें। कभी किसीपर क्रोध द्वेष आदि विकारयुक्त आचरण न करें। आनंदके साथ रहें, (महसा मोदमानौ) महत्त्वके ज्ञानके साथ आनंदप्रसन्न रहें। उन स्त्रीपुरुषोंके पारस्परिक व्यवहारसे ऐसा प्रतीत हो कि वे बडे आनंदसे अपना व्यवहार कर रहे हैं। उनके मुखारविंदसे उनका आनन्द व्यक्त हो।

(सु–गू) उत्तम गौवोंका पालन करनेवाले ये गृहस्थी हों, घरमें दूध देनेवाली उत्तम उत्तम गौवें हों, उनका दूध दही, छाछ, मक्खन, घी आदि कुटुंबियोंको प्रतिदिन प्राप्त होता रहे और वे उनका सेवन करके हृष्टपुष्ट और आनंदित होते रहें। 'सु–गू' शब्दका दूसरा अर्थ उत्तम इंद्रियोंसे युक्त ऐसा भी है। ये स्त्री पुरुष अपने उत्तम घरमें रहते हुए ब्रह्मचर्यादि सुनियमोंका पालन करके अपने इंद्रियोंको उत्तम अवस्थामें रखें। (सु–पुत्रौ) जिनके उत्तम बाल बच्चे हों, वे उत्तम सुशिक्षासे संपन्न हों। सुसंतान उत्पन्न करना और उनको यथायोग्य रीतिसे सुसंस्कारयुक्त करना प्रत्येक गृहस्थीका कर्तव्य है। विशेष प्रबंधके साथ रहनेसे उत्तम संतान उत्पन्न हो सकती है। इस तरह सब गृहस्थी अपने घरमें आनंद प्रसन्न रहें और अपने दीर्घायुकी प्राप्तिका साधन करें। यहां उत्तम घरका आदर्श बताया है।

(अण्डात् पतत्री एव) जैसे अण्डेसे पक्षी मुक्त होता है, और स्वेच्छासे आकाशमें संचार करनेका आनंद प्राप्त करता है, उस प्रकार प्रत्येक गृहस्थी प्रयत्न करके (विश्वस्मात् एनसः परि अमुक्षि। मं. ४३) सब पापसे मुक्त होकर विचरे। यही प्रत्येक गृहस्थीका आदर्श होवे। मैं निष्पाप बनूंगा ऐसा निश्चय प्रत्येक गृहस्थी करे और उस सिद्धिके लिये अपने प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करे। प्रतिदिन (नवं वसानः) नया अर्थात् धोया हुआ स्वच्छ वस्त्र पहने और (सुवासाः) उत्तम शोभायमान वस्त्रोंसे अपने आपको सुशोभित करे। अपने शरीरकी सजावट करे। शरीरकी सुंदरता बढानेके यत्नमें दत्तचित्त रहे। इस विषयमें उदास न रहें। स्त्री पुरुष सुंदर वस्त्रों और सुंदर आभूषणोंसे अपने शरीर अधिकसे अधिक सुंदर और रमणीय तथा दर्शनीय बनावें। (सुरभिः) सुगंध, चंदन, इत्र आदि धारण करके आनंद प्रसन्न रहें। शरीरपर दुर्गंधियुक्त कोई पदार्थ न हो।

स्नानसे प्रतिदिन शरीर दुर्गंधिरहित किया जावे। इस प्रकार सुंदर बनकर स्त्री पुरुष अपने घरसे (विभातीः उषसः उद्गाः) प्रकाशमान उषःकालमें ही अपने घरसे बाहर निकल पडें। प्रातःकाल स्नान उपासनादिसे निवृत्त होकर इस शुभ समयमें कुछ भ्रमण करें। उषःकालमें कोई स्त्री या पुरुष बिस्तरेपर न सोता रहे। इस प्रकारका आलसी गृहस्थी कोई न रहे। सदा उद्यमी, प्रयत्नशील और सुसंस्कार संपन्न ऐसे गृहस्थी प्रशंसनीय रीतिसे अपने शुभ कर्ममें दत्तचित्त रहें।

प्रत्येक गृहस्थी की इच्छा हो कि (नः अंहसः मुंचन्तु। मं. ४८।४५) हम सब पापसे मुक्त हों। गृहस्थियोंको सदा अपने आचारशुद्धताका ही विचार करना चाहिये, क्योंकि गृहस्थाश्रममें सदा धनकी आवश्यकता होती है और उस कारण मनुष्यके बुरे व्यवहारमें फंस जानेकी संभावना अधिक होती है। अतः पापसे बचनेका विचार गृहस्थाश्रमवासियोंके मनमें सदा रहना उचित है। यदि यह विचार उनके मनमें रहे तो कठिन प्रसंगमें सावधान रह कर पापसे अपना बचाव कर सकते हैं।

द्यावापृथिवी ये दो लोक कैसे नियमसे अपना कर्म कर रहे हैं, यह सब गृहस्थी देखें। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, तारागण आदि सब अपनी कक्षामें भ्रमण कर रहे हैं, कभी दूसरे के कार्यक्षेत्रमें नहीं जाते, कभी आलस्य नहीं करते और कभी अपना कर्म छोडते भी नहीं। सब ऋतु और सब काल यथायोग्य रीतिसे हो रहे है, कहीं कोई शिथिलता नजर नहीं आरही। यह सृष्टिचक्र देखकर गृहस्थी लोग अपने मनमें निश्चय करें कि हम भी वैसा ही आचरण करेंगे और इस सृष्टिमें रहने योग्य बनेंगे। (महिव्रते) महान् नियमोंका पालन करनेसे ही मनुष्य सुयोग्य बन सकता है। मनुष्य अपनी विशेष उच्च योग्यता बनानेके लिये वह सुयोग्य धर्मनियमोंके अनुकूल रहकर विशेष प्रभावशाली बनें।

(ये प्रचेतसः, तेभ्यः नमः। मं. ४६) जो विशेष ज्ञानी हैं उनको नमन करना चाहिये। क्योंकि नमनपूर्वक उनके समीप जानेसे वे ज्ञानोपदेश देते हैं ओर उस ज्ञानसे मनुष्य कृतार्थ हो सकता है।

ईश्वरके अद्भुत कार्यका वर्णन मं. ४७ में किया है। ईश्वर बिना चिपकाये और बिना सुराख किये संधियोंको जोड देता है। अपने शरीरमें सब हड्डियाँ एक साथ जोड रखी हैं, वहां कोई सुराख नहीं है, न किसी स्थानपर चिपकाया ही है। यह अद्भुत रचना कौशल्य परमेश्वरका है। (विह्रुतं पुनः निष्कर्ता) हमारी जीर्णताको पुनः ठीक करनेवाला है। अतः इसको नमन करके इसकी शक्तिको अपने अनुकूल करनेका यत्न करना चाहिये। उपासनासे ही यह सब साध्य हो सकता है।

मंत्र ४८ में कहा है कि (तमः अस्मत् अप उच्छतु। मं. ४८) अंधकार हम सबसे दूर रहे। अंधकार सात्विक, राजस और तामस होनेसे अनेक प्रकारका होता है। आत्मिक, बौद्धिक, मानसिक और इंद्रियविषयक अंधकार परस्पर भिन्न है। यह सब अंधकार हम सबसे दूर हो, हममेंसे किसीके पास यह अन्धकार या इस विषयका अज्ञान न रहे। क्योंकि सब प्रकारके दोष और सब प्रकारकी अधोगतियां अज्ञानके कारण होती हैं, और अज्ञानके दूर होने तक उनके दोषोंसे बचना असंभव है। अतः सब प्रकारके अज्ञानको दूर करनेका प्रयत्न करना प्रत्येकका कर्तव्य है। इसी तरह (यावतीः कृत्याः) जो घातक विचार हैं, (यावन्तः पाशाः) जो अनेक प्रकरके बंधन हैं, (याः व्यृद्धयः याः असमृद्धयः) जो दरिद्रताएं और असमृद्धियां हैं उन सबको दूर करना चाहिये। गृहस्थियोंके ये कर्तव्य मंत्र ४९. में इस प्रकार बताये गए हैं। घातक विचार और दरिद्रताके आचार सबके सब दूर करने चाहिये और अहिंसाके भाव, स्वतंत्रताके विचार और संपन्नताके आचार अपनेमें लानेका यत्न करना चाहिये। मनुष्यके जैसे विचार होते हैं वैसा ही आचार वह करता है और वैसा ही बनता है। इसलिये इस दृष्टिसे यह मंत्र बडा बोधप्रद है।

स्त्रियोंका बनाया वस्त्र।

वस्त्र बुनना घरेलू धंदा बने। अन्य वस्त्र कोई न पहने। मंत्र ५० और ५१ में स्त्रियोंके द्वारा बनाया वस्त्र परिधान करनेको कहा है।

यत् पत्नीभिः उतं वासः तत् नः स्योनं उपस्पृशात्। (मं. ५१)

'जो हमारी स्त्रियोंद्वारा बुना हुआ वस्त्र है वही हमें सुखस्पर्श देनेवाला प्रतीत हो।' उसकी (अन्ताः सिचः) किनारियां और धारियां उसके (ओतवः अन्तवः) ताने और बानेके धागे हमें सुख देनेवाले हों। अर्थात् सब घरकी स्त्रियां अपने घरका वस्त्र बनावें, घरमें सूत काता जावे, उसका ताना बाना घरमें बने, किनारियां और धारियां सुंदरसे सुंदर घरमें ही बनायीं जाय, और ऐसा घरमें बुना वस्त्र घरके स्त्रीपुरुष पहने, उनको अपना घरेलू वस्त्र पहननेमें बडा अभिमान हो। अपने घरके लोगोंके द्वारा बनायें गए वस्त्रको पहननेमें कोई न डरे। वही वस्त्र पहननेमें हरेकको

प्रेम और आनंद प्राप्त होवे। अपने घरमें बनाया वस्त्र न पहन कर और परकीयों द्वारा बनाया वस्त्र पहन कर (वयं मा रिषाम मं. ५०) हममेंसे कोई भी नाशको न प्राप्त होवे। क्योंकि अपना बनाया वस्त्र न पहन कर और परकीयोंद्वारा बनाया वस्त्र पहननेसे निःसन्देह नाश होगा। इस नाशसे गृहस्थियोंके बचावका एक मात्र उपाय यह है कि प्रत्येक घरमें सूत काता जाय और उसका वस्त्र बनाकर वही उस घरके लोग पहनें। आपत्तिसे बचनेका और संपत्तिमान् बननेका एक मात्र उपाय यह है। प्रत्येक घरमें इस वैदिक धर्मके आदर्शका पालन होता रहे। अपने बनाये वस्त्रमें कोई मनुष्य घृणा न करे और परकीयों द्वारा बनाये वस्त्रपर कोई मनुष्य प्रेम भी न करे। यही एकमात्र साधन उद्धारका है।

मंत्र ५२ में कहा है कि ' पतिकी इच्छा करके पतिके घरमें पहुंचनेवाली कन्या इस दीक्षाव्रतका पालन करे। यह दीक्षाव्रत स्वयं सूत कांतना और उसका वस्त्र घरवालोंके लिये बनाना है। जो स्त्री इस व्रतका पालन करेगी वही दीक्षाको धारण करनेवाली होगी और कुलका उद्धार करेगी। परंतु जो स्त्री स्वयं तो सूत कातेगी नहीं और परकीयोंद्वारा बनाये वस्त्र पहननेका आग्रह करेगी, वह अपने घरमें स्वयं दरिद्रताको बुलावेगी। इसलिये घरके पारिवारिक स्त्रीपुरुषोंको उचित है कि वे सबके सब इस दीक्षाव्रतको धारण करें और इस व्रतका पालन करके उन्नतिको प्राप्त हों। वेदका यह आदेश सब गृहस्थियोंके लिए है। जो इसका पालन करेंगे वे अभ्युदय प्राप्त करेंगे और जो इससे विमुख होंगे वे असफल जीवनमें गिर जायेंगे।

गौवोंका यश

मंत्र ५३ से ५८ तक गौवोंके यशका वर्णन है। सब गृहस्थियोंको उचित है कि वे अपने घरमें गौवोंका पालन करें और उनका ही दूध, दही, मक्खन, घी आदिका सेवन करें। गौवोंका (वर्चः) तेज, (तेजः) फुर्ती, (भगः) ऐश्वर्य, (यशः) यश, (पयः) दूध, (रसः) अन्नरस है। गौवोंके दूधसे इनकी प्राप्ति मनुष्यको होती है। इसके अतिरिक्त शुद्ध गौका मूत्र, गोमय आदि भी औषधि गुणोंसे युक्त है। इन सब पदार्थोंद्वारा गौ मनुष्योंको सुख देती है। ये सब लाभ गौका घरमें पालन करनेके बिना नहीं हो सकते। अतः गृहस्थियोंको अपने घरमें गौवोंकी पालना करके वर्चस्वी, तेजस्वी, भगवान् और यशस्वी होना चाहिये।

आगे मंत्र ५९ से ६२ तकके मंत्रमें पापसे बचनेका उपदेश किया है जो अपने (केशिनः) बाल बढाते हैं, (अघं कृण्वन्तः) पाप करते हैं, (रोदेन समनर्तिषुः) रोते हैं। नाचते कूदते हैं। स्त्रियां (विकेशी) बालोंको खोलकर घरमें रोती पीटती हैं, आक्रोश करती हैं। घरकी स्त्रियां घरमें जिस कारण आक्रोश करती हैं, नाना प्रकारके पातक करती हैं। ये सबके सब पापकारी लोग हैं और वे समाजसे दूर होने योग्य हैं। जो पापकारी भाव हैं वे मनसे दूर हों और जो पापकारी मानव हैं वे समाजसे दूर हों। इस तरह पापी विचारोंसे मन शुद्ध हो और पापी जनोंसे समाज शुद्ध हों। और मनसे और समाजसे रोने पीटनेका मूल कारण दूर हो जावे और संपूर्ण समाजमें आनंद प्रसन्नता निवास करे। यही गृहस्थधर्मका ध्येय है।

मंत्र ६३ और ६४ में कहा है कि (मे पतिः दीर्घायुः अस्तु) मेरा पति दीर्घायु हो यह स्त्रीकी इच्छा हो, स्त्री कभी अपने पतिका अहित न चाहे। पतिका हित करनेमें सदा दक्ष रहकर उसके दीर्घायुका चिंतन करती रहे। (चक्रवाका इव दम्पती) जैसे चक्रवाक पक्षी रहते हैं, आपसमें प्रेमके साथ विहार करते हैं वैसे ही स्त्रीपुरुष गृहस्थाश्रममें प्रेमके साथ रहें। पत्नीके लिये एक मात्र पति और पतिके लिये एक पत्नीकी स्थिति गृहस्थाश्रमियोंमें होवे। उनमें व्यभिचारादि दोष उत्पन्न न हों। एक दिलसे और एक विषयसे वे गृहस्थाश्रममें रहें। इस प्रकार (सु= अस्तकौ) अपने उत्तमोत्तम घरबार करके उसमें रहें और (विश्वं आयुः व्यश्नुतां) सब पूर्ण आयु व्यतीत करें। इस तरह गृहस्थाश्रममें पति और पत्नी सुखसे रहें और आनंद प्रसन्नताके साथ गृहस्थधर्मका कार्य चलावें।

आगे मंत्र ६५ से ६७ तकके तीन मंत्रोंमें विशेष रीतिसे कहा है कि जो विवाहादिके समय (कृत्यां) घातक विचार किये हों, जो (दुष्कृतं, दुरितं) जो दुराचार अथवा पापविचार हुए हों, जो (मलं) मलिन आचार तथा (दुरितं) बुरे व्यवहार हुए हों, वे सबके सब हमसे दूर हों और हम (शुद्धाः यज्ञियाः अभूम) शुद्ध, पवित्र और पूज्य बन जांय और (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमें दीर्घ आयु प्राप्त हों। साधारणतः यह नियम है कि बडे उत्सवोंमें, विवाह जैसे मंगल कार्योंमें जहां अनेकानेक बुरे भले मनुष्योंका संबंध आता है, वहां किसी न किसी रीतिसे कुछ न कुछ हीन आचार हो ही जाया करते हैं, कुछ दोष होते रहते हैं। उनसे अपने आपको बचानेका उद्योग करना चाहिये और

शुद्ध पवित्र और यज्ञके लिये योग्य बननेका यत्न प्रत्येक गृहस्थीको करना चाहिये। यदि पूर्व समयमें कुछ दोष हो भी गये हों, तो उनकी चिंता करनेमें समय व्यतीत न करते हुए आगेके समयमें आत्मशुद्धि करनेके प्रयत्नमें दत्तचित्त होना चाहिये। इस तरह शुद्ध और पवित्र बनकर गृहस्थियोंको आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहिये।

बालोंकी पवित्रता

स्त्रियोंके केशोंकी स्वच्छता और पवित्रता करनेका उपदेश मंत्र ६८ और ६९ में है। (**कंटकः अस्याः केश्यं मलं अपलिखात्।** मं. ६८) कंघा इस स्त्रीके केशोंके मलको दूर करे। यह प्रतिदिनका कार्य है। स्त्रीको उचित है कि वह अपने बाल खोलकर उत्तम स्वच्छ तेल लगावे और कंघेसे सब बाल स्वच्छ करे और फिर केशोंका प्रसाधन यथेष्ट रीतिसे करे। चार या आठ दिनोंमें एक या दो बार अपने बाल किसी मलनिवारक साधनसे पानीके साथ धोकर, पवित्र वस्त्रसे पानी दूर करके बालोंको सुखावे और फिर कंघा करके केशप्रसाधना अच्छी प्रकार करे। केशोंकी निर्मलता रखना स्त्रियोंके लिये एक आवश्यक कर्म है। जिस स्त्रीके केशोंमेंसे दुर्गंधी आती है, वह स्त्री धर्मकर्मके लिये अयोग्य समझी जाती है। इसलिये स्त्रीका केशप्रसाधन कर्म एक अत्यंत आवश्यक कर्म है।

स्त्रीके (**अंगात् अंगात् यक्ष्मं अपनिदध्मासि।** मं. ६९) प्रत्येक अंग और अवयवसे मल अथवा रोगबीजको दूर करना चाहिये। क्योंकि स्त्री राष्ट्रीय संतानोंकी जननी है। वह यदि मलिन, अपवित्र अथवा रोगयुक्त रहेगी, तो राष्ट्रकी भावी संतान भी वैसी ही होगी। इसलिये स्त्रियोंके शरीर पवित्र, नीरोग और सबल होने चाहिये, जिससे संतान उत्तमोत्तम निकलती रहें। सब मल जलसे दूर होता है यह सत्य है, इसीलिये जलस्थानको पवित्र रखनेका यत्न होना चाहिये। नहीं तो जलस्थानोंमें लोग स्नान करेंगे और पीनेके जलमें ही वह मल जायगा और जिस जलसे पवित्रता होनेवाली है, उसी जलसे अपवित्रता और रोगकी अवस्था बढेगी, इसलिये कहा है कि (**आपः मलं मा प्रापत्।** मं. ६९) जलस्थानमें मल न प्राप्त हो, अर्थात् संपूर्ण जलस्थान स्वच्छ, पवित्र और निर्मल रहें। आजकल तालाबोंमें, कूवोंमें, नदियोंमें तथा अन्यान्य जलाशयोंमें लोग स्नान करते हैं, कपडे धोते हैं और अन्य प्रकारसे अस्वच्छता करते हैं और उसी स्थानसे पीनेका पानी भी लाते हैं। इससे अनंत रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वेदका यह आदेश गृहस्थियोंको अवश्य स्मरण रखना चाहिये। किसी भी जलाशयमें किसी प्रकारसे भी मनुष्य मलिनता न करें। जलाशयको पवित्र, स्वच्छ और नीरोगी अवस्थामें रखें और ऐसे शुद्ध जलका उपयोग करके अपने शरीरका आरोग्य साधन करें। जलकी स्वच्छतापर मनुष्योंका और पशुपक्षियोंका आरोग्य निर्भर है।

पुष्टिका साधन

इस द्वितीय सूक्तके ७० वें मंत्रमें गृहस्थियोंकी पुष्टिका साधन कहा गया है। इससे किस अन्नका सेवन करना चाहिये इसका उपदेश हमें मिलता है। (**पृथिव्याः पयसा**) पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले दूधका सेवन करना चाहिये। तथा (**औषधीनां पयसा**) औषधियोंके दूधका भी सेवन करना चाहिये। यहां औषधियोंका रस और भूमिका रस ये दो ही रस गृहस्थियोंके भोजनके लिये कहे हैं। औषधियोंके रसको सब जानते ही हैं। औषधी, फल, फूल, पत्ते आदियोंका सेवन मनुष्य करते ही हैं। गृहस्थियोंको चाहिये कि वे पुष्टिकारक औषधियोंको बढावें और उनका सेवन करके पुष्ट और हृष्ट बनें। भूमिका दूध सेवन करनेके लिए भी इस मंत्रमें कहा है। भूमिका रस एक तो शुद्ध और पवित्र स्रोतका जल है, दूसरा भूमिका धान्य आदि भी है। अस्तु, इस तरह शुद्ध जल, शुद्ध अन्न और शुद्ध फलादिका सेवन करना चाहिये। वेदने यहां किसी भी स्थानमें पशुके मांसका भोजन मनुष्योंके लिये नहीं कहा है। अर्थात् मांसका भोजन मानवोंके लिये वैदिक मर्यादाके अनुकूल नहीं है। हमने जहां जहां भोजनका विषय वेदमें देखा है, वहां वहां किसी भी स्थानपर हमें मांसका नामतक नहीं मिला है। इसके विपरीत वहां धान्य, औषधि, वनस्पति, फलमूल आदिका ही उल्लेख देखा है, अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक भोजन शुद्ध निर्मांस-भोजन अर्थात् शाक-भोजन ही है। इस शाक-भोजनसे ही (**वाजं सनुहि**) बलको प्राप्त करो, यह वेदका आदेश है।

आगेके ७१ वें मंत्रमें स्त्री और पुरुष किस तरह व्यवहार करें, इस विषयका उत्तम उपदेश है, वह तालिका रूपमें नीचे दर्शाते हैं—

पुरुष	स्त्री
अमः	सा
साम	ऋक् (ऋचा)
द्यौः	पृथिवी

स्त्री और पुरुष आपसमें एकमतसे रहें यह उत्तम उपदेश यहां दिया है। ऋग्वेदके मंत्रको तान और आलापके साथ गायन करनेसे वह साम होता है। वस्तुतः ऋक्मंत्र और

सामसंत्र एक ही है। इसी तरह स्त्री और पुरुष एक ही है, केवल एक स्थानपर सौम्य गुणोंका विकास और दूसरे स्थानपर उग्र गुणोंका विकास है। वही भाव स्त्रीको पृथ्वी और पुरुषको द्युलोकके रूपमें बताया है। स्त्री पुरुष इस प्रकारके ऐकमत्यके साथ रहें। आपसमें झगडा आदि कुछ भी न हो। आनन्द प्रसन्नताके साथ सब गृहस्थधर्मके व्यवहार करें। ये दोनों (इह संभवाव प्रजां आजनयावहै। मं. ७१) यहां संतान उत्पन्न करें, सुप्रजाका निर्माण करें। अपने बालबच्चोंको सुसंस्कारसे संपन्न करें और सब प्रकारकी उन्नतिसे युक्त हों। दोनोंको प्रयत्न इस बातका करना चाहिये कि सब प्रकारका अभ्युदय और निःश्रेयस उत्तम रीतिसे सिद्ध हो।

(अग्रवः जनियन्ति) आगे बढनेवाले लोग ही स्त्रीको प्राप्त करनेकी इच्छा करें। पीछे रहनेवाले, प्रयत्न न करनेवाले लोग विवाहित होनेकी इच्छा न करें। क्योंकि ऐसे आलसी लोगोंकी संतानें भी अयोग्य ही होंगी और अंतमें जातिपर उनके दोषोंके कारण कलंक लगेगा। (सुदानवः पुत्रियन्ति) उत्तम दान देनेवाले, परोपकार करनेवाले, मानव समाजका भला करनेके लिये आत्मसमर्पण करनेवाले ही पुत्रप्राप्तिके इच्छुक हों, क्योंकि ऐसे लोगोंके शुभसंस्कार पुत्रोंमें आ सकते हैं और शुभसंतानके उत्पन्न होनेसे राष्ट्रका तथा मानव समाजका भला हो सकता है। इसलिये उत्तम दान करनेवाले विवाहित होकर संतान उत्पन्न करें और जो दान न करनेवाले स्वार्थी हों वे अविवाहित रहें। (अ-रिष्ट-असू वाजसातये सचेवहि। मं. ७२) अपने प्राणोंको सुरक्षित रखते हुए बडा बल प्राप्त करनेके लिये ये स्त्री पुरुष यत्न करें। हरएक स्त्री पुरुषको उचित है कि वे बल प्राप्त करें, कोई कमजोर, या निर्बल न रहें। बल प्राप्त करके जगत्के व्यवहारयुद्धमें आगे बढकर विजय प्राप्त करें। अपुरुषार्थवृत्ति कोई धारण न करे। सब लोग पुरुषार्थी बनें और अपने अपने कर्तव्य करते रहें।

आशीर्वाद

अन्तिम तीन मंत्रोंमें नवविवाहित वधूवरको शुभ आशीर्वाद दिया है। मंत्र ७३ में कहा है कि जो संबंधी और जातिबांधव बरातमें संमिलित हुए हों, वे अपने अपने घर वापस जानेके पूर्व (ते अस्यै संपत्न्यै प्रजावत् शर्म यच्छन्तु। मं. ७३) इस शुभपत्नीके लिये प्रजायुक्त सुख देवें, अर्थात् इसके सुप्रजा निर्माण हो और इसको उत्तम गृहसौख्य प्राप्त हो, ऐसा शुभाशीर्वाद देवें और पश्चात् वे अपने घर वापस जावें।

जो स्त्रियां इस बरातमें आयीं हों, वे अपने घर जानेके पूर्व प्रजा और धन प्राप्त होनेका शुभाशीर्वाद देवें और (अगतस्य पंथां अनुवहन्तु) भविष्यमें सुमार्ग पर चलनेके तथा योग्य आचारके निर्देश इनको देवें तथा यह (विराट् सुप्रजा) विशेष सम्राज्ञी जैसी बनकर उत्तम प्रजायुक्त होवे, ऐसा सुंदर आशीर्वाद देवें और पश्चात् अपने घरको वापस जावें। बरातमें आये हुए कोई भी स्त्रीपुरुष आशीर्वाद दिये बिना वापस न जावे।

विवाहित स्त्री अर्थात् धर्मपत्नी (दीर्घायुत्वाय शतशारदाय) दीर्घायु और शतायु बननेका प्रयत्न करे। ऐसा आहारविहार करे कि जिससे घरवाले दीर्घजीवी बनें। (सुबुधा बुध्यमाना प्रबुध्यस्व) उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करे। हरएक प्रकारकी सुविद्या प्राप्त करके उत्तम शुभमंगलमय संस्कारोंसे युक्त बने। अपने पतिके घरमें जाकर (गृहपत्नी) अपने घरकी स्वामिनी बनकर रहे। स्वामिनीघरकी देवी बननेका इसका अधिकार है। (सविता दीर्घं आयुः करोतु। मं. ७५) सविता इसकी आयु दीर्घ बनावे। इस प्रकार दीर्घायु बनकर अपने पतिके घरमें यह विराजे।

सब लोगोंका गृहस्थाश्रम धर्मानुकूल हो और वह सबको सुख देकर जगत्का उपकार करनेवाला बने।

पति और पत्नीका मेल

कां. २, सूक्त ३०

(ऋषिः– प्रजापतिः । देवता– अश्विनौ ।)

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति ।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥
सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः । सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥ २ ॥
यत्सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः । तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ॥ ३ ॥
यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम् । कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥ ४ ॥
एयमगन्पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् । अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम् ॥ ५ ॥

अर्थ— (यथा वातः) जैसे वायु (भूम्याः अधि) भूमिपर (इदं तृणं मथायाति) यह घास हिलाता है, (एव ते मनः मथ्नामि) वैसे ही तेरा मन मैं हिलाता हूं; जिससे तू (मां कामिनी असः) मेरी इच्छा करनेवाली हो और (यथा मत् अप–गाः न असः) मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ १ ॥

हे (कामिनौ अश्विनौ) परस्पर कामना करनेवाले दो बलवानों ! (च इत् सं नयाथः) मिलकर चलो (च सं वक्षथः) और मिलकर आगे बढो । (वां भगासः सं अग्मत) तुम दोनोंको ऐश्वर्य इकट्ठे प्राप्त हों, (चित्तानि सं) तुम दोनोंके चित्त परस्पर मिलें और (व्रतानि सं) तुम्हारे कर्म भी परस्पर मिल जुल कर हों ॥ २ ॥

(यत्) जहां (विवक्षवः सुपर्णाः) बोलनेवाले सुंदर पंखवाले पक्षी जाते हैं और (विवक्षवः अनमीवाः) बोलनेवाले नीरोग मनुष्य जाते हैं, (तत्र) वहां (मे हवं गच्छतात्) मेरी प्रेरणानुसार उसी प्रकार जाओ, (यथा शल्यः कुल्मलं इव) जैसे बाणकी नोक निशानेपर जाती है ॥ ३ ॥

(यत् अन्तरं तत् बाह्यं) जो अंदर है वही बाहर है और (यत् बाह्यं तत् अन्तरं) जो बाहर है वही अन्दर है । हे औषधे ! (विश्वरूपाणां कन्यानां) विविध रूपवाली कन्याओंका (मनः गृभाय) मन ग्रहण कर ॥ ४ ॥

(इयं पति–कामा आ अगन्) यह कन्या पतिकी इच्छा करती हुई आयी है और (जनि–कामः अहं आ अगमं) स्त्री की इच्छा करनेवाला मैं आया हूं । (अहं भगेन सह आ अगमं) मैं धनके साथ आया हूं; (यथा कनिक्रदत् अश्वः) जैसे हिनहिनाता हुआ घोडा आता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस रीतिसे वायु घास हिलाता है उस रीतिसे मैं तेरा मन हिलाता हूं, जिससे तू मेरे ऊपर प्रीति करनेवाली होकर सदा मेरे साथ रहनेवाली तथा मेरेसे दूर न होनेवाली हो ॥ १ ॥

हे परस्पर प्रेम करनेवाले स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों मिलकर चलो, मिल कर आगे बढो, मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करो, तुम दोनोंके चित्त परस्पर मिले रहें और तुम्हारे कर्म भी मिल जुल कर होते रहें ॥ २ ॥

जहां सुन्दर पङ्खवाले पक्षी शब्द करते हैं और जहां नीरोग मनुष्य भ्रमण करने जाते हैं ऐसे सुंदर स्थानपर तू मेरी प्रेरणासे चल ॥ ३ ॥

जो हमारे अंदर है वही बाहर है और जो बाहर है वही अंदर है । मैं निष्कपट भावसे बर्ताव करता हूं और इस निष्कपट आचरणसे मैं विविध रूपवाली कन्याओंका मन आकर्षित करता हूं ॥ ४ ॥

पतिकी इच्छा करनेवाली यह स्त्री प्राप्त हुई है और स्त्री की इच्छा करनेवाला घोडेके समान हिनहिनाता हुआ मैं धनके साथ आया हूं । इस दोनोंका इस रीतिसे मेल अर्थात् विवाह हुआ है ॥ ५ ॥

पति और पत्नीका मेल

अश्विनी देव

यह सूक्त विवाहके विषयमें बडे महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रहा है। इस सूक्तके देवता ' अश्विनौ ' हैं। ये देव सदा जोडेके रूपमें रहते हैं, कभी एक दूसरेसे पृथक् नहीं होते। विवाहमें भी स्त्रीपुरुष एकबार विवाह हो जानेपर कभी पृथक् न हों, आमरण विवाह बंधनसे बंधे रहें, इस उद्देश्यसे इस सूक्तके यह देवता रखे हैं। जिस प्रकार अश्विनौ देव सदा इकट्ठे रहते हैं कभी वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार विवाहित स्त्रीपुरुष गृहस्थाश्रममें इकट्ठे रहें और परस्परसे वियुक्त न हों अर्थात् विवाह बंधन तोडकर स्वैर वर्तन करनेवाले कभी न बनें।

द्वितीय मंत्रमें ' कामिनौ अश्विनौ ' कहा है, अर्थात् परस्परकी कामना करनेवाले अश्विनी देव जिस प्रकार एक कार्यमें मिलजुलकर रहते हैं; उसी प्रकार विवाहित स्त्रीपुरुष गृहस्थाश्रममें रहें और एक दूसरेसे विभक्त न हों। यहां भी ' अश्विनौ ' शब्द ' अश्वशक्तिसे युक्त ' होनेका भाव बता रहा है। पुरुषको गर्भाधान करनेमें समर्थ बनानेके लिये वैद्यक शास्त्रमें ' वाजीकरण ' के प्रयोग लिखे हैं। वाजीकरण और अश्वीकरण ये शब्द समानार्थक ही हैं। स्त्रीपुरुष अश्विनी हों, इसका अर्थ वाजीकरणसे प्राप्त होनेवाली शक्तिसे युक्त हों, अर्थात् गर्भाधान करनेकी शक्तिसे युक्त पुरुष हो और गर्भधारण करनेकी शक्तिसे युक्त स्त्री हो। ' अश्वि ' शब्दका यह श्लेषार्थ यहां अवश्य द्रष्टव्य है। स्त्री पुरुष ' कामिनौ ' अर्थात् परस्परकी इच्छा करनेवाले हों, स्त्री पुरुषकी प्राप्तिकी इच्छा करे और पुरुष स्त्रीकी प्राप्तिकी इच्छा करे। इस शब्दसे विवाहका समय भी निश्चित हो सकता है—

विवाहका समय

मंत्र पांचमें निम्नलिखित भाग आता है, उससे विवाहका काल निश्चित हो सकता है—

इयं पतिकामा आ अगन्।
अहं जनिकामः आ अगमम्॥ (मं. ५)

' यह स्त्री पतिकी इच्छा करती हुई आई है और मैं स्त्रीकी इच्छा करता हुआ आया हूं। ' यह समय है जो विवाहके लिये योग्य है। स्त्रीके अन्दर पति-प्राप्तिकी इच्छा और पतिके अंदर स्त्री-प्राप्ति की इच्छा प्रबल होनी चाहिये। उस समय विवाह करना चाहिये। परंतु यहां यह भी संभव माना जा सकता है कि यह गर्भाधानका समय हो। सिर सजावट करनेके पूर्व विवाह करनेकी बात पहले आ चुकी है। यदि विवाह पहिले हुआ हो तो यह समय गर्भाधानका मानना पडेगा। तथापि निश्चय यही प्रतीत होता है कि ब्रह्मचर्य समाप्तिके पश्चात् युवा और गृहस्थाश्रमके योग्य होनेके पश्चात् ही विवाह करना चाहिये। इस विषयमें इसी मंत्रमें आगे बताया है—

यथा कनिक्रदत् अश्वः।
अहं भगेन सह आगमम्॥ (मं. ५)

' जैसे हिनहिनाता हुआ घोडा आता है, वैसे ही मैं धनके साथ आया हूं। ' यहां उत्तम तारुण्य और गर्भाधानकी अत्युत्तम शक्ति जिसके शरीरमें है ऐसे तरुणका वर्णन है; यही विवाहके लिये योग्य है। विवाहके लिये न केवल तारुण्य और वीर्यकी ही आवश्यकता है, प्रत्युत (भगं) धनकी भी आवश्यकता है। कुटुंबका पालन पोषण करनेके लिये आवश्यक धन कमानेकी योग्यता पुरुष प्राप्त करे, जब वह धन कमाने लगे तभी विवाह करे। पहले ब्रह्मचर्य पालन करे, तरुण बने, वीर्यवान् और बलवान् हो, धन कमाने लगे और पश्चात् सुयोग्य स्त्रीसे विवाह करे। यह पंचम मंत्रका आशय सतत ध्यानमें धारण करने योग्य है।

द्वितीय मंत्रमें ' कामिनौ अश्विनौ ' शब्द हैं, इनका आशय इससे पूर्व बताया ही है। ' कामिनौ ' शब्दका विशेष स्पष्टीकरण पंचम मंत्रके पूर्वार्धने किया है और ' अश्विनौ ' का-स्पष्टीकरण पंचम मंत्रके तृतीय चरण द्वारा हुआ है। ' अश्विनौ ' शब्द यहां उत्तम तारुण्यसे युक्त पतिपत्नीका वाचक है और ' अश्व ' शब्द वाजीकरण सिद्ध वीर्यवान् पुरुषका विशेषतया वाचक है।

पंचम मंत्रमें धन कमानेके पश्चात् विवाह करनेका उपदेश तो विशेष ही मनन करने योग्य है। ' धीः, श्रीः, स्त्रीः ' यह वैदिक क्रम प्रसिद्ध है।

निष्कपट बर्ताव

स्त्रीपुरुषोंका परस्पर बर्ताव, पतिपत्नीका परस्पर व्यवहार निष्कपट भावसे और हृदयकी एकतासे ही होना चाहिये। तभी गृहस्थाश्रमी पुरुषोंको सुख प्राप्त हो सकता है। इस विषयमें चतुर्थ मंत्रका उपदेश विशेष महत्त्वपूर्ण है—

यदन्तरं तद्बाह्यं, यद्बाह्यं तदन्तरम्। (मं. ४)

' जो अंदर है वही बाहर है और जो बाहर है वही अंदर है। ' यह निष्कपट व्यवहारका परम उच्च आदर्श है। पति पत्नीके विषयमें तथा पत्नी पतिके विषयमें अंतर्बाह्य एक जैसा व्यवहार करें, अंदर दूसरा और बाहर दूसरा भाव न

रखें। गृहस्थियोंके लिये व्यवहारका आदर्श यहां वेदने सुबोध शब्दोंद्वारा बताया है। वैदिक धर्मका पालन करनेवाले गृहस्थी इसका अवश्य आचरण करें और अपने गृहस्थपनका सुख बढावें।

विश्वरूपाणां कन्यानां मनः गृभाय। (मं. ४)

'विविध रूपवाली कन्याओंका मन इसी प्रकार आकर्षित किया जावे।' कोई तरुण किसी कन्याके साथ बातचीत करने तथा अन्य व्यवहार करनेके समय अपने अंदर और बाहरका बर्ताव सीधा और कपटरहित रखे। कपट भावसे कन्याको धोखा देकर उसको फंसानेका यत्न कोई न करे। सरल निष्कपट भावसे ही अपनी धर्मपत्नी बनानेके लिये किसी कन्याका मन आकर्षित किया जाय। स्त्रीपुरुषके व्यवहारके विषयमें इस मंत्रका यह उपदेश अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

आदर्श पतिपत्नी

चतुर्थ मंत्रमें परस्पर निष्कपट व्यवहार करनेका उपदेश दिया है, उस उपदेशके पालन करनेसे आदर्श कुटुंब बन सकता है इसमें कोई संदेह ही नहीं है, इसका थोडासा नमूना द्वितीय मंत्रमें भी बताया है, इसमें पांच उपदेश हैं—

१ संनयथः— सन्मार्गसे चलो और चलाओ। एक मतसे चलो। एक मतसे संसार चलाओ। स्त्री और पुरुष एक दिलसे चलें और परिवारको चलावें।

२ संवक्षथः— मिलकर आगे बढो। स्त्री और पुरुष एक विचारसे आगे बढने तथा उन्नति संपादन करनेका प्रयत्न करें।

३ भगासः सं अग्मत— सब मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करें। मिलकर ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे विपुल धन प्राप्त हो।

४ चित्तानि सं— आपके चित्त मिले हुए हों।

५ व्रतानि सं— आपके कार्य भी मिलजुल कर किये जांय।

अर्थात् पतिपत्नीमें वैर भाव या कठोर भाव न हो। इनमें यहां तक एकताका भाव हो कि ये दोनों मिलकर एक ही शरीरके अवयवसे प्रतीत हों। यहांके ये शब्द यद्यपि सामान्यतः पतिपत्नीके कर्तव्य बतानेके लिये प्रयुक्त हुए हैं, तथापि सामान्यतः ऐक्य प्रतिपादन परक भी इस मंत्रका भाव लिया जा सकता है और इस दृष्टिसे यह मंत्र सामाजिक ऐक्य भावका उत्तम उपदेश दे रहा है।

भ्रमणका स्थान

पतिपत्नीको मिलकर भ्रमणके लिये जाना हो, तो किस प्रकारके स्थानमें जांय, इस बातका उपदेश तृतीय मंत्रमें किया गया है—

यत् सुपर्णा विवक्षवः।
अनमीवा विवक्षवः॥
तत्र मे हवं गच्छतात्॥ (मं. ३)

'जहां सुंदर पंखवाले पक्षी शब्द करते हैं और जहां नीरोग पुरुष वार्तालाप करते हुए जाते हैं, वहां प्रेरणानुसार जांय।' ऐसे स्थानमें पतिपत्नी परस्परकी इच्छानुसार अथवा प्रेरणानुसार, परस्परकी रुचिके अनुकूल भ्रमणके लिये जांय। जहां सुंदर सुंदर पक्षी मंजुल शब्द कर रहे हैं और जहां नीरोग मनुष्य जानेके इच्छुक होते हैं वहां जांय। यह स्थानका वर्णन कितना मनोरम है! उत्तम भाग्यसे ही ऐसे वन अथवा उद्यान स्त्री पुरुषोंको भ्रमणके लिये प्राप्त हो सकते हैं। यहां वेदने आदर्श स्थान ही भ्रमणके लिये बताया है, यदि ऐसा स्थान हरएक परिवारके लिये न मिले तो इसी प्रकारका कोई अन्य स्थान भ्रमणके लिये पसंद करें और निष्कपट भावसे उत्तम वार्तालाप करते हुए गमन करें।

स्त्रीके साथ बर्ताव

पुरुष स्त्रीके साथ कैसा बर्ताव करे और स्त्री भी पुरुषके साथ कैसा बर्ताव करे, इस विषयमें एक उत्तम उपमा प्रथम मंत्रमें दी है और इस विषयका उपदेश किया है। 'जिस प्रकार वायुसे घास हिलायी जाती है। उसी प्रकार स्त्रीका मन हिलाता हूं।' (मं. १) वायुके अंदर प्रचण्ड शक्ति है, वायु वेगसे यदि चलने लगे, तो बडे बडे वृक्ष भी टूट जाते हैं; परंतु वही वायु कोमल घासको तोडता नहीं, केवल हिलाता ही है। इसी प्रकार वीर पुरुष, जो अपने कोपसे प्रबल शत्रुको भी छिन्न भिन्न कर सकता है, स्त्रियोंसे कोमलताका बर्ताव करे, कठोर व्यवहार कभी न करे।

स्त्रियां भी अपने अंदर घासके समान कोमलता धारण करें और प्रचण्ड वायुके चलनेपर भी जैसे घास टूटती नहीं, उसी प्रकार वे भी अपने कुटुंबके स्थानसे कभी विचलित न हों।

यहां इस उपमासे दोनोंके उत्तम कर्तव्य बताये हैं। इस उपमाका विचार जितना अधिक किया जाय उतना अधिक बोध मिल सकता है। यह पूर्ण उपमा है, इतनी योग्य उपमा अन्यत्र नहीं मिल सकती।

दम्पतिका परस्पर प्रेम

कां. ६, सूक्त ८-९

(ऋषिः– जमदग्निः । देवता– कामात्मा ।)

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥
यथा सुपर्णः प्रपतन्पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ २ ॥
यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ ३ ॥

[९]

वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥ १ ॥
मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् । गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥ ३ ॥

अर्थ— हे स्त्री ! (यथा लिबुजा वृक्षं समन्तं परिषस्वजे) जिस प्रकारसे बेल वृक्षके चारों ओर लिपट जाती है, (एव मां परिष्वजस्व) उसी प्रकार तू मुझे आलिंगन दे । (यथा मां कामिनी असः) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली हो और (यथा मत् अपगाः न असः) मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ १ ॥

(यथा प्रपतन् सुपर्णः) जैसे उडनेवाला पक्षी (भूम्यां पक्षौ निहन्ति) भूमिकी ओर अपने दोनों पंखोंको फैलाता है, (एव ते मनः निहन्मि) उसी प्रकार तेरा मन अपनी ओर खींचता हूं, (यथा०) जिससे तू मेरी इच्छा करनेवाली होकर मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ २ ॥

(यथा इमे द्यावापृथिवी) जिस प्रकार इस द्युलोक और पृथ्वीलोकको (सूर्यः सद्यः पर्येति) सूर्यका प्रकाश तत्काल व्याप लेता है, (एव ते मनः पर्येति) उसी प्रकार तेरे मनको मैं व्यापता हूं (यथा०) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली होकर मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ ३ ॥

[९]

(मे तन्वं पादौ वाञ्छ) मेरे शरीरकी और दोनों पैरोंकी इच्छा कर, (अक्ष्यौ वाञ्छ) मेरे दोनों आंखोंकी इच्छा कर, (सक्थ्यौ वाञ्छ) दोनों जंघाओंकी इच्छा कर । (वृषण्यन्त्याः ते अक्ष्यौ केशाः) बलकी इच्छा करती हुई तेरी आंखें और बाल (कामेन मां शुष्यन्तु) कामसे मुझे सुखावें ॥ १ ॥

(त्वा मम दोषणिश्रिषं) तुझे मैं अपनी भुजाओंमें और (हृदयश्रिषं कृणोमि) हृदयमें आश्रय लेनेवाली करता हूं । (यथा मम क्रतौ असः) जिससे तू मेरे कार्यमें दक्ष हो और (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तके अनुसार चले ॥ २ ॥

(यासां) जिनसे (नाभिः) मिलना (आरेहणं) आनन्ददायक है और जिनके (हृदि संवननं कृतं) हृदयमें प्रेमकी सेवा है, (घृतस्य मातरः गावः) घीको निर्माण करनेवाली यह गौवें, (अमुं मे संवानयन्तु) इस स्त्रीको मेरे साथ मिला देवें ॥ ३ ॥

स्त्री और पुरुषका प्रेम

गृहस्थधर्ममें रहनेवाले स्त्री और पुरुष परस्पर प्रेम करें और सुखसे गृहस्थाश्रमका व्यवहार करें, यह उपदेश इन दोनों सूक्तोंमें कहा है।

अष्टम सूक्तमें कहा है कि स्त्री पुरुष गृहस्थाश्रममें परस्पर मिलकर रहें, एक दूसरेपर प्रेम करें और उनमेंसे कोई भी एक दूसरेसे दूर होनेका यत्न न करे। पुरुष यत्न करके अपनी स्त्रीका मन अपनी ओर आकर्षित करे और उसको अपने पास संतुष्ट रखे, जिससे वह वारंवार पतिगृहसे दूसरी ओर न भागे। जिस प्रकार सूर्य इस जगत्में अपने प्रकाशसे व्याप्त रहता है, उसी प्रकार पति भी ऐसा आचरण करे कि जिससे स्त्रीके मनमें पतिके विषयमें आदर भरा रहे। इसी प्रकार स्त्रीका भी ऐसा व्यवहार हो कि जिससे पतिके मनमें स्त्रीका आदर बढे। इस प्रकार दोनों परस्पर आदर रखते हुए सुखसे गृहस्थाश्रमका कार्य करें।

नवम सूक्तमें कहा है कि पति स्त्रीको और स्त्री पतिको आत्म–सर्वस्व अर्पण करे। एक दूसरेके वियोगसे दुःखी हों और साथ रहनेसे सुखी हों। स्त्री और पुरुष परस्परके कार्योंमें एक दूसरेकी सहायता करें और परस्परकी अनुकूलतासे चलें। परस्परकी अनुकूलतासे अपने सब व्यवहार करें। स्त्रियोंसे धर्मपूर्वक मिलना सुखदायी है, क्योंकि उत्तम स्त्रियोंके हृदयोंमें प्रेम भरा हुआ रहता है, पतिके घरकी गौवें स्त्रियोंको आकर्षित करें।

इस प्रकार व्यवहार करके स्त्री पुरुष सुखसे गृहस्थाश्रमके कार्य करें और परस्परकी अनुकूलतासे सुखी हों।

पतिपत्नीका परस्पर प्रेम

कां. ७, सूक्त ३६

(ऋषिः– अथर्वा। देवता– अक्षि।)

अ॒क्ष्यौ॑ नौ॒ मधु॑संकाशे॒ अनी॑कं नौ स॒मञ्ज॑नम्। अ॒न्तः कृ॑णुष्व॒ मां हृ॒दि मन॒ इन्नौ॑ स॒हास॑ति ॥१॥

अर्थ— **(नौ अक्ष्यौ मधुसंकाशे)** हम दोनोंकी आंखें मधुके समान मीठी हों। **(नौ अनीकं समञ्जनं)** हम दोनोंके आंखके अग्रभाग उत्तम अञ्जनसे युक्त हों। **(हृदि मां अन्तः कृणुष्व)** अपने हृदयमें मुझे रख। **(नौ मनः इत् सह असति)** हम दोनोंका मन सदा परस्पर साथ मिला रहे ॥ १ ॥

पतिपत्नीकी आंखें परस्परका अवलोकन प्रेमकी मीठी दृष्टिसे करें। एकको देखनेसे दूसरेको आनन्दका अनुभव हो। कभी पतिपत्नीमें ऐसा भाव न हो कि जिसके कारण एकको देखनेसे दूसरेके मनमें क्रोध और द्वेषका भाव जाग उठे। दोनोंकी आंखें, उत्तम अञ्जनसे शुद्ध, पवित्र और निर्दोष हुई हुई हों। दृष्टि शुद्ध हो। किसीकी भी दृष्टिमें अपवित्रता न हो। आंखकी पवित्रता साधारण अञ्जन करता है, उसी प्रकार ज्ञानसे भी दृष्टिकी पवित्रता होती है।

पति अपने हृदयमें पत्नीको अच्छा स्थान दे, वहां धर्मपत्नीके सिवाय किसी दूसरी स्त्रीको स्थान न मिले। इसी प्रकार पत्नी भी अपने हृदयमें पतिको स्थान दे और कभी पतिके अलावा दूसरे किसी पुरुषको वहां स्थान प्राप्त न हो। **(हृदि मां अन्तः कृणुष्व)** पतिपत्नी एक दूसरेको ही अपने हृदयमें स्थान दें।

(मनः सह असति) पतिपत्नीका मन एक दूसरेके साथ मिला हो, कभी विभक्त न हो। इनमेंसे कोई एक व्यक्ति दूसरेके साथ न झगडे और अपना मन किसी दूसरे व्यक्तिके साथ न मिलाये।

इस प्रकार पतिपत्नी रहे और गृहस्थाश्रमका व्यवहार करें। इस मंत्रमें पतिपत्नीके गृहस्थाश्रमका सर्वोत्तम आदर्श बताया है।

पतिपत्नीका एकमत

कांड ७, सूक्त ३८

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– वनस्पतिः ।)

इ॒दं ख॑नामि भेष॒जं मां॑प॒श्यम॑भिरो॒रुद॑म् । प॒रा॒य॒तो नि॒वर्त॑नमाय॒तः प्र॑ति॒नन्द॑नम् । ॥ १ ॥
येना॑ नि॒च॒क्र आ॑सु॒रीन्द्रं॑ दे॒वेभ्य॒स्परि॑ । तेना॒ नि कु॑र्वे॒ त्वाम॒हं यथा॒ तेऽसा॑नि॒ सुप्रि॑या ॥ २ ॥
प्र॒ती॒ची सोम॑मसि प्र॒तीच्यु॒त सूर्य॑म् । प्र॒ती॒ची विश्वा॑न्दे॒वान्तां त्वाच्छा॑वदामसि ॥ ३ ॥
अ॒हं व॑दामि॒ नेत्त्वं स॒भाया॒मह॒ त्वं वद॑ । ममेद॒स॒स्त्वं केव॑लो॒ नान्यासां॑ की॒र्तया॑श्च॒न ॥ ४ ॥
यदि॒ वासि॑ ति॒रोज॒नं यदि॑ वा न॒द्य॑स्ति॒रः । इ॒यं ह॒ मह्यं॒ त्वामोष॑धिर्ब॒द्ध्वेव॒ न्यान॑यत् ॥ ५ ॥

अर्थ— मैं (इदं औषधं खनामि) इस औषधि वनस्पतिको खोदती हूं । यह औषध पतिकी दृष्टिको (मां— पश्यं) मेरी ओर फिरानेवाला और (अभिरोरुदं) सब प्रकारके दुर्वर्तनसे रोकनेवाला, (परायतः निवर्तनं) दुर्मार्गमें दूर जानेवालेको भी वापस लानेवाला और (आयतः प्रतिनन्दनं) संयममें रहनेवालेका आनन्द बढानेवाला है ॥ १ ॥

जिस (आसुरी) आसुरी नामक औषधिने (येन देवेभ्यः परि इन्द्रं नि चक्रे) जिस गुणके कारण इन्द्रको देवोंमें सबसे अधिक प्रभावशाली बनाया, (तेन अहं त्वां निकुर्वे) उससे मैं तुझे प्रभावशाली बनाती हूं, (यथा ते सुप्रिया असानि) जिससे मैं तेरी प्रिय धर्मपत्नी बनी रहूं ॥ २ ॥

तू (सोमं प्रतीची असि) चन्द्रके संमुख रहती है, (उत सूर्यं प्रतीची) और सूर्यके संमुख रहती है, तथा (विश्वान् देवान् प्रतीची) सब देवोंके भी संमुख रहती है । (तां त्वा अच्छा वदामासि) ऐसे तेरा मैं उत्तम वर्णन करती हूं ॥ ३ ॥

(अहं वदामि) मैं बोलती हूं, (न इत् त्वं) तू न बोल । (त्वं सभायां अह वद) तू सभामें निश्चयपूर्वक बोल । (त्वं केवलः मम इत् असः) तू केवल मेरा ही होकर रह, (अन्यासां न चन कीर्तयाः) अन्योंका नाम तक न ले ॥ ४ ॥

(यदि वा तिरोजनं असि) यदि तू जनोंसे दूर जंगलमें जाकर रहेगा अथवा (यदि वा नद्यः तिरः) यदि तू नदीके पार गया हुआ होगा, तो भी (इयं ओषधिः) यह औषधि (त्वां बध्वा) तुझे बांधकर (मह्यं नि आनयत् ह) मेरे पास ले आवेगी ॥ ५ ॥

भावार्थ— मैं इस औषधिको भूमिसे खोदती हूं, इससे मेरी ओर ही पतिकी आंखें लगेंगी, अर्थात् किसी अन्य स्थानमें नहीं जावेगी, सब प्रकारके दुर्वर्तनसे बचाव होगा, यदि दुर्मार्गमें उसका पांव पडा भी होगा, तो वह वापस आ जावेगा और वह संयमसे रहकर अब आनंद प्राप्त कर सकेगा ॥ १ ॥

इसका नाम आसुरी वनस्पति है । इसके प्रभावसे इन्द्र सब देवोंमें विशेष प्रभावशाली होनेके कारण श्रेष्ठ बन गया। इस वनस्पतिसे मैं अपने पतिको प्रभावित करती हूं, जिससे मैं अपने पतिकी प्रिया बनकर रहूं ॥ २ ॥

यह वनस्पति चन्द्रके अभिमुख होकर शान्तगुण प्राप्त करती है तथा सूर्यके संमुख रहकर तेजस्विता प्राप्त करती है और अन्य देवोंसे अन्यान्य दिव्य गुण लेती है । इसीलिये इसकी प्रशंसा की जाती है ॥ ३ ॥

हे पति ! घरमें मैं बोलूंगी और मेरे भाषणका अनुमोदन तू कर । घरमें तू न बोल ! तू सभामें खूब वक्तृत्व कर । परंतु घरमें आकर तू केवल मेरा प्रिय पति बनकर मेरे अनुकूल रह । ऐसा करनेसे तुझे किसी अन्य स्त्रीका नाम तक लेनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी ॥ ४ ॥

चाहे तू ग्राममें रह या वनमें चला जा अथवा चाहे तू नदीके उस पार रह अथवा इस पार रह, यह औषधि ऐसी है कि जिसके प्रभावसे तू मेरे पास बँधा चला आएगा और किसी दूसरे स्थानपर नहीं जाएगा ॥ ५ ॥

यह सूक्त स्पष्ट है इसलिये अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। पतिके लिये एक ही स्त्री धर्मपत्नी हो और पत्नीके लिये एक ही पुरुष हो, यह विवाहका उच्चतम आदर्श इस सूक्तने पाठकोंके सन्मुख रखा है। कोई पुरुष अपनी विवाहित धर्मपत्नीको छोडकर किसी भी दूसरी स्त्रीकी अपेक्षा न करे और कोई स्त्री अपने विवाहित पतिको छोडकर किसी दूसरे पुरुषकी कभी अपेक्षा न करे।

दोनों एक दूसरेके वशमें होकर परस्पर अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहार करें। इस सूक्तमें 'आसुरी' वनस्पतिका उपयोग कहा है। इसका सेवन करनेसे मनुष्य पराक्रमी और उत्साही होता है, मनुष्यकी प्रवृत्ति पापाचरणकी ओर नहीं होती। यह औषधि कौनसी है इसका पता नहीं चलता। यह वैद्योंके द्वारा अन्वेषणीय है।

एक विचारसे रहना

कां. ६, सूक्त ७३

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- सांमनस्यम्, नाना देवता।)

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥ १ ॥
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ २ ॥
इहैव स्त मापं यातांध्यस्मत्पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— वरुण, सोम, अग्नि और बृहस्पति (इह आ यातु) यहां आवें और (वसुभिः सह इह आ यातु) वसुओंके साथ यहां आवें। हे (सजाताः) उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषो! (सर्वे संमनसः) सब एक मनवाले होकर (अस्य उग्रस्य चेत्तुः श्रियं उपसंयात) इस शूर और चेतना देनेवालेकी शोभाको बढाओ ॥ १ ॥

(यः शुष्मः वः हृदयेषु अन्तः) जो बल तुम्हारे हृदयोंमें है, (या आकूतिः वः मनसि प्रविष्टा) जो संकल्प तुम्हारे मनमें प्रविष्ट हुआ है। (तान् हविषा घृतेन सीवयामि) उनको अन्न और घृतसे मैं जोड देता हूं। हे (सजाताः) उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषो! (वः रमतिः मयि अस्तु) तुम्हारी प्रसन्नता मुझ नायक पर रहे ॥ २ ॥

(इह एव स्त) यहीं पर रहो, (अस्मत् अधि मा अप यात) हमसे दूर मत जाओ। (पूषा वः परस्तात् अपथं कृणोतु) पूषा तुम्हारे लिये आगे जानेका मार्ग बंद करे। (वास्तोष्पतिः वः अनु जोहवीतु) वास्तुपति तुम्हें अनुकूलतासे बुलावे। हे (सजाताः) उत्तम कुलमें उत्पन्न मनुष्यो! (वः रमतिः मयि अस्तु) आपका प्रेम मुझपर रहे ॥ ३ ॥

भावार्थ— सब ज्ञानी एक स्थानपर इकट्ठे हों। सब मनुष्य एक विचारमें रहकर अपने नायकका बल बढावें ॥ १ ॥

जो लोगोंमें बल और विचार है, उसका पोषण योग्य उपायसे करना चाहिये। सब मनुष्य अपने नायकपर प्रसन्न रहें ॥ २ ॥

सब लोग एक स्थानपर स्थिर रहें। इधर उधर न भागें। भागनेका मार्ग उनके लिए खुला न रहे। ईश्वर उनको अनुकूलतासे एक कार्यमें रखे। इस प्रकार सब लोग प्रेमसे एक नायकके नीचे रहें ॥ ३ ॥

संघटना

यदि एक मुखिया अथवा नेता किंवा नायकके आधीन लोग रहें, तो उनका सांधिक बल बढता है और यदि वही लोग बिखरे रहें, एक दूसरेसे दूर रहें, तो उनका संघबल घट जाता है। इसलिये जिनकी अपना संघबल बढानेकी इच्छा है वे अपने एक नेताके आधीन प्रेमसे रहें। अपना संकल्प एक रखें और अपने हृदयमें एक ही इच्छा रखें। किसी कारणसे भी आपसमें कलह न करें और विभक्त न हों। अपने संघका यश बढानेके लिये सब मिलकर प्रयत्न करें। इस प्रकार करनेसे उनका संघबल बढ सकता है।

परस्पर प्रेम

कां. ६, सूक्त ८९

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- रुद्रः, मन्त्रोक्ताः।)

इदं यत्प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम्। ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥ १ ॥
शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः। वातं धूम इव सध्र्यङ् मामेवान्वेतु ते मनः ॥ २ ॥
मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती। मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥ ३ ॥

अर्थ— जो (यत् सोमेन दत्तं) सोमने दिया है, (प्रेण्यः इदं वृष्ण्यं शिरः) इस प्रेम करनेवालेके बलवान् सिरके (ततः प्रजातेन) उत्पन्न हुए बलसे (ते हार्दिं परि शोचयामसि) तेरे हृदयके भावोंको उद्दीपित करते हैं॥१॥

(ते हार्दिं शोचयामसि) तेरे हृदयके भावोंको उद्दीपित करते हैं, (ते मनः शोचयामसि) तेरे मनको उत्तेजित करते हैं, (वातं धूम इव) वायुके पीछे जिस प्रकार धूवां जाता है, उसी प्रकार (ते सध्र्यङ् मनः मां एव अन्वेतु) तेरा अनुकूल मन मेरे पास ही आवे ॥ २ ॥

(मित्रावरुणौ त्वा मह्यं) मित्र और वरुण तुझको मुझे देवें, (देवी सरस्वती मह्यं) सरस्वती देवी मुझे देवे। (भूम्या मध्यं) भूमिका मध्य तथा (उभौ अन्तौ) दोनों अन्तभाग (त्वा मह्यं समस्यतां) तुझको मुझे देवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रेम करनेवालेका सिर और हृदय प्रेमके साथ ही उद्दीपित होता है ॥ १ ॥

हृदयको और मनको उत्तेजित करते हैं जिस प्रकार धूवां वायुको अनुसरता है, उसी प्रकार मन हृदयके अनुकूल होवे ॥ २ ॥

मित्र, वरुण, सरस्वती, भूमिका मध्यभाग और अन्तिम भाग ये सब हम सबको मिलाकर रखें ॥ ३ ॥

एकताका मन्त्र

मनुष्यका सिर और हृदय प्रेमसे उत्तेजित होता है। इस प्रकार उत्तेजित हुआ और प्रेमसे भरपूर हुआ मनुष्य ही इस जगत्में कुछ विशेष कार्य करनेमें समर्थ होता है।

हृदयके अनुकूल मन ऐसा होवे कि, जिस प्रकार वायुकी गतिके अनुकूल धूवां होता है। सरस्वती अर्थात् विद्याकी और भूमि अर्थात् मातृभूमिकी भक्ति ये दोनों मनको ऐसा अनुकूल करें, कि वह कभी हृदयको छोडकर अर्थात् उस नेताके हृदयसे दूर न भागे।

इस प्रकार मनसे सुविचार और हृदयसे भक्ति करते हुए मनुष्य उन्नत हो सकते हैं।

परस्पर प्रेम

कां. ६, सूक्त १०२

(ऋषिः– जमदग्निः । देवता– अश्विनौ ।)

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते । एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥ १ ॥
आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव । रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥ २ ॥
आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च । तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (यथा अयं वाहः सं एति) जिस प्रकार यह घोडा साथ साथ जाता है और (सं वर्तते च) मिलकर साथ साथ रहता है, (एवा ते मनः मां अभि) उसी प्रकार तेरा मन मेरे (सं आ एतु) साथ आवे और (सं वर्ततां च) साथ रहे ॥ १ ॥

(पृष्ट्यां राजाश्वः इव) जिस प्रकार पीठके साथ बंधी गाडीको घोडा खींचता है, उसी प्रकार (अहं ते मनः आ खिदामि) मैं तेरे मनको खींचता हूं। (यथा रेष्म–छिन्नं तृणं) जैसे वायुसे छिन्नभिन्न हुई घास एक दूसरेसे लिपटती है, वैसे ही (ते मनः मयि वेष्टतां) तेरा मन मेरे साथ लिपटा रहे ॥ २ ॥

(तुरः भगस्य) त्वरासे प्राप्त होनेवाले, भाग्ययुक्त, (आञ्जनस्य मृदुघस्य) अञ्जनके समान हर्षित करनेवाले (कुष्ठस्य नलदस्य हस्ताभ्यां) कूठ और नलके समान हाथों द्वारा (अनुरोधनं उद्भरे) अनुकूलताको प्राप्त करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार गाडीमें जोते हुए दो घोडे साथ साथ रहते हैं और साथ साथ चलते हैं, उसी प्रकार परस्परका मन एक साथ रहे, परस्पर विरोध न करे ॥ १ ॥

जिस प्रकार घोडा गाडीको अपनी ओर खींचता है, उसी प्रकार एक मनुष्य दूसरेके मनको खींचे और इस प्रकारके प्रेमके बर्तावसे मनुष्य परस्पर संगठित हों ॥ २ ॥

त्वरासे कोई कार्य करना, भाग्य प्राप्त होना, अञ्जन आदि भोगविलास करना, हरएक प्रकारका आनन्द कमाना इत्यादि अनेक कार्योंमें परस्परकी अनुकूलता परस्परको देखनी चाहिये ॥ ३ ॥

प्रेमका आकर्षण

एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको प्रेमके साथ आकर्षित करे और इस प्रकार सब मनुष्य संगठित होकर रहें। स्त्रीपुरुष, पितापुत्र, भाई भाई तथा अन्य मनुष्य एक दूसरेको प्रेमसे आकर्षित करें और सब संगठित होकर एक विचारसे अपनी उन्नतिका साधन करें।

सपत्ननाशक वरणमणि

कां. १०, सूक्त ३

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– वरणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः ।)

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा । तेना रभस्व त्वं शत्रून्प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥ १ ॥

अर्थ— (मे अयं वरणः मणिः) मेरा यह वरणमणि (वृषा सपत्नक्षयणः) बलवान् है और शत्रुओंका नाश करनेवाला है। (तेन) उसकी सहायतासे (त्वं शत्रून् आ रभस्व) तू शत्रुका नाश कर और (दुरस्यतः प्र मृणीहि) दुष्ट इच्छा करनेवालोंका भी नाश कर ॥ १ ॥

प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात् ।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥ २ ॥
अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रूनधरान्पादयाति पूर्वस्तान्दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥ ३ ॥
अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् । अयं त्वा सर्वस्मात्पापाद्वरणो वारयिष्यते ॥ ४ ॥
वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ ५ ॥
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥ ६ ॥
अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् । मृत्योरोजीयसो वधाद्वरणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥
यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥

अर्थ— (एनान् प्र शृणीहि) इनको मार, (प्रमृण) मसल दे, (आ रभस्व) नष्ट कर । यह (मणिः) मणि (ते पुरस्तात् पुरएता अस्तु) तेरे अग्रभागमें जानेवाला अग्रेसर हो । (देवाः वरणेन) देवोंने इस वरणमणिसे ही (असुराणां श्वः श्वः अभ्याचारं) असुरोंके प्रतिदिन होनेवाले अत्याचारोंका (अवारयन्त) निवारण किया ॥ २ ॥

(अयं वरणो मणिः विश्वभेषजः) यह वरणमणि सब औषधियोंका सार है । (सहस्राक्षः हरितः) सहस्र आंखवाला, सब दुःखोंका हरण करनेवाला है और यह (हिरण्ययः) सुवर्णसे युक्त है (सः ते शत्रून् अधरान् पादयाति) वह तेरे सब शत्रुओंको नीचे गिराता है । (ये त्वा द्विषन्ति) जो तेरा द्वेष करते हैं (तान् पूर्वः दभ्नुहि) उनको सबसे पहले दबा दे ॥ ३ ॥

(अयं वरणः) यह वरणमणि (ते विततां कृत्यां) तेरे चारों और फैले हुए कृत्याप्रयोगको नष्ट कर (पौरुषेयात् भयात्) मनुष्यकृत भयसे, (सर्वस्मात् पापात् त्वा) तथा सब प्रकारके पापोंसे तुझे (वारयिष्यते) हटायेगा ॥ ४ ॥

(अयं वरणः देवो वनस्पतिः) यह वरणमणि वनस्पति देव (वारयातै) दुःखनिवारक है । (यः यक्ष्मः अस्मिन् आविष्टः) जो क्षयरोग इसमें प्रविष्ट हुआ है, (तं उ देवा अवीवरन्) उसका देव निवारण करते हैं ॥ ५ ॥

(स्वप्नं सुप्त्वा) स्वप्नमें निद्राके समय (यदि पापं पश्यसि) यदि तू पापके दृश्य देखता है उससे (यति अजुष्टां सृतिं धावत्) और यदि अयोग्य गतिसे कोई दौडे तो उससे भी और (शकुनेः परिक्षवात्) शकुनिके अत्यंत दुष्ट शब्दसे और (पापवादात्) निन्दाके शब्दोंसे (अयं वरणो मणिः वारयिष्यते) यह वरणमणि निवारण करता है ॥ ६ ॥

(अरात्याः निर्ऋत्याः) शत्रुभय, विनाश, (अभिचारात् अथो भयात्) विनाशक प्रयोग और अन्य भय और (मृत्योः ओजीयसो वधात्) मृत्युके भयानक वधसे (त्वा वरणः वारयिष्यते) तुझे यह वरणमणि हटायेगा ॥ ७ ॥

(यत् मे माता) जो मेरी माता, (यत् मे पिता) जो मेरा पिता, (यत् च मे भ्रातरः) जो मेरे भाई, जो मेरे (स्वाः) आप्तजन तथा (वयं यत् एनः चकृम) हम सब जो पाप करते रहे हैं, (ततः) उस पापसे (अयं वनस्पतिः देवः) यह वनस्पति देव (नः वारयिष्यते) हमारा निवारण करेगा ॥ ८ ॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः । असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥ ९ ॥
अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः । तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥ १० ॥
अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः । स मे शत्रून्वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥ ११ ॥
इमं बिभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः । स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥ १२ ॥
यथा वातो वनस्पतीन्वृक्षान्भनक्त्योजसा
एवा सपत्नान्मे भङ्ग्धि पूर्वाञ्जाताँ उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १३ ॥
यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान्प्सातो वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नान्मे प्साहि पूर्वाञ्जाताँ उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १४ ॥
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वाञ्जाताँ उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १५ ॥
तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात्पुरायुषः । य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥ १६ ॥

अर्थ— (सबन्धवः मे भ्रातृव्याः) अपने बांधवोंके साथ मेरे शत्रुगण (वरणेन प्रव्यथिताः) वरणमणिके कारण पीडित होकर (असूर्तं रजः अपि अगुः) अन्धकारमय–धूलिमय स्थानको प्राप्त हों । (ते अधमं तमः यन्तु) वे निकृष्ट अन्धकारको प्राप्त हों ॥ ९ ॥

(अहं अरिष्टः) मैं अविनाशी, (अरिष्टगुः) अविनाशी वस्तुओंको प्राप्त करनेवाला (आयुष्मान् सर्वपूरुषः) दीर्घायु और समस्त पुरुषार्थी जनोंसे युक्त हूं । (अयं वरणः मणिः) यह वरणमणि (दिशोदिशः मा परि पातु) समस्त दिशाओंमें मेरी रक्षा करे ॥ १० ॥

(इन्द्रः दस्यून असुरान् इव) जैसे इन्द्र असुरों और शत्रुओंको ताप देता है, उसी प्रकार (अयं वरणः राजा वनस्पतिः देवः) यह वरणमणि राजा वनस्पति देव (मे उरसि) मेरी छातीमें विराजता हुआ (सः मे शत्रून् वि बाधतां) मेरे शत्रुओंको पीडा देवे ॥ ११ ॥

(इमं वरणं बिभर्मि) इस वरणमणिको मैं धारण करता हूं । जिससे मैं (आयुष्मान् शतशारदः) दीर्घायु और शतायु होऊंगा । (सः मे राष्ट्रं च क्षत्रं च) वह मेरे लिये राष्ट्र और क्षत्रियदलका तथा (पशून् ओजः च मे दधत्) पशुओं तथा ओजको मेरे लिये धारण करे ॥ १२ ॥

(यथा वातः) जैसे वायु (ओजसा) वेगसे (वृक्षान् वनस्पतीन्) वृक्षों और वनस्पतियोंको (भनक्ति) तोड देता है, (एवा) उसी तरह (मे पूर्वान् जातान्) मेरे पहिले बने हुए (उत् अपरान् सपत्नान्) और दूसरे शत्रुओंको (भङ्ग्धि) तोड दे । (वरणः त्वा अभिरक्षतु) वरणमणि तेरी रक्षा करे ॥ १३ ॥

(यथा वातः अग्निः च) जैसे वायु और अग्नि मिलकर (वनस्पतीन् वृक्षान्) वृक्षवनस्पतियोंको (प्सातः) नष्ट कर देते हैं, (एवा सपत्नान् मे स्पाहि) उसी तरह मेरे शत्रुओंका नाश कर० ॥ १४ ॥

(यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः) जिस तरह वायुसे क्षीण वृक्ष (न्यर्पिताः शेरे) गिराये हुए लेट जाते हैं, (एवा त्वं मम सपत्नान्) उसी तरह मेरे शत्रुओंको तू वरणमणि (न्यर्पय) गिरा दे० ॥ १५ ॥

हे (वरण) वरणमणि ! (ये एनं पशुषु दिप्सन्ति) जो इसके पशुओंमें घात करते हैं तथा (ये अस्य राष्ट्रदिप्सवः) जो इसके राष्ट्रविघातक शत्रु हैं, हे वरणमणि ! तू (पुरा आयुषः) आयुके क्षय होनेके पूर्व और (दिष्टात् पुरा) निश्चित समयसे भी पूर्व (त्वं तान् प्रच्छिन्द्धि) तू उनको छिन्न भिन्न कर ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन्तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १७ ॥
यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १८ ॥
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिञ्जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १९ ॥
यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २० ॥
यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २१ ॥
यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २२ ॥
यथा यशो यजमाने यथास्मिन्यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २३ ॥
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन्परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २४ ॥
यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

अर्थ— (यथा सूर्यः अतिभाति) जैसे सूर्य प्रकाशित होता है, (यथा अस्मिन् तेजः आहितं) जैसे इसमें तेज है, (एवा वरणः मणिः) इसी तरह यह वरणमणि (मे कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु) मुझे कीर्ति और ऐश्वर्य देवे। (मा तेजसा समुक्षतु) मुझे तेजके साथ संयुक्त करे, (मा यशसा समनक्तु) मुझे यशसे यशस्वी बनावे ॥ १७ ॥

(यथा यशः चन्द्रमसि नृचक्षसि आदित्ये०) जैसा यश चन्द्रमा और दर्शनीय आदित्यमें है, (यथा यशः पृथिव्यां अस्मिन् जातवेदसि०) जैसा यश पृथिवी और जातवेद अग्निमें है, (कन्यायां संभृते रथे०) जैसा यश कन्याओंमें और युद्धके लिये सिद्ध हुए रथमें है, (सोमपीथे मधुपर्के०) जैसा यश सोमपीथ और मधुपर्कमें है, (अग्निहोत्रे वषट्कारे०) जैसा यश अग्निहोत्र और वषट्कारमें है, (यजमाने, यज्ञे०) जैसा यश यजमानमें है और यज्ञमें है (प्रजापतौ परमेष्ठिनि०) जैसा यश प्रजापति और परमेष्ठीमें है, उसी तरहका यश यह वरणमणि मुझे देवे और मुझे तेज और यशसे युक्त करे ॥ १८-२४ ॥

(यथा देवेषु अमृतं) जैसे देवोंमें अमृत है, (यथा एषु सत्यं आहितं) जैसे देवोंमें सत्य है, (एवा मे वरणो मणिः) इसी तरह मेरे लिये यह वरणमणि कीर्ति और ऐश्वर्य (नि यच्छतु) देवे और मुझे (तेजसा समुक्षतु) तेजसे युक्त करे और मुझे (यशसा मा समनक्तु) यशसे संयुक्त करे ॥ २५ ॥

इस सूक्तमें शत्रुनाश और अपने यशकी अभिवृद्धिके लिये प्रार्थना है। इस सूक्तके सुबोध होनेसे अधिक स्पष्टीकरणकी कोई आवश्यकता नहीं है।

पत्नी पतिके लिये वस्त्र बनावे

कां. ७, सूक्त ३७

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— वासः ।)

अभि त्वा मनुंजातेन दधामि मम वासंसा । यथासो मम केवंलो नान्यासां कीर्तयांश्चन ॥ १ ॥

अर्थ— (मम मनुजातेन वाससा) अपने विचारके साथ बनाये वस्त्रसे (त्वा अभि दधामि) तुझे मैं बांध देती हूं । (यथा केवलः मम असः) जिससे तू केवल मेरा ही पति होकर रहे और (अन्यासां न चन कीर्तयाः) अन्य स्त्रियोंका नाम तक लेनेवाला न हो ॥ १ ॥

स्त्री अपने हाथसे सूत काते, चर्खा चलावे, सूत निर्माण करे और अपनी कुशलतासे निर्माण किये हुए कपडेसे पतिके पहिरनेके वस्त्र तैयार करे । पत्नीके निर्माण किये सूतसे बने हुए वस्त्र पति पहने । सूत निर्माण करनेके समय पत्नी अपने आन्तरिक प्रेमके साथ सूत काते ओर पति भी ऐसा कपडा पहनना अपना वैभव माने । इस प्रकार परस्पर प्रेमका व्यवहार करनेसे पति भी दूसरी स्त्रीका नाम नहीं लेगा और धर्मपत्नी भी दूसरे पुरुषका नाम नहीं लेगी । इस प्रकार दोनों गृहस्थाश्रमका आनन्द प्राप्त करते हुए सुखी होंगे ।

उन्नतिकी दिशा

कांड ३, सूक्त २६

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— अग्न्यादयः ।)

येॆ३॑ऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नामं देवास्तेषां वो अग्निरिषंवः ।
ते नों मृडत ते नोऽधिं ब्रूत तेभ्यों वो नमस्तेभ्यों वः स्वाहां ॥ १ ॥
येॆ३॑ऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नामं देवास्तेषां वः काम इषंवः ।
ते नों मृडत ते नोऽधिं ब्रूत तेभ्यों वो नमस्तेभ्यों वः स्वाहां ॥ २ ॥
येॆ३॑ऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नामं देवास्तेषां व आप इषंवः ।
ते नों मृडत ते नोऽधिं ब्रूत तेभ्यों वो नमस्तेभ्यों वः स्वाहां ॥ ३ ॥

अर्थ— (ये अस्यां प्राच्यां दिशि) जो तुम इस पूर्व दिशामें (हेतयः नाम देवाः) पञ्र नामवाले देव हो, (तेषां वः) उन तुम्हारा (अग्निः इषवः) अग्नि बाण है। (ते नः मृडत) वे तुम हमें सुखी करो, (ते नः अधिब्रूत) वे तुम हमें उपदेश करो । (तेभ्यः वः नमः) उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे, (तेभ्यः स्वाहा) उन तुम्हारे लिये हम अपना समर्पण करते हैं ॥ १ ॥

जो तुम इस (दक्षिणायां दिशि) दक्षिण दिशामें (अविष्यवो नाम देवाः) रक्षा करनेकी इच्छा करनेवाले इस नामके जो देव हों (तेषां वः काम इषवः) उन तुम्हारा काम बाण है । वे तुम हमें सुखी करो और हमें उपदेश करो, उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे और तुम्हारे लिये हम अपना अर्पण करते हैं ॥ २ ॥

जो तुम इस (प्रतीच्यां दिशि) पश्चिम दिशामें (वैराजा नाम देवाः) विराज नामक देव हो, उन तुम्हारा (आपः इषवः) जल ही बाण है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ३ ॥

येऽ॒स्यां स्थोदी॑च्यां दि॒शि प्र॑वि॒ध्यन्तो॒ नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ वो॒ वात॒ इष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नम॒स्तेभ्यो॑ वः॒ स्वाहा॑ ॥ ४ ॥
येऽ॒स्यां स्थ ध्रु॒वायां॑ दि॒शि नि॑लि॒म्पा नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ व॒ ओष॑धी॒रिष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नम॒स्तेभ्यो॑ वः॒ स्वाहा॑ ॥ ५ ॥
येऽ॒स्यां स्थोर्ध्वायां॑ दि॒श्यव॑स्वन्तो॒ नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ वो॒ बृह॒स्पति॒रिष॑वः ।
ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो॒ नम॒स्तेभ्यो॑ वः॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

अर्थ— जो तुम इस (उदीच्यां दिशि) उत्तर दिशामें (प्रविध्यन्तः नाम देवाः) वेध करनेवाले इस नामके देव हो, उन तुम्हारा (वातः इषवः) वायु बाण है। वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो। तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ४ ॥

जो तुम इस (ध्रुवायां दिशि) ध्रुव दिशामें (निलिम्पा नाम देवाः) निलिम्प नामक देव हो, उन तुम्हारा (औषधीः इषवः) औषधी बाण है। वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो। उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ५ ॥

जो तुम इस (ऊर्ध्वायां दिशि) ऊर्ध्व दिशामें (अवस्वन्तः नाम देवाः) रक्षक नामवाले देव हो, उन तुम्हारा (बृहस्पतिः इषवः) ज्ञानी बाण है। वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो। उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ— पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ध्रुव (पृथिवी) और उर्ध्व (आकाश) ये छः दिशाएं हैं, इन छः दिशाओंमें क्रमशः (हेति-शस्त्रास्त्र) वज्र; रक्षाकी इच्छा करनेवाले स्वयंसेवक; (वि-राज्) राजरहित अवस्था अर्थात् प्रजासत्ता; वेधकता; लेप करनेवाले वैद्य और उपदेशक इनकी प्रधानता है। ये जनताको उपदेश करते हैं और उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये जनता भी उनका सत्कार करती है और उनके लिये आत्मसमर्पण करती है ॥ १-६ ॥

सांमनस्य

कां. ६, सूक्त ७४

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- सांमनस्यम्, नाना देवताः, त्रिणामा।)

सं वः॑ पृच्यन्तां त॒न्व१ः॒ सं मनां॑सि॒ समु॑ व्र॒ता । सं वो॒ऽयं ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्भगः॒ सं वो॑ अजीगमत् ॥ १ ॥
सं॒ज्ञप॑नं वो॒ मन॒सोऽथो॑ सं॒ज्ञप॑नं हृ॒दः । अथो॒ भग॑स्य॒ यच्छ्रा॒न्तं तेन॒ संज्ञ॑पयामि वः ॥ २ ॥

अर्थ— (वः तन्वः सं पृच्यन्तां) तुम्हारे शरीर मिलें, (मनांसि सं) तुम्हारे मन मिलें और (उ व्रता सं) तुम्हारे कर्म भी मिलजुल कर हों। (अयं ब्रह्मणस्पतिः वः सं) यह ज्ञानपति तुम्हें मिलाकर रखे। (भगः वः सं अजीगमत्) भाग्य देनेवाला भी तुम सबको मिलाये रखे ॥ १ ॥

(वः मनसः संज्ञपनं) तुम्हारे मनको मिलकर रहनेका अभ्यास हो (अथो हृदः संज्ञपनं) और हृदयको भी मिलनेका अभ्यास हो (अथो भगस्य यत् श्रान्तं) और भाग्यवान्‌का जो परिश्रम है (तेम वः संज्ञपयामि) उससे तुम सबको मिलकर रहनेका अभ्यास हो ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम्हारे शरीर, मन और कर्म सबके साथ एकसे अर्थात् समतासे युक्त हों। तुम्हें ज्ञान देनेवाला एकताका ज्ञान दे तथा तुम्हारा भाग्य बढानेवाला तुम्हें मिलाये रखे ॥ १ ॥

तुम्हारे मन और हृदय एक हों। भाग्य प्राप्त करनेके लिये जो परिश्रम करने पडते हैं, उन श्रमोंको करते हुए तुम आपसमें मिलकर रहो ॥ २ ॥

यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान्जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥ ३ ॥

अर्थ— (यथा अहृणीयमानाः उग्राः आदित्याः) जैसे किसीसे न दबनेवाले उग्र आदित्य (वसुभिः मरुद्भिः संबभूवुः) वसुओं और मरुतोंसे मिलकर रहे, (एवा) उसी प्रकार हे (त्रिणामन्) तीन नामवाले ! (अहृणीयमानः) न दबता हुआ (इह इमान् जनान् सं मनसः कृधि) यहां इन लोगोंको एक विचारसे युक्त कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—'जिस प्रकार शूर आदित्य, वसुओं और रुद्रोंसे मिलकर रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी स्वयं मिलकर रहो और इन सब जनोंको मिलाकर रखो ॥ ३ ॥

एकताका बल

इस सूक्तमें मिलजुल कर रहने और अपनी एकतासे अपनी उन्नति साधन करनेका उपदेश है। हृदय, मन, विचार, संकल्प और कर्म आदि सबमें समता और एकता चाहिये । किसीमें विपरीत भाव हुआ तो भिन्नता होगी और संघभाव नष्ट होगा । इस जगत्में आदित्य, वसु और रुद्र वस्तुतः भिन्न होनेपर भी जगत्के कार्यमें मिलजुलकर लगे रहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य रंगरूप और जातिकी भिन्नता रहनेपर भी राष्ट्रकार्य करनेके लिये सब मिल जावें और एक होकर राष्ट्रकार्य करें।

सौभाग्य-वर्धन-सूक्त

कां. १, सूक्त १८

(ऋषिः— द्रविणोदाः । देवता— वैनायकं सौभगम् ।)

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं१ निरर्रातिं सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ १ ॥
निरर्रणिं सविता साविषक् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।
निरस्मभ्यमनुमती ररा॑णा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥ २ ॥

अर्थ— (ललाम्यं) सिरपर होनेवाले (लक्ष्म्यं) बुरे चिन्हको (निः) निःशेषतासे दूर करते हैं; तथा (अरातिं) कंजूसी आदि (निःसुवामसि) निःशेष दूर करते हैं (अथ या भद्रा) और जो कल्याणकारक चिन्ह हैं (तानि नः प्रजायै) उन्हें सब अपनी संतानके लिये हम प्राप्त करते हैं और (अरातिं) कंजूसी आदिको (नयामसि) दूर भगाते हैं ॥ १ ॥

सविता, वरुण, मित्र और अर्यमा (पदोः हस्तयोः) पावों और हाथोंकी (अरणिं) पीडाको (निः निः साविषत्) दूर करें । (रराणा अनुमतिः) दानशील अनुमतिने (अस्मभ्यं निः) हमारे लिये निःशेष प्रेरणा की है । तथा (देवाः) देवोंने (इमां) इस स्त्रीको (सौभगाय) सौभाग्यके लिये (प्र असाविषुः) प्रेरित किया है ॥ २ ॥

भावार्थ— सिरपर तथा शरीरपर जो कुलक्षण हों उनको दूर करना चाहिये तथा अंतःकरणमें कंजूसी आदि दुर्गुणोंको भी दूर करना चाहिये और जो सुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके पास स्थिर करना अथवा बढाना चाहिये। तथा कंजूसी आदि मनके बुरे भावोंको हटाना चाहिये ॥ १ ॥

सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावोंकी पीडाको दूर करें, इस विषयमें ये हमें उपदेश दें । क्योंकि देवोंने स्त्री और पुरुषको उत्तम भाग्यके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥

यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु । ॥ ३ ॥
रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत । विलीढ्यं ललाम्यं१ ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

अर्थ— (यत् ते आत्मनि) जो तेरी आत्मामें तथा (तन्वां) शरीरमें (वा यत् केशेषु) अथवा जो केशोंमें (वा प्रतिचक्षणे) अथवा जो दृष्टिमें (घोरं अस्ति) भयानक चिन्ह है (तत् सर्वं) वह सब (वयं वाचा हन्मः) हम वाणीसे हटा देते हैं। (सविता देवः) सविता देव (त्वा सूदयतु) तुझे सिद्ध करे अर्थात् परिपक्व बनावे ॥ ३ ॥

(रिश्यपदीं) हरणके समान पांववाली, (वृषदतीं) बैलके समान दांतवाली, (गोषेधां) गायके समान चलनेवाली, (विधमा) विरुद्ध शब्द बोलनेवाली, जिसका शब्द कठोर है ऐसी स्त्री (उत ललाम्यं विलीढयं) और सिरपरका कुलक्षण यह सब हम (अस्मत् नाशयामसि) अपनेसे दूर करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— तुम्हारी आत्मा अथवा मनमें, शरीरमें, केशोंमें तथा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हों, जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम वचनसे हटाते हैं। परमेश्वर तुम्हें उत्तम लक्षणोंसे युक्त बनावे ॥ ३ ॥

हरिणके समान पांव, बैलके समान दांत, गायके समान चलनेकी आदत, कठोर बुरी आवाज तथा सिरपरके अन्य कुलक्षण आदि सब हमसे दूर हों ॥ ४ ॥

सौभाग्य--वर्धन--सूक्त

कुलक्षण और सुलक्षण

इस सूक्तमें शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा आदिके भी जो कुलक्षण हों उनको दूर करने तथा अपने आपको पूर्ण सुलक्षणयुक्त बनानेका उपदेश किया है। इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षण ये हैं—

(१) ललाम्यं लक्ष्म्यं— सिरपरका लक्षण, कपाल छोटा होना, माथेपर बाल होने, बुद्धिहीन दर्शन आदि कुलक्षण। (मंत्र १)

(२) ललाम्यं विलीढ्यं— सिरपर बालोंके गुच्छे रहना और उससे सिरकी शोभाका बिगाड आदि कुलक्षण। (मंत्र ४)

(३) रिश्यपदी— हरिणके समान कृश पांव। (मंत्र ४)

(४) वृषदती— बैलके समान बडे दांत। (मंत्र ४)

(५) गोषेधा— गायके समान चलना। (मंत्र ४)

(६) वि-धमा— कानोंको बुरा लगनेवाली आवाज, जिसकी मीठी मंजुल आवाज नहीं। (मंत्र ४)

ये अंतिम (३–६) चार कुलक्षण स्त्रियोंके लिये बहुत बुरे हैं अर्थात् स्त्रियोंमें ये न हों। वधू पसंद करनेके समय इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है।

(७) केशेषु घोरं— बालोंमें क्रूरता अथवा भयानकता दिखाई देना अर्थात् बालोंके कारण मुख क्रूरसा दीखना। (मंत्र ३)

(८) प्रतिचक्षणे क्रूरं— नेत्रोंमें क्रूरता, भयानक नेत्र, भयानक दृष्टि। (मंत्र ३)

(९) तन्वा क्रूरं— शरीरमें भयानकता, अर्थात् शरीरके अवयवके टेढामेढा होनेके कारण भयानक दृश्य। (मं. ३)

(१०) आत्मनि क्रूरं— मन, बुद्धि, चित्त, आत्मामें क्रूरताके भाव होना। (मं. ३)

(११) अ-रातिं— कंजूसी, उदारभावका अभाव। (मं. १)

(१२) पदोः हस्तयोः अ-रणिः— पांव और हाथोंकी पीडा अथवा कुछ विकार। (मं. २)

इन कुलक्षणोंको दूर करना और इनके विरोधी सुलक्षणोंको अपनेमें बढाना हरएकका कर्तव्य है। इन कुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सकता है। जिससे शरीर सुडौल दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये। इसी प्रकार इंद्रियाँ, मन, बुद्धि, वाचा आदिके भी सुलक्षण हैं। इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त करके अपनेमेंसे कुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढाना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है।

वाणीसे कुलक्षणोंको हटाना

मंत्र ३ में 'सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं।' अर्थात् हम ये सब कुलक्षण वाणीसे दूर करते हैं, अथवा वाणीसे इन कुलक्षणोंका नाश करते हैं, कहा है; तथा साथ साथ यह भी कहा है कि 'देवस्त्वा सविता सूदयतु' सविता देव तुम्हें पूर्ण सुलक्षणयुक्त बनावें, परमेश्वरकी कृपासे मनुष्य सुलक्षणोंसे युक्त हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं परंतु वाणीसे कुलक्षणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत लोगोंको संदेह होना संभव है, अतः इस विषयमें कुछ स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। वेदमें यह विषय कई सूक्तोंमें आचुका है।

वाणीसे प्रेरणा

वाणीसे अपने आपको अथवा दूसरेको भी प्रेरणा या सूचना देकर रोग दूर करना, तथा मन आदिके कुलक्षण दूर करना संभवनीय है, यह बात वेदमें अनेक स्थानोंपर आई है। यह सूचना इस प्रकार दी जाती है— 'मेरे अंदर ··· ··· यह कुलक्षण है, यह केवल थोडी देर रहनेवाला है, यह चिरकाल नहीं रहेगा, यह कम हो रहा है, अतिशीघ्र कम होगा। मेरे अंदर सुलक्षण बढ रहे हैं, मैं सुलक्षणोंसे युक्त होऊंगा। मैं निर्दोष बन रहा हूं। मैं निरोगी रहूंगा। मैं दोषोंको हटाता हूं और अपनेमें गुणोंको विकसित करता हूं।'

इत्यादि रीतिसे अनेक प्रकारकी सूचनायें मनको देने और उनका प्रतिबिंब मनके अंदर स्थिर रखनेसे इष्ट सिद्धि होती है। वेदका यह मानसशास्त्रका सिद्धांत हरएकके विचार करने योग्य है। 'मैं हीन हूं, दीन हूं' आदि विचार जो लोग आज कल बोलते हैं, वे विचार मनमें प्रतिबिंबित होनेसे मनपर कुसंस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं। इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चार ही हमेशा करना चाहिये, कभी भी अशुद्ध गिरे हुए भावोंसे युक्त शब्दोंका उच्चार नहीं करना चाहिये। वाणीकी शुद्ध प्रेरणाके विषयमें साक्षात् उपदेश देनेवाले कई सूक्त आगे आनेवाले हैं, इसलिये इस विषयमें यहां इतना ही लेख पर्याप्त है। अस्तु, इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने कुलक्षणोंको दूर करना और अपने अंदर सुलक्षणोंको बढाना हरएक मनुष्यको योग्य है।

हाथों और पांवोंका दर्द

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि सविता (सूर्य), वरुण (जल), मित्र (प्राणवायु), अर्यमा (आगका पौधा) ये हाथों और पांवोंके दर्दको तथा शरीरके दर्दको दूर करें। सूर्यप्रकाश, समुद्र आदिका जल, शुद्ध वायु, आकके पत्तोंका सेक आदिसे बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं। इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय वारंवार आनेवाला है। आरोग्य तो इनसे ही प्राप्त होता है।

सौभाग्यके लिये

'इमां देवा असाविषुः सौभगाय।' इसको देवोंने सौभाग्यके लिये बनाया है। विशेष करके स्त्रीके उद्देश्यसे यह मंत्रभाग है, परंतु सबके लिये भी यह माना जा सकता है। अर्थात् मनुष्य मात्र स्त्री हो या पुरुष हो वह अपना कल्याण साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और वह यदि परमेश्वरकी भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीकी सूचनासे अपने मनको प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनेगा। हरएक मनुष्य इस वैदिक धर्मके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे। अपनी उन्नतिको सिद्ध करना हरएकके पुरुषार्थपर अवलंबित है। यदि अपनी अवनति हुई है तो निश्चय जानना चाहिये कि पुरुषार्थमें त्रुटि हुई है।

सन्तानका कल्याण

भले ही अपनेमें कुछ कुलक्षण हों, तथापि अपनी संतानोंमें सुलक्षण ही आये (या भद्रा तानि नः प्रजायै) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हरएक गृहस्थीको ध्यानमें धरना चाहिए। अपनी संतान निर्दोष और सुलक्षणोंसे तथा सद्गुणोंसे युक्त बने यह भाव यदि हरएक गृहस्थीमें रहेगा, तो प्रति पुश्तमें मनुष्योंका सुधार होता जायगा और राष्ट्र प्रतिदिन उन्नतिकी सीढीपर चढेगा। यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है, इसलिये इसको कोई गृहस्थी न भूले।

सौभाग्य-वर्धन

कां. ६, सू. १३९

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- वनस्पतिः।)

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम।
शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः। तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥ १ ॥
शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम्। अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ २ ॥
संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद। अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥ ३ ॥
यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्। एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ ४ ॥
यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः। एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥ ५ ॥

अर्थ— (मम सुभगंकरणी न्यस्तिका रुरोहिथ) मेरा सौभाग्य बढानेवाली और दोष दूर करनेवाली यह औषधी उत्पन्न हुई है। (तव शतं प्रतानाः) तेरो सौ प्रकारकी शाखाएं हैं और (त्रयस्त्रिंशत् नितानाः) तैंतीस उपशाखाएं हैं। (तया सहस्रपर्ण्या) उस सहस्रपर्णी औषधिसे (ते हृदयं शोषयामि) तेरा हृदय शुष्क करता हूं ॥ १ ॥

(ते हृदयं मयि शुष्यतु) तेरा हृदय मेरे विषयमें विचार करके सूख जावे (अथो आस्यं शुष्यतु) और मुख भी सूख जावे। (अथो मां कामेन नि शुष्य) मुझे भी कामसे शुष्क करके तू (अथो शुष्कास्या चर) शुष्क मुखवाली होकर चल ॥ २ ॥

हे (बभ्रु कल्याणि) पोषण करनेवाली अथवा पीले रंगवाली और कल्याण करनेवाली ! (संवननी समुष्पला) सेवन करने योग्य और उत्साह बढानेवाली है। तू (अमूं संनुद) उसको प्रेरित कर, (मां च संनुद) मुझे प्रेरित कर। हमारा (हृदयं समानं कृधि) हृदय समान कर ॥ ३ ॥

(यथा उदकं अपपुषः) जिसप्रकार जल न पीनेवालेका (आस्यं शुष्यति) मुख सूख जाता है, (एवा मां कामेन नि शुष्य) इस प्रकार मुझें कामसे सुखाकर तू स्वयं भी (अथो शुष्कास्या चर) सूखे मुखवाली होकर चल ॥ ४ ॥

(यथा नकुलः अहिं विच्छिद्य) जैसे नेवला सांपको काटकर (पुनः संदधाति) फिर जोड देता है, (एवा वीर्यावति) इस प्रकार हे वीर्यावती औषधि ! (कामस्य विच्छिन्नं) कामके टूटे हुए संबंधको (सं धेहि) जोड दे ॥ ५ ॥

भावार्थ— सहस्रपर्णी औषधि सौभाग्य बढानेवाली और दोष दूर करनेवाली है। इसकी सैकडों शाखाएं होती हैं। इससे स्त्रीपुरुष वीर्यवान् होते हैं और परस्परके वियोगको सह नहीं सकते अर्थात् वियोग होनेपर सूख जाते हैं ॥ १-२ ॥

यह वनस्पति पुष्टि करनेवाली और सब प्रकार आनंद देनेवाली है, उत्साह भी बढाती है, इसलिये गृहस्थी स्त्रीपुरुषोंके द्वारा सेवन करने योग्य है। स्त्रीपुरुषोंको परस्पर इच्छाकी प्रेरणा इसके सेवनसे होती है और दोनोंका हृदय समानतया परस्परके प्रति आकर्षित होता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार जल न मिलनेसे मनुष्य सूख जाता है, इस प्रकार कामसे स्त्रीपुरुष परस्पर प्राप्तिकी इच्छासे सूखते हैं ॥४॥

जिस प्रकार नेवला सांपको काटकर पुनः जोड देता है, उसी प्रकार वियुक्त स्त्रीपुरुषोंको पुनः जोड देना योग्य है ॥५॥

सहस्रपर्णी औषधि

इस सूक्तमें सहस्रपर्णी औषधीका वर्णन है। यह औषधी स्त्री पुरुषोंको परस्पर संबंध करनेके योग्य पुष्ट और वीर्यवान् बना देती है। इसके सेवन करनेपर स्त्रीपुरुषोंको परस्परका वियोग सहन करना असंभव हो जाता है। निर्वीर्य पुरुष भी बडा उत्साहसंपन्न हो जाता है। इस प्रकारकी यह सहस्रपर्णी औषधी कौनसी वनस्पति है, इसका पता आजकलके वैद्यकग्रंथोंसे नहीं चलता। वैद्योंको इस विषयकी खोज करना चाहिये।

नेवलेका सांपको काटना और जोडना

इस सूक्तके पंचम मंत्रमें 'नेवला सांपको काटता है और उसको फिर जोड देता है' (नकुलः अहिं विच्छिद्य पुनः संदधाति) ऐसा कहा है। यह विश्वास प्रायः सर्वत्र भारतवर्षमें है। अथर्ववेदमें भी यहां यही बात कही है। अतः इस विषयकी खोज करनी चाहिये। यदि इस प्रकारकी कोई वनस्पति मिली तो बडी लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

सौभाग्यके लिये बढाओ

कां. ७, सू. १६

(ऋषिः- भृगुः। देवता- सविता।)

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय।
संशितं चित्संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः। ॥ १ ॥

अर्थ— हे (बृहस्पते सवितः) ज्ञानपते, हे उत्पादक देव! (एनं वर्धय) इसको बढा, (एनं महते सौभगाय ज्योतय) इसको बडे सौभाग्यके लिये प्रकाशित कर। (संशितं सं-तरं चित् संशिशाधि) पहिले ही तीक्ष्ण बुद्धिवालेको अधिक उत्तम बनानेके लिये शिक्षासे युक्त कर। (विश्वे देवाः एनं अनु मदन्तु) सब देवतालोग इसका अनुमोदन करें॥ १॥

भावार्थ— हे ज्ञानी देव! हम सब मनुष्योंको बढाओ, हमें बडा ऐश्वर्य प्राप्त हो, इसलिये अपना प्रकाश अर्पण करो। हममें जो पहिलेसे तेजस्वी लोग हैं, उनको अधिक तेजस्वी बनानेके लिये उत्तम शिक्षा प्राप्त होवे और दैवी शक्तियोंकी सहायता सबको प्राप्त होवे॥ १॥

पृथ्वी, आप, तेज, वायु, सूर्य, वनस्पति आदि देवताओंकी सहायता हमें उत्तम प्रकारसे प्राप्त हो और उनकी शक्ति प्राप्त करके हम अपनी उन्नतिका साधन करें और ऐश्वर्यके भागी हम बनें। ईश्वर ऐसी परिस्थितिमें हमें रखे कि, जहां हमें उन्नति करनेके कार्यमें किसीका विरोध न होवे और हम अखंड उन्नतिका साधन कर सकें।

दांतोंकी पीडा

कां. ६, सू. १४०

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- ब्रह्मणस्पतिः, दन्ताः।)

यौ व्याघ्राववरूढो जिघत्सतः पितरं मातरं च। यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः॥ १॥

अर्थ— (यौ व्याघ्रौ अवरूढौ) जो वाघके समान बढे हुए दो दांत (मातरं पितरं च जिघत्सतः) माता और पिताको दुःख देते हैं, हे ब्रह्मणस्पते! हे (जातवेदः) ज्ञानी! (तौ दन्तौ शिवौ कृणु) उन दोनों दांतोंको कल्याण करनेवाला कर॥ १॥

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् ।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ २ ॥
उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।
अन्यत्र वां घोरं तन्वः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ ३ ॥

अर्थ— (व्रीहिं अत्तं यवं अत्तं) चावल खाओ, जौ खाओ, (अथो माषं अथो तिलं) उडद और तिल खाओ। (एष वां भागः रत्नधेयाय निहितः) यह तुम्हारा भाग रत्नधारणके लिये निश्चित हुआ है। हे दांतो ! (पितरं मातरं च मा हिंसिष्टं) माता पिताको कष्ट न दो ॥ २ ॥

(सयुजौ स्योनौ सुमंगलौ दन्तौ उपहूतौ) साथ साथ जुडे हुए सुखदायी मंगलकारी दोनों दांत प्रशंसनीय हैं। (वां तन्वः घोरं अन्यत्र परैतु) तुम्हारे शरीरका कठोर दुःख दूर हो। हे (दन्तौ) दांतो ! (पितरं मातरं मा हिंसिष्टं) माता पिताको कष्ट न दो ॥ ३ ॥

बालकोंके जिस समय दांत आते हैं, उस समय उनको बडे कष्ट होते हैं, उनमें भी दो दांत ऐसे हैं कि जिनके कारण बालकोंको बडा ही कष्ट होता है। बालकोंका कष्ट देख कर उनके मातापिता भी बडे दुःखी होते हैं।

इस समय बालकको चावल, जौ, उडद और तिल खानेके लिए देना चाहिये। जिस रीतिसे पचन हो जांय उस रीतिसे अच्छी प्रकार अन्न खानेके लिए देना चाहिये। इसके खानेसे दांत सुदृढ होते हैं और रत्नोंके समान सुन्दर होते हैं।

वैद्योंको सोचना चाहिये कि, यह पथ्य बालकोंसे किस प्रकार कराना चाहिये। हरएक बालकको दांतोंका कष्ट होता है, यदि यह पथ्य हितकारक सिद्ध हुआ, तो हरएक गृहस्थी इससे लाभ उठा सकता है।

केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. १३६

(ऋषिः- वीतहव्यः। देवता- वनस्पतिः।)

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे। तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥ १ ॥
दृंह प्रत्नाञ्जनयाजातान्जातानु वर्षीयसस्कृधि। ॥ २ ॥
यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते। इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥ ३ ॥

अर्थ— हे औषधे ! तू (देवी देव्यां पृथिव्यां अधि जाता) दिव्य औषधी पृथिवी देवीमें उत्पन्न हुई है। हे (नितत्नि) नीचे फैलनेवाली औषधि ! (तां त्वा केशेभ्यः दृंहणाय खनामसि) उस तुझ औषधिको केशोंको सुदृढ करनेके लिये खोदते हैं ॥ १ ॥

(प्रत्नान् दृंह) पुराने केशोंको दृढ कर, (अजातान् जनय) जहां बाल उत्पन्न नहीं होते वहां उत्पन्न कर (जातान् उ वर्षीयसः कृधि) और जो उत्पन्न हुए उनको लंबे कर ॥ २ ॥

(यः ते केशः अवपद्यते) जो तेरा केश गिर जाता है (यः च समूलः वृश्चते) और जो मूल सहित उखड जाता है, (इदं तं विश्वभेषज्या वीरुधा अभिषिञ्चामि) उस केशको केशदोषको दूर करनेवाली लताके रससे मैं भिंगा देता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ— नितत्नी नामक औषधी पृथ्वीपर उगती है, उसके प्रयोगसे केश सुदृढ होते हैं। जो केश पुराने हों, टूटते हों, गिर जाते हों, इस औषधीके रसके लगानेसे वह सब दोष दूर हो जाता है और बाल सुदृढ हो जाते हैं। जहां बाल उगते नही वहां इस औषधिका रस लगानेसे बाल आते हैं और जहां आते हैं वहांके बाल बडे लंबे हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

इस नितत्नी नामक औषधीको केशवर्धक कहा है, परंतु यह कौनसी औषधी है, इसका पता नहीं चलता। वैद्योंको चाहिए कि वे इस औषधिकी खोज करें और प्रकाशित करें।

केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. १३७

(ऋषिः- वीतहव्यः । देवता- वनस्पतिः ।)

यां जमदग्निरखनद्दुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥
अभीशुना मेया आसन्व्यामेनानुमेयाः । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ २ ॥
दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥

अर्थ— (जमदग्निः यां केशवर्धनीं दुहित्रे अखनत्) जमदग्निने जिस केशवर्धक औषधिको अपनी कन्याके लिए खोदा था, (तां वीतहव्यः असितस्य गृहेभ्यः आभरत्) उसको वीतहव्यने असितके घरोंके लिये भर लिया ॥१॥

जो (अभीशुना मेया आसन्) केश अंगुलियोंसे मापे जाते थे वे (व्यामेन अनुमेयाः) हाथोंसे मापने योग्य होगये । (ते शीर्ष्णः परि) तेरे सिर पर (असिताः केशाः) काले केश (नडाः इव वर्धन्तां) घासके समान बढें ॥ २ ॥

हे औषधे ! (मूलं दृंह) केशका मूल दृढ कर, (अग्रं वि यच्छ) अग्रभागको ठीक कर और (मध्यं यामय) मध्यभागको भी दृढ कर । (ते शीर्ष्णः परि) तेरे सिरके ऊपर (असिताः केशाः नडाः इव वर्धन्तां) काले केश घासके समान बढें ॥ ३ ॥

उक्त केशवर्धक औषधिके रसके उपयोगसे केश बहुत बढ जाते हैं । गीले स्थानमें जैसे घास बहुत बढती है, उसी प्रकार इस औषधसे केश बढते हैं और केशोंके मूल भी सुदृढ हो जाते हैं, इस कारण वे टूटते नहीं । यह केशवर्धक औषधि वही है कि जो पूर्व सूक्तमें वर्णित है । यह औषधि अन्वेषणीय है । क्योंकि इसका पता नहीं चलता ।

केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. २१

(ऋषिः- शन्तातिः । देवता- चन्द्रमाः ।)

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा । तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥ १ ॥
श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् । सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥ २ ॥

अर्थ— (इमाः याः तिस्रः पृथिवीः) ये जो तीन लोक हैं (तासां भूमिः उत्तमा) उनमें यह भूमि उत्तम है । (तासां त्वचः अधि) उनमें त्वचाके विषयमें (भेषजं अहं उ सं जग्रभं) यह औषध मैंने प्राप्त की है ॥ १ ॥

(यथा यामेषु देवेषु) जैसे चलनेवाले देवोंमें (सोमः भगः वरुणः) सोम, भग और वरुण श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार (भेषजानां श्रेष्ठं असि) औषधोंमें तू श्रेष्ठ है, (वीरुधानां वसिष्ठं) वनस्पतियोंको यह बसानेवाला अर्थात् श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ । उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे (रेवतीः अनाधृषः सिषासवः) सामर्थ्ययुक्त, अहिंसित और आरोग्य देनेवाले रेवती औषधियो! तुम (सिषासथ) आरोग्य देनेकी इच्छा करो। (उत केशदृंहणीः स्थ) और बालोंको बलवान् करनेवाली होवो (अथो ह केशवर्धिनीः) और बालोंको बढानेवाली होवो ॥ ३ ॥

'रेवती' औषधी केश बढानेवाली और बालोंको दृढ करनेवाली है । यह त्वचाके रोगोंके लिये भी उत्तम है । यह औषधि आजकल नहीं मिलती, इसलिये इसकी खोज करनी चाहिये ।

अरुंधती औषधि

कां. ६, सू. ५९

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– रुद्रः, मन्त्रोक्ताः ।)

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति । अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥ १ ॥
शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती । करत्पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥ २ ॥
विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् । सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (अरुंधती) अरुंधती औषधि ! (त्वं अनडुद्भ्यः) तू बैलोंको (त्वं धेनुभ्यः) तू गौओंको तथा तू (चतुष्पदे अधेनवे वयसे) चार पांववाले गौसे भिन्न पशुको तथा पक्षियोंको (प्रथमं शर्म यच्छ) पहिले सुख दे ॥ १ ॥

(अरुंधती ओषधिः देवीः सह) अरुंधती नामक औषधी सब अन्य दिव्य औषधियोंके साथ (शर्म यच्छतु) सुख देवे । तथा (गोष्ठं पयस्वन्तं) गोशालाको बहुत दुग्धयुक्त (उत पूरुषान् अयक्ष्मान् करत्) और मनुष्योंको रोगरहित करे ॥ २ ॥

(विश्वरूपां सुभगां जीवलां अच्छ-आवदामि) नानारूपवाली भाग्यशालिनी जीवला औषधिके विषयमें हम उत्तम वचन कहते हैं, स्तुति करते हैं । (रुद्रस्य अस्तां हेतिं) रुद्रके फेंके रोगादि शस्त्रको (नः गोभ्यः दूरं नयतु) हमारे पशुओंसे दूर ले जावे, उनको नीरोग बनावे ॥ ३ ॥

भावार्थ— अरुन्धती नामक औषधी गाय, बैल आदि चतुष्पाद और पक्षी आदि द्विपादोंको नीरोग करती है और सुख देती है ॥ १ ॥

अरुन्धती तथा अन्य औषधियां सुख देनेवाली हैं, इनसे गौवें अधिक दूध देनेवाली बनती हैं । और सब प्राणी नीरोग होते हैं ॥ २ ॥

अनेक रंगरूपवाली यह जीवन देनेवाली जीवला औषधि स्तुति करने योग्य है। पशुपक्षियों और मनुष्योंको होनेवाले रोग इससे दूर होते हैं ॥ ३ ॥

अरुन्धती

'अरु' का अर्थ संधिस्थान, जोड, इस स्थानके रोग ठीक करनेवाली औषधि 'अरुंधती' है । इसका आजकलका नाम क्या है इसका पता नहीं चलता । खोज करके निश्चय करना चाहिये । इसे गौओंको खिलानेसे गौएं अधिक दूध देने लगती हैं । इसका सेवन मनुष्य करेंगे तो यक्ष्मा जैसे रोग दूर होते हैं । 'जीवला' औषधि भी इसी प्रकार उपयोगी है, संभव है कि जीवला, अरुन्धती ये नाम एक ही औषधिके हों । यह खोजका विषय है ।

वाजीकरण

कां. ६, सू. ७२

(ऋषिः- अथर्वाङ्गिराः । देवता- शेपोऽर्कः ।)

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥ १ ॥
यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् । यावत्परस्वतः पसस्तावत्ते वर्धतां पसः ॥ २ ॥
यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तीनं गार्दभं च यत् । यावदश्वस्य वाजिनस्तावत्ते वर्धतां पसः ॥ ३ ॥

अर्थ— (यथा असितः) जिस प्रकार बंधनरहित मनुष्य (असुरस्य मायया वपूंषि कृण्वन्) आसुरी मायासे देहोंको बनाता हुआ (वशान् अनु प्रथयते) अपने पुट्ठोंको वशमें करता हुए उनको फैलाता है, (एवा ते अयं शेपः) उसी प्रकार तेरे इस शरीरांगको (सहसा अंगेन अङ्गं सं समकं अर्कः कृणोतु) बलसे दूसरे अन्य अवयवोंके समान ही यह पूजनीय आत्मा पुष्ट करे ॥ १ ॥

(यथा पसः वातेन तायादरं स्थूलभं कृतं) जिस प्रकार शरीरांग वातसे सन्तानोत्पत्तिके योग्य और पुष्ट किया होता है और (यावत् परस्वतः पसः) पूर्ण पुरुषका जैसा शरीरांग होता है (तावत् ते पसः वर्धतां) वैसा ही तेरा शरीरांग भी बढे ॥ २ ॥

(यावत् अंगीनं पारस्वतं) जैसे सुदृढ अंगवाले पूर्ण पुरुषका तथा जैसे (यावत् हास्तीनं गार्दभं अश्वस्य वाजिनः) हाथी, गधे और घोडेका होता है, (तावत् ते पसः वर्धतां) वैसे ही तेरा शरीरांग बढे ॥ ३ ॥

शरीरांग सुदृढ और संतानोत्पत्तिके कार्यके लिये योग्य बने । पुरुष हीनांग न हो, दृढांग हो ।

स्त्री-पुरुषकी वृद्धि

कां. ६, सू. ७८

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- चन्द्रमा, त्वष्टा ।)

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः । जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥ १ ॥
अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् । रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥ २ ॥

अर्थ— (तेन भूतेन हविषा) उस किये हुए हविसे (अयं पुनः आप्यायतां) यह वारंवार पुष्ट हो । (यां जायां अस्मै अवाक्षुः) जिस स्त्रीका इसके साथ विवाह हुआ है, (तां रसेन अभिवर्धतां) उसको भी यह रससे पुष्ट करे ॥ १ ॥

ये दम्पती (पयसा अभिवर्धतां) दूध पीकर पुष्ट हों, (राष्ट्रेण अभिवर्धतां) राष्ट्रके साथ बढें, (सहस्र-वर्चसा रय्या) सहस्र तेजोंवाले धनसे (इमौ अनुपक्षितौ स्तां) ये दोनों पतिपत्नी सदा भरपूर हों ॥ २ ॥

भावार्थ— इस वैवाहिक यज्ञसे यह पति बढे और जिस कारण यह स्त्री विवाहमें इसे दी गई है, इस कारण विविध रसोंसे यह पति इसकी पुष्टि करे ॥ १ ॥

दोनों पतिपत्नी दूध पीकर पुष्ट हों, अपने राष्ट्रकी उन्नतिके साथ उन्नत हों और इनके पास सदा हजारों तेजोंवाला धन भरपूर रहे ॥ २ ॥

त्वष्टा जायामजनयत्त्वष्टास्यै त्वां पतिम् । त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥ ३ ॥

अर्थ—(त्वष्टा जायां अजनयत्) जगद्रचयिता देवने स्त्रीको उत्पन्न किया है और (त्वष्टा अस्यै त्वां पतिं) उसी ईश्वरने इसके लिये तुझ पतिको भी उत्पन्न किया है। (त्वष्टा वां सहस्रं आयूंषि) रचयिता ईश्वर तुम दोनोंको हजारों वर्षोंतक रहनेवाला (दीर्घं आयुः कृणोतु) दीर्घ आयु प्रदान करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— ईश्वरने जिस प्रकार स्त्री की उत्पत्ति की है, उसी प्रकार स्त्रीके लिये पतिको भी उत्पन्न किया है। वह ईश्वर इनके लिये उत्तम दीर्घ आयु देवे ॥ ३ ॥

गृहस्थीकी पुष्टि

पति और पत्नी घरमें रहकर एक दूसरेकी पुष्टि और उन्नतिका विचार करें। कभी परस्परके नाशका विचार न करें। विशिष्ट गुणधर्मोंसे ईश्वरने जैसे स्त्रियोंको वैसे ही पुरुषोंको भी उत्पन्न किया है। इसलिये दोनोंको उचित है कि वे परस्परकी सहायता करके परस्परकी उन्नति करनेमें प्रवृत्त हों।

चाय, काफी, तमाखू, मद्य आदि न पीवें, अपितु गौका दूध ही आवश्यकतानुसार पीवें, दोनों दूध पीकर पुष्ट हों। अर्थात् उनके शरीरकी पुष्टि दूधसे होवे। इसी प्रकार दोनों स्त्रीपुरुष धनादि पदार्थोंका उपार्जन करें और सुखसाधनोंसे भरपूर हों।

दोनों स्त्रीपुरुष एक दूसरेकी पूर्णता करते हुए दीर्घायु प्राप्त करें और सुखी हों।

स्त्री-चिकित्सा

कांड ७, सू. ३५

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- जातवेदाः ।)

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्वे एनमनु मदन्तु देवाः ॥ १ ॥
इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत । तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥ २ ॥
परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः ।
अस्वं१ त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥ ३ ॥

अर्थ— (अन्यान् सपत्नान् सहसा प्रसहस्व) दूसरे सपत्नोंको बलसे दबा दे। हे (जातवेदः) ज्ञानप्रकाशक ! (अजातान् प्रति नुदस्व) आगे होनेवाले सपत्नोंको भी दूर कर। (इदं राष्ट्रं सौभगाय पिपृहि) इस राष्ट्रको उत्तम समृद्धिके लिये परिपूर्ण कर। (विश्वे देवाः एनं अनुमदन्तु) सब देव इसका अनुमोदन करें ॥ १ ॥

(याः ते इमाः शतं हिराः) जो ये सौ नाडियां हैं, (उत सहस्रं धमनीः) और हजारों धमनियां हैं, (ते तासां सर्वासां बिलं) तेरी उन सब धमनियोंका छिद्र (अहं अश्मना अपि अधां) मैं पत्थरसे बन्द करता हूं ॥२॥

(ते योनेः परं) तेरे गर्भस्थानसे परे जो हैं उनको (अवरं कृणोमि) मैं समीप करता हूं। जिससे (प्रजा उत सूनुः) संतान अथवा पुत्र (त्वा मा अभिभूत्) तुझे तिरस्कृत न करे। (त्वा अस्वं प्रजसं कृणोमि) तुझे असुवाली अर्थात् प्राणवाली संतान देता हूं और (अश्मानं ते अपिधानं कृणोमि) पत्थरसे तुझे ढकता हूं ॥ ३ ॥

स्त्री--चिकित्सा

इस सूक्तमें स्त्रीचिकित्साका विषय कहा है। विशेषकर योनिचिकित्साका महत्त्वपूर्ण विषय है। सूक्त अस्पष्ट है। अतः इसका योग्य स्पष्टीकरण हम कर नहीं सकते। योनिस्थानकी सैकडों नाडियोंका छिद्र बंद करनेका विधान द्वितीय मंत्रमें है। अर्थात् स्त्रियोंके रक्तस्रावके रोगको दूर करनेका तात्पर्य यहां प्रतीत होता है। रक्तस्रावको दूर करनेका साधन (अश्मा) पत्थर कहा है, यह किस जातिका पत्थर है, इसकी खोज वैद्योंको करनी चाहिये। यह कोई ऐसा पत्थर होगा कि जिसके घावपर लगानेसे, वहांसे होनेवाला रक्तप्रवाह बंद होकर रोगीको आरोग्य प्राप्त हो जाता होगा। तृतीय मंत्रमें भी इसी पत्थरका उल्लेख है। घावपर इस पत्थरको ढकन जैसे रखनेके लिए इस मंत्रमें कहा है। यह विधान इसलिये होगा कि यदि किसी घावका रक्तप्रवाह एकवार लगानेसे बंद न होता हो, तो उसपर वह औषधिका पत्थर बहुत समय तक बांध देना चाहिए।

फिटकरीके पत्थरको छोटे घावपर लगानेसे वहांका रक्त-प्रवाह बंद हो जाता है, यह अनुभूत है। इसी प्रकारका यह कोई पत्थर होगा, जिसे स्त्रियोंके योनिस्थानके रक्तप्रवाहको रोकनेवाला यहां कहा है।

तृतीय मंत्रमें सन्तान न होनेवाली स्त्रीके योनिस्थान और गर्भाशयकी नाडियों और धमनियोंका स्थान बदल देनेका उल्लेख है। इस प्रकार स्थान बदल देनेसे उस स्त्रीकी सन्तान होती है। स्त्री और पुरुष सन्तान भी होती है। इस प्रकार धमनियोंका स्थान बदलनेपर संतति उस माताका तिर-स्कार नहीं करती (प्रजा मा अभि भूत्) ऐसा मंत्रका वाक्य है। प्रजा अथवा संतान द्वारा स्त्रीका तिरस्कार होनेका स्पष्ट अर्थ यह है कि उस स्त्रीकी संतान न होना। जो जिसका तिरस्कार करता है, वह उसके पास नहीं जाता। यहां सन्तान स्त्रीका तिरस्कार करती है, ऐसा कहनेसे उस स्त्रीके सन्तान नहीं होती यह बात सिद्ध है। ऐसी वंध्या स्त्रीके (अस्–वं प्रजसं कृणोमि) प्राणवाली प्रजा पैदा करता हूं। पूर्वोक्त प्रकार स्त्रीकी धमनियोंका प्रवाह बदलनेसे वंध्या स्त्रीके भी प्राणवाली प्रजा पैदा होती है। 'अस्वं' शब्द 'अस्–वन्', 'असु–वान्' प्राणवाला इस अर्थमें यहां है। यहां 'अश्वं' ऐसा भी पाठ है। यह पाठ माननेपर 'बलवान्' ऐसा अर्थ होगा।

वंध्या दो प्रकारकी होती है, एकके संतान ही नहीं होती और दूसरीके सन्तान होती तो है परंतु मर जाती है। इन दोनों प्रकारकी वंध्याओंके योनिस्थानकी नाडियोंका रुख बदल देनेसे सन्तानोत्पत्तिकी संभावना यहां कही है।

उत्तम गृहिणी स्त्री

कां. ४, सू. ३८

(ऋषिः– बादरायणिः। देवता– अप्सराः, ऋषभः।)

उ॒द्भिन्द॒तीं सं॒जय॑न्तीमप्स॒रां सा॑धुदे॒विनी॑म्। ग्लहे॑ कृ॒तानि॑ कृण्वा॒नाम॑प्स॒रां ता॑मि॒ह हु॑वे ॥ १ ॥
वि॒चिन्व॒तीमा॑कि॒रन्ती॑मप्स॒रां सा॑धुदे॒विनी॑म्। ग्लहे॑ कृ॒तानि॑ गृह्णा॒नाम॑प्स॒रां ता॑मि॒ह हु॑वे ॥ २ ॥

अर्थ— (उद्भिन्दतीं साधुदेविनीं) शत्रुको उखाडनेवाली, उत्तम व्यवहार करनेवाली और (संजयन्तीं अप्सरां) उत्तम विजय प्राप्त करनेवाली रमणीय स्त्रीको तथा (ग्लहे कृतानि कृण्वानां तां अप्सरां) स्पर्धाके समय उत्तम कृत्य करनेवाली उस स्त्रीको (इह हुवे) यहां बुलाता हूं ॥ १ ॥

(विचिन्वन्तीं आकिरन्तीं) संचय करनेवाली और बांटनेवाली (साधुदेविनीं अप्सरां) उत्तम व्यवहार करने वाली तथा (ग्लहे कृतानि गृह्णानां तां अप्सरां) स्पर्धाके समय उत्तम कृत्य करनेवाली उस रमणीय स्त्रीको मैं यहां बुलाता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— शत्रुको नष्ट करके उन्नत होनेवाली, उत्तम व्यवहारमें दक्ष, विजयी और स्पर्धाके समय योग्य कर्तव्य उत्तम प्रकारसे सिद्ध करनेवाली स्त्रीको हम यहां बुलाते हैं ॥ १ ॥

समयपर संचय करनेवाली और समयपर सत्पात्रमें दान करनेवाली, उत्तम व्यवहारदक्ष तथा स्पर्धाके उत्तम योग्य कर्तव्य उत्तम प्रकारसे करनेवाली स्त्रीको हम यहां बुलाते हैं ॥ २ ॥

यायैः परिनृत्यंत्यादाना कृतं ग्लहात् । सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥ ३ ॥
या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती । आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥ ४ ॥
सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वाँन् लोकान्पर्येति रक्षन् ।
स न ऐतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥ ५ ॥
अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥ ६ ॥

अर्थ— (या अयैः ग्लहात् कृतं आददाना) जो शुभ धर्मविधियोंसे स्पर्धामें उत्तम कृत्यको स्वीकार करती है। (सा नः कृतानि सीषती) वह हमारे उत्तम कर्मोंको नियमबद्ध करती हुई (मायया प्रहां आप्नोतु) अपनी कुशल बुद्धिसे प्रगतिको प्राप्त करे। (सा पयस्वती नः आ एतु) वह अन्नवाली उत्तम स्त्री हमारे पास आवे जिससे (नः इदं धनं मा जैषुः) हमारा यह धन कोई दूसरे न ले जांय ॥ ३ ॥

(शुचं क्रोधं च बिभ्रती) शोक और क्रोधको धारण करती हुई भी (याः अक्षेषु प्रमोदन्ते) जो अपनी आंखोंमें आनन्दित वृत्ति रखती है (तां आनन्दिनीं प्रमोदिनीं अप्सरां) उस आनन्द और उल्हास देनेवाली सुन्दर स्त्रीको (इह हुवे) यहां मैं बुलाता हूं ॥ ४ ॥

(याः सूर्यस्य रश्मीन् अनुसंचरन्ति) जो सूर्यके किरणोंमें अनुकूल संचार करती हैं, (वा याः मरीचीः अनुसंचरन्ति) अथवा जो सूर्य प्रकाशमें संचार करती हैं, वे स्त्रियां हमारे पास आवें और (वाजिनीवान् ऋषभः) बलवान् श्रेष्ठ पुरुष (दूरतः सद्यः यासां सर्वान् लोकान् रक्षन् पर्येति) दूरसे ही तत्काल जिन स्त्रियोंके सब सम्बन्धी लोगोंकी रक्षा करता हुआ चारों ओरसे आता है। (सः वाजिनीवान्) वह बलवाला पुरुष (इमं होमं जुषाणः) इस यज्ञको स्वीकार करता हुआ, (अन्तरिक्षेण सह नः आ एतु) आन्तरिक विचारके साथ हमरे पास आवे ॥ ५ ॥

हे (वाजिनीवन् वाजिन्) बलवाले ! (अन्तरिक्षेण सह कर्कीं वत्सां) अन्तःकरणके साथ अपने कर्तृत्वशक्तिवाली बच्चीको (इह रक्ष) यहां रक्षा कर। (इमे ते बहुलाः स्तोकाः) ये तेरे आनन्ददायक बहुतसे बच्चे हैं, (अर्वाङ् एहि) यहां आ, (इह ते कर्की) यहां तेरी कर्तृत्वशक्ति और (इह ते मनः अस्तु) तेरा मन स्थिर रहे ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो स्पर्धाके समय शुभधर्मविधिके अनुसार उत्तम कृत्य करती है तथा जो हमारे सब शुभकृत्योंको उत्तम व्यवस्थासे करती है, वह अपनी कुशलबुद्धिसे इस स्थानपर प्रगति करे। वह अन्नवाली स्त्री यहां रहे और उसकी व्यवस्थासे यहांका धन सुरक्षित हो ॥ ३ ॥

शोक और क्रोधके मनमें रहने पर भी जो सदा अपने आंखोंमें आनन्दकी प्रभा दिखाती है, वह आनन्द और संतोष बढानेवाली स्त्री यहां आवे ॥ ४ ॥

जो सूर्यकी किरणोंमें व्यवहार करती है अथवा सूर्य प्रकाशको अनुकूल बनाती है, इस प्रकारकी स्त्रियोंकी रक्षा दूरसे अर्थात् योग्य मर्यादासे ही सब पुरुष किया करें। ये बलवान् पुरुष अपने जीवनका यज्ञ करते हुए अपने हार्दिक विचारसे स्त्रियोंका आदर करके यहां रहें ॥ ५ ॥

हे बलवाले मनुष्यो ! अपने आन्तरिक प्रेमके साथ बच्चियोंकी रक्षा करो, सन्तानकी रक्षा करना आनन्ददायक कर्म है, आगे होकर यह कार्य करो, इस कार्यमें तुम्हारा मन स्थिर रहे ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः । यथानाम व ईश्महे स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (वाजिनीवन् वाजिन्) बलवान् ! (अन्तरिक्षेण सह कर्कीं वत्सां) अपने आंतरिक विचारके साथ कर्तृत्व शक्तिवाली बछीकी (इह रक्ष) यहां रक्षा कर । उसके लिये (अयं घासः) यह घास है, (अयं व्रजः) यह गौओंका स्थान है, (इह वत्सां निबध्नीमः) यहां बछडीको बांधते हैं । (यथानाम वः ईश्महे) नामोंके अनुसार तुम्हारी व्यवस्था हम करते हैं, (स्व-आहा) हमारा त्याग तुम्हारे लिये हो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे बलवाले मनुष्यो ! अपने आन्तरिक प्रेमके साथ गौकी बछडियोंकी रक्षा करो, गौओं और बछडोंके लिये यह घास है, उनके लिये यह स्थान है, बछडोंको यहां बांधते हैं और उनके नामोंके क्रमसे उनकी उत्तम व्यवस्था करते हैं, उनके लिये हम आत्मसर्वस्वका समर्पण करते हैं ॥ ७ ॥

उत्तम गृहिणी स्त्री

दक्ष स्त्रीका समादर

इस सूक्तमें दक्ष स्त्रीका बहुत आदर किया है । स्त्री गृहिणी होती है, इसलिये घरकी व्यवस्था उत्तम रखना और उस कार्यमें उत्तम दक्षता धारण करना स्त्रियोंका परम कर्तव्य है । इस विषयके आदेश इस सूक्तमें अनेक हैं, जिनका मनन अब करते हैं—

स्त्री कैसी हो ?

(१) संजयन्ती– उत्तम विजय प्राप्त करनेवाली, अर्थात् अपने कुटुंबको विजय दिलानेके उपायोंको आचरणमें लानेवाली हो । (मं० १)

(२) साधुदेविनी– ' दिव् ' धातुसे ' देविनी ' शब्द बनता है । ' दिव् ' धातुके अर्थ– ' क्रीडा, विजयेच्छा, व्यवहार, प्रकाश, आनंद, गति ' इतने हैं । अर्थात् ' साधु देविनी ' शब्दका अर्थ– ' क्रीडा या खेल खेलनेमें कुशल, अपने कुटुंबकी विजय चाहनेवाली, घरमें प्रकाशके समान तेजस्विनी होकर रहनेवाली, स्वयं आनंद स्वभावमें रहकर सब लोगोंका आनंद बढानेवाली, सबकी प्रगति करनेवाली । ' इस प्रकार हो सकता है । इस अर्थका संबंध ' संजयन्ती ' शब्दके अर्थके साथ है । (मं० १, २, ४,)

(३) उद्भिदन्ती– अपने शत्रुओंको उखाड देनेवाली । (मं० १) इसका भी तात्पर्य ' संजयन्ती ' पदके समान ही है, विजयेच्छुक और व्यवहार दक्ष होनेसे शत्रुको उखाडना और विजय प्राप्त करना ये बातें सुसंगत हैं । (मं० १)

(४) ग्लहे कृतानि कृण्वाना– ' ग्लह ' शब्दका अर्थ है ' स्पर्धा ', जीवन एक प्रकारकी स्पर्धा है, इस स्पर्धामें ' कृत ' अर्थात् उत्तम कृत्य अथवा उत्तम प्रयत्न करनेवाली । ' कृत ' शब्दका अर्थ यह है—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सं पद्यते चरन् ॥
चरैव चरैव । (ऐ० ब्रा० ७।१५)

" सुप्त अवस्थाका नाम कलि है, निद्रा या आलस्यको त्यागनेका नाम द्वापर है, प्रयत्न करनेकी बुद्धिसे उठनेका नाम त्रेता है और कृत उसको कहते हैं कि जिस अवस्थामें मनुष्य पुरुषार्थ करता है । " उन्नतिके लिये प्रबल पुरुषार्थ करनेका नाम कृत है । मानो " मनुष्यका जीवन एक जूवेका खेल " है । इसमें सोते रहनेवाले लाभ नहीं प्राप्त कर सकते । इस जूवेके ' कलि द्वापर, त्रेता और कृत ' ये चार पांसे होते हैं । जो झगडालू और आलसी होते हैं उनको इस जीवनरूपी जुएमें ' कलि ' मिलता है जिससे हानि ही हानि होती है, जो साधारण पुरुषार्थका प्रयत्न करते हैं उनको बीचके दो लाभ मिलते हैं, परंतु जो प्रबल पुरुषार्थी होता है वही ' कृत ' संज्ञक लाभ प्राप्त करके अधिकसे अधिक धन प्राप्त करता है ।

शतरंज या चौपट खेलनेवाले अपने पांसोंसे जो चार प्रकारके लाभ प्राप्त करते हैं, उन चार लाभोंके वाचक ये चार शब्द हैं । ' कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ' ये चार शब्द क्रमशः उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और हानिकारक दानोंके सूचक शब्द हैं । वस्तुतः वेदमें " अक्षैर्मा दीव्यः । " (ऋ० १०।३४।१३) जुआ मत खेल । इस प्रकारके वाक्योंसे जूवेका निषेध किया है । इसलिये वैदिक धर्ममें जूवेकी संभावना ही नहीं है । तथापि यहां सभी मनुष्य अपने आयुष्यके शतरंजका खेल खेल रहे हैं, अपने आयुष्यका जुआ खेल रहे हैं अथवा चौपट खेल रहे हैं । इसमें कईयोंको यह खेल लाभ-

कारी होता है और कईयोंको हानिकारक होता है। इसलिये इस जीवनरूपी बाजीमें उत्तम रीतिसे यह खेल खेलकर मनुष्य यशके भागी हों, यह उपदेश देनेके लिये रूपकालंकारसे इस सूक्तमें ' ग्लह, कृत, देविनी ' ये शब्द दो अर्थोंमें प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द जूवेबाजीका अर्थ भी बताते हैं और श्लेषसे उत्तम विजयी व्यवहारका भी अर्थ बताते हैं। यहां स्त्रीत्वका निर्देश होते हुए भी पुरुष भी इससे अपने विजयी जीवन बनानेका बोध प्राप्त कर सकते हैं। अस्तु। ' ग्लहे कृतानि कुर्वाणा ' का यहां यह अर्थ है– " इस जीवनरूपी स्पर्धाके खेलमें जो स्त्री उत्तम पुरुषार्थरूपी दान प्राप्त करती है। " अर्थात् उत्तम स्त्री वह है कि जो इस जीवनमें परम पुरुषार्थ प्रयत्न करती है। (मं० १, २) मंत्र ३ में ' कृतं ग्लहात् आददाना ' पाठ है। इसका भी उक्त प्रकार ही अर्थ है।

(५) विचिन्वन्ती, आकिरन्ती– संग्रह करनेवाली, दान देनेवाली। संग्रह करनेके समय योग्य रीतिसे और दक्षतासे संग्रह करनेवाली और दान करनेके समय उदारता पूर्वक दान देनेवाली। स्त्री ऐसी होनी चाहिये कि वह घरमें दक्षतासे और व्यवस्थासे योग्य वस्तुओंका संग्रह करे। तथा दान करनेके समय उदारताके साथ दान करे। ' विचिन्वन्ती ' का मूल अर्थ चुन चुनकर पदार्थोंको प्राप्त करनेवाली और ' विकिरन्ती ' का अर्थ ' बिखेरनेवाली ' है। यह संग्रह करनेका गुण और दानका गुण स्त्रीमें इतना हो कि जिससे उसके कुलका यश बढे घटे नहीं। (मं० २)

(६) या अयैः परिनृत्यति— जो शुभ विधियोंमें आनंदसे नाचती है अर्थात् जिसका प्रयत्न सदा सर्वदा धार्मिक शुभ विधि करनेके लिये ही होता है। ' अयः ' का अर्थ ' शुभ विधि ' है (अयः शुभावहो विधिः '। अमर कोश १।३।२७) जिसका पूर्व कर्म भी उत्तम है और इस समयका भी कर्म उत्तम है। (मं. ३)

(७) कृतानि सीषती— जो उत्तम कर्मोंकी सुव्यवस्था नियमसे करती है। (मं. ३)

(८) पयस्वती— दूधवाली, जिसके पास बच्चोंको देनेके लिये बहुत दूध होता है। (मं. ३)

(९) या शुचं क्रोधं च बिभ्रती अक्षेषु प्रमोदन्ते– जो शोक और क्रोधके आनेपर भी आंखोंमें प्रसन्नताका तेज धारण करती है। ' अक्ष ' शब्दका अर्थ ' आंख और इंद्रिय ' है। यहां इंद्रिय अर्थ अपेक्षित है। जो स्त्री अन्तःकरणमें शोक उत्पन्न होनेपर अथवा क्रोध उत्पन्न होनेपर भी रोती पीटती या चिल्लाती नहीं है, प्रत्युत अपने व्यवहारसें, इंद्रियोंके व्यापारमें प्रसन्नताकी झलक दिखाती है वह उत्तम स्त्री है। (मं. ४)

(१०) आनन्दिनी, प्रमोदिनी— आनन्द और हर्षसे युक्त। अर्थात् जो सदा आनन्दित रहती है। और दूसरोंको प्रसन्न करनेका यत्न करती है। (मं. ४)

(११) सूर्यस्य रश्मीन् संचरन्ति— जो सूर्य किरणोंमें भ्रमण करती है। ' मरीचीः अनुसंचरन्ति– जो सूर्य प्रकाशमें भ्रमण करती है। अथवा जो सूर्य प्रकाशको अपने अनुकूल बनाती है। इससे आरोग्य उत्तम होता है। स्त्रियोंको सूर्यप्रकाशमें व्यवहार करना चाहिये। [यहां स्पष्ट होता है कि घूंघट या बुर्केकी पद्धति पूर्णतया अवैदिक है।] (मं. ५)

ये ग्यारह लक्षण उत्तम और दक्ष गृहिणीके हैं। स्त्री, धर्मपत्नी, गृहिणी घरमें किस प्रकार व्यवहार करे, इस विषयपर ये ग्यारह लक्षण बहुत उत्तम प्रकाश डालते हैं। स्त्री और पुरुष इन लक्षणोंका विचार करें और इस उपदेशको अपनानेका यत्न करें। इन लक्षणोंमें शत्रुको उखाड देना और विजय प्राप्त करना ये भी लक्षण हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि स्त्रियोंमें इतनी शक्ति तो अवश्य ही होनी चाहिये कि जिससे वे अपनी रक्षा उत्तम प्रकार कर सकें। आत्मरक्षाके लिये स्त्रियां दूसरेपर निर्भर न रहें। गृह व्यवहारमें दक्ष, निर्भय और अपने कुलका यश बढानेवाली स्त्रियां होनी चाहिये। इन लक्षणोंका विचार करनेसे स्त्री–शिक्षाका भी निश्चय हो सकता है। जिस शिक्षासे स्त्रीके अंदर इतने गुण विकसित हों, वह शिक्षा स्त्रियोंको देनी चाहिये। अथवा यों कहिये कि स्त्रियोंमें शिक्षासे इन गुणोंका विकास करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

अप्सरा

इन लक्षणोंसे युक्त स्त्रीको इस सूक्तमें ' अप्सरा ' कहा है। सुंदर स्त्रीको अप्सरा कहते हैं। अप्सरा शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमें यह भी एक अर्थ है। स्त्रीकी सुंदरता इस शब्दसे व्यक्त होती है। शरीरकी सुंदरता वस्तुतः उतना सुख नहीं देती, जितनी गुणोंकी सुंदरता देती है। इसलिये इन गुणोंसे युक्त सुंदर स्त्रीको अपने घरमें गृहिणी बनानेकी सुचना यहां दी है।

इसी अथर्ववेदमें कहीं कहीं पर ' अप्सरा ' शब्दका अर्थ रोगोत्पादक क्रिमि भी है और इस सूक्तमें ' सुंदरी गुणवती सुशील स्त्री ' है, यह देखकर पाठक चकित न हों। एक ही शब्दके इसी प्रकार अनेक अर्थ होते हैं। इसी प्रकार ' असुर ' शब्द परमेश्वरवाचक और राक्षस भी वाचक होता है अर्थात् इन शब्दोंके अर्थ इसी प्रकार विलक्षण होते हैं और यह एक वेदकी रीति ही है।

इस सूक्तके प्रथमके पांच मंत्रोंमें दक्ष धर्मपत्नीके शुभ

गुणोंका वर्णन है। यह वर्णन जैसे स्त्रियोंके लिए बोधप्रद है उसी प्रकार पुरुषोंके लिये भी बोधप्रद है।

रश्मिस्नान

पञ्चम मन्त्रमें 'सूर्यरश्मीन् अनु सञ्चरन्ति। (मं. ५)' सूर्य रश्मियोंके अन्दर अनुकूल रीतिसे सञ्चार करनेकी सूचना दो बार दी है। एक ही विषयको दो बार कहनेसे वह दृढ हो जाता है। अर्थात् स्त्रियोंका सूर्यकिरणोंमें भ्रमण करना वेदको बहुत ही अभीष्ट है। स्त्रियां प्रायः घरेलू व्यवहारमें दक्ष रहती हैं और पुरुष घरके बाहरके व्यवहारको करते हैं। इसलिये पुरुषोंको उनके व्यवहारके ही कारण सूर्यरश्मिस्नान होता है। स्त्रियां घरके अन्दरके व्यवहार करती हैं, इसलिये सूर्यरश्मियों-के अमृतरससे वञ्चित रहती हैं; अतः उनके स्वास्थ्यके लिये इस मन्त्रमें रश्मिस्नानका दो बार उपदेश दिया है।

स्त्री रक्षा

स्त्रियोंकी रक्षा होनी चाहिये। वह दो प्रकारसे हो सकती है। एक तो पूर्वोक्त गुणोंका उत्तम विकास स्त्रियोंमें करनेसे स्त्रियां स्वयं अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हो जायेंगी और अपनी रक्षा करनेके लिये दूसरोंके मुखकी ओर देखनेकी आवश्यकता उनको नहीं रहेगी। तथापि कई प्रसंग ऐसे हैं कि जिनमें पुरुषोंको स्त्रियोंकी रक्षा करनी ही पडती है। ऐसे समयोंमें--

यासां सर्वान् लोकान् दूरतः रक्षन्
वाजिनीवान् पर्येति। (मं. ५)

'जिन स्त्रियोंके सब लोगोंकी दूरसे रक्षा करता हुआ बलवान् पुरुष भ्रमण करता है।' इसका आशय यह है कि पुरुष स्त्रियोंकी रक्षा करनेके समय शिष्टाचार पूर्वक उचित रीतिसे दूर रहकर रक्षाका कार्य करें। स्त्रियोंमें घुसकर अथवा स्त्रियोंका अन्य प्रकार निरादर करके उनकी रक्षाका प्रयत्न करना योग्य नहीं है। जिस प्रकार बडे प्रतिष्ठित पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले रक्षक उचित अन्तरपर रहते हुए उनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार स्त्रियोंकी रक्षा भी उनकी सुयोग्य प्रतिष्ठा करते हुए करनी चाहिये।

इस मंत्रमें और अगले छठे मंत्रमें 'अन्तरिक्ष' शब्द 'अन्दरका भाव' इस अर्थमें आया है। अन्तरिक्ष लोकका ही अंश अपने शरीरमें अपना अन्तःकरण है। मानो, यहांका यह शब्द अन्तःकरणका ही वाचक है। तात्पर्य यह है कि जो कुछ कार्य करना हो वह अन्तःकरणसे ही करना चाहिये। ऊपर ऊपरसे किया हुआ कार्य निष्फल होता है और अन्तः-करण लगाकर किया हुआ कार्य सफल होता है। मनुष्यका अभ्युदय अन्तःकरणके सद्भावपूर्वक किये हुए कर्मसे ही होगा, अन्य मार्ग नहीं है।

वत्सां इह रक्ष। (मं. ६)

'पुत्रीकी यहां रक्षा कर।' पुत्रीकी रक्षाका उत्तम प्रबंध करना चाहिये। पुत्रीकी रक्षा होनेसे ही आगे वह पुत्री सुयोग्य और सुशील धर्मपत्नी अथवा स्त्री या माता हो सकती है। आजकल पुत्रीका जन्म होते ही घरके सभी सदस्य दुःखी होते हैं और प्रायः पुत्रीकी उन्नतिका विचार नहीं करते, ऐसे लोगोंको वेदका यह उपदेश अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये। जगत्की स्थिति और सन्तानपरंपरा स्त्रियोंके कारण होती है, इसलिये स्त्रियोंकी उन्नतिसे ही सब जगत्का कल्याण होना संभव है। माता स्वर्गसे भी अधिक श्रेष्ठ है, फिर माताके बालपनमें उसकी रक्षाका प्रबंध उत्त-मसे उत्तम होना चाहिये इसमें संदेह ही क्या हो सकता है?

वत्स शब्द जिस प्रकार पशुके बच्चोंका वाचक है, उसी प्रकार मनुष्योंके बच्चोंका भी वाचक है। प्रेमसे पुत्रको वत्स और पुत्रीको वत्सा कहते हैं। इसलिये इस षष्ठमंत्रका वत्सा शब्द मनुष्योंकी कन्याओंका वाचक और सप्तम मंत्रका वत्सा शब्द गौ आदिकोंकी बछडियोंका वाचक है। सप्तम मंत्रमें बछडेके लिये घास और उसको उत्तम गोशालामें बांधनेका वर्णन होनेसे वहांकी वत्सा गौ आदिकोंकी बछडी है, इसमें संदेह नहीं है। परंतु षष्ठ मंत्रका वत्सा शब्द मनु-ष्योंके बच्चोंका भी वाचक मानना योग्य है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्योंके बाल बच्चोंकी सुरक्षितताका प्रयत्न मनसे करना चाहिये, उसी प्रकार गाय घोडे आदि पाले हुए जानवरोंके बछडोंका भी पालनका प्रबंध उत्तम रीतिसे करना चाहिये। जिस प्रेमसे घरके लोग अपने बच्चोंका पालन करते हैं, उसी प्रेमसे पशुओंके संतानोंका भी पालन किया जाय, यह इस उपदेशका तात्पर्य है। उनके घासका प्रबंध उत्तम हो, उनके जलपानका प्रबंध उत्तम हो, उनके रहनेका स्थान प्रशस्त हो, तथा उनके स्वास्थ्यका भी उचित प्रबंध किया जावे। तात्पर्य यह कि पाले हुए पशुओंको भी अपनी संतानके समान मानकर उनपर वैसा ही प्रेम करना चाहिये।

यह सूक्त अपना प्रेम पशुओंतक पहुंचानेका इस ढंगसे उपदेश दे रहा है। प्रेम जितना बढेगा और चारों ओर फैलेगा उतना अहिंसाका भाव विस्तृत होगा। वैदिक धर्मका अन्तिम साध्य पूर्ण अहिंसाका भाव मनमें स्थिर करना ही है, वह इस रीतिसे निःसंदेह सिद्ध होगा।

स्त्रीका आदर, स्त्रीके अंदर शुभ गुणोंका विकास करनेकी रीति, स्त्रीकी रक्षा, पुत्रीकी रक्षा और बछडोंकी रक्षा आदि अनेक उपयोगी विषय इस सूक्तमें आये हैं।

स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा

कां. ५, सूक्त १७

(ऋषिः- मयोभूः । देवता- ब्रह्मजाया ।)

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ १ ॥
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥ २ ॥
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रह्येया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥
यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्रामभवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥ ४ ॥

अर्थ— (अ-कू-पारः सलिलः) अगाध समुद्र, (मातरिश्वा) वायु (वीडुहराः) बलवान् तेजवाला अग्नि, (उग्रं तपः) उग्र ताप देनेवाला सूर्य (मयो-भूः) सुख देनेवाला चन्द्र, (देवीः आपः) दिव्य जल, (ऋतस्य प्रथमजाः) सत्यका पहिला प्रवर्तक देव (ते प्रथमाः) ये मुख्य देव भी (ब्रह्म किल्बिषे अवदन्) ब्राह्मणके संबंधमें पातक करनेवालेके विषयमें गवाही देते हैं ॥ १ ॥

(अहृणीयमानः प्रथमः राजा सोमो) क्रोध न करते हुए पहिले राजा सोमने (ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छत्) ब्राह्मणकी भार्या उसे वापस दी । उस समय (वरुणः मित्रः अन्वर्तिता आसीत्) वरुण और मित्र ये साथ गए और (होता अग्निः हस्तगृह्य निनाय) होता अग्नि उसका हाथ पकड कर ले गया ॥ २ ॥

(ब्रह्मजाया इति चेत् अवोचत्) यदि यह ब्राह्मणकी पत्नी है ऐसा कहा जाय । (हस्तेन एव ग्राह्यः अस्याः आधिः) तो उसे हाथसे ही ग्रहण किया जावे, ऐसा इसका आदेश है, (एषा दूताय प्रहेया न तस्थे) यह दूतके द्वारा लेजाने योग्य नहीं है, (तथा क्षत्रियस्य गुपितं राष्ट्रं) उसी प्रकार ही क्षत्रियका सुरक्षित राष्ट्र भी होता है ॥ ३ ॥

(विकेशी एषा तारका इति) बालोंको बिखराये हुई यह ब्राह्मणकी स्त्री एक ऐसा तारा है (ग्रामं अवपद्यमानां दुच्छुनां यां आहुः) जिसे ग्रामके ऊपर गिरनेवाली विपत्ति कहते हैं। (यत्र उल्कुषीमान् शश प्र अपादि) जहां यह उल्कायुक्त शशकरूपी ब्राह्मणकी स्त्री गिरती है (सा ब्रह्मजाया राष्ट्रं विदुनोति) वहां यह राष्ट्रको हिला देती है ॥ ४ ॥

भावार्थ— अग्नि, जलनिधि समुद्र, वायु, तेजस्वी सूर्य, सुख देनेवाला चन्द्रमा, तथा अन्य सब देव ब्राह्मणके संबंधमें पाप करनेवाले पापीके पापाचरणके विषयमें सत्य बात स्पष्ट कह देते हैं ॥ १ ॥

सोमने शान्तिके साथ ब्राह्मणकी स्त्रीको पुनः वापस किया, वहां वरुण और मित्र उपस्थित थे और अग्नि भी पाणि-ग्रहणके समय होता बना था ॥ २ ॥

जो ब्राह्मणकी पत्नी कही जाती है वह पाणिग्रहण विधिसे ही विवाहित हुई होती है । यह किसीके दूत द्वारा भगाई जाने योग्य नहीं होती, इसकी सुरक्षासे क्षत्रियका राष्ट्र सुरक्षित होता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार आकाशकी तारका और उल्का किसी ग्रामपर गिरती है और उसे दुश्चिन्ह कहा जाता है, उसी प्रकार वह ब्राह्मणकी भगाई जानेपर राष्ट्रका नाश करती है ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५॥
देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥६॥
ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते । वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥७॥
उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः । ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा ॥८॥
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्यः । तत्सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥९॥

अर्थ — (ब्रह्मचारी विषः वेविषत् चराति) ब्रह्मचारी प्रजाओंकी सेवा करता हुआ जगत्में संचार करता है, इसलिये (सः देवानां एकं अंगं भवति) वह देवोंका एक अंग बनता है। (सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः) जिस प्रकार सोमके द्वारा लाये हुए चमचेसे हुत आहुति देव प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार (तेन बृहस्पतिः जायां अन्वाविन्दत्) उसके द्वारा बृहस्पतिने भार्या प्राप्त की ॥ ५ ॥

(एतस्यां पूर्वे देवाः वै अवदन्त) इसके संबंधमें पूर्व देवोंने कहा है, तथा (ये तपसा निषेदुः सप्त ऋषयः) जो तप करनेके लिये बैठते हैं उन सप्त ऋषियोंने भी वैसा ही कहा है कि (ब्राह्मणस्य अपनीता जाया भीमा) ब्राह्मण-की भगाई पत्नी भयंकर होती है, वह (परमे व्योमन् दुर्धां दधाति) परम धाममें भी दुःख देनेवाली होती है ॥ ६ ॥

(ये गर्भाः अवपद्यन्ते) जो गर्भ गिर जाते हैं, (यत् जगत् च अप लुप्यते) जो चलनेवाले प्राणी नाशको प्राप्त होते हैं, (ये वीराः मिथः तृह्यन्ते) जो वीर परस्पर लडते भिडते हैं, (तान् ब्रह्मजाया हिनस्ति) उनको ब्राह्मणकी भार्या मार डालती है ॥ ७ ॥

(उत यत् पूर्वे अब्राह्मणाः स्त्रियाः दश पतयः) और जो ब्राह्मणसे पहिले उस स्त्रीके दस अब्राह्मण पति होते हैं, बादमें (ब्रह्मा चेत् हस्तं अग्रहीत्) ब्राह्मण जब उसका पाणिग्रहण कर लेता है, तो (स एव एकधा पतिः) वह अकेला ही उसका पति होता है ॥ ८ ॥

(ब्राह्मण एव पतिः न राजन्यः न वैश्यः) उस स्त्रीका ब्राह्मण ही पति होसकता है, क्षत्रिय अथवा वैश्य नहीं। (सूर्यः पञ्चभ्यः मानवेभ्यः तत् प्रब्रुवन् एति) सूर्य पांचों मनुष्योंसे वह कहता हुआ चलता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— ब्रह्मचारी विद्या समाप्त करनेपर जनताकी सेवा करता हुआ जगत्में संचार करता है, इसलिये उसको देवतांश कहते हैं। यह उक्त अत्याचारका पता लगाता है और जिसकी स्त्री होती है उसे उसके पास पहुंचाता है ॥ ५ ॥

तप करनेवाले ऋषि और सब देवता लोग इस विषयमें बारबार कहते आये हैं कि, इस प्रकार भगाई गई गुरुपत्नी भयानक हानि करती है और दूसरे उच्च लोकोंमें भी बडी पीडा देती है ॥ ६ ॥

राष्ट्रमें जिस समय अकालमें बालकोंकी मृत्यु होती है और प्राणियोंका बहुत संहार होता है और आपसमें वीर लोग एक दूसरेके सिर फोडने लगते हैं, तब समझना चाहिये कि यह परिणाम गुरुपत्नीको दिए गए पूर्वोक्त कष्टोंके कारण ही हो रहा है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणसे भिन्न दस पति स्त्रीके होते हैं, परंतु जिस समय ब्राह्मण किसी स्त्रीका पाणिग्रहण कर लेता है, उस समय उस स्त्रीका वही एक पति होता है और कोई उस स्त्रीका दूसरा पति नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

ब्राह्मण ही एक पति है, क्षत्रिय और वैश्य नहीं, यह बात सूर्य ही पञ्चजनोंसे कहता है ॥ ९ ॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः । राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १० ॥
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् । ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥ ११ ॥
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये । यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १२ ॥
न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन्वेश्मनि जायते । यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १३ ॥
नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः । यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १४ ॥
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते । यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १५ ॥
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् । यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १६ ॥
नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते । यस्मिन्राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १७ ॥

अर्थ— (देवाः वै पुनः अददुः) देवोंने पुनः दिया, (मनुष्याः पुनः अददुः) मनुष्योंने पुनः दिया है। (सत्यं गृह्णानाः राजानः) सत्यका पालन करनेवाले राजालोग भी (ब्रह्मजायां पुनः ददुः) ब्राह्मणस्त्रीको पुनः देते हैं ॥ १० ॥

(देवैः निकिल्बिषं कृत्वा ब्रह्मजायां पुनर्दाय) देव पापरहित करके ब्राह्मणस्त्रीको पुनः देकर (पृथिव्याः ऊर्जं भक्त्वा) पृथिवीके बलका विभाग करके (ऊरुगायं उपासते) बडी प्रशंसा करने योग्य देवताकी उपासना करते हैं ॥ ११ ॥

(यस्मिन् राष्ट्रे अचित्त्या ब्रह्मजाया निरुध्यते) जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणकी स्त्री बंधनमें डाली जाती है। (अस्य शतवाही कल्याणी जाया तल्पं न आशये) उसकी सौ संतान उत्पन्न करनेवाली कल्याणकारिणी स्त्री भी बिस्तरेपर न सोवे ॥ १२ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री बंधनमें डाली जाती है (तस्मिन् वेश्मनि विकर्णः पृथुशिराः न जायते) उस घरमें विशेष सुननेवाला और बडे शिरवाला पुत्र उत्पन्न नहीं होता ॥ १३ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री बंधनमें डाली जाती है, (अस्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानां अग्रतः न एति) उस राष्ट्रका वीर सुवर्णालंकार गलेमें धारण करके लडकियोंके सन्मुख नहीं जाता ॥ १४ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री बंधनमें डाली जाती है (अस्य श्वेतः कृष्णकर्णः धुरि युक्तः न महीयते) उस राष्ट्रमें श्यामकर्ण श्वेतवर्णका घोडा धुरामें युक्त होकर महत्त्वको प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री प्रतिबंधित होती है (अस्य क्षेत्रे न पुष्करिणी) उसके क्षेत्रमें कमलोंवाले तालाब नहीं होते और (बिसं आण्डीकं न जायते) कमलोंमें बीज भी नहीं होता ॥ १६ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणकी स्त्री बंधनमें डाली जाती है, उस राष्ट्रमें (ये अस्याः दोहं उपासते) जो इसको दुहनेके लिये बैठते हैं तो वे (अस्मै पृश्निं न दुहन्ति) इसके लिये दूध नहीं देतीं ॥ १७ ॥

भावार्थ— देव, मनुष्य और सत्यपालक राजा लोग गुरुपत्नीको सुरक्षित गुरुके प्रति पहुंचाते हैं ॥ १० ॥

जहां निष्पापतासे गुरुपत्नीको सुरक्षितताके साथ गुरुगृहके प्रति पहुंचाया जाता है, वहां भूमिका सत्व बढता है और यश फैलता है ॥ ११ ॥

परंतु जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नी पर प्रतिबंध लगाये जाते हैं, उस राष्ट्रमें मानो कोई सुवासिनी स्त्री बिस्तरे पर सुरक्षित नहीं सो सकती ॥ १२ ॥

जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नीका अपमान होता है, उस राष्ट्रमें उत्तम पुत्र नहीं उत्पन्न हो सकते ॥ सुवर्णके आभूषण धारण करके कोई वीर बालिकाओंके साथ खेल नहीं सकता ॥ श्यामकर्ण घोडेको कोई जोत नहीं सकता ॥ कमलयुक्त तालाब प्रफुल्लित नहीं होते ॥ गौवें दूध नहीं देतीं ॥ १३—१७ ॥

नास्य॑ धे॒नुः क॑ल्या॒णी नान॒ड्वान्त्स॑हते॒ धुर॑म् । वि॒जा॒नि॒र्यत्र॑ ब्राह्म॒णो रात्रिं॒ वस॑ति पा॒पया॑ ॥ १८ ॥

अर्थ— (विजानिः ब्राह्मणः) स्त्रीरहित होकर ब्राह्मण (यत्र रात्रिं पापया वसति) जहां रात्रीमें पापबुद्धिसे रहता है, (अस्य) उसके राष्ट्रमें (कल्याणी धेनुः न) कल्याण करनेवाली धेनु नहीं होती और (न अनड्वान् धुरं सहते) न बैल धुराको सहता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नीकी मानहानि होती है और उस कारण धर्मपत्नी न होनेसे गुरु अकेला ही त्रस्त होकर क्रोधकी भावना मनमें धारण करके सोता है, उस राष्ट्रमें गौ भी कल्याण नहीं करती और बैल भी कार्य करनेवाला नहीं होता ॥ १८ ॥

स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा

स्त्रीचारित्र्यकी रक्षा

स्त्रीचारित्र्यकी रक्षा करनी चाहिये, जिस राष्ट्रमें स्त्रीचारित्र्यकी रक्षा की जाती है और सब पुरुष स्त्रीके चारित्र्यकी रक्षा करनेके लिये तत्पर रहते हैं उस राष्ट्रकी उन्नति होती है। परन्तु जिस राष्ट्रमें स्त्रीचारित्र्यकी रक्षा नहीं होती, वह राष्ट्र पतित होता है। सारांशसे इस सूक्तका यह उपदेश है।

इस सूक्तमें ब्राह्मणकी स्त्री क्षत्रियके द्वारा भगाई जानेसे राष्ट्रपर कितने अनर्थ गुजरते हैं, इसका वर्णन है। '**वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।**' अर्थात् सब वर्णोंको विद्यादान देनेवाला सबका अध्यापक अथवा 'गुरु' ब्राह्मण है। इसलिये ब्राह्मणकी स्त्री सबकी '**गुरुपत्नी**' होती है। जिस प्रकार '**ब्राह्मण**' सब पुरुषोंको ज्ञानोपदेश देता हुआ सर्वत्र भ्रमण करता है, उसी प्रकार '**ब्राह्मणी**' भी सब स्त्रियोंको धर्मका उपदेश करती हुई भ्रमण करती है। गुरुपत्नीका यह कर्तव्य ही है। यह कर्तव्य करनेके लिये जब गुरुपत्नी बाहर भ्रमण करती है, तब उसके चारित्र्यका रक्षण सब लोग करें। कोई भी उसको न रोके और न उसका किसी प्रकार अपमान करें।

जो गुरुपत्नीका अपमान करनेका साहस करेंगे, वे अन्य स्त्रियोंका अपमान करनेसे पीछे नहीं हटेंगे, यह भाव यहां है। वास्तवमें सभी स्त्रियोंके चारित्र्यकी रक्षा होनी चाहिये। क्योंकि इसी पर राष्ट्रका गौरव अवलंबित है। जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नीका भी चारित्र्य अथवा पातिव्रत्य गुण्डोंके अत्याचारके कारण सुरक्षित नहीं रहता, वहांकी अन्य स्त्रियोंकी दुर्दशाका वर्णन ही क्या होसकता है? इसलिये सब स्त्रियोंके चारित्र्यके उत्कर्षकी दृष्टिसे ही इस सूक्तमें कहा है कि सब जनता गुरुपत्नीका मान करें। यह सूक्त आकाशस्थ तारोंकी गतिपर रचा हुआ अलंकार है, इसका स्पष्टीकरण अब देखिये—

बृहस्पति और तारा

आकाशमें बृहस्पति नामका एक सितारा है, जिसको 'गुरु' भी कहते हैं। यह प्रसिद्ध सितारा है, जो रात्रीके समय दीखता है। आकाशस्थ अन्य नक्षत्रोंमें 'तारा अथवा तारका' नामका एक नक्षत्र है, रूपकसे समझा जाता है कि यह 'गुरु' की 'धर्मपत्नी' है, अर्थात् बृहस्पतिकी यह भार्या है। यहां धर्मपत्नी कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि यह बृहस्पति इस नक्षत्रमें बहुत देरतक और इसके बहुत समीप रहता है। इसलिये इनकी आपसमें पतिपत्नीकी कल्पना की है। बृहस्पतिका 'ब्रह्मणस्पति' भी दूसरा नाम वेदमें है। इसका अर्थ 'ज्ञानी गुरु' होनेसे इसका वर्ण ब्राह्मण माना गया, अर्थात् इसकी धर्मपत्नी होनेसे तारा भी 'ब्राह्मणी, गुरुपत्नी अथवा ब्रह्मजाया' कहलाती है। इस प्रकार यहां ब्राह्मण परिवारकी कल्पना की गई है। यह बृहस्पति देवोंका गुरु है और जब आकाशमें देवोंकी सभा रात्रीके समय लगती है, उस समय यह देव गुरु उसमें विराजते हैं और मानो, देवोंको सुयोग्य सलाह देते हैं।

इसी प्रकार राजा सोम भी देवसभामें उपस्थित होते हैं। इस समय ये एक क्षत्रिय राजा माने गये हैं। ये क्षत्रिय राजा अपने राज्याधिकारके घमंडमें अनेक तारागणोंसे संबंधित होते हैं अर्थात् अनेक स्त्रियोंसे संबंध करते हैं। इस अत्याचारके कारण उनको क्षयरोग होता है। इस अनाचारके कारण राजा सोम (चन्द्रमा) क्षीण होते जाते हैं और अमा-

वास्याकी रात्रीमें तो इनकी हालत बहुत खराब होती है। उस समय कुछ उपचारके करनेपर शुक्लपक्षमें कुछ पुष्ट होने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें गुरुपत्नी ताराका दर्शन होता है और उसका दर्शन होते ही क्षयी राजाका मन चञ्चल हो जाता है। राजा इसी प्रकार जब अपने शासनाधिकारके कारण उन्मत्त होकर गुरुपत्नीका गौरव और आदर न करता हुआ उसका धर्षण करता है और इस प्रकार स्त्रीके पातिव्रत्यका नाश करनेके कारण जो पाप होता है, उस पापके कारण राष्ट्रमें बडा क्षोभ उत्पन्न होता है और सब प्रजा त्रस्त हो जाती है। जहां गुरुपत्नीका इस प्रकार अपमान होता है, वहां अन्य स्त्रियोंके पातिव्रत्यका क्या होता होगा, ऐसा विचार करके अत्याचारी राजाका विरोध उपस्थित ऋषि और सदस्य देव करने लगते हैं। राजा अपने घमंडमें आकर विरोधक ऋषियों और देवोंको दबानेका यत्न करता है, इससे प्रजामें और अधिक क्षोभ उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् राजा सोम देखता है कि उसकी प्रजा प्रतिकूल हो गई है और उसको राज्यसे पदच्युत करनेका विचार करती है, इसपर प्रजाको अधिक दबानेके लिये असुर सेनाकी सहायता लेता है और विदेशी असुर सेनासे अपनी प्रजाको दबानेकी चेष्टा करता है। इससे प्रजा और अधिक क्षुब्ध होती है और बडी लडाई छिडती है। दोनों ओरका बहुत संहार होनेपर दोनों पक्षोंकी आपसमें कुछ सलाह होती है। इस संधिके अनुसार राजा सोम गुरुपत्नीको वापस करता है। उस समय वरुण और मित्र साथ रहते हैं और अग्नि मार्गदर्शक होता है। इस प्रकार चन्द्रमाके कलंक लगकर इस बुरे कर्मका फल उसको मिलता है।

इस समय सोम और ताराके संगमसे बुधकी उत्पत्ति होती है। तारा अग्नितापसे शुद्ध होकर फिर अपने घर पहुंचती है। इस प्रकारकी कथा बहुत पुराणोंमें है। इस विस्तृत कथाका कुछ मूल इस सूक्तमें दिखाई देता है। जिस प्रकार वृत्रकी कथा मेघ और सूर्य इसपर रूपकालंकार मानकर रची है, उसी प्रकार चंद्रमा, तारका, गुरु आदिके ऊपर यह बोधप्रद अलंकार रचा है। वेदमें इस प्रकारके अनेक अलंकार हैं और उनसे अनेक प्रकारका बोध प्राप्त होता है।

यहां भी यह बोध मिलता है कि कोई राजा अपने अधिकारके मदसे उन्मत्त होकर स्त्रियोंपर अत्याचार न करे, यदि करेगा, तो उसको परमेश्वरके राज्यमें उसी प्रकार दण्ड मिलेगा, जैसा कि सोम राजाको जन्मभर कलंकित होना पडा था। उसका अपमान हुआ, कलंकित होना पडा, रोगी होना पडा, राजविद्रोह हुआ, राष्ट्रमें बलवा हो गया और न जाने क्या क्या आपत्तियां आईं। यदि इतने समर्थ सोम राजाकी यह अवस्था हुई, तो उसके बहुत छोटे पार्थिव राजाकी क्या अवस्था होगी? और यदि राजाकी ऐसी दुर्दशा होगई तो कोई प्रजाजन यदि ऐसा कुकर्म करेगा तो उसकी कितनी दुर्दशा होगी, ऐसा विचार मनमें लाकर हरएक पुरुषको स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा करनी चाहिए। केवल गुरुपत्नीके ही पातिव्रत्यकी रक्षा यहां अभीष्ट नहीं है, प्रत्युत संपूर्ण स्त्री-जातिके पातिव्रत्यकी रक्षाका यहां उपदेश है। गुरुपत्नी यहां केवल उपलक्षण मात्र है।

जिस राष्ट्रमें स्त्रियोंकी पातिव्रत्यरक्षा अच्छी प्रकार होती है और स्त्रीके इधर उधर सुखपूर्वक भ्रमण करनेमें स्त्रीको किसी प्रकार भी अपमानकी संभावना नहीं होती, वह राष्ट्र अत्यंत सुरक्षित होता है—

न दूताय प्रहेया तस्थ एषा
राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ (मं. ३)

'यह स्त्री दूतके द्वारा ले जाने योग्य नहीं होती, अर्थात् किसीका दूत इस प्रकारका भयानक कुकर्म करनेको जिस राष्ट्रमें साहस नहीं कर सकता, वह क्षत्रियका राष्ट्र सुरक्षित रहता है।' अर्थात् जिस राष्ट्रमें स्त्रीके ऊपर अत्याचार होते हैं वह राष्ट्र किसी सज्जनके रहनेके लिये योग्य नहीं होता है।

'जिस राष्ट्रमें स्त्रियोंपर अत्याचार होते हैं उस राष्ट्रमें गर्भपात भी होते हैं, प्राणी अकालमें मरते हैं, वीर लोग आपसमें लडते भिडते हैं।' (मं. ७) इसलिये स्त्रियोंकी सुरक्षितता अवश्य होनी चाहिये।

क्षत्रिय, वैश्योंमें नियोगके कारण और शूद्रोंमें पुनर्विवाहके कारण एकके पश्चात् दूसरा इस प्रकार दस तक पतियोंकी संख्या हो सकती है। परंतु ब्राह्मणोंके लिये तो न नियोगकी प्रथा है और ना ही पुनर्विवाहकी प्रथा उचित समझी जाती है, इसलिये ब्राह्मणीका ब्राह्मणके साथ एकबार विवाह हो जाए तो उसका किसी भी कारण दूसरा पति नहीं हो सकता। क्योंकि ब्राह्मणोंको भोगमें फंसना नहीं चाहिये। इत्यादि विषय आठवें मंत्रमें देखने योग्य है। शेष मंत्रोंमें स्त्रीपर अत्याचार करनेवाले राष्ट्रकी जो दुर्दशा होती है उसका वर्णन है। इसलिये उनके अधिक विचारकी आवश्यकता नहीं है।

इस सूक्तमें कई प्रकारके बोध प्राप्त होते हैं। सबसे प्रथम लेने योग्य बोध यह है कि राजाको अपना आचरण बहुत ही

निर्दोष रखना चाहिये। बहुत स्त्रियां करना और दूसरोंकी स्त्रियोंके साथ कुकर्म करना बहुत ही बुरा है। बहुपत्नी व्यवहार करनेसे सबसे पहिला जो कष्ट होता है वह ब्रह्मचर्य नाश और वीर्यनाशके कारण क्षयरोग है। शरीरमें जबतक भरपूर वीर्य रहता है तबतक क्षयरोग हो ही नहीं सकता। वीर्य दोष उत्पन्न होनेसे क्षयरोग होता है और अन्तमें उससे मृत्यु निश्चित है। राजाका आचार व्यवहार देखकर अन्य लोग उसी प्रकार आचार करते हैं, राजाओंके ऊपर यह भारी जिम्मेवारी है। राजाके बिगड जानेसे राष्ट्रके लोग बिगड जाते हैं और इस प्रकार राष्ट्रका नाश होता है। अतः बडे लोगोंको अपने आचार व्यवहार धर्मानुकूल ही करने चाहिये। राजाके पास जो अधिकार होता है उसके घमंडमें अपने अधिकारका दुरुपयोग करना राजाको योग्य नहीं है। प्रजाके कल्याणका उद्योग करनेके लिये राजाके पास अधिकार दिया होता है। इस अधिकारका उपयोग अपने स्वार्थ भोग भोगनेके लिये करनेसे ही राजा दोषी होता है। इसलिये राजाको उचित है कि वह सदा समझे कि मेरा निरीक्षण करनेवाला परमेश्वर है, इसलिये मुझे कोई अकार्य करना योग्य नहीं है। इस प्रकार विचार करके राजा अपना आचार व्यवहार सुधारे और अपने योग्य प्रबंधसे संपूर्ण राष्ट्रका उद्धार करे।

काम

कां. ९, सूक्त २

(ऋषिः– अथर्वा। देवता– कामः।)

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन।
नीचैः सपत्नान्मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥ १ ॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति।
तद्दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥ २ ॥

अर्थ— (सपत्नहनं ऋषभं कामं) शत्रुको नाश करनेवाले बलवान् कामको मैं (हविषा आज्येन घृतेन शिक्षामि) हवि घी आदिसे शिक्षित करता हूं। (महता वीर्येण अभिष्टुतः) बडे पराक्रमसे प्रशंसित होकर (त्वं) तू (मम सपत्नान् नीचैः पादय) मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा दे ॥ १ ॥

(यत् मे मनसः न प्रियं) जो मेरे मनको प्रिय नहीं है, (यत् मे चक्षुषः प्रियं न) जो मेरी आंखोंको प्रिय नहीं है, (यत् मे बभस्ति) जो मेरा तिरस्कार करता है और (न अभिनन्दति) मुझे आनन्द नहीं देता है, (तत् दुष्वप्न्यं) वह बुरा स्वप्न (सपत्ने प्रतिमुञ्चामि) शत्रु ऊपर भेजता हूं (अहं कामं स्तुत्वा) मैं कामकी स्तुति करके (उत् भिदेयं) उन्नत होता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— काम (संकल्प) बडा बलवान् है और शत्रुका नाश करनेवाला है, उसको यज्ञसे शिक्षित करना चाहिये। वह बडे वीर्यसे प्रशंसित होने पर शत्रुओंको नीचे गिराता है ॥ १ ॥

जो मेरे मन और अन्य इंद्रियोंको अप्रिय है, जो मुझे आनंदित नहीं करता, जो मेरा तिरस्कार करता है, वह दुष्ट स्वप्न मेरे शत्रुकी ओर जावे। मैं इस संकल्पशक्तिके द्वारा उन्नत होता हूं ॥ २ ॥

दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन्यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥ ३ ॥
नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥ ४ ॥
सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान्परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान्प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ ५ ॥
कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ्छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥ ६ ॥
अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (उग्र काम) बलवान् काम ! तू (ईशानः तस्मिन् प्रतिमुञ्च) सबका स्वामी है, अतः (दुष्वप्न्यं) दुष्ट स्वप्न, (दुरितं च) पाप और (अप्रजस्तां) संतान न होना, (अ-स्व-गतां) निर्धन अवस्था, (अवर्तिं) आपत्ति इन सबको, उसपर छोड कि (यः अस्मभ्यं अंहूरणा चिकित्सात्) जो हम सबको पापमय विपत्तिमें डालनेका विचार करता है ॥ ३ ॥

हे काम ! (नुदस्व) उनको दूर कर, हे काम ! उनको (प्रणुदस्व) हटा दे, (ये मम सपत्नाः) जो मेरे शत्रु हैं वे (अवर्तिं यन्तु) आपत्तिको प्राप्त हों। हे अग्ने ! (अधमा तमांसि नुत्तानां) गाढ अंधकारमें भेजे हुए उन शत्रुओंके (वास्तूनि त्वं निर्दह) घरोंको तू जला दे ॥ ४ ॥

हे काम ! (सा धेनुः ते दुहिता उच्यते) वह धेनु तेरी दुहिता कही जाती है, (यां कवयः विराजं वाचं आहुः) जिसको कवि लोग विशेष तेजस्वी वाणी कहते हैं। (ये मम) जो मेरे शत्रु हैं उन (सपत्नान् तया परि वृङ्ग्धि) शत्रुओंको उससे दूर हटा दे। (एनान्) इन शत्रुओंको (प्राणः पशवः जीवनं परि वृणक्तु) प्राण, पशु और आयु छोड देवे ॥ ५ ॥

(इव) जैसे (उदकेषु शंबी धीरः नावं) जलमें धैर्यवान् धीवर नौकाको चलाता है, उसी प्रकार (कामस्य इन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञः) काम, इन्द्र, वरुण, राजा और (विष्णोः बलेन सवितुः सवेन) विष्णुके बल और सविताकी प्रेरणासे तथा (अग्नेः होत्रेण) अग्निके हवनसे मैं (सपत्नान् प्रणुदे) शत्रुओंको दूर करता हूं ॥ ६ ॥

(उग्रः वाजी कामः) प्रतापी बलवान् काम (मम अध्यक्षः) मेरा अधिष्ठाता है। वह (मह्यं असपत्नं एव कृणोतु) मुझे सपत्नरहित करे। (विश्वेदेवाः मम नाथं भवन्तु) सब देव मेरे नाथ हों, (सर्वे देवाः मे इमं हवं आयन्तु) सब देव मेरे इस हवनके स्थानमें आवें ॥ ७ ॥

भावार्थ— दुष्ट स्वप्न, पाप, संतान न होना, दारिद्र्य, आपत्ति आदि सब हमारे उन शत्रुओंको प्राप्त हों, जो कि हमें पापमूलक विपत्तिमें डालनेका विचार करते हैं ॥ ३ ॥

काम हमारे शत्रुओंको दूर हटा देवे, उन शत्रुओंको विपत्ति घेरे और जब वे शत्रु गाढ अन्धकारमें पडे, तब अग्नि उनके घरोंको जला देवे ॥ ४ ॥

सब कवि लोक कहते है कि वाणी कामकी पुत्री है। इस वाणीके द्वारा हमारे सब शत्रु दूर हों और उनको प्राण, पशु और आयु छोड देवे ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अगाध समुद्रमें नौकाको धीवर लोग चलाते हैं, उसी प्रकार देवोंकी शक्तिसे मैं शत्रुओंको इस भवसागरमें प्रेरित करता हूं ॥ ६ ॥

बलवान्, प्रतापी काम मेरा अधिष्ठाता है। वह मुझे शत्रुरहित करे, देव मेरे स्वामी बनें, सब देव मेरे यज्ञमें आवें ॥ ७

इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् । कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥ ८ ॥
इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान्मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥ ९ ॥
जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥ १० ॥
अवधीत्कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम्
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥ ११ ॥
तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् । न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥

अर्थ— हे (कामज्येष्ठाः) कामको श्रेष्ठ माननेवाले सब देवो ! (इदं घृतवत् आज्यं जुषाणाः) इस घृतयुक्त हवनका सेवन करते हुए (इह मादयध्वं) यहां हर्षित हो जाओ और (मह्यं असपत्नं एव कृण्वन्तः) मुझे शत्रुरहित करो ॥ ८ ॥

हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! हे काम ! तुम सब (सरथं हि भूत्वा) समान रथपर चढनेवाले होकर (मम सपत्नान् नीचैः पादयाथः) मेरे शत्रुओंको नीचे गिराओ। (तेषां अधमा तमांसि पन्नानां) उस शत्रुओंके गाढ अन्धकारमें पडनेपर हे अग्ने ! (त्वं वास्तूनि अनुनिर्दह) तू उनके घरोंको जला दे ॥ ९ ॥

(ये मम सपत्नाः) जो मेरे शत्रु हैं, उनका (त्वं जहि) तू नाश कर। तथा (एनान् अंधा तमांसि अव पादय) इनको गहरे अन्धकारमें गिरा दे। वे (सर्वे निरिन्द्रियाः अरसाः सन्तु) सब इंद्रियरहित और रसहीन हों, (ते कतमच्चन अहः मा जीविषुः) वे एक भी दिन जीवित न रहें ॥ १० ॥

(मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं उनका (कामः अवधीत्) कामने वध किया है। तथा उसने (मह्यं एधतुं उरुं लोकं अकरत्) मुझे बढनेके लिए विस्तृत स्थान दिया है। (चतस्रः प्रदिशः मह्यं नमन्तां) चारों दिशाएं मेरे सन्मुख नम्र हों। (षट् उर्वीः मह्यं घृतं आवहन्तु) छः भूमिके विभाग मेरे पास घृत ले आवें ॥ ११ ॥

(बन्धनात् छिन्ना नौः इव) बन्धनसे कटी हुई नौकाके समान (ते अधराञ्चः प्र प्लवन्तां) वे नीचे बहते जांय। (सायकप्रणुत्तानां पुनः निवर्तनं न अस्ति) बाणोंसे भगाये शत्रुओंका फिर वापस आना नहीं हो सकता॥१२

भावार्थ— काम जिनमें श्रेष्ठ हैं ऐसे सब देव इस यज्ञमें आकर इस हवन द्वारा आनंदित हों और मुझे शत्रुरहित बनावें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र, अग्नि और काम ! तुम सब मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा दो। वे अन्धकारमें भागें और पश्चात् अग्नि उनके घरोंको जलावे ॥ ९ ॥

मेरे शत्रुओंका तू नाश कर। वे गाढ अन्धकारमें गिर जांय। वे सब इंद्रियहीन और सत्त्वहीन बनें और एक दिन भी जीवित न रहें ॥ १० ॥

इस कामसे मेरे शत्रु दूर हो गये और मुझे बडा कार्यक्षेत्र प्राप्त हुआ। चारों दिशाओंमें रहनेवाले लोग मेरे सामने नम्र हो चुके हैं और सब पृथ्वी मेरे अधिकारमें आ चुकी है ॥ ११ ॥

बंधनसे रहित हुई नौका जैसे महासागरमें जिधर चाहे उधर भटकती है, वैसे ही मेरे शत्रुओंकी भ्रान्त अवस्था हो गई है, जो अब कभी अपनी पूर्व स्थितिमें नहीं आ सकते ॥ १२ ॥

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥ १३ ॥
असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत्सपत्नान् ॥ १४ ॥
च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद्बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् ।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान्नुदतां मे सहस्वान् ॥ १५ ॥
यत्ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान्परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान्प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ १६ ॥
येन देवा असुरान्प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात्प्र णुदस्व दूरम् ॥ १७ ॥

अर्थ— (अग्निः यवः) अग्नि हटानेवाला है, (इन्द्रः यवः) इन्द्र हटानेवाला है और (सोमः यवः) सोम भी हटानेवाला है । (यवयावानः देवाः) हटानेवालेको भी हटानेवाले देव (एनं यावयन्तु) इस शत्रुको दूर करें ॥ १३ ॥

(प्रणुत्तः द्वेष्यः) भगाया हुआ शत्रु (असर्ववीरः) सर्ववीरोंसे रहित होकर (स्वानां मित्राणां परिवर्ग्यः) अपने मित्रोंके द्वारा भी त्यागा हुआ (चरतु) विचरे । (उत पृथिव्यां विद्युतः अवस्यन्ति) और प्रकाश देनेवाली बिजलियां पृथ्वीपर आजांय । (वः उग्रः देवः) आपका वह प्रतापी देव (सपत्नान् प्रमृणत्) शत्रुओंका नाश करे ॥ १४ ॥

(च्युता च अच्युता च इयं बृहती विद्युत्) विचलित अथवा अविचलित हुई बडी विद्युत् (सर्वान् स्तनयित्नून् च बिभर्ति) सब गर्जना करनेवालोंको धारण करती है । (द्रविणेन तेजसा उद्यन् सहस्वान् आदित्यः) धन और तेजके साथ उदयको प्राप्त होनेवाला बलवान् सूर्य (मे सपत्नान् नीचैः नुदतां) मेरे शत्रुओंको नीचेकी ओर भगावे ॥ १५ ॥

हे काम ! (यत् ते त्रिवरूथं उद्भु) जो तेरा तीनों ओरसे रक्षक उत्कृष्ट शक्तिवाला (विततं ब्रह्म वर्म) फैला हुआ ज्ञानका कवच (अनतिव्याध्यं कृतं) शस्त्रोंसे वेधनेके अयोग्य और (शर्म) सुखदायक है (तेन) उससे (ये मम) जो मेरे शत्रु हैं उन (सपत्नान् परिवृङ्ग्धि) शत्रुओंको दूर कर । (एनान् प्राणः पशवः जीवनं परि वृणक्तु) इनको प्राण, पशु और आयु छोड देवें ॥ १६ ॥

(येन देवाः असुरान् प्राणुदन्त) जिससे देव असुरोंको दूर करते रहे, (येन दस्यून् इन्द्रः अधमं तमः निनाय) जिससे शत्रुओंको इन्द्रने गहरे अन्धकारमें डाल दिया, हे काम ! (तेन) उससे (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तान् सपत्नान्) उन शत्रुओंको (त्वं अस्मात् लोकात्) तू इस लोकसे (दूरं प्रणुदस्व) दूर भगा ॥ १७ ॥

भावार्थ— सब देव मेरी सहायता करें और मेरे शत्रुओंको भगा देवें ॥ १३ ॥

हमारे पराक्रमसे भगाये हुए शत्रु अब चारों ओर भटक रहे हैं, न उनके पास कोई वीर हैं, न उनके पास कोई मित्र हैं, न उनके लिये कोई परिवार रहा है । सब देव मेरी सहायता करें और शत्रु नष्ट हों ॥ १४ ॥

यह विद्युत् और सूर्य अर्थात् इनमें जो देव हैं वह मेरे शत्रुओंको दूर भगा देवें ॥ १५ ॥

इस कामका बडा संरक्षक ज्ञानमय कवच है वह सब सुखोंका देनेवाला है । इसको मैं पहनता हूं, जिससे शत्रुके शस्त्र मेरा वेध नहीं कर सकेंगे और सब शत्रु प्राण, पशु और आयुसे रहित हो जायेंगे ॥ १६ ॥

यथा देवा असुरान्प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात्प्र णुदस्व दूरम् ॥ १८ ॥
कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥ १९ ॥
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥ २० ॥
यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥ २१ ॥
यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥ २२ ॥

अर्थ— (यथा देवाः असुरान् प्राणुदन्त) जिस रीतिसे देवोंने असुरोंको हटाया, (यथा इन्द्रः दस्यून् अधमं तमः बबाधे) जिस प्रकार इन्द्रने शत्रुओंको गहरे अन्धकारमें डाला, (तथा त्वं काम) उस प्रकार हे काम ! तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तान् अस्मात् लोकात् दूरं प्रणुदस्व) उनको इस लोकसे दूर हटा दे ॥१८॥

(कामः प्रथमः जज्ञे) काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ (देवाः एनं न आपुः) देवोंने इसको प्राप्त नहीं किया और (पितरः मर्त्याः न) पितरोंको और मर्त्योंको भी यह प्राप्त नहीं हुआ। (ततः त्वं ज्यायान् असि) अतः तू श्रेष्ठ है और (विश्वहा महान्) सदा महान् है। हे काम ! (तस्मै ते इत् नमः कृणोमि) उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ १९ ॥

(यावती वरिम्णा द्यावापृथिवी) जितनी विस्तारसे द्यौ और पृथिवी बडी है, (यावत् आपः सिष्यदुः) जहांतक जल फैला हुआ है, (यावत् अग्निः) जहांतक अग्नि फैली हुई है, (ततः त्वं ज्यायान् असि) उससे भी तू बडा है और (विश्वहा महान्) सदा बडा है। हे काम! (तस्मै ते इत् नमः कृणोमि) उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २० ॥

(यावतीः दिशः प्रदिशः विषूचीः) जहांतक दिशाएं और उपदिशाएं फैली हुई हैं और (यावतीः दिवः अभिचक्षणाः आशाः) जहांतक द्युलोकका प्रकाश फैलानेवाली दिशाएं हैं, (ततः त्वं०) उनसे भी तू बडा और सदा महान् है, हे काम ! मैं उस तुझको नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥

(यावतीः भृंगाः जत्वः) जितने भौरें, मक्खियां, (यावतीः कुरूरवः वघाः) तथा अन्य काटनेवाले कीडे और (वृक्षसर्प्यः बभूवुः) वृक्षपर चढनेवाले सर्प हैं (ततः त्वं०) उनसे तू बडा और सदा श्रेष्ठ है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २२ ॥

भावार्थ— जिस शक्तिसे देवोंने असुरोंका और इन्द्रने दस्युओंका पराभव किया, उस शक्तिसे मैं अपने शत्रुओंको इस स्थानसे भगा दूंगा ॥ १७–१८ ॥

काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ। देव, पितर और मर्त्य उसके पश्चात् प्रकट हुए। अतः काम सबसे श्रेष्ठ है। इस लिये मैं उसको नमन करता हूं ॥ १९ ॥

जितना पृथ्वीका विस्तार है, जहांतक जल फैला हुआ है, जहांतक प्रकाशकी व्याप्ति है, दिशाएं जहांतक फैली हुई हैं, पशुपक्षी जहांतक दौडते हैं उन सबकी व्याप्तिसे कामकी व्यापकता बढकर है ॥ २०–२२ ॥

ज्यायान्निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।
ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥ २३ ॥
न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥ २४ ॥
यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद्वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥ २५ ॥

अर्थ— हे काम ! हे (मन्यो) उत्साह ! तू (निमिषतः ज्यायान्) पलक मारनेवालोंसे बडा, (तिष्ठतः ज्यायान्) ठहरनेवालोंसे भी बडा और (समुद्रात् असि) समुद्रसे भी बडा है । (तत त्वं०) उनसे तू बडा और सदा श्रेष्ठ है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २३ ॥

(वातः च न कामं न आप्नोति) वायु भी कामको नहीं प्राप्त कर सकता, (न अग्निः, सूर्यः न उत चन्द्रमाः) अग्नि, सूर्य और चन्द्र इनमेंसे भी कोई उसको प्राप्त नहीं कर सकता । (ततः त्वं०) उनसे तू बडा और सदा श्रेष्ठ है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २४ ॥

हे काम ! (याः ते शिवाः भद्राः तन्वः) जो तेरे कल्याणकारी और हितकर शरीर हैं, (याभिः) जिनसे तू (यत् सत्यं भवति) जो सच्चा होता है उसका (वृणीषे) स्वीकार करता है । (ताभिः त्वं अस्मान् अभि सं विशस्व) उनसे तू हम सबमें प्रविष्ट हो और (पापीः धियः) पाप बुद्धियोंको (अन्यत्र अपवेशय) दूर कर ॥२५॥

भावार्थ— आंखें मूंदनेवाले प्राणियोंसे कामकी शक्ति बढकर है, स्थिर पदार्थोंसे भी बढकर है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाशसे भी बडी है । सूर्य, चन्द्रसे भी बढकर है अर्थात् यह काम सबसे बढकर है ॥ २३–२४ ॥
अतः हे काम ! शुभ, भद्र और सत्य जो है वह मेरे पास प्राप्त हो और पापबुद्धि मुझसे दूर चली जाय ॥ २५ ॥

काम

संकल्पशक्ति

इस सूक्तमें ' काम ' शब्द है वह स्त्री संबंधके विषयका वाचक नहीं है, अपितु संकल्पशक्तिका वाचक है । यह काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ है ऐसा इस सूक्तके निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

कामो जज्ञे प्रथमः । (मं. १९)

' काम सबसे पहिले प्रकट हुआ । ' यही बात वेदमें अन्यत्र कही है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् । (ऋ. १०।१२९।४)

' आरंभमें मनका वीर्य बढानेवाला काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ । इस प्रकार कामकी उत्पत्ति सबसे प्रथम कही है । उपनिषदोंमें भी देखिये—

कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृति र्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव ॥
(बृ. उ. १।५।३)

काम एव यस्यायतनं हृदयं लोको मनो ज्योतिः० य एवायं काममयः पुरुषः० । (बृ. उ. ३।९।११)
कामोऽकार्षीन्नाहं करोमि, कामः करोति, कामः कर्ता, कामः कारयिता ॥ (महानारा. उ. १८।२)

' काम, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, ह्री (लज्जा), धीः (बुद्धि), भीः (भय) यह सब मनमें रहते हैं ' । काम सबका आधारस्थान है, उसका तेज मन है और हृदय लोक है । यह मनुष्य काममय है अर्थात् जिस प्रकारके इसके काम होते हैं वैसा यह बनता है । काम ही सबका कर्ता है, मैं कर्ता नहीं हूं । कामके

द्वारा यह सब चलाया जाता है। ' इस रीतिसे उपनिषदोंमें कामके विषयमें कहा है। यहां कामका अर्थ 'संकल्प' है यह बात स्पष्ट है। यह संकल्प यदि अच्छा हुआ तो मनुष्यका भी भला होता है और बुरा हुआ तो बुरा होता है। यह बुरा हो वा भला हो, इसमें बडी भारी शक्ति रहती है। मानो संपूर्ण मनुष्य इसीकी प्रेरणासे प्रेरित होकर बुरा भला कर्म कर रहे हैं। यह मानवोंका व्यवहार देखनेसे कहना पडता है कि इस काम–संकल्प–की शक्ति बहुत ही बडी है, इसी शक्तिका वर्णन इस सूक्तमें किया है।

जगत्के प्रारंभमें आत्माके अन्दर 'काम किंवा संकल्प' उत्पन्न हुआ, इसका दर्शक उपनिषद्वचन यह है— 'सोऽकामयत' (बृ. उ. १।२।४; तै. उ. २।६।१) उस आत्माने कामना की और उसकी कामना सिद्ध हुई, जिससे इस सब जगत्का निर्माण हुआ। परमात्माके संकल्प शुद्ध थे अतः वे सिद्ध हो गये। जिसके संकल्प शुद्ध होते हैं उसके सब संकल्प सिद्ध होते हैं, अतः कहा है—

यं यं कामं कामयते, सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति। छां. उ. ८।२।१०

'जो कामना करता है वह संकल्प होते ही सिद्ध हो जाती है। ' यह संकल्पका बल है। इस संपूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई है। मनुष्यकी कामनामें भी यह बल अल्प अंशसे है। इसीका वर्णन इस सूक्तमें किया है। यदि इस काममें इतनी प्रचण्ड शक्ति है तो अवश्य ही उसको सुशिक्षासे युक्त करना चाहिये, अतः कहा है—

सपत्नहनं ऋषभं कामं हविषा शिक्षामि। (मं. १)

'शत्रुका नाश करनेवाला बलवान् काम है, उसको यज्ञसे शिक्षित करता हूं। ' इस कामनामें–इस संकल्पमें–बडी शक्ति है, परंतु वह यदि अशिक्षित ही रही, तो हानि करेगी, अतः उसको शिक्षा देकर उत्तम नियम व्यवस्थामें चलनेवाली करनी चाहिये। अतः शिक्षाकी आवश्यकता है। शिक्षा यज्ञसे–हविसे अर्थात् आत्मसमर्पणसे–होती है। हवि जैसे जगत्की भलाईके लिये स्वयं जल जाती है, पूर्णतया समर्पित होती है, वैसे ही मनुष्यको आत्मसमर्पण करना चाहिये। आत्मसमर्पणकी शिक्षासे अपने संकल्पको शिक्षित करना चाहिये। इस रीतिसे सुशिक्षित हुआ यह काम (महता वीर्येण) बडे वीर्य–पराक्रमसे युक्त होता है और मनुष्य इसके प्रभावसे अपने सब शत्रु दूर कर सकता है।

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषः यन्मे नाभिनन्दति। (मं. २)

"जो मनको और आंखको प्रिय नहीं होता और जो अन्य इंद्रियोंको भी अप्रिय होता, जो अपने आत्माको सन्तोष नहीं देता। " उसको दूर करना इसी सुशिक्षित कामसे होता है। इसीसे (अहं उत् भिदेयं) अपने ऊपरका दबाव हटाकर, उसका भेदन करके अपनी अवस्था उन्नत की जा सकती है। यह सब मनुष्यके प्रयत्नसे साध्य होनेवाली बात है। परंतु यह तब होगा जब कि मनुष्यकी कामना सुशिक्षायुक्त हो, अन्यथा यही प्रचंड शक्ति इसका नाश करेगी।

(कामः उग्रः ईशानः) काम बडा उग्र अर्थात् प्रतापी है और वह ईश्वर है अर्थात् मनुष्यकी भवितव्यताका वह स्वामी है। क्योंकि मनुष्यका भूत, भविष्य, वर्तमान यही घडता है। जैसा यह बनाता है वैसी मनुष्यकी स्थिति बनती है। अतः इसका महत्त्व बडा भारी है। इसका ऐसा विलक्षण प्रभाव है, इसीलिये इसकी सहायतासे मनुष्य निःसन्देह उन्नति प्राप्त कर सकता है—

दुरितं अप्रजस्तां अ–स्व–गतां अवर्तिं मुञ्च। (मं. ३)

"पाप, संतान न होना, निर्धनता और विपत्ति इनको दूर कर सकता है। ' मनुष्यकी भी यही इच्छा हुआ करती है। कोई मनुष्य नहीं चाहता कि मुझे पाप लगे, संतान न हो, दारिद्र्य मेरे पास आये और मैं विपत्तिमें पडा सडता रहूं, परंतु ये संपूर्ण विपत्तियां मनुष्यको भोगनी पडती ही हैं, इसका कारण यह है कि मनुष्यकी कामना अशिक्षित होती है, वह विपरीत संकल्प करती है और उसका फल विपत्तिरूप उसे भोगना ही पडता है। इस कामकी पुत्री वाणीरूपी धेनु है, इसका वर्णन इस प्रकार है—

ते दुहिता धेनुः यां कवयो वाचं आहुः। (मं. ५)

"कामकी पुत्री एक धेनु है जिसको कवि लोग वाणी कहते हैं। " यह वाणी भी कामके समान ही बडी प्रभावशालिनी है। यदि यह वाणी उत्तम रीतिसे प्रयुक्त की जाए तो शत्रु मित्र बनते हैं और यदि बुरी तरहसे इसका प्रयोग किया जाए तो मित्र शत्रु होते हैं। इसलिये कामको सुशिक्षित करनेके समय वाणीको भी शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है, यह बात अनुभवसिद्ध ही है।

उग्रः वाजी कामः मम अध्यक्षः मह्यं असपत्नं कृणोतु। (मं. ७)

" प्रतापी, बलवान् काम मेरा अध्यक्ष है वह मुझे शत्रु-रहित करे। " अर्थात् यह काम किंवा संकल्प हरएक मनुष्य-का अधिष्ठाता है। अधिष्ठाता वह होता है कि जो सतत साथ रहता हुआ निरीक्षण करता है। यही कामका कार्य है। यह मनुष्योंके चालचलनका अधिष्ठाता होकर निरीक्षण करता है। यदि अधिष्ठाता शिक्षित हो, तो अच्छी सहायता होती है और यदि बुरा हो तो हीन प्रवृत्ति करता है, बुरे मार्गसे ले जाता है, जिसका परिणाम खराब होता है। इसलिये प्रार्थना की है कि—

विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु।
सर्वे देवा मम हवमायन्तु॥ (मं. ७)

" सब देव मेरे रक्षक बनें, सब देव मेरे यज्ञको स्वीकार करें। " इस प्रकार देवोंके द्वारा मेरी सहायता होती रही, तो निःसन्देह मेरी कामना शुद्ध होगी और मेरी उन्नति होगी। अतः यह मेरी प्रार्थना सब देव सुनें और कृपा करके मेरी रक्षा करें। " काम-ज्येष्ठाः " देवोंमें काम ही श्रेष्ठ है, सब देवोंमें यह काम देव सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि जगत् रचना करनेमें सब देव सहायता करते ही हैं, परंतु परमात्माका काम-संकल्प-जबतक जाग नहीं उठता, तबतक कोई अन्य देव रचनाके कार्यमें अपने आपको नहीं लगा सकते। यह कामका महत्त्व है। मनुष्यके व्यवहारमें भी देखिये सबसे पहिले संकल्प होता है, तत्पश्चात् इंद्रियव्यापार होते हैं। इसीलिये सर्वत्र कामके-संकल्पके महत्त्वका वर्णन किया है। जीवात्माका परमात्मामें तथा कामका अन्य देवोंके साथ संबंध होता है। यह देखनेसे ही सब देवोंमें काम श्रेष्ठ कैसे है यह जान सकते है—

परमात्मा	जीवात्मा
काम, संकल्प [अधिष्ठाता]	काम, संकल्प
महत्तत्त्व	बुद्धि
चन्द्रमाः	मन
इन्द्र	चित्त
सूर्य	नेत्र
वायु	प्राण
अग्नि	वाणी
जल	वीर्य

इस रीतिसे सब देवोंका अधिष्ठाता काम है। शरीरमें जो देव हैं वे विश्वके देवोंके सूक्ष्म अंश ही हैं, अतः दोनों स्थानोंमें देवोंका संबंध एक जैसा ही है। जैसा संकल्प होता है वैसे अन्यान्य देव शरीरमें तथा जगत्में अनुकूलतासे कार्य करते हैं। अपने शत्रु नाश पावें और जगत्में मेरी विजय होवे। यही सबकी भावना सर्वसाधारण होती है अतः कहा है—

अवधीत्कामो मम ये सपत्नाः।
उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम्।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो,
मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु॥ (मं. ११)

" संकल्प ही शत्रुओंका नाश करता है, संकल्प ही वृद्धि करनेके लिए विस्तृत कार्यक्षेत्र देता है। संकल्पसे चारों दिशाएं मनुष्यके सामने नम्र होती हैं और संकल्पसे ही सब भूप्रदेशोंसे घृतादि अन्नभोग प्राप्त होते हैं। " यदि किसीने संकल्प ही इस प्रकार नहीं किया तो उसका क्या होगा? पाठक विचारकी दृष्टिसे जगत्में देखें, तो उनको स्पष्ट दिखाई देगा कि इस जगत्के व्यवहारमें सर्वत्र ' काम ' की ही प्रेरणा हो रही है, हरएक कर्मके पीछे काम होता है, यदि किसी स्थानपर काम न रहे तो कोई कार्य बनता नहीं। अतः इस मंत्रमें कहा है कि जो भी कुछ इस जगत्में बन रहा है काम-की प्रेरणासे ही बन रहा है।

पूर्वोक्त कोष्टकमें दर्शाया है कि अग्नि, इन्द्र, सोम अथवा अन्य देव ये सब कामकी प्रेरणासे कार्य कर रहे हैं, उनके प्रति-निधि वाणी, मन और चित्त ये भी संकल्पसे ही अपने अपने कार्यमें प्रेरित हो रहे हैं। इसी रीतिसे (अग्निः यवः) अग्नि शत्रु दूर करता है, अन्य देव भी शत्रुओंको दूर करते हैं, यह सब पूर्वोक्त रीतिसे ही समझना चाहिये।

कामका कवच।

यह काम एक ऐसा कवच पहनता है, कि जिससे शत्रुके आघात उसके ऊपर लगते ही नहीं, देखिये—

यत्ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म
वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम्। (मं. १६)

" यह कामका एक विलक्षण कवच है जो तीनों केन्द्रोंमें उत्तम रक्षा करता है, इससे (अन्-अतिव्याधि) शत्रुके शस्त्रोंका प्रहार अपने ऊपर नहीं लगता। यह (ब्रह्म वर्म) ज्ञानका कवच है।

यह काम (प्रथमः जज्ञे) सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ, इसके बाद अन्य देव जाग उठे, अतः अन्य देव इसको प्राप्त कर नहीं सकते। जो हमारे पूर्व दो हजार वर्ष हुए हों, उनको हम कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। इसी प्रकार कामकी उत्पत्ति पहिले और अन्य देवोंकी बाद होनेसे अन्य देव

कामको प्राप्त नहीं कर सकते यह बिलकुल ठीक है। अतः कहा है—

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्। (मं. १९)

" काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ अतः इसको देव प्राप्त नहीं कर सकते और पितर अथवा मर्त्य भी प्राप्त कर नहीं सकते, क्योंकि पितर और मर्त्य तो देवोंके पश्चात् उत्पन्न हुए हैं। इस कारण यह काम सबसे उच्च और समर्थ है, इसकी श्रेष्ठता सदा सर्वदा स्थिर रहनेवाली है। अतः इसका सामर्थ्य सर्वतोपरि हैं। "

आगे मंत्र २१ से २४ तकके चार मन्त्रोंमें काम सबसे श्रेष्ठ है यही बात कही है। संपूर्ण पदार्थोंसे, स्थिरचरोंसे, अर्थात् सबसे यह श्रेष्ठ है। पंचमहाभूतोंसे, सब प्राणियोंसे, सूर्य और चन्द्रमासे तथा सब अन्योंसे, काम श्रेष्ठ और समर्थ है। अतः अन्तिम मंत्रमें प्रार्थना यह है कि—

यास्ते शिवास्तन्व काम भद्रा
याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभि संविशस्व
अन्यत्र पापीरप वेशया धियः। (मं. २५)

"कामके अंदर जो शुभ और कल्याणकारी भाग है, जिससे सब सत्यकी सिद्धि होती है, वह शुभ भाग मेरे अंदर प्रविष्ट हो जाय और जो पापका भाग है, वह दूर हो।" संकल्प एक बडी भारी शक्ति है, उससे पाप भी होगा और पुण्य भी। इस कारण मनुष्यको उचित है कि वह सदा शिवसंकल्प करे और पाप संकल्पसे दूर रहे। इस रीतिसे मनुष्य अपनी कामना शुभ कराके सदा उन्नतिके पथसे ऊपर जा सकता है।

कामाग्निका शमन

कां. ३, सू. २१

(ऋषिः— वसिष्ठः। देवता— अग्निः।)

ये अग्नयो अप्स्वन्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु।
य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १ ॥

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ २ ॥

अर्थ— (ये अग्नयः अप्सु अन्तः) जो अग्नियां जलके अन्दर हैं, (ये वृत्रे) जो मेघमें और (ये पुरुषे) जो पुरुषमें हैं, तथा (ये अश्मसु) जो शिलाओंमें हैं और (यः औषधीः यः च वनस्पतीन् आविवेश) जो औषधियोंमें और वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हैं (तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ १ ॥

(यः सोमे अन्तः, यः गोषु अन्तः) जो सोमके अन्दर, जो गौओंके अंदर, (यः वयः सु, यः मृगेषु आविष्टः) जो पक्षियोंमें और जो मृगोंमें प्रविष्ट है, (यः द्विपदः यः चतुष्पदः आविवेश) जो द्विपाद और चतुष्पादोंमें प्रविष्ट हुई है, (तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ २ ॥

भावार्थ— जो अग्नि जल, मेघ, प्राणियों अथवा मनुष्यों, शिलाओं और औषधिवनस्पतियोंमें है, उसको प्रसन्नताके लिये यह हवन है ॥ १ ॥

जो अग्नि सोम, गौवें, पक्षियों, मृगादि पशुओं तथा द्विपाद चतुष्पादोंमें प्रविष्ट हुआ है उसके लिये यह हवन है ॥ २ ॥

य इन्द्रे॑ण स॒रथं॒ याति॑ दे॒वो वै॑श्वान॒र उ॒त वि॑श्वदा॒व्यः॑ ।
यं जोह॑वीमि॒ पृत॑नासु सास॒हिं तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥ ३ ॥
यो दे॒वो वि॒श्वाद्यमु॒ काम॑माहु॒र्यं दा॒तारं॑ प्रतिगृ॒ह्णन्त॑मा॒हुः ।
यो धीरः॑ श॒क्रः प॑रि॒भूरदा॑भ्य॒स्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥ ४ ॥
यं त्वा॒ होता॑रं॒ मन॑सा॒भि सं॑वि॒दुस्त्रयो॑दश भौव॒नाः पञ्च॑ मान॒वाः ।
व॒र्चो॒धसे॑ य॒शसे॑ सू॒नृता॑वते॒ तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥ ५ ॥
उ॒क्षान्ना॑य व॒शान्ना॑य॒ सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑ । वै॒श्वा॒न॒रज्ये॑ष्ठेभ्य॒स्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥ ६ ॥
दिवं॑ पृथि॒वीमन्व॒न्तरि॑क्षं॒ ये वि॒द्युत॑मनु॒संचर॑न्ति ।
ये दि॒क्ष्व१॒॑न्तर्ये वाते॑ अ॒न्तस्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥ ७ ॥

अर्थ—(यः देवः विश्वदाव्यः उत वैश्वानरः) जो देव सबको जलानेवाला परंतु सबका चालक अथवा हितकारी और (इन्द्रेण सरथं याति) इन्द्रके साथ एक रथपर बैठकर चलता है तथा (यं पृतनासु सासहिं जोहवीमि) युद्धमें विजय देनेवाला होनेके कारण जिसकी मैं प्रार्थना करता हूं (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ३ ॥

(यः विश्वाद् देवः) जो विश्वका भक्षक देव है, (यं उ कामं आहुः) जिसको 'काम' नामसे पुकारते हैं, (यं दातारं प्रतिगृह्णन्तं आहुः) जिसको देनेवाला और लेनेवाला भी कहा जाता है, (यः धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः) जो बुद्धिमान्, शक्तिमान्, भ्रमण करनेवाला और न दबनेवाला है (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ४ ॥

(त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः) तेरह भुवन और पांच मनुष्यजातियां (यं त्वा मनसा होतारं अभि संविदुः) जिस तुझको मनसे होता अर्थात् दाता मानते हैं, (वर्चोधसे) तेजस्वी (सूनृतावते) सत्यभाषी और (यशसे) यशस्वी तुझे और (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ५ ॥

(उक्षान्नाय वशान्नाय) जो बैल और गौके लिये अन्न होता है और (सोमपृष्ठाय) औषधियोंको पीठपर लेती है उस (वेधसे) ज्ञानीके लिये और (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः तेभ्यः०) सब मनुष्योंके हितकारी श्रेष्ठ उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ६ ॥

(ये दिवं अन्तरिक्षं अनु, विद्युतं अनु संचरन्ति) जो द्युलोक, अंतरिक्ष लोक और विद्युत्के अंदर भी अनुकूलतासे संचार करती हैं, (ये दिक्षु अन्तः, ये वाते अन्तः) जो दिशाओंके अंदर और वायुके अंदर हैं (तेभ्यः अग्निभ्यः) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ— सबको जलाकर भस्म करनेवाला परंतु सबका संचालक जो यह देव इन्द्रके साथ रथपर बैठकर भ्रमण करता है, जो युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला है उस अग्निके लिये यह हवन है ॥ ३ ॥

जो अग्नि विश्वका भक्षक है और जिसको 'काम' कहते हैं, जो देने और लेनेवाला है, और जो बुद्धिमान्, समर्थ, सर्वत्र जानेवाला और न दबनेवाला है, उस अग्निके लिये यह हवन है ॥ ४ ॥

तेरह भुवनोंका प्रदेश और मनुष्यकी ब्राह्मण क्षत्रियादि पांच जातियां इसी अग्निको मनसे दाता मानती हैं, तेजस्वी, सत्यवादीके प्रेरक, यशस्वी इस अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ५ ॥

जो बैल और गौको अन्न देती है, जो पीठकर औषधियोंको लादती है, जो सबका धारक या उत्पादक है, उस सब मानवोंमें श्रेष्ठरूप अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ६ ॥

द्युलोक, अन्तरिक्ष, विद्युत्, दिशाएं, वायु आदिमें जो रहती है उस अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ७ ॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान्देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥ ८ ॥
शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः । अथो यो विश्वदाव्यस्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥ ९ ॥
ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः । वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥ १० ॥

अर्थ— (हिरण्यपाणिं सवितारं) सुवर्णभूषण हाथमें धारण करनेवाले सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, विश्वेदेव और आंगिरसोंकी (हवामहे) हम प्रार्थना करते हैं कि वे (इमं क्रव्यादं अग्निं शमयन्तु) इस मांसभोजी अग्निको शान्त करें ॥ ८ ॥

(क्रव्याद् अग्निः शान्तः) मांसभक्षक अग्नि शान्त हुई, (पुरुषरेषणः शान्तः) मनुष्यहिंसक अग्नि शान्त हुई (अथ यः विश्वदाव्यः) और जो सबको जलानेवाली अग्नि है (तं क्रव्यादं अशीशमम्) उस मांसभक्षक अग्निको मैंने शान्त किया है ॥ ९ ॥

(ये सोमपृष्ठाः पर्वताः) जो वनस्पतियोंको पीठपर धारण करनेवाले पर्वत हैं, (उत्तानशीवरीः आपः) ऊपरको जानेवाले जो जल हैं, (वातः पर्जन्यः) वायु और पर्जन्य (आत् अग्निः) तथा जो अग्नि है (ते) वे सब (क्रव्यादं अशीशमन्) मांसभोजी अग्निको शान्त करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि और आंगिरस आदि सब देवोंकी हम प्रार्थना करते हैं कि वे सब देव इस मांसभक्षक अग्निको शान्त करें ॥ ८ ॥

यह मांसभोजी पुरुषनाशक और सब जगत्को जलानेवाली अग्नि शान्त हुई है, मैंने इसको शान्त किया है ॥ ९ ॥

सोमादि वनस्पतियोंसे युक्त पर्वत, ऊपरको गतिसे चलनेवाले जलप्रवाह, वायु और पर्जन्य तथा अग्नि ये सब देव मांसभक्षक अग्निको शांत करनेमें सहायता देते हैं ॥ १० ॥

कामाग्निका शमन

कामाग्निका स्वरूप

इस सूक्तमें कामाग्निको शान्त करनेका विधान है। कामको अग्निकी उपमा देकर अथवा अग्निको शान्त करनेके वर्णनके बहाने कामको शान्त करनेका वर्णन इस सूक्तमें बडा ही मनोरंजक है। यह सूक्त ‘ बृहच्छान्तिगण ’ में गिना गया है, सचमुच कामका शमन करना ही ‘ बृहच्छान्ति ’ स्थापित करनी है। यह सबसे बडा कठिन और कष्ट साध्य कार्य है। इस सूक्तमें जो अग्नि है वह ‘ क्रव्याद ’ अर्थात् कच्चा मांस खानेवाला है। साधारण लोग समझते हैं कि इस सूक्तमें मुर्दे जलानेवाले अग्निका वर्णन है, परंतु यह मत ठीक नहीं है। कामरूप अग्निका वर्णन इस सूक्तमें है और यही कामरूप अग्नि बडा मनुष्यभक्षक है। जितना अग्नि जलाती है उससे सहस्रगुना यह काम जलाता है। इस सूक्त से अग्निका स्वरूप पहले हम निश्चित करते हैं। इसका स्वरूप बतानेवाले जो अनेक शब्द इस सूक्तमें हैं वे इस प्रकार हैं—

१ यो देवो विश्वाद् यं उ कामं आहुः । (मं. ४)- जो अग्निदेव सब जगत्को जलानेवाला है और जिसको ‘ काम ’ कहते हैं।

इस मंत्र भागमें स्पष्ट कहा है कि इस सूक्तमें जो अग्नि है वह ‘ काम ’ ही है। नाम निर्देश करनेके कारण इस विषय में किसीको शंका करना भी अब उचित नहीं है। तथापि निश्चयकी दृढताके लिये इस सूक्तके अन्य मंत्र भाग भी अब देखते हैं—

२ क्रव्याद् अग्निः (मं. ९)— मांसभक्षक अग्नि।

३ पुरुषरेषणः अग्निः । (मं. ९)— पुरुषका नाशक (काम) अग्नि।

कामकी प्रबलतासे मनुष्यका शरीर सूख जाता है और इस कामके प्रकोपसे न जाने कितने ही मनुष्य सह-परिवार नष्ट भ्रष्ट होगये हैं। इस दृष्टिसे--

४ विश्वाद् अग्निः। (मं. ४, ९)— विश्वका भक्षक (काम) अग्नि।

यह बिलकुल सत्य है। भगवद्गीतामें कामको--

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(भ. गी. ३।३७)

(महाशनः) बहुत खानेवाला बताया है। 'महाशन (महा-अशनः) और विश्वाद् (विश्व-अद्)' ये दोनों एक ही भाव बतानेवाले शब्द हैं। सचमुच काम बडा खानेवाला है, इसकी कभी तृप्ति नहीं होती, कितना ही खानेको मिले यह सदा अतृप्त ही रहता है, इसका पेट सब जगत्को खाकरके भी नहीं भरता, इसी अर्थको बतानेवाला शब्द है—

५ विश्व-दाव्यः (मं. ३, ९)— सबको जलानेवाला (काम अग्नि)।

यह काम सचमुच सबको जलानेवाला है, जब यह काम मनमें प्रबल होता है, तब यह अंदरसे जलाने लगता है। ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला मनुष्य अंदरसे बढने लगता है और कामाग्निको अपने अंदर बढानेवाला मनुष्य अंदरसे जलने लगता है!! जिसका अंतःकरण ही जलता रहता है, उसके लिये मानो सब जगत् ही जलने लगता है। जिसके मनमें कामाग्निकी ज्वालाएं भडक उठती हैं, उसको न जल ही शांति दे सकता है, न चंद्रमाकी अमृतपूर्ण किरणें ही शांति दे सकती हैं, वह तो सदा अशांत और संतप्त होता जाता है ऐसी इस कामाग्निकी दाहकता है!! इसके सामने यह अग्नि क्या जला सकती है? कामाग्निकी दाहकता इतनी अधिक है कि उसके सामने यह भौतिक अग्नि मानो शान्त ही है और इसीलिये मंत्र आठमें 'इस अग्नि-कामाग्निको शान्त करनेकी प्रार्थना की है।'

इस प्रकार इसका गुणवर्णन करनेवाले जो विशेषण इस सूक्तमें आये हैं, वे इसका स्वरूप निश्चित करनेमें बडे सहायक हैं। इनके मननसे निश्चय होता है, कि इस सूक्तमें वर्णित हुई अग्नि साधारण भौतिक अग्नि नहीं है, प्रत्युत कामाग्नि है। भौतिक अग्निका वाचक अग्नि शब्द स्वतंत्र रीतिसे अष्टम मन्त्रमें आया है, इसका विचार करनेसे भी इस सूक्तमें वर्णित अग्निका स्वरूप निश्चित होजाता है।

काम और इच्छा

'काम' शब्द जैसे काम-विकारका वाचक है उसी प्रकार इच्छा, कामनाका भी वाचक है। भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे एक ही इच्छाशक्तिका रूप जैसे कामविकारमें प्रकट होता है, वैसा ही अन्य इंद्रियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे कामनाके रूपमें भी प्रकट होता है। परन्तु इनके अन्दर घुसकर देखा जाय तो 'मुझे चाहिये' इस एक इच्छाके सिवाय दूसरा इसमें कुछ भी नहीं है, अपने अन्दर कुछ न्यूनता है, उसकी पूर्तिके लिये बाहरसे किसी पदार्थकी प्राप्ति करनी चाहिये, उस बाह्य पदार्थके प्राप्त होनेसे मैं पूर्ण हो जाऊंगा इत्यादि प्रकारकी इच्छा ही 'काम अथवा कामना' है। यही इच्छा सबको चला रही है, इसलिये इसको विश्वकी चालक शक्ति कहा है—

वैश्वानरः (विश्व—नेता)। (मं. ६)

'यह (विश्व-नर) विश्वका नेता अर्थात् विश्वका चालक (काम) है। विश्वको चलानेवाली यह इच्छाशक्ति है। यह कामशक्ति न हो तो संसारका चलना असम्भव है। पदार्थ मात्रमें-कमसे कम चेतन और अर्ध चेतन जगत्में- यह स्पष्ट दिखाई देती है। इस विषयमें प्रथम और द्वितीय मंत्रका कथन स्पष्ट है।

'इस कामरूप अग्निके अनेक रूप हैं और बल, अग्नि, जल, मेघ, पत्थर, औषधि, वनस्पति, सोम, गौ, पक्षी, पशु, द्विपाद चतुष्पाद, मनुष्य आदि सबमें है।' (मं. १,२) तथा 'पृथिवी, अन्तरिक्ष, विद्युत, द्युलोक, दिशा, वायु आदिमें भी है।' (मं. ७)

इस मंत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कामाग्नि पत्थर, जल, औषधियोंसे लेकर मनुष्योंतक सब सृष्टिमें विद्यमान है। औषधियां बढनेकी इच्छा करती हैं, वृक्ष फलना चाहते हैं, पक्षी उडना चाहते हैं, मनुष्य जगत्को जीतना चाहता है इस प्रकार हरएक पदार्थ अपनी शक्तिको और अपने अधिकार क्षेत्रको फैलाना चाहता है। यही इच्छा है और यही काम है। यही इच्छा जब जननेन्द्रियके साथ अपना संबंध जोडती है तब उसको कामविकार कहा जाता है, परंतु मूलतः यह शक्ति वही है, जो पहले इच्छाके नामसे प्रसिद्ध थी। यही स्वार्थकी कामना 'गाय और बैलोंको पालती है और उनको खिलाती पिलाती है, औषधियोंका पालन करती है।' (मं. ६)

कामकी दाहकता

भौतिक अग्नि जलाती है, ऐसा अनुभव हरएकको है और काम या इच्छाकी वैसी दाहकता नहीं है ऐसा भी सब मानते हैं, परंतु साधारण इच्छा, कामना और कामविकार इतने अधिक दाहक हैं कि उनकी दाहकताके सामने अग्निकी दाहकता कुछ भी नहीं है!!

राज्य बढानेकी इच्छा कई शासकोंमें बढ जानेके कारण पृथ्वीके ऊपरके कई राष्ट्रोंको पारतंत्र्यकी अग्नि जला रही है, इस स्वार्थकी इच्छाके कारण इतने भयंकर युद्ध हुए हैं और उनमें मनुष्य इतने अधिक मर चुके हैं कि उतने अग्निकी दाहकतासे निःसंदेह मरे नहीं हैं। इसीलिये इसको तृतीय मंत्रमें (पृतनासु सासहिं) अर्थात् युद्धमें विजयी कहा है। किसी भी पक्षकी जीत हुई तो इसीकी वह जीत होती है!!!

एक समाज दूसरे समाजको अपने स्वार्थके कारण दबा रहा है, ऊपर उठने नहीं देता है, दबी जातियोंसे यथेच्छ स्वार्थसाधन किया जा रहा है, यह स्वार्थकी कामनाका ही प्रताप है। धनी लोग निर्धनोंको दबा रहे हैं, अधिकारी वर्ग प्रजाको दबा रहा है, एक समर्थ राष्ट्र दूसरे निर्बल राष्ट्रको दबा देता है, इसी प्रकार एक भाई दूसरे भाईकी चीज छीनता है, ये सब कामके ही रूप हैं, जो मनुष्योंको अंदर ही अंदरसे जला रहे हैं।

आंख सुंदर रूपकी कामना करता है, कान मधुरस्वरकी अभिलाषा करता है, जिव्हा मधुर रसोंकी इच्छुक है, इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियां अन्यान्य विषयोंको चाहती हैं। इनके कारण जगत्में जो विध्वंस और नाश हो रहे हैं, वे किसीसे छिपे नहीं हैं। इतनी विनाशक शक्ति इस भौतिक अग्निमें कहां है?

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये छः शत्रु हैं, इन शत्रुओंमें सबसे मुख्य शत्रु 'काम' है, सबसे ज्यादा विनाशकता इसके अंदर है। यह प्रेमसे पास आता है, सुख देनेका प्रलोभन देता है और कुछ सुख पहुंचता भी है। परंतु अंदर अंदरसे ऐसा काटता है कि कट जानेवालेको अपने कट जानेका पतातक नहीं लगता!!! इस कामविकाररूपी शत्रुकी विनाशकता सब शास्त्रोंमें प्रतिपादन की है। हरएक धर्म पुस्तक इससे बचनेका उपदेश कर रहा है।

जिस समय काम विकारकी ज्यादा मनमें भडक उठती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि खून उबल रहा है। खूनके उबलनेका भाव स्पष्ट होता है, शरीर गर्म हो जाता है, मस्तिष्क तपता है, अवयव शिथिल होजाते हैं, मस्तककी विचारशक्ति हट जाती है और एक ही काम मनमें राज्य करने लगता है। खूनको पीसता है, शक्तिको नष्ट करता है, वीर्यका नाश करता है और आयुका क्षय करता है। ये सब लक्षण इसकी दाहकताके हैं। इसलिये मंत्रमें कहा हुआ विशेषण (विश्व-दाव्यः) जगत्को जलानेवाला बिलकुल सार्थक हो जाता है!!

न दबनेवाला

चतुर्थ मंत्रमें इसके विशेषण 'विश्वाद्, दाता, प्रतिगृह्णन्, धीरः, शक्रः, परिभूः, अदाभ्यः' आये हैं और इसीमें इसका नाम (यं कामं आहुः) 'काम' कहा है। अर्थात् इसी कामाग्निके ये गुणबोधक विशेषण हैं। इसलिये इनके अर्थ देखिये—

'यह काम (विश्वाद्) जगत्को खानेवाला, (दाता) दान देनेवाला, (प्रतिगृह्णन्) आयुष्यादि लेनेवाला, (धीरः) धैर्य देनेवाला, (शक्रः) शक्तिशाली, (परिभूः) सबसे बढकर होनेवाला, (अदाभ्यः) न दबनेवाला है। (मं. ४)'

विचार करनेपर ये विशेषण कामके विषयमें बडे सार्थक हैं ऐसा ही प्रतीत होगा। जिस समय मनमें काम उत्पन्न होता है, उस समय बुद्धिको मलिन करता है, अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिये आवश्यक धैर्य अथवा साहस उत्पन्न करता है, अन्य समय भीरु दिखाई देनेवाला मनुष्य भी कामविकारकी लहरमें बडे साहसके कर्म करने लगता है, जब यह मनमें बढता है तब सब अन्य भावनाओंको दबाकर अपना अधिकार सबपर जमा देता है, दबानेका यत्न करनेपर भी यह उछलकर अपना प्रभाव दिखा देता है! इस प्रकार पूर्वोक्त विशेषणोंका आशय यहां विचार करनेसे स्पष्ट हो सकेगा। इसके दाता और प्रतिग्रहीता (अथर्व ३।२९।७ में भी 'कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता' कहा है) ये दो विशेषण भी विशेष मनन करने योग्य हैं। यह किंचित् सा सुख देता है और बहुत सा वीर्य हरण कर लेता है, ये अर्थ पूर्वापर संगतिसे यहां अन्वर्थक दिखाई देते हैं। साधारण कामनाके अर्थमें देने और लेनेवाला कामनासे ही प्रवृत्त होता है, इसलिये यह काम ही देनेवालेको दानमें और लेनेवालेको लेनेमें प्रवृत्त करता है, यह इस मंत्रका आशय भी स्पष्ट ही है।

पंचम मंत्रमें ' त्रयोदश भुवनोंमें रहनेवाले पंचजन इसको मनसे मानते हैं, दाता कहकर पूजते हैं ' ऐसा कहा है। संपूर्ण जनता कामकी ही उपासना करती है यह बात इस मंत्रमें कही है। कई विरक्त संत महन्त इस कामको अपने आधीन करके परमात्मोपासक होते हैं, अन्य संसारी जन तो कामको ही अपने सर्वस्वका दाता मानते हैं। इस प्रकार इस कामने ही सब जगत्पर अपना अधिकार जमाया है। जनता समझती है कि (वर्चः) तेज, (यशः) यश और (सूनृतं) सत्य आदि सब कामके प्रभावसे ही सफल और सुफल होते हैं। सब लोग जो संसारमें मग्न हैं, इसीकी प्रेरणासे चले हैं मानो इसीके वेगसे घूम रहे हैं। जो सत्पुरुष इसके वेगसे मुक्त होकर इस कामको, जीत लेता है वही श्रेष्ठ होता हुआ मुक्तिका अधिकारी होता है। इसके वेगसे छूट जाना ही मुक्ति है।

इन्द्रका रथ

तृतीय मंत्रमें कहा कि ' यह काम इन्द्रके रथपर बैठकर (इन्द्रेण सरथं याति) जाता है। ' (मं. ३) यह देखना चाहिये कि इन्द्रका रथ कौनसा है? ' इन्द्र ' नाम जीवात्माका है और उसका रथ यह शरीर ही है। इस विषयमें उपनिषद्का वचन भी है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्॥
(कठ उ. ३।४)

' आत्मा रथमें बैठनेवाला है, उसका रथ यह शरीर है और इंद्रियां उस रथके घोडे हैं, जो विषयोंमें घूमते हैं। ' इस वर्णनसे इन्द्रके रथका पता लग सकता है। इस उपनिषद्वचनके ' इन्द्रिय ' पदका अर्थ ' इन्द्रकी शक्ति ' है। हमारी इन्द्रियें इन्द्रकी शक्तियां ही हैं। अतः आत्मा ही इन्द्र है।

इस इन्द्र अर्थात् आत्माके शरीररूपी रथमें यह ' काम ' बैठता है—

यः इन्द्रेण सरथं याति। (मं. ३)

' जो कामरूप अग्नि इन्द्रके रथपर बैठकर जाती है ' इस वाक्यका अर्थ अब स्पष्ट हुआ ही होगा। इस शरीरमें जैसे जीवात्मा है अथवा इन्द्र है, उसी प्रकार काम भी है, दोनों इसको चलानेवाले हैं। स्थूल दृष्टिसे देखा जाय तो काम अर्थात् इच्छा ही इसको चला रही है। इस प्रकार इस शरीरमें कामकी स्थिति है।

कामरूपी यह अग्नि प्राणियोंके शरीरमें जल रही है इसको अधिक प्रज्वलित करना उचित नहीं, प्रत्युत इसको जहांतक प्रयत्न हो सकता है, उतना प्रयत्न करके शांत करनेका ही उपाय करना चाहिये। इसको शांत करनेका उपाय अब देखिये—

काम--शान्तिका उपाय

नवम मंत्रमें इस कामाग्निको शान्त करनेका विधान है-

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः।
अथो यो विश्वदाव्यस्तं क्रव्यादमशीशमम्॥
(मं. ९)

' यह मांस भक्षक कामरूपी अग्नि शान्त हो गई है, यह मनुष्यकी नाशक कामरूपी अग्नि शान्त हो गई है, जो यह सबको जलानेवाली कामाग्नि है उसको मैंने शान्त किया है। ' इस मन्त्रमें इस कामाग्निको मैंने शांत किया ऐसा कहा है, इस विधानसे शान्त करनेका कुछ उपाय यह निःसन्देह सिद्ध होता है। यदि एक मनुष्य इसको शान्त कर सकता है तो अन्य मनुष्य भी उसी मार्गसे चलकर अपने शरीरमें जलती रहनेवाली इस कामाग्निको शान्त कर सकते हैं। हरएकके शरीरमें यह कामाग्नि जलती है इसलिये हरएकको चाहिये कि यह प्रयत्न करके इसको शान्त करनेका पुरुषार्थ करें और आत्मिक शान्ति प्राप्त करें। इसको शान्त करनेका उपाय अष्टम मंत्रके भागमें और दशम मन्त्रमें कहा है—

' हिरण्यपाणि सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, विश्वेदेव, आङ्गिरस इनका हम यजन करते हैं, ये इस मांस भक्षक कामाग्निको शांत करें। ' (मं. ८)

' सोमवल्ली जिनपर उगती है वे पर्वत, ऊपर गमन करनेवाले जल, वायु, पर्जन्य और अग्नि ये इस मांस भक्षक कामाग्निको शान्त करें। ' (मं, १०)

इन दो मंत्रोंमें जो मार्ग कहा है वह कामाग्नि शान्त करनेवाला है। ये मन्त्र उपाय बतानेके कारण अत्यन्त महत्त्वके हैं और इनका इसी करण अधिक मनन करना चाहिये। इन दो मन्त्रोंमें जो उपाय कहे हैं, उनका क्रम पूर्वक चिन्तन अब करते हैं—

१ सोमपृष्ठाः पर्वताः— जिन पर्वतोंपर सोमवल्ली अथवा अन्याय औषधियां उगती हैं वे पर्वत कामाग्नि शान्त करनेमें सहायक होते हैं। इसमें पहली बात तो यह है कि उन पर्वतोंकी शान्त जलवायु कामको भडकने नहीं देती है। शीत प्रदेशकी अपेक्षा उष्ण प्रदेशमें कामाग्निकी ज्वाला शीघ्र और अधिक भडक उठती है। उष्ण देशके लोग भी इसी

कारण छोटी आयुमें कामाग्निसे उद्दीपित होते हैं। इस विषयमें दूसरी बात यह है कि सोम आदि शीतवीर्यवाली औषधियां सेवन करनेसे भी कामाग्निकी ज्वाला शान्त होती है। सोमवल्लीवाले पर्वतशिखर हिमालयमें हैं, वहां ही दिव्य औषधियां होती हैं। योगी लोग उनका सेवन करके स्थिरवीर्य और दीर्घजीवी होते हैं। तीसरी बात इसमें यह है कि ऐसी पहाडियोंमें प्रलोभन कम होते हैं, शहरों जैसे अत्यधिक नहीं होते, इसलिये भी कामकी उत्तेजना शहरों जैसी यहां नहीं होती है। इत्यादि अनेक उपाय इन पहाडोंके साथ सम्बन्ध रखते हैं। (मं. १०)

२ उत्तानशीवरीः आपः— जल भी कामाग्निका शमन करनेवाला है। शीत जलका स्नान, जलाशयोंमें तैरनेसे शरीर से समशीतोष्णता होती है जिससे कामकी उष्णता दूर होती है, शीत जलसे मध्य शरीरका स्नान करना, जिसको कटिस्नान कहते हैं, ब्रह्मचर्य साधनके लिये बडा लाभदायक है। गुह्य इन्द्रियके आसपासका प्रदेश रात्रीके समय, या जिस समय कामका उद्रेक हो उस समय धो देनेसे ब्रह्मचर्य साधनमें बडी सहायता होती है। इस प्रकार विविध रीतिसे जलकी सहायता कामाग्निकी शान्ति करनेके कार्यमें होती है। (मं. १०)

३ पर्जन्यः— मेघ अर्थात् वृष्टिका जल इस विषयमें लाभकारी है। वर्षामें खडे होकर उस आकाशगंगाके जलसे स्नान करना भी बडा उत्तम है। इससे शरीरकी उष्णता सम होजाती है। इसके अतिरिक्त वृष्टिजल पीनेसे भी शरीरके अंदरके दोष हट जाते हैं और कामकी शान्ति होनेमें सहायता होती है। (मं. १०)

४ अग्निः— आग, अग्नि यह वस्तुतः शरीरको अधिक उष्ण बनानेवाली है। जो कोमल प्रकृतिके मनुष्य होते हैं यदि उनको अग्निके साथ कार्य करनेका अवसर मिल जाए तो उनके शरीरकी उष्णता बढनेसे उनका शरीर अधिक गर्म होजाता है और उसके कारण उनको वीर्यदोषकी बाधा होजाती है। इसलिये इस प्रकारकी अत्यधिक कोमलता शरीरसे हटानी चाहिये। अग्नि प्रयोगसे ही यह हट सकती है। होम हवन करते समय शरीरको अग्निका ताप लगता है, अन्य प्रकारसे भी शरीरको अग्निकी उष्णताकी आदत डालनी चाहिये, जिससे किसी समय आगके साथ काम करना पडे, तो उस उष्णताको शरीर सह सकेगा। अग्निकी उष्णताका हानिकारक परिणाम शरीरपर न होनेके लिये इस प्रकार शरीरको सहनशक्तिसे युक्त बनाना चाहिये। (मं. १०)

५ वातः— वायु भी इस विषयमें लाभदायक है। शुद्ध वायु सेवन तथा शुद्ध वायुमें भ्रमण करनेसे बडे लाभ हैं। प्राणायाम करना भी वायुसेवनकी एक लाभप्रद रीति है। प्राणायाम करनेसे वीर्यदोष दूर होते हैं। प्राणायामके अभ्याससे मनुष्य स्थिर वीर्य होजाता है। इस कारण वायुको कामाग्निका शान्त करनेवाला कहा है। जो जगत्में वायु है वही शरीरमें प्राण है। (मं. १०)

६ सविता— सूर्य भी इस विषयमें बडा सहायक है। जो बात अग्निके विषयमें कही है, वही सूर्यके विषयमें भी सत्य है। कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य सूर्यप्रकाशमें घूमने फिरनेसे वीर्यदोषी होजाते हैं, यह इस कारण होता है कि सूर्य प्रकाश सहन करनेकी शक्ति उनमें नहीं होती। वस्तुतः सूर्यका प्रकाश शरीर स्वास्थ्यके लिये बडा लाभकारी है। सूर्य प्रकाशमें बडा जीवन है। थोडा थोडा सूर्य प्रकाशसे अपने शरीरको तपाते जानेसे शरीरकी सहनशक्ति बढती है और शरीरमें अद्भुत जीवन रस संचारने लगता है, आरोग्य बढ जाता है और थोडीसी उष्णतासे कामकी उत्तेजना शरीरमें होनेकी संभावना कम होती है। इस प्रकारकी सहनशक्ति बढानेका प्रयत्न करना हो, तो प्रथम प्रातःकालके कोमल सूर्य प्रकाशमें भ्रमण करना चाहिये और पश्चात् कठोर प्रकाशमें भ्रमण करना चाहिये। यह सूर्यातपस्नान बडा ही लाभदायक है। मंत्रमें '**हिरण्यपाणिः सविता**' ये शब्द नऊ बजेतकके सूर्यके ही वाचक हैं, सोनेके रंगके समान रंगवाले किरणोंवाला सूर्य प्रातः और सायं ही होता है। (मं. ८)

७ वरुणः— वरुणका स्थान समुद्र है। इसलिये समुद्रस्नान इस विषयमें लाभकारी है ऐसा हम यहां समझ सकते हैं। इसमें जल प्रयोग भी आसकता है। (मं. ८)

८ मित्रः— सूर्य, इस विषयमें पूर्व स्थलमें कहा ही है। यदि '**हिरण्यपाणिः सविता**' पूर्वाह्णका है तो उसके बादके सूर्यका नाम मित्र है। पूर्वोक्त प्रकार यह भी लाभदायक है। मित्रकी प्रेम दृष्टिका उदय होनेसे भी अर्थात् जगत्की ओर प्रेम पूर्ण मित्र दृष्टिसे देखनेसे भी बडा लाभ होना संभव है। (मं. ८)

९ विश्वे देवाः— अन्यान्य देवताओंके विषयमें भी इसी प्रकार विचार करके जानना चाहिये और उनसे अपना लाभ लेना चाहिये।

१० बृहस्पतिः— यह ज्ञानका देवता है। ज्ञानसे भी कामाग्निको शांत करनेमें सहायता मिल सकती है। बृहस्पति

नाम 'गुरु' का है। गुरुसे ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञानके बलसे अपनेको बचाना चाहिये अर्थात् कामाग्निका संयम करना चाहिये। यहां जो ज्ञान आवश्यक है वह शरीर-शास्त्र, मानस-शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र इत्यादिका ज्ञान है। साथ ही साथ भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग आदिका भी ज्ञान होना चाहिये। (मं. ८)

११ अङ्गिरसः— अंगरसकी विद्या जाननेवाले ऋषि। शरीरमें सर्वत्र संचार करनेवाला एक प्रकारका जीवन-रस होता है, उसकी विद्या जो जानते हैं, उनसे यह विद्या प्राप्त करके उस विद्या द्वारा कामाग्निका शमन करना चाहिये। योग साधनमें इस विषयके अनेक उपाय कहे हैं, उनका भी यहां अनुसंधान करना चाहिये। (मं. ८)

१२ इन्द्रः— इन्द्र नाम जीवात्मा, राजा और परमात्माका है। इन तीनोंका भी उपयोग कामाग्निको शान्त करनेमें बहुत है। जीवात्माका आत्मिक-बल बढाकर शुभसंकल्पोंके द्वारा अपने अंदरके काम विकारका संयम करना चाहिये। राजाको चाहिये कि वह अपने राज्यमें ब्रह्मचर्य और संयमका वायुमंडल बढाकर कामाग्निको शान्त करनेके लिए सबको प्रेरणा दे। राष्ट्रमें अध्यापकवर्ग, संरक्षक और अधिकारी वर्ग ब्रह्मचारी रखकर राज्य चलानेका उपदेश वेदमें दिया है। यदि राज्यमें अध्यापकगण पूर्ण ब्रह्मचारी होंगे और राज्यशासनके अन्य ओहदेदार भी उत्तम ब्रह्मचारी होंगे तो उस राज्यका वायुमंडल भी ब्रह्मचर्यके लिये अनुकूल ही होगा और ऐसे राज्यमें रहनेवाले लोगोंके ब्रह्मचर्य, संयम अथवा कामाग्निके शमनमें कोई विघ्न नहीं होगा। धन्य है ऐसा वैदिक राज्य कि जहां सब अधिकारी-वर्ग और अध्यापक-वर्ग ब्रह्मचारी होते हों॥ इसके बाद इन्द्र शब्दका तीसरा अर्थ परमात्मा है। यह परमात्मा तो पूर्णब्रह्मचर्यका परम आदर्श है, इसकी भक्ति और उपासनासे कामाग्निका शमन होता ही है। सब ऋषिमुनि और योगी इसी परमात्म-भक्तिकी साधनासे मनःसंयम द्वारा कामाग्निका शमन करके अमर हो गये।

इस प्रकारके उपायोंका वर्णन इस सूक्तमें किया है। यह सूक्त अत्यन्त महत्त्वका है। इसका पाठ 'बृहच्छान्तिगण' में किया है। सचमुच यह सूक्त बृहती शांति करनेवाला ही है।

कामका बाण

कां. ३, सू. २५

(ऋषिः- भृगुः। देवता- मित्रावरुणौ, कामेषुः।)

उ॒त्तु॒दस्त्वोत्तु॑दतु॒ मा धृ॑था॒ः शय॑ने॒ स्वे। इषु॒ः काम॑स्य॒ या भी॒मा तया॑ विध्यामि त्वा हृ॒दि ॥ १ ॥
आ॒धीप॑र्णा॒ं काम॑शल्या॒मिषु॑ं संक॒ल्पकु॑ल्मलाम्। तां सुसं॑नतां कृ॒त्वा कामो॑ विध्यतु त्वा हृ॒दि ॥ २ ॥

अर्थ— (उत्तुदः त्वा उत्तुदतु) हिलानेवाला काम तुझे हिलावे। (स्वे शयने मा धृथाः) अपने शयनमें तू मत ठहर। (कामस्य या भीमा इषुः) कामका जो भयानक बाण है (तया त्वा हृदि विध्यामि) उससे तेरे हृदयको वींधता हूं॥ १॥

(आधी-पर्णां) जिसमें मानसिक पीडारूपी पंख लगे हुए हैं, (काम-शल्यां) जिसका अग्रभाग कामेच्छा है, जिसमें (संकल्प-कुल्मलां) जिसकी डण्डी संकल्प है, (तां) उस (इषुं) बाणको (सुसन्नतां कृत्वा) ठीक प्रकार लक्ष्यपर धरके (कामः त्वा हृदि विध्यतु) काम तेरे हृदयको वींधे॥ २॥

भावार्थ— हे स्त्री! सबको मथनेवाला काम तेरे अन्तःकरणको भी न मथे। कामका बाण तेरे हृदयका वेध न करे जिससे विद्ध हुई तू सुखसे निद्रा लेनेमें भी असमर्थ हो॥ १॥

इस कामके बाणको मानसिक पीडारूपी पंख लगे हुए हैं, इसके आगे कामविकाररूपी लोहेका तीक्ष्ण शल्य लगाया गया है, उसके पीछे मनकी संकल्परूपी डण्डी जोड दी है, इस प्रकारके बाणको अति तीक्ष्ण बनाकर काम तेरे हृदयका वेध न करे॥ २॥

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता । प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ ३ ॥
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा । मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥ ४ ॥
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ ५ ॥
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥ ६ ॥

अर्थ— (सुसन्नता) ठीक लक्ष्यपर चलाया हुआ (प्राचीनपक्षा वि-ओषा) सीधे पङ्खवाला और विशेष जलानेवाला (या कामस्य इषुः प्लीहानं शोषयति) जो कामका बाण तिल्लीको सुखा देता है, (तया त्वा हृदि विध्यामि) उससे तेरे हृदयको बींधता हूं ॥ ३ ॥

(व्योषया) विशेष दाह करनेवाले और (शुचा) शोक बढानेवाले बाणके द्वारा (विद्धा) विद्ध या पीडित हुई हुई तू (शुष्कास्या) सूखे मुहवाली होकर (मा अभिसर्प) मेरी ओर चली आ । तू (मृदुः) कोमल, (निमन्युः) क्रोधरहित, (प्रियवादिनी) मीठा भाषण करनेवाली, (अनुव्रता) अनुकूल कर्म करनेवाली, (केवली) केवल मेरी ही इच्छा करनेवाली हो ॥ ४ ॥

(त्वा आ-अजन्या) तुझको वेगसे (परि मातुः अथो पितुः) माता और पिताके पाससे (आ अजामि) लाता हूं । (यथा मम क्रतौ असः) जिससे मेरे अनुकूल कर्ममें तू रह और (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तके अनुकूल चल ॥ ५ ॥

हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (अस्यै) इसके लिये (हृदः चित्तानि व्यस्यतं) हृदयके विचारोंको विशेष प्रकारसे प्रेरित करो (अथ एनां अक्रतुं कृत्वा) और इसको कर्महीन बनाकर (मम एव वशे कृणुतं) मेरे ही वशमें करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह कामका बाण अचूक होता है, क्योंकि इसपर मानसिक व्यथाके पर लगे हुए होते हैं और साथ ही यह विशेष रीतिसे जलानेवाला भी होता है और यह तिल्लीको बिलकुल सुखा देता है, इससे मैं तुझे बींधता हूं ॥ ३ ॥

यह कामका बाण विशेष जलानेवाला, शोक बढानेवाला और मुखको सुखानेवाला है, हे स्त्री ! इससे बिंधी हुई तू मेरे पास आ और कोमल, क्रोधरहित, मधुरभाषिणी, अनुकूल आचरण करनेवाली और केवल मुझमें ही अनुरक्त होकर मेरे साथ रह ॥ ४ ॥

हे स्त्री ! माता और पितासे अलग करके मैं तुझे यहां लाया हूँ, इसलिये तू मेरे अनुकूल कर्म करनेवाली और मेरे विचारोंके अनुकूल विचार करनेवाली बनकर यहां रह ॥ ५ ॥

हे मित्र और हे वरुण ! इस स्त्रीके हृदयके विचारोंमें विशेष प्रेरणा करो, जिससे मेरे अनुकूल होनेवाले कर्मके सिवाय दूसरे किसी कर्ममें इसका प्रेम न रहे, तथा यह धर्मपत्नी मेरे ही वशमें रहे ॥ ६ ॥

कामका बाण

विरुद्धपरिणामी अलंकार

' विरुद्धपरिणामी अलंकार ' का उत्तम उदाहरण यह सूक्त है । ' विरुद्ध परिणाम ' का अर्थ है, कि जो कुछ बोला या किया जाय उसके उलटा उसका परिणाम निकले । बोले जानेवाले शब्दोंका स्पष्टार्थ कुछ हो और उसके अंदरका भाव कुछ और ही हो, उसको ' विरुद्ध परिणामी-अलंकार ' कहते हैं । इसके एक दो उदाहरण देखिये—

(१) ' हृदयको जलानेवाली, धनका नाश करनेवाली, कुटुंबमें कलह उत्पन्न करनेवाली और शरीरको सुखानेवाली शराब पिओ । ' इस वाक्यमें यद्यपि शराब पिओ ऐसा कहा है तथापि शराबके दुर्गुणोंका वर्णन इतने स्पष्ट शब्दोंमें किया है कि उसे सुननेवालेकी प्रवृत्ति न पीनेकी ओर ही होती है।

(२) ' जिससे शरीर पुष्ट होता है और ब्रह्मचर्य पालन होनेके कारण आरोग्य, बल और दीर्घजीवन निःसंदेह प्राप्त

होता है, इस प्रकारका आसन प्राणायामादिका योगसाधन कभी भूलकर भी मत करो। ' इसमें यद्यपि योगसाधन करनेका स्पष्ट निषेध है, तथापि सुननेवालेके मनमें योगसाधन अवश्य करना चाहिये, यह भाव उत्पन्न होता है।

ये भाषाके काव्यालंकार हैं, योग्य समयमें ये प्रयुक्त किये जांय तो इनका सुपरिणाम ही होता है। अब इस सूक्तका कथन देखिये—

' हे स्त्री ! कामके बाणसे मैं तेरे हृदयको वेधता हूं, इस कामके बाणमें ' मानसिक व्यथा ' के सुंदर पंख लगे हुए हैं, इसमें जो लोहेका अग्रभाग है वह ' मानसिक विकार ' का शल्य ही है, मनके ' कुसंकल्पों ' की लकडीसे इस बाणको बनाया गया है, यह बडा ' जलानेवाला ' है, इसके लगनेसे मुख सूख जाता है, प्लीहा सूख जाती है, हृदय जल जाता है, इस प्रकारके कामके विध्वंसक बाणसे मैं तेरा वेधन करता हूं, इससे तू विद्ध हो। '

इसमें यद्यपि ' कामके बाणसे विद्ध हो ' ऐसा कहा है, तथापि इस कामके बाणका स्वरूपका इतना भयंकर वर्णन किया है, कि इसको पढकर पढनेवालेकी प्रवृत्ति ' इस कामके बाणसे अपना बचाव करने ' की ओर ही होगी। इस सूक्तमें जो ' कामके बाण ' का वर्णन किया है, वह इस प्रकार है–

कामका बाण

१ उत्तुदः— व्यथा देनेवाला, शरीरको काट काट कर पीडा देनेवाला। (मं. १)

२ भीमा इषुः— जिसका परिणाम भयंकर होता है ऐसा बाण। (मं. १)

३ आधी–पर्णा— इस बाणको मानसिक व्यथाके पंख लगे हुए हैं। (मं. २)

४ काम–शल्या— स्वार्थकी प्रबल इच्छारूपी, अथवा कामविकार रूपी शल्य जिसमें लगा हुआ है। बाणका जो अग्रभागमें लोहेका शस्त्र होता है वह, यहां कामविकार है। (मं. २)

५ सङ्कल्प–कुल्मला— मनके कामविषयक संकल्प रूपी लकडीसे यह बाण बनाया गया है। (मं. २)

६ प्राचीन–पक्षा— इसमें जो मानसिक व्यथाके पंख लगे हुए हैं वे ऐसे लगे हुए हैं कि जिनके कारण यह बाण सीधी गतिसे और अतिवेगसे जाता है। (मं. ३)

७ शुचा (शुक्)— शोक उत्पन्न करनेवाला। (मं. ४)

८ व्योषा (वि–ओषा)— विशेष रीतिसे जलानेवाला। (मं. ३, ४)

९ शुष्कास्या (शुष्क–आस्या)— मुखको सुखानेवाला, मुखको म्लान करनेवाला। (मं. ४)

१० प्लीहानं शोषयति— प्लीहाको सुखा देता है। शरीरमें प्लीहा रक्तकी वृद्धि करके शरीर स्वस्थ रखती है, ऐसे महत्त्वपूर्ण अवयवका नाश कामके बाणसे होजाता है। इतनी मारकता इस मदनके बाणमें है। (मं. ३)

११ हृदि विध्यति— इसका वेध हृदयमें होता है, इससे हृदय विदीर्ण होता जाता है, हृद्रोगकी उत्पत्ति कामके बढनेसे होती है। (मं. १–३)

कामके बाणका यह भयंकर वर्णन इन शब्दोंद्वारा इस सूक्तमें किया है। ' हे स्त्री ! ऐसे भयंकर बाणसे मैं तेरा वेध करता हूं। ' ऐसा एक पुरुष अपनी धर्मपत्नीसे कहता है। पति भी जानता है कि जिस शरसे वेध करना है वह कामका शर इतना भयंकर विघातक है। इस बाणसे न केवल विद्ध होनेवाला ही कट जाता है अपितु वेधन करनेवाला भी कट जाता है, अर्थात् यदि पतिने यह कामका शर अपनी धर्मपत्नीपर चलाया तो वह जैसे धर्मपत्नीको काटता है उसी प्रकार पतिको भी काटता है और पूर्वोक्त ग्यारह दुष्परिणाम उत्पन्न करता है।

जो कर्म करना है उसकी भयानक घातकताका अनुभव करनेके पश्चात् वह कर्म अधिक नहीं हो सकता, जितना आवश्यक है उतना ही होगा, कभी अधिक नहीं होगा।

पतिपत्नीका एक मत

इस सूक्तमें कही बात पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है। ' यह धर्मपत्नी अपने माता पिताके घरको छोडकर पतिके घर पतिके साथ रहने आयी है। ' (देखो मं. ५) धर्मपत्नी तरुणी है, इस आयुमें मनका संयम करना बडा कठिन कार्य होता है। तरुण भोग भोगनेके इच्छुक रहते हैं, परंतु यह काम ऐसा है कि—

समुद्र इव हि कामः। नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य॥ तै. ब्रा. २।२।५।६
कामः पशुः॥ प्राणाग्नि उ. ४

' समुद्रके समान काम है। क्योंकि जैसे समुद्रका अन्त नहीं होता, वैसे ही कामका भी अन्त नहीं होता। ' तथा ' काम ही पशु है। '

यह काम भोग भोगनेसे कम नहीं होता, प्रत्युत बढता ही जाता है। यह पशु होनेसे इसके उपासक भी पशुरूप होते हैं, जो इस कामरूपी पशुको अपने अंदर बढने देते हैं, वे मानो पशुभावको अपने अन्दर बढाते हैं। मनन करनेवालेका नाम मनुष्य होता है और मनकी मननशक्ति कामसे नष्ट हो जाती है। काम मनमें ही उत्पन्न होता है और वहां बढता हुआ यह मननशक्तिको ही नष्ट कर देता है। इसी कारण तारुण्यमें यदि मनके अंदर काम बढ जाए तो वह मनुष्य विवेकभ्रष्ट होजाता है।

अब अपने प्रस्तुत विषयकी ओर आते हैं। धर्मपत्नी दूसरे घरसे लायी गई है। माताको और पिताको अपने भाइयों और जन्मके संबंधियोंको इस स्त्रीने छोड दिया है और पतिको अपने तन और मनका स्वामी माना है। इस प्रकार स्त्रीका पतिके पास आकर रहना एक प्रकारसे पतिके ऊपरकी जिम्मेवारी बढानेवाला है। पतिको यह अपना उत्तर-दायित्व ध्यानमें रखना चाहिये।

उक्त प्रकार अपने माता पिताओंको छोडकर स्त्री पतिके घर आनेपर भी यदि तारुण्यावस्थाके शरीरधर्मके अनुसार उसको योग्य सुखकी प्राप्ति न हुई, तो उसके दिलके भडक जानेकी भी संभावना है। पति शमदम आदि संयम और ब्रह्मचर्य पालन करने लगेगा और गृहस्थधर्म प्राप्त अपने स्त्रीविषयक कर्तव्यको न करेगा, तो स्त्रीके मनकी अधोगति की अत्यधिक संभावना रहती है।

शमदम ब्रह्मचर्य आदि सब उत्तम हैं, मनुष्यत्वका विकास करनेवाला है, यह सब सत्य है; परंतु विवाहित हो जानेपर स्त्रीके मनोधर्मका भी विचार करना चाहिये। यह कर्तव्य ही है। स्त्रीने मातापिता छोडनेका बडा त्याग किया है। अतः पतिको अपनी पत्नीके हर सुखदुःका ख्याल रखना चाहिए। गृहस्थधर्म भी एक महान् यज्ञ है। यही उसका यज्ञ है। ऐसा पतिने न किया तो वह स्त्रीको असन्मार्गमें प्रवृत्त करनेका भागी बनेगा।

इस सूक्तमें जो पति अपनी धर्मपत्नीका हृदय कामके भयानक बाणसे विद्ध करना चाहता है, वह इसी हेतुसे चाहता है। इसलिये इस कामके बाणकी भयानक विध्वंसक शक्तिका वर्णन करता हुआ पति स्त्रीसे कहता है कि ऐसे भयानक बाणसे मैं तेरे चित्तको अपने कर्तव्य पालन करनेके हेतुसे ही वेध करता हूं। इस वर्णनको सुनकर स्त्री भी समझे कि यह जो कामोपभोगका विचार मनमें उत्पन्न हुआ है, यदि इस उपभोगके लिये मनको खुला छोड दिया जाय, तो कितनी भयानक अवस्था बन जायगी।

इस विचारसे उस स्त्रीके मनमें भी कामको शमन करने-की ही लहर उठ सकती है और यदि पतिने इस सूक्तके बताये मार्गसे अपने स्त्रीके मनमें यह संयमकी लहर बढायी, तो अंतमें जाकर दोनोंका कल्याण हो जाता है।

परंतु यदि पतिने जबरदस्तीसे स्त्रीको कामप्रवृत्तिसे रोक रखा, तो उस स्त्रीके अंदरके कामविषयक संकल्प बहुत बढ जांयगे और अंतमें उसके अधःपातके विषयमें कोई संदेह ही नहीं रहेगा। ऐसा अधःपात न हो इसलिये ऋतुगामी होने आदि परिमित गृहस्थधर्म पालन करनेके नियमोंकी प्रवृत्ति हुई है। साथ ही साथ कामकी भयानक विघात-कताका ही विचार होता रहेगा, तो उससे बचनेकी ओर हरएक स्त्रीपुरुषकी प्रवृत्ति होगी। इसलिये पति स्वयं संयम करना चाहता है और अपनी धर्मपत्नीको अपने अनुकूल धर्माचरण करनेवाली भी बनाना चाहता है। यह करनेके लिये पति स्वयं सुविचारोंकी जाग्रति करता है और देवोंकी प्रार्थना द्वारा भी दैवी शक्तिकी सहायता लेनेका इच्छुक रहता है। इसीलिये षष्ठ मंत्रमें मित्रावरुण देवताओंकी प्रार्थना की गई है कि 'हे देवो! इस धर्मपत्नीको मेरे अनुकूल रहने और मेरे अनुकूल धर्माचरण करनेकी बुद्धि दीजिये। इस धर्मपत्नीके मनके विचारोंमें ऐसा परिवर्तन कीजिये कि यह दूसरा कोई विचार मनमें न लाकर मेरे अनुकूल ही धर्मा-चरण करती रहे, दूसरे किसी अनुचित कर्ममें अपना मन न दौडाये।' (मं. ६)

पतिको अपनी धर्मपत्नीके विषयमें यह दक्षता धारण करना आवश्यक ही है। पतिको उचित है कि वह अपनी धर्मपत्नीको सन्तुष्ट रखता हुआ उसको संयमके मार्गसे चलावे।

धर्मपत्नीके गुण

१ मृदुः– नरम स्वभाववाली, शांत स्वभाववाली। (मं. ४)

२ निमन्युः– क्रोध न करनेवाली, शान्तिसे कार्य करनेवाली। (मं. ४)

३ प्रियवादिनी– मधुर भाषण करनेवाली। (मं. ४)

४ अनुव्रता– पतिके अनुकूल कर्म करनेवाली। (मं. ४)

५ (मम) वशे– पतिके वशमें रहनेवाली, पतिकी आज्ञामें रहनेवाली। (मं. ६)

६ केवली- केवल पतिकी ही बनकर रहनेवाली। (मं. ४)

७ (मम) चित्तं उपायसि- पतिके चित्तके समान अपना चित्त बनानेवाली। (मं. ५)

८ अक्रतुः- पतिके विरुद्ध कोई कर्म न करनेवाली। (मं. ६)

९ (मम) क्रतौ असः- पतिके उद्योगमें सहायता देनेवाली। (मं. ५)

ये शब्द धर्मपत्नीके कर्तव्य बता रहे हैं।

गृहस्थधर्म

इस प्रकारकी अनुकूल कर्म करनेवाली धर्मपत्नीको पति कहता है, कि 'हे स्त्री! मैं तेरे हृदयको ऐसे भयंकर कामके बाणसे बींधता हूं।' पति जानता है कि यह कामका बाण बडा घातक है, ब्रह्मचर्यमें विघ्न उत्पन्न करनेके कारण बडा हानिकारक है। धर्मपत्नी पतिके अनुकूल चलनेवाली होनेके कारण वह भी जानती है कि यह कामका बाण तपस्यामें विघ्न करनेवाला है। तथापि दोनों 'गृहस्थीधर्म' से संबद्ध हैं, इसलिये संतानोत्पत्ति करनेके लिये बाधित हैं। अतः दोनों गृहस्थधर्मसे संबद्ध होते हैं। धर्मनियमानुकूल ऋतुगामी होकर घरमें वंशका बीजरूप वीर बालक उत्पन्न करते हैं और पश्चात् अपनी तपस्यामें लग जाते हैं।

वीर पुत्रकी उत्पत्ति

कां. ३, सू. २३

(ऋषिः- ब्रह्मा। देवता- चन्द्रमाः, योनिः, द्यावापृथिवी।)

येन॑ वे॒हद्ब॒भूवि॑थ ना॒शया॑मसि॒ तत्त्वत्। इ॒दं तद॒न्यत्र॒ त्वदप॑ दू॒रे नि द॑ध्मसि ॥ १ ॥

आ ते॒ योनिं॒ गर्भ॑ एतु॒ पुमा॒न्बाण॑ इवेषु॒धिम्। आ वी॒रोऽत्र॑ जायतां पु॒त्रस्ते॒ दश॑मास्यः ॥ २ ॥

पुमां॑सं पु॒त्रं ज॑नय॒ तं पु॒मान॑नु जायताम्। भवा॑सि पु॒त्राणां॑ मा॒ता जा॒तानां॑ ज॒नया॑श्च॒ यान् ॥ ३ ॥

अर्थ— (येन वेहत् बभूविथ) जिस कारणसे तू वन्ध्या हुई है, (तत् त्वत् नाशयामसि) वह कारण तुझसे हम दूर करते हैं। (तत् इदं) वह यह वंध्यापन (अन्यत्र त्वत् दूरे) दूसरी जगह तेरेसे दूर (अप नि दध्मसि) हम लेजाते हैं ॥ १ ॥

(पुमान् गर्भः ते योनिं आ एतु) पुरुष गर्भ तेरे गर्भाशयमें आजावे, (बाणः इषुधिं इव) जैसा बाण तूणीरमें होता है। (अत्र ते) यहां तेरा (दशमास्यः वीरः पुत्रः आजायतां) दस महिने गर्भमें रहकर वीर पुत्र उत्पन्न हो ॥ २ ॥

(पुमांसं पुत्रं जनय) पुरुष संतान उत्पन्न कर, (तं अनु पुमान् जायतां) उसके पीछे भी पुत्र ही उत्पन्न होवे। इस प्रकार तू (पुत्राणां माता भवासि) पुत्रोंकी माता हो, (जातानां यान् च जनयाः) जो पुत्र जनमे हैं और जिनको तू इसके बाद उत्पन्न करेगी ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे स्त्री! जिस दोषके कारण तुम्हारे गर्भाशयमें गर्भधारणा नहीं होती हैं और तू वन्ध्या बनी है, वह दोष मैं तेरे गर्भसे दूर करता हूं और पूर्ण रीतिसे वह दोष तुझसे दूर करता हूं ॥ १ ॥

तेरे गर्भाशयमें पुरुष गर्भ उत्पन्न हो, वह गर्भ वहां दस मासतक अच्छी प्रकार पुष्ट होता हुआ उससे उत्तम वीर पुत्र तुझे उत्पन्न होवे ॥ २ ॥

पुरुष संतान उत्पन्न कर। उसके पीछे दूसरा भी पुत्र ही होवे। इस प्रकार तू अनेक पुत्रोंकी माता हो ॥ ३ ॥

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च । तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥ ४ ॥
कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते ।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ॥ ५ ॥
यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥ ६ ॥

अर्थ— (यानि च भद्राणि बीजानि) जो कल्याण कारण बीज हैं, जिनको (ऋषभाः जनयन्ति) ऋषभक वनस्पतियां उत्पन्न करती हैं, (तैः त्वं पुत्रं विन्दस्व) उनसे तू पुत्रको प्राप्त कर। (सा प्रसूः) वैसी प्रसूत होनेवाली तू (धेनुका भव) गौके समान उत्तम माता हो ॥ ४ ॥

(ते प्राजापत्यं कृणोमि) तुझे मैं प्रजावाली बनाता हूँ। (गर्भः ते योनिं एतु) गर्भ तेरी योनिमें आवे। हे (नारि) स्त्री ! (त्वं पुत्रं विन्दस्व) तू पुत्रको प्राप्त कर। (यः तुभ्यं शं असत्) जो तेरे लिये कल्याणकारी होवे और (च त्वं उ तस्मै शं भव) तू निश्चयसे उसके लिये कल्याणकारिणी हो ॥ ५ ॥

(यासां वीरुधां) जिन औषधियोंका (द्यौः पिता) द्युलोक पिता है, (पृथिवी माता) पृथ्वी माता है और (समुद्रः मूलं) समुद्र मूल (बभूव) हुआ है। (ताः दैवीः ओषधयः) वे दिव्य औषधियां (पुत्रविद्याय) पुत्र प्राप्त करनेके लिये (त्वा प्र अवन्तु) तेरा विशेष रक्षण करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— ऋषभक आदि औषधियोंके जो उत्तम बीज होते हैं, उनका सेवन पुत्र प्राप्तिके लिये तू कर और उत्तम वीर पुत्रोंको उत्पन्न कर ॥ ४ ॥

प्रजा उत्पन्न होनेका प्राजापत्य संस्कार मैं तुझपर करता हूं, उससे तेरे गर्भाशयमें पुरुष गर्भ उत्पन्न होवे और तू पुत्र संतानको उत्पन्न कर। वह पुत्र तेरा कल्याण करे और तू उसका कल्याण कर ॥ ५ ॥

जो औषधियां पृथ्वीपर उत्पन्न होती हैं, जिनका पालन दिव्य शक्तिसे होता है और जो समुद्रसे उत्पन्न हुई हैं, उन दिव्य औषधियोंका सेवन पुत्र प्राप्तिके लिये तू कर, उससे तेरे गर्भाशयका दोष दूर होगा और तेरे उत्तम संतान उत्पन्न होंगी ॥ ६ ॥

वीर पुत्रकी उत्पत्ति

वीर पुत्रका प्रसव

वंध्या स्त्रीका वंध्यत्व दूर करके उसको उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न होने योग्य ' जननी ' बनाना इस सूक्तका साध्य है। पहले तीन मंत्रोंमें मंगल विचारोंकी सूचना द्वारा आंतरिक परिवर्तन करनेका उपाय कहा है। यदि किसी स्त्रीको यौवनमें मनसे पूरा पूरा निश्चय हो जाये कि उसका वंध्यापन दूर हो गया है, तो अंदरका भी वैसे ही अनुकूल परिवर्तन होना भी संभव है। यदि गात्र विषयक कोई वैसा बडा दोष न हो, तो इस मानसिक विचार परिवर्तनसे भी आवश्यक सिद्धि मिलनी संभव है।

इस कार्यके लिये ' प्राजापत्य इष्टि ' का प्रयोग पंचम मंत्रमें कहा है। ऋषभक आदि दिव्य औषधियोंका हवन और उनके बीजोंका विधिपूर्वक भक्षण करनेका विधान चतुर्थ मंत्रमें है। ऋषभक औषधियोंका एक गण ही है, ये औषधियां वीर्य बढानेवालीं, शरीरको पुष्ट करनेवालीं और गर्भाशयके दोष दूर करके वहांका आरोग्य बढानेवालीं हैं। इन औषधियोंका हवन करना, सेवन करना और आरोग्यपूर्ण विचार मनमें धारण करना ये तीन उपाय वंध्यत्व दूर करनेके लिये इस सूक्तमें कहे हैं।

याजक धर्मभावसे यह प्राजापत्य यज्ञ करे, यज्ञशेष आहुतिरस स्त्रीको पिलावे और प्रथम तीन मंत्रोक्त आरोग्यके विचार आशीर्वाद रूपसे कहे— ' हे स्त्री ! तेरे अंदर जो वंध्यत्वका दोष था, वह इस प्राजापत्य इष्टिसे दूर हो गया है; अब तेरे गर्भाशयमें पुरुष गर्भ उत्पन्न होगा, वहां वह

वीर बालक दस मासतक पुष्ट होता रहेगा और पश्चात् योग्य समयमें उत्पन्न होगा। अब तू अनेक पुत्रोंकी माता बनेगी। (मं. १-३)

इस प्रकारके मनःपूर्वक दिये हुए आशीर्वादसे तथा उस आशीर्वादको अचल निश्चयसे स्वीकार करनेसे शरीरके अन्दर आवश्यक परिवर्तन हो जाता है। 'शिव संकल्पसे चिकित्सा' करनेकी रीति यह है। इस विषयके सूक्त अथर्ववेदमें अनेक हैं।

इस सूक्तमें 'ओषधयः' शब्द बहुवचनान्त है, इससे अनुमान होता है कि इस सेवन विधिमें अनेक औषधियां आती हैं। सुविज्ञ वैद्योंको इस विषयकी खोज करनी चाहिये।

गर्भधारणा

कां. ५, सू. २५

(ऋषिः- ब्रह्मा। देवता- योनिगर्भः, पृथिव्यादयो देवताः।)

पर्वतादिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम्। शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥ १ ॥
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे। एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥ २ ॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ ३ ॥
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः। गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥
यद्वेद राजा वरुणो यद्वा देवी सरस्वती। यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद्गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥

अर्थ— (पर्वतात् दिवः) पर्वतसे लेकर द्युलोकपर्यंत स्थित पदार्थोंके (अंगात् अंगात् सं आभृतं) अंग प्रत्यंगसे इकट्ठा किया हुआ (योनेः) योनिके स्थानमें (रेतोधाः शेपः) वीर्यकी स्थापना करनेवाला पुरुषेन्द्रिय (सरौ पर्ण इव) जलप्रवाहमें पत्तेको रखनेके समान (गर्भस्य आदधत्) गर्भका आधान करता है ॥ १ ॥

(यथा इयं मही पृथिवी) जिस प्रकार यह बडी पृथिवी (भूतानां गर्भं आदधे) समस्त भूतोंके गर्भको धारण करती है, (एवा ते गर्भं दधामि) उसी प्रकार तेरा गर्भ मैं धारण करती हूँ, (तस्मै अवसे त्वां हुवे) और उसकी रक्षाके लिये तुझे बुलाती हूं ॥ २ ॥

हे (सिनीवालि) अल्प चन्द्रवाली रात्री देवी! (गर्भं धेहि) गर्भको धारण करा। हे (सरस्वति) ज्ञान-देवी! (गर्भं धेहि) गर्भको धारण करा। (उभौ पुष्करस्रजौ अश्विनौ) दोनों कमलमाला धारण करनेवाले अश्विदेव (ते गर्भं आधत्तां) तेरे गर्भको धारण करायें ॥ ३ ॥

(मित्रावरुणौ ते गर्भं) मित्र और वरुण तेरे गर्भको पुष्ट करें (देवः बृहस्पतिः गर्भं) देव बृहस्पति गर्भको धारण कराये। (इन्द्रः च अग्निः च ते गर्भं) इन्द्र और अग्नि तेरे गर्भको धारण करायें। (धाता ते गर्भं दधातु) धाता तेरे गर्भको धारण करावे ॥ ४ ॥

(विष्णुः योनिं कल्पयतु) विष्णु योनिको समर्थ बनावे। (त्वष्टा रूपाणि पिंशतु) त्वष्टा उस गर्भको उत्तम रूपवाला बनावे। (प्रजापतिः आसिंचतु) प्रजापति गर्भको सींचे और (धाता ते गर्भं दधातु) धाता तेरे गर्भको धारण करावे ॥ ५ ॥

(यत् राजा वरुणः वेद) जो वरुण राजा जानता है, (वा यत् देवी सरस्वती) अथवा जो देवी सरस्वती जानती है, (यत् वृत्रहा इन्द्रः वेद) जो वृत्रका नाश करनेवाला इन्द्र जानता है (तत् गर्भ-करणं पिब) वह गर्भको स्थिर करनेवाला यह रस पान कर ॥ ६ ॥

गर्भो॑ अ॒स्योष॑धीनां॒ गर्भो॒ वन॒स्पती॑नाम् । गर्भो॒ विश्व॑स्य भू॒तस्य॒ सो अ॑ग्ने॒ गर्भ॑मे॒ह धाः ॥ ७ ॥
अधि॑ स्कन्द वी॒रय॑स्व॒ गर्भ॒मा धे॑हि॒ योन्या॑म् । वृषा॑सि वृष्ण्याव॒न्प्रजा॑यै॒ त्वा न॑यामसि ॥ ८ ॥
वि जि॑हीष्व बार्हत्सा॒मे गर्भ॑स्ते॒ योनि॒मा श॑याम् । अदु॑ष्टे दे॒वाः पु॒त्रं सो॑म॒पा उ॑भया॒विन॑म् ॥ ९ ॥
धातः॒ श्रेष्ठे॑न रू॒पेणा॒स्या नार्या॑ गवी॒न्योः । पुमां॑सं पु॒त्रमा धे॑हि दश॒मे मा॒सि सूत॑वे ॥ १० ॥
त्वष्टः॒ श्रेष्ठे॑न रू॒पेणा॒स्या नार्या॑ गवी॒न्योः । पुमां॑सं पु॒त्रमा धे॑हि दश॒मे मा॒सि सूत॑वे ॥ ११ ॥
सवि॑तः॒ श्रेष्ठे॑न रू॒पेणा॒स्या नार्या॑ गवी॒न्योः । पुमां॑सं पु॒त्रमा धे॑हि दश॒मे मा॒सि सूत॑वे ॥ १२ ॥
प्रजा॑पते॒ श्रेष्ठे॑न रू॒पेणा॒स्या नार्या॑ गवी॒न्योः । पुमां॑सं पु॒त्रमा धे॑हि दश॒मे मा॒सि सूत॑वे ॥ १३ ॥

अर्थ—(ओषधीनां गर्भः असि) तू औषधियोंका गर्भ है और (वनस्पतीनां गर्भः असि) तू वनस्पतियोंका गर्भ है, तू (विश्वस्य भूतस्य गर्भः) सब भूतमात्रका गर्भ है, हे अग्ने ! (सः इह गर्भं आधाः) वह तू यहां गर्भको धारण करा ॥ ७ ॥

(अधिस्कंध) उठकर खडा हो, (वीरयस्व) वीरता कर, (योन्यां गर्भं आधेहि) योनिमें गर्भकी स्थापना कर । हे (वृष्ण्यावन् ! वृषा असि) वीर्यवान् ! तू बलवान् है । (त्वा प्रजायै नयामसि) तुझे केवल सन्तानके लिये ही ले जाते हैं ॥ ८ ॥

हे (बार्हत्सामे) बृहत्साम गानेवाली स्त्री ! तू (विजिहीष्व) विशेष प्रकार तैयार रह । (ते योनिं गर्भः आशयां) तेरी योनिमें गर्भ स्थिर होवे । (सोमपाः देवाः उभयाविनं पुत्रं ते अदुः) सोमपान करनेवाले देवोंने तुम दोनोंकी रक्षा करनेवाले पुत्रको तुझे दिया है ॥ ९ ॥

हे (धातः) धाता ! और हे (त्वष्टः) रूप बनानेवाले देव ! हे (सवितः) उत्पादक देव ! हे (प्रजापते) प्रजापालक देव ! (अस्याः नार्याः गवीन्योः) इस स्त्रीके दोनों गर्भधारक नाडियोंके बीचमें (श्रेष्ठेन रूपेण पुमांसं पुत्रं आधेहि) उत्तम सुंदर रूपके साथ पुरुष संतानकी स्थापना कर और (दशमे मासि सूतवे) दसवें मासमें उत्पत्ति होनेके लिये उसे योग्य कर ॥ १०–१३ ॥

गर्भकी सुरक्षितता

गर्भकी सुरक्षितताके लिये परमेश्वरकी तथा अन्यान्य देवताओंको प्रार्थना इस सूक्तमें की गई है । इस प्रकारकी प्रार्थना करनेसे मानसशक्तिकी जाग्रति द्वारा बहुत लाभ होता है । इसके अतिरिक्त इस सूक्तमें गर्भविषयक अन्यान्य बहुतसी उपयुक्त बातें कही हैं, उसका थोडासा विचार यहां करना आवश्यक है ।

पृथ्वीके ऊपरके पर्वतसे लेकर द्युलोक पर्यंत अर्थात् इस द्यावापृथिवीके अन्दर जितने पदार्थ हैं, उन सबके अंग प्रत्यंगोंके अंश लेलेकर और उन सब अंशोंको विशेष योजनासे इकट्ठा करके यह गर्भ बनाया गया है । यह प्रथम मंत्रका कथन है । अर्थात् इस गर्भमें जिस प्रकार सूर्य और चंद्रके अंश हैं, उसी प्रकार वायु और जलके अंश भी हैं और उसी रीतिसे औषधि वनस्पतियोंके भी अंश हैं । जो ब्रह्माण्डमें है वही पिण्डमें है । ब्रह्माण्डका एक अंश ही पिंड है । इसी प्रकार पिताके अंग प्रत्यंगोंका सत्त्व वीर्य बिन्दुमें आता है और उसी वीर्य बिन्दुसे गर्भ धारण होता है, इसलिये गर्भमें पिताके अंग प्रत्यंगोंका सत्त्व आया हुआ होता है । इस प्रकार एक दृष्टिसे यह गर्भ सब ब्रह्माण्डका सत्त्वांश है और दूसरी दृष्टिसे यह गर्भ पिताका सत्त्वांश है । गर्भमें, मानो, इतनी प्रचण्ड शक्तियां हैं, इसलिये गर्भकी जितनी सुरक्षा हो सके, उतनी करनी चाहिये और उसकी जितनी उन्नति हो सके उतना यत्न करना चाहिये ।

मंत्र २ से ५ तक देवताओंकी प्रार्थना है कि सब देव इस गर्भकी रक्षाके लिये सहायता देवें । और जो देवताओंके अंश यहां हैं उनको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखें और बढावें । पाठक यहां स्मरण रखें कि रक्षा तो देवोंद्वारा ही होनी है, मनुष्यका कार्य इतना ही है कि वह उसमें रुकावट न करे । जिस प्रकार बंद कमरेमें सदा रहनेसे सूर्यकी रक्षासे

मनुष्य दूर रहते हैं, उसी प्रकार अन्यान्य देवोंकी रक्षासे मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण दूर रहता है। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह अपने आपको इन देवताओंके आधीन कर दे। ऐसा करनेसे इसकी उत्तम रक्षा हो सकती है। गर्भकी भी सुरक्षिततताके लिये गर्भिणी स्त्री शुद्ध वायुमें तथा धूप आदिमें अपने आपको रखेगी और सूर्यादि देवोंसे जो रक्षा प्राप्त होती है उससे लाभ उठावेगी, तो अधिक लाभ हो सकता है।

गर्भ उत्तम रीतिसे बढकर दसवें मासमें माताके उदरसे बाहर आना चाहिये। यह समय उसकी पूर्ण वृद्धिका है। यह बात दशम मंत्रमें कही है।

अन्य मंत्र गर्भाधान विषयक हैं वे सुविज्ञ पाठक सहज-हीमें समझ सकते हैं।

गर्भधारणा

कां. ६, सू. १७

(ऋषिः– अथर्वा। देवता– गर्भदृंहणं, पृथिवी।)

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ २ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान्गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ३ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ४ ॥

अर्थ— (यथा इयं मही पृथिवी) जिस प्रकार यह बडी पृथिवी (भूतानां गर्भं आदधे) भूतोंका गर्भ धारण करती है, (एव ते गर्भः) उसी प्रकार तेरा गर्भ (सूतुं अनु सवितवे ध्रियतां) संतानको अनुकूलतासे उत्पन्न करनेके लिये स्थिर होवे ॥ १ ॥

(यथा इयं मही पृथिवी) जिस प्रकार यह बडी पृथिवी (इमान् वनस्पतीन् दाधार) इन वनस्पतियोंको धारण करती है। उसी प्रकार संतान उत्पन्न होनेके लिये तेरे अंदर गर्भ स्थिर होवे ॥ २ ॥

जिस प्रकार यह बडी पृथिवी (पर्वतान् गिरीन् दाधार) पर्वतों और पहाडोंको धारण करती है, उसी प्रकार तेरे अंदर यह गर्भ सुखसे प्रसूति होनेके लिये स्थिर रहे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार यह बडी पृथिवी (विष्ठितं जगत्) विविध प्रकारसे रहनेवाले जगत्को धारण करती है, उसी प्रकार तेरे अंदर यह गर्भ सुख प्रसूतिके लिये स्थिर रहे ॥ ४ ॥

स्त्रीको अपने गर्भाशयमें गर्भ स्थिर रखनेकी इच्छा होती है, वह सफल करनेके लिये यह आशीर्वाद है।

गर्भदोष-निवारण

कां. ८, सू. ६

(ऋषिः- मातृनामा । देवता- मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, ब्रह्मणस्पतिः ।)

यौ ते॑ मा॒तोन्म॒मार्ज॑ जा॒ताया॑ः पति॒वेद॑नौ । दु॒र्णामा॒ तत्र॒ मा गृ॑ध॒द॒लिंश॑ उ॒त व॒त्सप॑ः ॥ १ ॥

प॒ला॒लानु॒प॒ला॒लौ शर्कुं॒ कोकं॑ मलि॒म्लुचं॑ प॒लीज॑कम् । आ॒श्रेषं॑ व॒व्रिवा॑सस॒मृक्ष॑ग्रीवं प्र॒मीलि॑नम् ॥ २ ॥

मा सं वृ॑तो॒ मोप॑ सृप ऊ॒रू माव॑ सृपोऽन्त॒रा । कृ॒णोम्य॑स्यै भेष॒जं ब॒जं दु॑र्णाम॒चात॑नम् ॥ ३ ॥

दु॒र्णामा॑ च सु॒नामा॑ चो॒भा सं॒वृत॑मिच्छतः । अ॒राया॒नप॑ हन्मः सु॒नामा॒ स्त्रैण॑मिच्छताम् ॥ ४ ॥

यः कृ॒ष्णः के॒श्यसु॑र स्तम्ब॒ज उ॒त तुण्डि॑कः । अ॒राया॑नस्या मु॒ष्काभ्यां॒ भंस॒सोऽप॑ हन्मसि ॥ ५ ॥

अर्थ— (जातायाः ते) उत्पन्न होते ही तेरे (यौ पतिवेदनौ) जो पतिको प्राप्त होनेवाले दोनों भाग तेरी (माता उन्ममार्ज) माताने स्वच्छ किये थे (तत्र) उनमें (दुर्णामा, अलिंशः उत वत्सपः) दुर्णामा, अलिंश तथा वत्सप ये रोगकृमि (मा गृधत्) न पहुचें ॥ १ ॥

(पालालानुपलालौ) मांस और मांससंबंधी, (शर्कुं) हिंसक, (कोकं) कामसंबंधी अथवा वीर्यसंबंधी, (मलिम्लुचं पलीजकं) मलिन, पलित रोग, (आश्रेषं) चिपकनेवाले, (वव्रिवाससं) रूपहीनता करनेवाले, (ऋक्षग्रीवं) रीछके समान गर्दन बनानेवाले, (प्रमीलिनं) आंखें मूंदनेवाले रोगोंको मैं दूर करता हूं ॥ २ ॥

(मा सं वृतः) मत रह, (मा उप सृप) पास मत जा, (ऊरू अन्तरा मा अव सृप) जंघाओंके बीचमें न रह। (अस्यै भेषजं कृणोमि) इसके लिये औषध बनाता हूं, यह औषध (बजं दुर्णामचातनं) बज नामक है इससे दुर्नाम कृमि दूर होते हैं ॥ ३ ॥

(दुर्णामा च सुनामा च उभौ) दुष्ट नामवाला और उत्तम नामवाला ये दोनों (सं वृतं इच्छतः) संगति करना चाहते हैं, उनमेंसे (अ-रायान् अप हन्मः) निकृष्टोंका हम नाश करते हैं और जो (सुनामा) उत्तम नामवाला है वह (स्त्रैणं इच्छतां)) स्त्रीजातिकी इच्छा करे ॥ ४ ॥

(यः कृष्णः) जो काला (केशी असुरः) बालोंवाला असुर है, (स्तंबजः उत तुण्डिकः) जो शरीर स्तंभमें रहता है अथवा मुखमें रहता है, इन (अरायान्) दुष्टोंको (अस्याः मुष्काभ्यां) इस स्त्रीके दोनों प्रदेशोंसे तथा (भंससः) कटिप्रदेशसे (अप हन्मि) हटा देता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ— बच्चा उत्पन्न होते ही स्तनमें तथा अन्यत्र रोग उत्पन्न करनेवाले कृमि न पहुंचें ॥ १ ॥

मांसमें उत्पन्न होनेवाले, हिंसक, वीर्यदोष उत्पन्न करनेवाले, बाल सफेद करनेवाले, कुरूपता बढानेवाले, गर्दनमें रोग उत्पन्न करनेवाले, आंखोंमें सुस्ती लानेवाले रोगोंको मैं दूर करता हूं ॥ २ ॥

रोगजन्तु पास न रहे, प्रसवस्थानमें जघांओंके मध्यमें न जावे, इसको दूर करनेके लिये यह औषध बनाता हूं, यह बज नामक औषध इस दुष्ट क्रिमिको दूर करता है ॥ ३ ॥

दो प्रकारके क्रिमि होते हैं, एक दुष्ट और दूसरा हितकारी। दोनों पास आते हैं, उनमें दुष्टको हटाते हैं और उत्तम को स्त्री जातिके पास रखते हैं ॥ ४ ॥

काला, बालोंवाला, प्राणघातक, मुखवाला, शरीरके स्तंभमें रहनेवाला, घातकी, क्षीणता बढानेवाला क्रमि है, उसको स्त्रीके अवयवोंसे हटा देते हैं ॥ ५ ॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् । अरायांछ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥ ६ ॥
यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च । बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥ ७ ॥
यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् । छायामिव प्र तान्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥ ८ ॥
यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् । तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥ ९ ॥
ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः । कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान्वि नाशय ॥ १० ॥

अर्थ—(अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं) गन्ध लेनेसे नाश करनेवाले, स्पर्श करनेवालेका नाश करनेवाले, (क्रव्यादं उत रेरिहं) मांस खानेवाले और हिंसक (श्वकिष्किणः अरायान्) कुत्तेके समान कष्ट देनेवाले, निःसत्त्व करनेवाले रोगबीजोंको (पिंगः बजः अनीनशत्) पीला बज औषध नष्ट करता है ॥ ६ ॥

(भ्राता भूत्वा) भाई बनकर (पिता इव च) अथवा पिता बनकर, (त्वा यः स्वप्ने निपद्यते) तेरे पास जो स्वप्नमें आता है, (क्लीबरूपान् तान् तिरीटिनः) क्लीबरूप उन गुप्त रहनेवाले रोजबीजोंको (इतः बजः सहतां) यहांसे बज औषध हटा देवे ॥ ७ ॥

(स्वपन्तीं त्वा यः त्सरति) सोती हुई तेरे पास जो आता है, (यः जाग्रतीं त्वा दिप्सति) जो जागती हुई तेरे पास आकर कष्ट पंहुचाता है, (सूर्यः छायां इव) सूर्य जैसे अन्धकारका नाश करता है, उसी प्रकार (परिक्रामन् प्र अनीनशत्) भ्रमण करता हुआ उनका नाश करे ॥ ८ ॥

(यः इमां स्त्रियं) जो इस स्त्रीको (मृतवत्सां अवतोकां कृणोति) मरे बच्चोंवाली अथवा गर्भपात होनेवाली करता है, हे औषधे ! (त्वं अस्याः तं नाशय) तू इसके उस रोगका नाश कर तथा (कमलं अंजिवं) गर्भद्वाररूपी कमलको रोगरहित कर ॥ ९ ॥

(ये गर्दभनादिनः) जो गधेके समान शब्द करनेवाले (सायं शालाः परिनृत्यन्ति) सायंकालके समय घरोंके चारों ओर नाचते हैं, (कुसूलाः कुक्षिलाः) सुईके समान अग्र भागवाले, बडे पेटवाले, (ककुभाः करुमाः स्रिमाः) टेढे मेढे, बुरा शब्द करनेवाले, छोटे रोगक्रिमि हैं; हे औषधे ! (त्वं तान् गंधेन) तू उनको अपने गंधको (विषूचीनान् विनाशय) फैलाकर नष्ट कर ॥ १० ॥

भावार्थ— कई क्रिमी सूंघनेसे प्राणघात करते हैं, कई स्पर्शसे नाश करते हैं, कई मांसको क्षीण करते हैं, कई अन्य रीतिसे घात करते हैं, कई कष्ट देते हैं; उन सब रोगबीजोंको पीली बज औषधि हटा देती है ॥ ६ ॥

भाई अथवा पिताके रूपसे स्वप्नमें जो आते हैं, वे निर्बल हैं, परंतु घातक होते हैं, उनको इस बज औषधिसे हटाया जा सकता है ॥ ७ ॥

सोनेकी अवस्थामें अथवा जागनेकी अवस्थामें जो रोगबीज पास आते हैं, उनको सूर्य अन्धकारका नाश करनेके समान नष्ट करता है ॥ ८ ॥

बुरा शब्द करनेवाले, सब मिलकर बडा आवाज करनेवाले, मुखमें काटने और दंश करनेके साधन रखनेवाले, वनमें जो रोगबीज स्त्रीको मृतवत्सा अथवा गर्भपात करनेवाली बनाते हैं, उन रोगबीजोंका नाश कर और उस स्त्रीका गर्भस्थान नीरोग बना ॥ ९ ॥

गधेके समान बुरा शब्द करनेवाले मच्छर आदि जो सायंकालके समय घरके पास नाचते और गाते रहते हैं, जिनके मुखमें सुईके समान चुभनेवाला शस्त्र रहता है, जिनका पेट बडा और टेढामेढा होता है और जिनके शब्दसे दुःख होता है, उन रोगक्रिमी मच्छर आदिकोंका उग्र गंधवाली औषधिको चारों ओर फैलाकर नाश करो ॥ १० ॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥ ११ ॥
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान्बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान्मकंकान्नाशयामसि ॥ १२ ॥
य आत्मानमतिमात्रमंसं आधाय बिभ्रति । स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥
ये पूर्वे वध्वोइ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेष्ठाः प्रहासिनं स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
येषां पश्चात्प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥ १५ ॥

अर्थ— (ये कुकुन्धाः कुकूरभाः) जो बुरा शब्द करते हैं और थोडेसे चमकते हैं और जो (कृत्तीः दूर्शानि बिभ्रति) काटनेवाले दंश करनेके साधनोंको धारण करते हैं, (ये घोषं कुर्वते) जो शब्द करते हुए (क्लीबा इव वने प्रनृत्यन्तः) क्लीबोंके समान वनमें नाचते हैं, (तान् इतः नाशयामसि) उनका यहांसे नाश करते हैं ॥ ११ ॥

(ये दिवः आपतन्तं अमुं सूर्यं न तितिक्षन्ते) जो द्युलोकसे आनेवाले इस सूर्यको सहन नहीं कर सकते, उन (अरायान् बस्तवासिनः) सत्त्वहीन करनेवाले, चर्ममें रहनेवाले (दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्) दुर्गंधवाले, रक्तयुक्त मुंहवाले, (मककान् नाशयामसि) मच्छरोंका यहांसे नाश करो ॥ १२ ॥

(यः आत्मानं अतिमात्रं अंसे आधाय) जो अपने आपको अत्यंत रूपसे कन्धेपर चढाकर (बिभ्रति) धारण करता है, हे इन्द्र ! उन (स्त्रीणां प्रतोदिनः रक्षांसि नाशय) स्त्रियोंके गर्भभागको पीडा देनेवाले रोग कृमियोंका नाश कर ॥ १३ ॥

(ये पूर्वे हस्ते शृंगाणि बिभ्रतः) जो पहिले अपने हाथमें सींगोंको लेकर (वध्वः यन्ति) स्त्रीके पास पहुंचते हैं, (ये आपाकेष्ठाः प्रहासिनः) जो पाक स्थानमें रहते हैं और जो हंसाते हैं, (ये स्तंबे ज्योतिः कुर्वते) जो स्तंभमें प्रकाश करते हैं, (इतः तान् नाशयामसि) यहांसे उनका नाश करते हैं ॥ १४ ॥

(येषां प्रपदानि पश्चात्) जिनके पांव पीछे और (पार्ष्णीः पुरः) एडियां आगे हैं और (मुखा पुरः) मुख भी आगे हैं, (खलजाः शकधूमजाः) खलमें उत्पन्न, गोबरके धूमसे उत्पन्न, (उरुण्डा ये च मट्मटाः) जो बडे मुखवाले और कष्ट बढानेवाले (कुम्भमुष्काः अयाशवः) बडे अण्डेवाले गतिमान् होते हैं, हे ब्रह्मणस्पते ! (अस्याः तान्) इस स्त्रीके उन रोगबीजोंको (प्रतीबोधेन नाशय) ज्ञानसे नष्ट कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— नाचनेवाले रोगोत्पादक मच्छर आदि क्रिमियोंको यहांसे हटा दो ॥ ११ ॥

द्युलोकसे प्रकाशनेवाले सूर्यके प्रकाशको जो सह नहीं सकते, दुर्गंधियुक्त चर्म आदि पदार्थोंमें जो रहते हैं, उन रक्त पीनेवाले मच्छरोंका हम नाश करते हैं ॥ १२ ॥

जो अपने आपको कन्धेके सहारे ऊपर ही ऊपर धारण करता है, वह रोगकृमि स्त्रीके गर्भाशयका रोग बढानेवाला है, उसका नाश कर ॥ १३ ॥

जो अपने पास सींग रखते हैं, पाकगृहमें रहते हैं, जो चमकते हैं और स्त्रियोंके पास जाकर रोग उत्पन्न करते हैं, उन रोगकृमियोंका यहांसे नाश करो ॥ १४ ॥

इनके पांव पीछेकी ओर और एडी आगेकी ओर होती है, मुख भी आगेकी ओर होता है, जो गोबर आदिमें उत्पन्न होते हैं, ये बडा कष्ट देनेवाले रोगबीज यहांसे हटा दो ॥ १५ ॥

पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥ १६ ॥
उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् । उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ॥
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥ १७ ॥
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते । पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८ ॥
ये अम्नो जातान्मारयन्ति सूतिका अनुशेरते । स्त्रीभागान्पिङ्गो गन्धर्वान्वातो अभ्रमिवाजतु ॥ १९ ॥
परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् । गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥ २० ॥

अर्थ— (पर्यस्त-अक्षाः) जिनकी आंखें बिगडी हुई हैं, (अ-प्र-चंकशाः) विशेष क्षीण, (पण्डगाः) निर्बुद्ध मनुष्य (अस्त्रैणाः सन्तु) स्त्रीसुखसे रहित हों । (इमां स्वपतिं स्त्रियं) इस अपने पतिके साथ रहनेवाली स्त्रीको जो (अ-पतिः संविवृत्सति) स्वयं किसीका पति न होता हुआ प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, हे (भेषजः) औषध ! उसको (अवपादय) नीचे गिरा ॥ १६ ॥

(स्पन्दना गौः स्थालीं इव) कूदनेवाली गाय जिस प्रकार दुग्धपात्रको लातसे ढकेल देती है उसी प्रकार (पार्ष्ण्या पदा च) एडी और पदसे (उद्धर्षिणं मुनिकेशं) झूठमूठ करनेवाले, मुनियोंके समान केशधारी कपटी, (जम्भयन्तं मरीमृशं) हिंसक और बुरा स्पर्श करनेवाले (उपेषन्तं उदुम्बलं) पास जानेवाले, मारनेवाले, (तुण्डेलं उत शालुडं) भयानक मुखवाले और दुष्टको (प्रविध्य) विशेष रीतिसे वेध डाल ॥ १७ ॥

(यः ते गर्भं प्रतिमृशात्) जो तेरे गर्भका नाश करे और (ते जातं वा मारयाति) तेरे जन्मे हुए बालक को जो मारता है, (तं) उसको (उग्रधन्वा पिंगः) उग्रधनुर्धारी पीतवर्णवाला (हृदयाविधं कृणोतु) हृदयमें प्रहार करे ॥ १८ ॥

(ये अम्नः जातान् मारयन्ति) जो आधे उत्पन्न गर्भोंको मारते हैं, जो (सूतिकाः अनुशेरते) प्रसूतिगृहमें रहते हैं, उन (गंधर्वान् स्त्रीभागान्) गंधर्वान् स्त्रियोंके भागमें रहेवाले रोगकृमियोंको (पिंगः) पीली बज औषधि (वातः अभ्रं इव) वायु जैसे मेघको हटाता है वैसे (आजतु) हटा देवे ॥ १९ ॥

(परिसृष्टं धारयतु) सब प्रकारसे उत्पन्न हुए गर्भको धारण करे । (यत् हितं तत् मा अव पादि) जो गर्भ है वह न गिरे । (नीवि-भार्यौ उग्रौ भेषजौ) कपडेमें धारण करने योग्य दोनों उग्र औषध (ते गर्भं रक्षतां) तेरे गर्भकी रक्षा करें ॥ २० ॥

भावार्थ— जिनकी आंखें खराब होती हैं, जो विशेष क्षीण हैं, वे स्त्रीसे सम्बन्ध न रखें । जो पुरुष अपनी स्त्रीको छोड कर अन्यकी स्त्रीसे कुकर्म करता है, उसको औषधसे गिरा दो ॥ १६ ॥

जैसे गौ मट्टीका बर्तन तोडती है, उस प्रकार एडी और पांवसे झूठे, मुनिवेषधारी, हिंसक दम्भी आदि सब प्रकारके दुष्ट मनुष्यको वेध डाल ॥ १७ ॥

जो गर्भका नाश करेगा, अथवा उत्पन्न हुए बालकको खावेगा, उसके हृदयपर प्रहार कर ॥ १८ ॥

जो जन्मे बालकोंको मारते हैं, जो सूतिकागृहमें रहते हैं, जो स्त्रियोंके पास रहते हैं उन रोगकृमियोंको यह पीली औषधि दूर करे ॥ १९ ॥

गर्भाशयमें गर्भकी उत्तम धारणा हो, गर्भ न गिरे, दोनों उग्र औषधियां गर्भकी रक्षा करें ॥ २० ॥

पवीनसात्तङ्गल्वाइच्छायंकादुत नग्नंकात् । प्रजायै पत्यै त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥ २१ ॥
द्व्यास्याच्चतुरक्षात्पञ्चपादादनङ्गुरेः । वृन्ताद्भि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥ २२ ॥
य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः । गर्भान्खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥ २३ ॥
ये सूर्यात्परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि । बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥ २४ ॥
पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् । आण्डादो गर्भान्मा दभन्बाधस्वेतः किमीदिनः ॥ २५ ॥
अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद्रोदमघमावयम् । वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥ २६ ॥

अर्थ— (पवीनसात् तंगल्वात्) वज्रसमान नाकवाले, बडे गालवाले, (छायकात् उत नग्नकात्) काले और नंगे (किमीदिनः) भूखे रोगक्रिमीसे (प्रजायै पत्यै) प्रजा और पतिके सुखके कारण (पिंगः त्वा परिपातु) पीली औषध तेरी रक्षा करे ॥ २१ ॥

(द्व्यास्यात् चतुरक्षात्) दो मुखवाले, चार आंखोंवाले, (पञ्चपादात् अनंगुरेः) पांच पांववाले और विना अंगुलियोंवाले (अभिप्रसर्पतः वरीवृतात् वृन्तात्) आगे बढनेवाले घेरे हुए जडोंसे युक्तसे (परिपाहि) रक्षा कर ॥ २२ ॥

(ये आमं मांसं अदन्ति) जो कचा मांस खाते हैं, (ये च पौरुषेयं क्रविः) और जो पुरुषका मांस खाते हैं, (केशवाः गर्भान् खादन्ति) बालोंवाले जो गर्भोंको खाते हैं (तान् इतः नाशयामसि) उनको यहांसे हम हटा देते हैं ॥ २३ ॥

(ये सूर्यात् परिसर्पन्ति) जो सूर्यसे पीछे हटते हैं (श्वशुरात् स्नुषा इव अधि) जैसे श्वशुरसे बहु दूर जाती है। (बजः च पिंगः च) बज और पिंग (तेषां हृदये अधि निविध्यतां) उनके हृदयके ऊपर वेध करे ॥ २४ ॥

हे (पिंग) पीली औषध ! (जायमानं रक्ष) उत्पन्न होनेवाले बालककी रक्षा कर (पुमांसं स्त्रियं मा क्रन्) पुरुष और स्त्रीको न मारें। (आण्डादः गर्भान् मा दभन्) अण्डे खानेवाले गर्भोंका न नाश करें। (इतः किमीदिनः बाधस्व) यहांसे भूखे क्रिमियोंको दूर कर ॥ २५ ॥

(अ-प्रजास्त्वं) वंध्यापन, (मार्त-वत्सं) बच्चोंका मरना, (आत् रोदं) रोना पीटना, (अघं आवयं) पापका भोग (तत्) यह सब दुःख (वृक्षात् स्रजं इव) वृक्षसे फूल गिरनेके समान (अप्रिये प्रतिमुञ्च) अप्रिय स्थानमें छोड दे ॥ २६ ॥

भावार्थ— प्रजाकी सुरक्षितताके लिये वज्रनासिकावाले, बडे गालवाले, काले नंगे भूखे रोगकृमिसे पीली औषधिके द्वारा तेरी रक्षा करते हैं ॥ २१ ॥

दो मुखवाले, चार आंखवाले, पांच पांववाले, अंगुलीरहित, रोगकृमि जो पास आते हैं, उनसे रक्षा हो ॥ २२ ॥

जो कच्चा मांस खाते हैं, गर्भोंको खाते हैं, उनका यहांसे नाश कर ॥ २३ ॥

जो कृमि सूर्यसे छिपते हैं, सूर्यकिरणोंके सामने ठहर नहीं सकते, उनका नाश बज औषधिसे कर ॥ २४ ॥

उत्पन्न होनेवाले बच्चेकी रक्षा कर। स्त्री पुरुषको दुःख न हो। अण्ड खानेवाले गर्भका नाश न करें। दुष्टोंको यहांसे दूर कर ॥ २५ ॥

वंध्यापन, बच्चोंका मरना, रोनेकी ओर प्रवृत्ति, पाप प्रवृत्ति, ये सब दोष हट जांय। वृक्षसे फूलके गिरनेके समान ये सब दुःख मनुष्यसे दूर हों ॥ २६ ॥

गर्भदोष-निवारण

प्रसूतिके दोष

प्रसूतिके समय स्त्रियोंको विविध रोग होते हैं, उसका कारण मलिनता है, अतः इस स्थानकी पवित्रता करके और कुछ औषधियोंका उपयोग करके स्त्रियोंके प्रसूतिके कष्ट दूर करने चाहिये, इस महत्त्वपूर्ण विषयका वर्णन इस सूक्तमें कहा है। इसका ऋषि 'मातृ-नामा' है अर्थात् यह माता ही है। माताओंके अनुभव सूक्ष्मरीतिसे देखकर उनका संग्रह करके जो अनुभवज्ञान प्राप्त हो सकता है, वह इस सूक्तमें है। इस सूक्तका विषय इसी सूक्तके ९ वें मन्त्रमें कहा है—

यः स्त्रियं मृतवत्सां अवतोकां करोति।
अस्याः तं नाशय, कमलं अञ्जिवं (कुरु)। (मं. ९)

"जिस रोगके कारण स्त्रीके बच्चे मरते हैं, अथवा जिस दोषसे स्त्रीका गर्भ पतनको प्राप्त होता है, उस स्त्रीका वह दोष दूर करना चाहिये और उसके गर्भाशयको निर्दोष बनाना चाहिये।" यह इस सूक्तका साध्य है। स्त्रीका गर्भपात न होवे और बालबच्चे भी दीर्घायु हों। यह उपाय करना इस सूक्तका वांच्छित विषय है। यह विषय सब स्त्रीजातिका हित करनेवाला होनेके कारण बडा उपयोगी है। सब कुटुम्बी इससे लाभ उठा सकते हैं। इस सूक्तमें कहा है कि सूतिकागृहमें कुछ रोगबीज होते हैं अथवा बाहरसे घुसते हैं, उनका नाश करनेके लिये 'बज पिंग' नामक औषधि है, देखिये-

ये अम्नः जातान् मारयन्ति, सूतिकाः अनुशेरते।
स्त्रीभागान् पिङ्गः आजतु ॥ (मं. १९)

"जो रोगबीज जन्मे हुए बच्चोंको मारते हैं, वे सूतिका गृहमें रहते हैं, वेही स्त्रियोंके भागोंमें पहुंचते हैं। उनको दूर करनेके लिये पिंग नामक औषधि है।" इस पिंग औषधिका विचार हम आगे करेंगे, यहां इतना ही देखना है कि ये रोगबीज सूतिकागृहके मलोंके कारण उत्पन्न होते हैं। और इसके कारण गर्भस्राव होता है, गर्भपात होता है और बच्चे भी मर जाते हैं। प्रायः सूतिकागृहमें अज्ञानी लोग अन्धेरा रखते हैं, सूर्य प्रकाश वहां नहीं पहुंचता, अतः अन्धेरेके दोषसे ये रोगबीज वहां उत्पन्न होकर बढते जाते हैं, ये सूर्यप्रकाशमें नहीं रहते, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये-

ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि।
बजः तेषां हृदये अधि निविध्यताम् ॥ (मं. २४)

'जिस प्रकार बहु श्वशुरसे दूर भागती है, उसी प्रकार ये रोगबीज सूर्यप्रकाशसे दूर भागते हैं। उन रोगक्रिमियोंके हृदयोंपर बज औषधि बडा धक्का पहुंचाती है।' यह उपमा उत्तम रीतिसे विचार करने योग्य है। बहु अर्थात् स्नुषा श्वशुरके पास नहीं ठहरती, वह उसके सन्मुख भी खडी नहीं होती, श्वशुरके आते ही आडमें चली जाती है। उसी प्रकार ये रोगबीज सूर्यप्रकाशके सन्मुख खडे नहीं रह सकते, सूर्यप्रकाशमें जीवित भी नहीं रह सकते, जहां सूर्यप्रकाश पहुंचता है वहां ये नहीं रहते। अतः जहां नीरोगता करनेकी इच्छा हो, वहां सूर्यप्रकाश विपुल रखना चाहिये। यदि प्रसूतिगृहके रोगबीज नष्ट करनेकी इच्छा हो, तो वहां सूर्यप्रकाश पहुंचानेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

बज औषधि इनके हृदयोंपर प्रहार करती है ऐसा यहां कहा है, इससे इनके हृदय हैं यह बात सिद्ध होती है। अर्थात् ये रोगबीज हृदयवाले होनेसे कृमिरूप हैं, ये निर्जीव नहीं हैं, ये कृमि चूंकि अन्धेरेमें बढते हैं और सूर्यप्रकाशमें नाशको प्राप्त होते हैं, अतः इनसे बचनेका उपाय सूर्यप्रकाश ही है यह बात निश्चित है। परमेश्वरने सूर्यप्रकाश एक ऐसी औषधि दी है कि जिससे अनेक रोग दूर होते हैं और मनुष्य नीरोग और दीर्घायु हो सकता है। इसलिये कहा है—

अप्रजास्त्वं मार्तवत्सं रोदं अघं आवयं प्रातमुञ्च।
(मं. २६)

'संतान न होना, पैदा होनेके बाद बच्चेका मर जाना, उस कारण रोने पीटनेका संभव होना, पापाचरणमें प्रवृत्ति होना इत्यादि बातोंसे मनुष्यको मुक्त होना चाहिये।' अर्थात् मनुष्यको ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि घरमें संतति पैदा होवे, उत्पन्न हुए बच्चे न मरें, दीर्घकालतक जीवित रहें, मनुष्यपर कुटुंबियोंकी मृत्युके कारण रोने पीटनेका अवसर न आवे, सब कुटुंबी आनंदसे कालक्रमण करते रहें और किसीकी प्रवृत्ति पापकी ओर न होवे। यह साध्य करनेके लिये विपुल सूर्यप्रकाशमें रहनेकी अत्यंत आवश्यकता है। इसका कार्यकारणभाव यह है कि सूर्य प्रकाशसे नीरोगता होती है, रोगबीज दूर होते हैं, नीरोग होनेसे शरीर पुष्ट और वीर्यवान् होता है। स्त्रीपुरुषोंके शरीर वीर्यवान् और हृष्टपुष्ट होनेसे ऐसे दोनों पतिपत्नीयोंसे होनेवाला गर्भाधान उत्तम होता है, वह स्थिर होता है, संतान नीरोग, बलवान् और

सुदृढ होती है, दीर्घजीवी होती है, अर्थात् ऐसी संतानें होनेसे अपमृत्युके कारण होनेवाली रोनेपीटनेकी संभावना नहीं होती। प्रसूतिगृहका आरोग्य रखनेसे ऐसे अनेक लाभ होते हैं और प्रसूतिगृहका आरोग्य सूर्यप्रकाशसे स्थिर हो सकता है, अतः कहा है—

यः स्वपन्तीं जाग्रतीं दिप्सति (तं)
सूर्यः अनीनशत्॥ (मं. ८)

'जो रोगबीज सोती हुई या जागती हुई स्त्रीके शरीरमें जाकर उसको कष्ट देता है, उस रोगबीजका नाश सूर्य करता है।' सूर्यप्रकाशसे ये सब रोगबीज दूर होते हैं, रोगजन्तु भी सूर्यप्रकाशसे दूर हटते हैं, यह बात आजका चिकित्सा-शास्त्र भी कहता है। इसी सूर्यप्रकाशका महत्त्व निम्नलिखित मंत्रमें विशेष रीतिसे कहा है—

ये सूर्यं न तितिक्षन्ते तान् नाशयामसि। (मं. १२)

'जो सूर्यको नहीं सह सकते उन रोगकृमियोंका नाश हम करते हैं।' यहां कहा है कि ये रोगजन्तु सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते। अन्धकारमें ही ये उत्पन्न होते, बढते और रोगोत्पत्ति करते हैं। जो सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते, वे सूर्यप्रकाशसे ही नष्ट होते हैं। सूतिकागृहका आरोग्य इस प्रकार सूर्य प्रकाशसे सहजहीमें प्राप्त हो सकता है अतः कहा है—

यः गर्भं प्रतिमृशात् जातं वा मारयाति।
तं पिंगः हृदयाविधं कृणोतु। (मं. १८)

'जो रोगकृमि गर्भका नाश करता है, जन्मे हुए बच्चेका नाश करता है, उसका पिंगलवर्णका सूर्य (अथवा पीली औषधि) हृदयमें वेध करके नाश करे।' यहां 'पिंग' शब्दके दोनों अर्थ होने संभव हैं। सूर्य भी (पिंगल) पीत वर्ण होता है और वह वनस्पति भी वैसी ही पीली होती है। जो रोगकृमि पूर्वोक्त प्रकार प्रसूतिगृहमें अंधेरेमें और मलिन-तामें उत्पन्न होते हैं, वे इस प्रकार नाश करते हैं—

ये आमं मांसं खादन्ति, ये पौरुषेयं च क्रविः।
केशवाः गर्भान् खादन्ति तान् इतः नाशयामसि।
(मं. २३)

'ये रोगजन्तु शरीरका कच्चा ही मांस खाते हैं, येही गर्भोंको खाते हैं, अतः उनका नाश करना उचित है।' जब ये रोगक्रिमी शरीरमें घुसते हैं तब जहां वे जाते हैं और वहांका रक्त और मांस खाकर मनुष्यको क्षीण करते हैं और ये गर्भमें पहुंचकर गर्भको भी सुखा देते हैं, इसलिये सूर्यप्रकाशकी शरण जाना अत्यन्त योग्य है। अतः कहा है—

पिंग जायमानं रक्ष, पुमांसं स्त्रियं मा क्रन्।
आण्डादः गर्भान् मा दभन्,
इतः किमीदिनः बाधस्व॥ (मं. २६)

पिंगलवर्ण सूर्य (अथवा औषध) जन्मे हुए बालककी रक्षा करता है, स्त्री या पुरुषको रोनेका अवसर नहीं देता, गर्भोंको रोगकृमि दबा नहीं सकते, और ये जो भूखे क्रिमि हैं उनको सूर्यप्रकाश ही दूर हटा देता है।' ये सूर्यप्रकाशसे लाभ होते हैं। इस मन्त्रमें इन रोगक्रिमियोंका नाम 'किमी-दिन्' और 'आण्डाद' कहा है। किमीदिन्का अर्थ (किं इदानीं) अब क्या खायें, अब क्या खायें, ऐसा कहनेवाले ये कृमि होते हैं अर्थात् ये सदा भूखे ही रहते हैं। कभी इनकी भूख शान्त नहीं होती, इनको अनुकूल पदार्थ खानेके लिए मिलने पर वे बहुत संख्यामें बढते हैं और अधिक खानेकी इच्छा करते हैं। इसी प्रकार ये (आण्डाद) अण्डमें स्थित वीर्यको खाजाते हैं और मनुष्यको निर्वीर्य बना देते हैं, इसलिये इनका हमला होनेसे मनुष्य अकालमें मर जाता है, परन्तु यदि यह मनुष्य सूर्यप्रकाशसे नीरोग बननेका यत्न करेगा, तो इसकी अकालमृत्यु नहीं होगी।

ये रोगबीज प्रसूतिगृहमें स्त्रीके शरीरपर हमला करते हैं और उसके शरीरमें रोग उत्पन्न करते हैं। रोग उत्पन्न होने-के पश्चात् उसके निवारणका उपाय करनेकी अपेक्षा रोग न होनेका यत्न करना अधिक लाभकारी है, इसलिये कहा है—

जातायाः दुर्णामा अलिंशः वत्सपः मा गृधत्।
(मं. १)

'बालकके जन्मते ही दुर्णामा, अलिंश और वत्सप ये रोगबीज स्त्रीपर हमला करनेकी इच्छा न करें।' प्रसूति-गृहमें ये रोगक्रिमि होते हैं और स्त्रीपर हमला करते हैं। अतः ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि, ये कृमि प्रसूतिगृहमें उत्पन्न न हों और यदि उत्पन्न भी हो जाएं तो स्त्रीके शरीर-पर हमला न करें और असावधानीके कारण हमला कर भी दें तो भी रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ न हों। प्रसूतिगृहमें बज नामक औषधि रखनेसे अथवा सूर्यकिरण वहां पहुंचाने से यह बात सिद्ध हो सकती है। अतः कहा है—

बजं दुर्णामचातनं। (मं. ३)

'बज औषधी इस दुर्नाम नामक रोगबीजको दूर करने-वाली होती है।' इस वनस्पतिको प्रसूतिगृहमें रखनेसे वहां का आरोग्य स्थिर रह सकता है। सब कृमि रोग उत्पन्न

करते हैं ऐसी बात नहीं है, इन कृमियोंमें दो प्रकारके कृमि हैं, उनमेंसे एक अच्छे हैं और दूसरे बुरे, इस विषयमें निम्न-लिखित मंत्र देखने योग्य है

> दुर्णामा च सुनामा च उभौ संवृतं इच्छतः ।
> अरायान् अप हन्मः । सुनामा स्त्रैणं इच्छताम् ॥
> (मं. ४)

' दो प्रकारके ये कृमि हैं, एक (सुनामा) उत्तम नाम-वाला अर्थात् जो शरीरमें हितकारी है और दूसरा (दुः-नामा) दुष्ट नामवाला, जिससे शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं । ये दोनों शरीरपर आक्रमण करना चाहते हैं । इनमें जो (अ-रायान्) कृपण, अनुदार अथवा दुष्ट होते हैं उनका नाश हम करते हैं और जो उत्तम हैं वे स्त्रीके पास पहुंचें ।' अर्थात् उत्तम कृमि मनुष्यके लिये हितकारक हैं, परन्तु जो रोगजन्तु हैं वे ही घातक हैं, अतः ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि ये घातक रोगजन्तु यहां किसीको कष्ट न पहुंचा सकें। ये कृमि किस रूपके होते हैं, इसका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

> द्व्यास्यात् चतुरक्षात् पञ्चपदात् अनंगुरेः ।
> अभिसर्पतः परिवृतात् वृन्तात्परिपाहि ।
> (मं. २२)

' इन कृमियोंके दो मुख, चार आंखें और पांच पांव होते हैं । इनकी अंगुलियां नहीं होती। ये हमला करते हैं और संघशक्तिसे रहते हैं, इनसे बचना चाहिये । ' यह इन कृमियोंका वर्णन है, इसके साथ निम्नलिखित वर्णन और देखिये—

> येषां प्रपदानि पश्चात्, पार्ष्णी मुखानि च पुरः ।
> खलजाः शकधूमजाः उरुण्डाः
> मट्मटाः कुम्भमुष्काः अयाशवः
> अस्याः तान् प्रतिबोधेन नाशय । (मं. १५)

' इनके पांव पीछेकी ओर तथा एडी और मुख आगेकी ओर होता है । ' इन कृमियोंका वर्णन करनेवाले शब्द इस मंत्रमें ' खलजाः, शकधूमजाः, उरुण्डाः, मट्मटाः, कुम्भ-मुष्काः, अयाशवः ' ये हैं, इनमें ' शकधूमज ' शब्दका अर्थ ' गोबरके धुंवेसे उत्पन्न ' है, अन्य शब्दोंके अर्थ अभीतक विशेष विचार करने योग्य स्पष्ट नहीं हुए हैं । इस सूक्तमें ऐसे और भी बहुतसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट खुलता नहीं है । ये कृमि स्त्रियोंके शरीरोंमें रोग उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें कहा है—

> ये हस्ते शृंगाणि बिभ्रतः वध्वः यन्ति ।
> ये स्तम्बे ज्योतिः कुर्वते ।
> ये आ-पाके-स्थाः प्रहासिनः नाशयामसि ।
> (मं. १७)

" जो हाथोंमें अपनी सींगोंको धारण करते हैं और स्त्रीके पास पहुंचते हैं, जो चमकते हैं और पाकशालामें निवास करते हैं, उनका नाश करते हैं । " ऐसे कृमि स्त्रियोंके शरीरमें घुसते हैं और वहां विविध रोग उत्पन्न करते हैं, अतः इनका नाश करना योग्य है । इस वर्णनमें ' स्तंबमें ज्योति करनेका ' क्या अर्थ है इसका ज्ञान नहीं होता। इसकी भी खोज होनी चाहिये । इस सूक्तमें रोगजंतुओंके दो भेद कहे हैं, एक सूक्ष्म और दूसरे बडे । यहांतक सूक्ष्मकृमियोंका वर्णन हुआ अब बडे मच्छर जैसे कृमियोंका वर्णन देखिये—

मच्छरोंका गायन

> गर्दभनादिनः कुसूलाः कुक्षिलाः करुमाः स्त्रिमाः ।
> सायं शालाः परिनृत्यन्ति, तान् गन्धेन नाशय ॥
> (मं. १०)

" गधे जैसा शब्द करनेवाले, जिनके पास चुभानेके लिये सुई जैसे हथियार होते हैं, जिनका पेट बडा होता है, जो सायं-कालके समय घरके पास नाचते हैं, इनका गन्धसे नाश कर । यह वर्णन प्रायः मच्छरों अथवा मच्छर जैसे कीडोंका वर्णन है । वे शब्द करते हैं, सायंकालको इनका शब्द सुनाई देता है, इनके काटनेके डंक बडे तीक्ष्ण होते हैं । इनका नाश करनेके लिये उग्रगन्धवाले अथवा सुगन्धवाले पदार्थ जलाने चाहिये । घरमें धूप जलानेसे मच्छर नष्ट हो जाते हैं, यह आजका भी अनु-भव है। इसी प्रकार उग्रगन्धवाले पदार्थ भी जलानेसे इन कीडोंको हटाया जा सकता है । इन्हींका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें है—

मच्छरोंके शस्त्र

> कुकुन्धाः कुकूरमाः कृतीः दूर्शानि बिभ्रति ।
> ये घोषं कुर्वतः वने प्रनृत्यतः;
> तान् नाशयामसि । (मं. ११)

" (कृतीः) काटनेवाले (दूर्शानि) दंश करनेके साधन अपने पास धारण करते हैं । ये शब्द करते हैं और जङ्गलमें नाच करते हैं, ऐसे कृमियोंका हम नाश करते हैं । " यह वर्णन भी पूर्वके समानही मच्छरोंके मुखोंमें जो काटनेके साधन होते हैं, उनका नाम यहां ' दूर्श ' दिया है और काटनेके

कारण ही इनको 'कृती' अर्थात् काटनेवाला कहा है। ये ज्वरादिको बढाते हैं इसलिये उग्रगन्धवाले पदार्थ जलाकर इनका नाश करना उचित है। इस मन्त्रमें और पूर्व मन्त्रमें कई ऐसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं ज्ञात होता। ये शब्द खोजके योग्य हैं। तथा और देखिये—

मच्छरोंके स्थान

अरायान् वस्तवासिनः दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्
मककान् नाशयामसि ॥ (मं. १२)

"ये कृमि वस्त अर्थात् चर्म आदिपर रहते हैं, इनसे दुर्गन्ध आती है, इनके मुख लाल होते हैं, इन मशकोंका अर्थात् मच्छरोंका नाश करते हैं।" इस मन्त्रमें 'मकक' शब्द बहुत करके मच्छरोंका वाचक है। 'वस्त' शब्दके निश्चित अर्थकी भी खोज करनी आवश्यक है। इन कृमियों-को यहां 'अराय' कहा है। इस शब्दका अर्थ 'न देनेवाला' है। ये कृमि आरोग्यको नहीं देते, खूनको नहीं देते, आयु-ष्यको नहीं देते तथा शरीरकी शोभाको और बलको भी नहीं देते। क्योंकि इनसे अनेक रोग होते हैं और उस कारण उक्त बातोंका क्षय होता है। इन रोगकृमियोंके कुछ लक्षण निम्नलिखित शब्दोंद्वारा प्रकट होते हैं, अतः वे शब्द अब देखिये, द्वितीयमन्त्रमें निम्नलिखित रोगजन्तुओंके नाम हैं—

रोगक्रिमियोंके नाम

१ पलाल-अनुपलालौ— मांस जिनके लिए अनुकूल है, मांस रससे जो बढते हैं, मांस खाकर जिनकी वृद्धि होती है।

२ शर्कुः— हिंसक, जो नाश करते हैं।

३ कोकः— कामको बढाकर वीर्यनाश करनेवाले।

४ मलिम्लुच्— मलिनतासे बढनेवाले, मलिनतामें उत्पन्न होनेवाले।

५ पलीजकः— पलित रोगको उत्पन्न करनेवाले।

६ आश्रेषः— किसीके साथ रहनेवाले।

७ प्रमीलिन— सुस्ती लानेवाले।

इस मंत्रके अन्य शब्द 'वव्रिवासस्, ऋक्षग्रीव' ये खोज करने योग्य हैं, क्योंकि इनका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है। पंचम मंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

८ कृष्णः— काले रंगवाले। किंवा खींचनेवाले।

९ केशी— बालोंवाले अथवा तन्तुवाले।

१० अ-सुरः— प्राणघात करनेवाले।

११ तुण्डिकः— छोटे मुखवाले।

१२ अ-रायः— आरोग्यादि न देनेवाले।

इस पञ्चम मंत्रमें 'स्तंबज' शब्द है, इसका अर्थ सम-झमें नहीं आता है। अतः वह खोजकी अपेक्षा रखता है। षष्ठ मंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

१३ अनुजिघ्रः— सूंघनेसे शरीरमें प्रवेश करनेवाले, नासिका द्वारा शरीरमें प्रवेश करनेवाले, फेफडोंमें जो जाते हैं।

१४ प्रमृशन्— स्पर्श करनेवाले, स्पर्शसे प्राप्त होनेवाले, स्पर्शजन्य रोगके बीज।

१५ क्रव्यादः— मांस खानेवाले, शरीरका रक्त और मांस खानेवाले।

१६ रेरिह्— हिंसक, घातक, नाशक।

१७ श्वकिष्की— कुत्तेके समान पीडा करनेवाले।

इसी प्रकार अन्य मंत्रोंमें जो शब्द हैं, उनका भी यहां विचार करेंगे तो उनसे इन रोगक्रमियोंका ज्ञान हो सकता है।

इन सब रोगबीजोंको 'पिंग बज' दूर करता है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखने योग्य है—

पिंग बज

परिसृष्टं धारयतु, हितं मा अवपादि।
उग्रौ भेषजौ गर्भं रक्षताम् ॥ (मं. २०)
पवीनसात् तंगल्वात् छायकात्
नग्नकात् क्रिमीदिनः।
प्रजायै पत्ये पिंगः परिपातु ॥ (मं. २१)

'गर्भाशयमें आधान किया हुआ गर्भ उत्तम रीतिसे धारण किया जावे, गर्भाशयमें स्थित गर्भ पतनको न प्राप्त हो, यह दोनों तीव्र औषधियां उसकी रक्षा करें। इन रोग-बीजोंसे उत्तम संतान होनेके लिये पिंग वनस्पतिसे गर्भा-शयकी रक्षा होवे।'

इक्कीसवें मंत्रके रोगबीजवाचक शब्द बडे दुर्बोध हैं तथा इस सूक्तमें कहे 'पिंग बज' वनस्पतिका भी कुछ पता नहीं चलता कि यह यह वनस्पति कौनसी है। वैद्यक ग्रंथोंमें इसका नाम नहीं है। अतः इसकी खोज होनी कठिन है। श्री० सायणाचार्यजीने अपने अथर्वभाष्यमें इस सूक्तपर भाष्य करते हुए इसका अर्थ 'श्वेतसर्षप' किया है, अर्थात् 'सफेद सरसों', संभव है, यही 'पिंग बज' का अर्थ हो, इसके गुण वैद्यकग्रंथोंमें निम्नलिखित प्रकार दिये हैं—

पिंगवजके गुण

तिक्तः तीक्ष्णोष्णः वातकफघ्नः उष्णः कृमिकुष्ठघ्नः।
सितासितभेदेन द्विधा। (राज.)
कटूष्णो वातशूलनुत्। गुल्मकण्डूकुष्ठव्रणापहः।
वातरक्तग्रहापहः। त्वग्दोषशमनो विषभूतव्रणापहः।
सर्षपतैलगुणाः- वातकफविकारघ्नं कृमिकुष्ठघ्नं चक्षुष्यम्।

' सरसों तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, वात और कफको हटानेवाली, कृमि और कुष्ठरोगको दूर करनेवाली है। श्वेत और काली ऐसे इसके दो भेद हैं। यह कटु, उष्ण, वातशूलका नाश करनेवाली, गुल्म, कण्डु, कुष्ठ, व्रतका नाश करनेवाली हैं। वात रक्तदोषको दूर करनेवाली, त्वचाके दोषको दूर करनेवाली, विषसे उत्पन्न व्रणको हटानेवाली है। सरसोंके तैलके गुण ये हैं- वात और कफके विकारको दूर करता है, कृमि और कुष्ठका नाश करता है और आंखके लिये हितकर है।'

इस वर्णनमें सरसोंका गुण कृमिनाशक, कुष्ठनाशक दिया है, जो पूर्वोक्त सूक्तके उपदेशके साथ संगत है, अतः बहुत संभव है कि यही अर्थ ' पिंग वज ' का हो। इसकी विशेष खोज अत्यंत आवश्यक है। वस्तुतः यह सब सूक्त ही विशेष खोज करने योग्य है, क्योंकि इसके कई शब्द और कई वाक्य दुर्बोध हैं और आधुनिक कोशोंसे इनका अर्थ करनेके लिये कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है।

पुंसवन

कां. ६, सू. ११

(ऋषिः- प्रजापतिः। देवता- रेतः, मन्त्रोक्तदेवता।)

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥
पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते । तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् । स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह ॥ ३ ॥

अर्थ- (अश्व-त्थः) अश्वत्थ वृक्ष (शमीं आरूढः) शमी वृक्षपर जहां चढा होता है (तत्र पुंसवनं कृतं) वहां पुंसवन किया जाता है। उससे (पुत्रस्य वेदनं) पुत्र-प्राप्ति निश्चित है। (तत् स्त्रीषु आभरामसि) वह स्त्रियोंमें हम भर देते हैं ॥ १ ॥

(पुंसि वै रेतः भवति) पुरुषमें निश्चयसे वीर्य होता है (तत् स्त्रियां अनुषिच्यते) वह स्त्रियोंमें सींचा जाता है, (तत् वै पुत्रस्य वेदनं) वह पुत्र प्राप्तिका साधन है, (तत् प्रजापतिः अब्रवीत्) यह प्रजापतिने कहा है ॥ २ ॥

(प्रजापतिः अनुमतिः) प्रजापालक पिता अनुकूल मति धारण करे और (सिनी-वाली अचीक्लृपत्) गर्भवती स्त्री समर्थ होवे, ऐसा होनेपर (पुमांसं उ इह दधत्) पुत्र गर्भ ही यहां धारण होता है, (अन्यत्र स्त्रैषूयं दधत्) अन्य परिस्थितिमें स्त्रीगर्भ धारण होता है ॥ ३ ॥

पुंसवन

निश्चयसे पुत्रकी उत्पत्ति

निश्चयसे पुत्रकी उत्पत्ति होनेके लिये एक उपाय इस सूक्तमें कहा है, उस औषधि प्रयोगका उपाय यह है-

शमीं अश्वत्थ आरूढः तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं, तत् स्त्रीष्वाभरामसि ॥ (मं. १)

' (१) शमी वृक्षपर उगा और बढा हुआ पीपलका वृक्ष होता है, वह पीपल पुत्ररूप गर्भकी धारणा करानेवाला होता है। अर्थात् इसकी औषध बनाकर यदि स्त्री सेवन करेगी तो वह स्त्री पुत्र उत्पन्न करनेवाली बनेगी। (२) यह पीपल निश्चयसे पुत्र उत्पन्न करनेवाला है, (३) इसके सेवनसे

निश्चयसे पुत्र उत्पन्न होता है, (४) पुत्र उत्पत्तिके लिये इस पीपलके औषधको स्त्रियोंको देना चाहिये।

शमीके वृक्षपर उगे पीपल वृक्षके पञ्चाङ्गका चूर्ण करके मधुके साथ सेवन किया जावे अथवा अन्य दूध आदिद्वारा सेवन किया जावे। इसके सेवनसे स्त्रीका गर्भाशय पुरुष गर्भ बनानेमें समर्थ होता है। जिस स्त्रीकी लडकियां ही होती हों, उस स्त्रीको यह औषध देनेसे उसके गर्भाशयमें परिवर्तन होकर, पुरुष गर्भ उत्पन्न करनेकी शक्ति उसमें आसकती है।

पुंसवन और स्त्रैषूय

पुत्र उत्पन्न होनेका 'पुंसवन' और लडकी उत्पन्न होनेका नाम 'स्त्रैषूय' है। ये दोनों नाम इस सूक्तमें प्रयुक्त हुए हैं। जो पुरुष संतान निश्चयसे चाहते हैं वे इस औषधीका उपयोग करें। इस मंत्रके श्लेष अर्थसे और भी एक आशय व्यक्त होता है, वह देखने योग्य है—

१ अश्व+त्थः— अश्वका अर्थ वाजी है। वाजीकरणका अर्थ पुरुषको पुरुषशक्तिसे युक्त करना है। अश्व शब्दका अर्थ यहां घोडेके समान पुरुषधर्मसे युक्त और समर्थ पुरुष। (अश्व) घोडेके समान जो (त्थ, स्थः) रहता है ऐसा बलवान् पुरुष।

२ शमी— मनकी वृत्तियां उछलने न देनेवाली स्त्री, अर्थात् धर्मानुकूल गृहस्थधर्म नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री।

ऐसे स्त्रीपुरुषोंके संबंधसे निश्चित पुरुष संतान होती है। इस स्त्रीपुरुष-संबंधमें वीर्यका बल अधिक होने और रजकी न्यूनता रखनेका विधान किया है। इसी कारण निश्चयसे पुत्र संतान होती है। अर्थात् पुरुष अधिक बलशाली हुआ तो पुरुषसंतान और स्त्री बलशालिनी हुई, तो स्त्रीसंतान होती है। यहां बलका अर्थ पुरुषवीर्य और स्त्रीरजका भाव लेना योग्य है।

द्वितीय मंत्र गर्भाधान परक है और स्पष्ट है। तृतीय मंत्रमें फिर श्लेषार्थसे कुछ विशेष आशय कहा है। वह अब देखिये—

१ प्रजापतिः— अपने संतानोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेमें समर्थ गृहस्थी पुरुष।

२ अनुमतिः— परस्पर अनुकूल प्रेमपूर्ण मन रखनेवाले स्त्री या पुरुष।

३ सिनीवाली— सिनका अर्थ है चन्द्रकला, उसका बल बढानेवाली स्त्री सिनीवाली है। जिस प्रकार शुक्लपक्षकी रात्रिमें चन्द्रकी कलायें बढती हैं, उसी प्रकार जिस स्त्रीके गर्भाशयमें गर्भकी कलाएं बढती हैं। उसे सिनीवाली कहते हैं।

ये शब्द बडे विचारणीय हैं। सन्तान उत्पन्न वही करे कि जो उनके पालन पोषणका भार सहन करनेमें समर्थ हो। सन्तानोत्पत्ति करना है तो स्त्रीपुरुष परस्पर अनुकूल संमति रखें, तभी समानगुणवाला पुत्र होगा। उनमें विरोध होगा तो संतान भी विरुद्ध गुणधर्मवाली होगी। गर्भवती स्त्री समझे की मेरे अन्दर चंद्रमा जैसा अपनी कलाओंसे बढनेवाला गर्भ है और उसकी सुवृद्धिका प्रबंध करना मेरा कर्तव्य है। इस प्रकार व्यवस्था होनेसे पुरुष सन्तान होती है। इसके विपरीत अवस्था होनेसे स्त्री सन्तान होती है अथवा नपुंसक सन्तान होगी।

अर्थात् पुरुष वीर्यकी न्यूनता, स्त्री रजकी अधिकता, पुरुष और स्त्रीके मनोवृत्तियोंमें विरोध इत्यादि कारणसे स्त्री सन्तान और रजवीर्यकी समानतासे नपुंसक सन्तान होती है।

सुख-प्रसूति सूक्त

कां. १, सू. ११

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- पूषादयो, नाना देवताः।)

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥

अर्थ— हे (पूषन्) पोषक ईश्वर! (ते वषट्) तेरे लिये हम स्वयंको अर्पित करते हैं। (अस्मिन् सूतौ) इस प्रसूतिके कार्यमें (अर्यमा होता वेधाः) आर्य मनवाला दाता विधाता ईश्वर सहायता (कृणोतु) करे। (ऋतप्रजाता) नियमपूर्वक बालकोंको जन्म देनेवाली (नारी) स्त्री (सिस्रतां) दक्षतासे रहे। तथा अपने (पर्वाणि) अंगोंको (सूतवै उ) सुखप्रसूतिके लिये (विजिहतां) ढीले करे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश! तेरे लिये हम स्वयंको अर्पित करते हैं। इस प्रसूतिके समय सब जगत्का निर्माता तू ही हमारा सहायक बन। यह स्त्री भी दक्षतासे रहे और इस समय अपने अंगोंको ढीला करे ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥ २ ॥
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि । श्रथया सूषणे त्वमव त्वं विष्कले सृज ॥ ३ ॥
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥ ४ ॥
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥ ५ ॥
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (दिवः) आकाशकी (उत) तथा (भूम्याः) भूमिकी (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओंमें रहनेवाले (देवाः) देवोंने (गर्भं समैरयन्) इस गर्भको बनाया, इसलिये वे ही (सूतवे) उसकी सुखप्रसूतिके लिये (तं वि ऊर्णुवन्तु) उसको प्रकट करें, उसको बाहर निकालें ॥ २ ॥

(सूषा) उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली माता (व्यूर्णोतु) अपने अंगोंको खुला करें। हम (योनिं) योनिको (विहापयामसि) खोलते हैं। हे (सूषणे) प्रसूत होनेवाली स्त्री ! (त्वं) तू भी (श्रथय) अंदरसे प्रेरणा कर और हे (विष्कले) वीर स्त्री ! (त्वं) तू (अवसृज) बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

(न इव मांसे) न तो मांसमें, (न पीवसि) न चर्बीमें और (न इव मज्जसु) न तो मज्जामें वह (आहतं) लिपटा हुआ है। (पृश्नि शेवलं) नरम सेवारके समान (जरायु) जेली (शुने अत्तवे) कुत्तेके खानेके लिये (अवैतु) नीचे आवे, (जरायु) जेली (अवपद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ४ ॥

(ते मेहनं) तेरे गर्भके मार्गको, (योनिं) योनिको तथा (गवीनिके) दोनों नाडियोंको (वि वि वि भिनद्मि) विशेष रीतिसे खुला करता हूं। (मातरं पुत्रं च) माता और पुत्रको (वि) अलग करता हूँ तथा (कुमारं जरायुणा वि) बच्चेको जेलीसे अलग करता हूं। (जरायु) जेली (अव पद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ५ ॥

जैसे वायु, जैसे मन और जैसे पक्षी (पतन्ति) चलते हैं, (एव) इसी प्रकार हे (दशमास्य) दश महिनेवाले गर्भ ! तू (जरायुणा साकं) जेलीके साथ (पत) नीचे आ तथा (जरायु अवपद्यताम्) जेली नीचे गिर जावे ॥ ६ ॥

भावार्थ— आकाश और भूमिकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्यादि सम्पूर्ण देवोंने इस गर्भको बनाया है और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसको सुखपूर्वक गर्भस्थानसे बाहर लावें ॥ २ ॥

स्त्री अब अपने अंग खुले करें, सहाय करनेवाली धाई योनिको खोले। हे स्त्री ! तू भी मनसे अंदरसे प्रेरणा कर और सुखसे बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

यह गर्भ मांस, चर्बी या मज्जामें चिपका नहीं होता। वह पानीमें पत्थरोंपर होनेवाले नरम सेवारके समान अति कोमल थैलीमें लिपटा हुआ होता है, वह सब थैलीकी थैली एकदम बाहर आवे और वह नालके साथ जेली कुत्तोंको खानेके लिये दी जावे ॥ ४ ॥

योनि, गर्भस्थान और पिछली नाडियोंको ढीला किया जावे, प्रसूति होते ही मातासे बच्चा अलग किया जावे और बच्चेसे जेली नाल समेत अलग की जावे। नाल समेत सब जेली पूर्णतासे बाहर निकल आवे ॥ ५ ॥

जिस प्रकार मन वेगसे विषयोंमें गिरता है, जैसे वायु और पक्षी वेगसे आकाशमें चलते हैं उसी प्रकार दसवें महिनेमें गर्भ जेलीके साथ गर्भस्थानसे बाहर आवे और जेली आदि सब नीचे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें उसका थोडा भी भाग अवशिष्ट न रहे ॥ ६ ॥

सुख--प्रसूति--सूक्त

प्रसूति प्रकरण

इस सूक्तसे नया प्रकरण प्रारंभ हुआ है। यह प्रकरण विशेषतः स्त्रियोंके लिये और सामान्यतः सबके लिये विशेष लाभकारी है। स्त्रियोंको प्रसूतिके समय जो कष्ट सहने पडते हैं उनका दुःख स्त्रियां ही जानती हैं। प्रसूतिके समय न्यून कष्ट होना प्रयत्नसे साध्य है। गर्भधारणासे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भधारणासे भी पूर्व समयमें भी जो नियम पालन करने योग्य होते हैं, उनका योग्य रीतिसे पालन करनेसे प्रसूतिके बहुतसे कष्ट दूर होने संभव हैं। इस विषयमें आगे बहुत उपदेश आनेवाला है। यहां इस सूक्तमें जितना विषय आया है, उसको अब यहां देखिये—

ईशभक्ति

परमेश्वरकी भक्ति ही मनुष्यको दुःखोंसे पार कर सकती है। गृहस्थी स्त्रीपुरुष यदि परमेश्वरके उत्तम भक्त होंगे तो उस परिवारकी स्त्रियोंको प्रसूतिके कष्ट न होंगे; यह बतानेके लिये इस सूक्तके प्रथम मंत्रके पूर्वार्धमें ही सबसे पहिले ईश्वरकी मानसपूजाका वर्णन किया है।

'वषट्' शब्द 'स्वाहा' अर्थमें अर्थात् 'आत्मसमर्पण' के अर्थमें प्रयुक्त होता है। (हे पूषन्! ते वषट्) हे ईश्वर! तेरे लिये हम अपने आपको समर्पित कर रहे हैं। तू ही (अर्य-मा) श्रेष्ठ सज्जनोंका मान करनेवाला अर्थात् हितकर्ता है, तू ही (वेधाः) सब जगत्का रचयिता और निर्माता है और तू ही (होता) सब सुखोंका दाता है। इसलिये हम तेरे आश्रयसे रहते हैं और तेरे लिये ही पूर्णतया समर्पित होते हैं।

यहां पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके गुण अनुसंधानसे देखने योग्य हैं। 'सब सूर्यादि देवताओंको शक्ति देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासन ही सर्वोपरि है।' इत्यादि भाव जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहां देखिये। 'सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा सहायकारी है, और मैं उसकी गोदमें हूं' इत्यादि भक्तिके भाव जिसके हृदयमें अकृत्रिम प्रेमके साथ रहते हैं, वह मनुष्य विशेष शक्तिसे और आरोग्यसे युक्त होता है और प्रायः ऐसा मनुष्य सदा आनंदमें रहता है।

काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्ति ही एक दिव्य औषधि है। कामविकारका नियमन हुआ तो स्त्रियोंके प्रसूतिके दुःख सौमें नौव्वे कम हो जाएगें, क्योंकि कामकी अति होनेसे ही स्त्रियां अशक्त बनती हैं और अशक्तताके कारण प्रसूतिके कष्ट अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पश्चात्के क्षयादि रोग भी कष्ट देते हैं। इसलिये कामभोगका नियमन परमेश्वरकी भक्तिसे करनेका उपदेश हरएक स्त्रीपुरुषको यहां अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये।

देवोंका गर्भमें विकास

सूर्यादि देवता अपना-अपना अंश गर्भमें रखते हैं, सब देवताओंका अंशावतार गर्भमें होनेके पश्चात् आत्मा उसमें आता है। इत्यादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है। [इस विषयमें स्वाध्यायमंडल द्वारा प्रकाशित 'ब्रह्मचर्य' पुस्तकमें 'देवोंका अंशावतार' शीर्षक विस्तृत लेख अवश्य पढिये। वहां विविध वेदमंत्रोंद्वारा यह विषय स्पष्ट कर दिया गया है।] तात्पर्य, गर्भमें अंशरूपसे अनेक देवता रहते हैं और उनका संबंध बाह्य देवताओंके साथ है। भूमि और आकाशकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सब देवता गर्भमें अंशरूपसे समा गए हैं, मानो उनका संमेलन (समैरयन्) ही गर्भमें हुआ है और उनका अधिष्ठाता आत्मा भी उसी गर्भमें है। यह दृढविश्वास गर्भ धारण करनेवाली माताका होना चाहिये। अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने केवल कामोपभोगका ही फल नहीं है, अपितु उसमें विशेष महत्त्वपूर्ण आत्मशक्तिका और दैवीशक्तिका सम्बन्ध है। ऐसा भाव गर्भवती स्त्रीमें स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भका पोषण भी उत्तम होता है। गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आह्वान किया जाता है। गर्भाधान काम-विकारके पोषणके लिये नहीं है अपितु उच्च शक्तियोंकी धारणाके लिये ही है। अस्तु। गर्भिणी स्त्री अपने गर्भके विषयमें इतना उच्च भाव मनमें धारण करे और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें इकट्ठे हुए हैं वे ही देवता गर्भका पोषण और सुख-प्रसूतिमें अवश्य सहायता देंगे। अर्थात् इस प्रकार देवता-ओंकी सहायता और परमात्माका आधार मुझे है इसलिये मुझे कोई कष्ट नहीं होगा, यह दृढ विश्वास उसमें होना चाहिए।

गर्भवती स्त्री

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर दृढतासे धारण करे। अब गर्भवती स्त्री अथवा गृहस्थाश्रममें रहनेवाली स्त्री निम्न बातोंका विचार करें—

१ नारी— जो धर्मनीतिसे (नृणाति) चलती है अर्थात् धर्म नियमोंसे अपना आचरण करती है, तथा (नर) पुरुषके साथ रहती है, वह नारी कहलाती है। अर्थात् विशेष गृहस्थ-

धर्मके नियमोंका पालन करनेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है। (मं. १)

२ ऋत+प्रजाता- (ऋत) सत्यनियमानुकूल (प्रजाता) प्रजनन कर्मसे युक्त। अर्थात् गर्भ-धारण, गर्भ-पोषण और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके सत्य धर्मनियमोंके अनुकूल होते हैं। ऋतुगामी होना, गर्भ धारणके पश्चात् तीन वर्षके उपरान्त अथवा बालक दूध पीना छोड दे तत्पश्चात् ऋतु-गामी होना इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुखसे प्रसूत होती है। (मं. १)

३ सूषा, सूषणा- जिस स्त्रीको प्रसूतिके कष्ट नहीं होते, अर्थात् जो सुखसे प्रसूत होती है। स्त्रियोंको योग्य नियमोंके पालन द्वारा यह गुण अपनेमें लाना चाहिये। (मं. ३)

४ विष्कला- वीर स्त्री अर्थात् धैर्यवती स्त्री। स्त्रियोंको अपने अंदर धैर्य बढाना आवश्यक है। कष्टोंसे घबराना नहीं चाहिये। धैर्यसे उनको सहना चाहिये। (मं. ३)

गर्भवती स्त्रियोंको इन शब्दों द्वारा प्राप्त होनेवाला बोध अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि सुखप्रसूतिके लिये इन गुणोंकी आवश्यकता है।

गर्भ

इस सूक्तमें गर्भका नाम " दश-मास्य " आया है। इसका अर्थ " दस मासकी आयुवाला " ऐसा है। यह शब्द परिपूर्ण गर्भका समय बता रहा है। दसवें महिनेमें प्रसूतिका ठीक समय है। दसवें महिनेसे पूर्व जो प्रसूति होती है, वह गर्भकी अपक्व अवस्थामें होनेके कारण माताके कष्ट बढाती है। योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपात और गर्भस्राव ये सब माताके कष्ट बढानेवाले हैं और ये सब दुःख गृहस्था-श्रमी स्त्रीपुरुषोंके नियमरहित बर्तावसे ही होते हैं। जो गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुष योग्य नियमोंका पालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंकी सुखसे प्रसूति होती है।

सुख-प्रसूतिके लिये आदेश

१ स्त्री परमेश्वरकी भक्ति करे। (मं. १)

२ अपने गर्भमें देवताओंका अंशावतार है ऐसे भाव मनमें धारण करे। (मं. २)

३ (सिस्रतां) दक्षतासे अपना व्यवहार करे। (मं. १)

४ प्रसूतिके समय (पर्वाणि विजिहतां) अपने अङ्गोंको ढीला करे। (मं. १)

५ (सूषा व्यूर्णोतु) सुखप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने अङ्गोंको ढीला अथवा खुला करे अर्थात् सख्त न बनावे। (मं. ३)

६ (सूषणे ! त्वं श्रथय) सुख-प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मनकी इच्छा-शक्तिसे भी अंदरसे प्रेरणा करे तथा मनसे प्रसूतिके अङ्गोंको प्रेरित करे। यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्रीको ही अंदरसे करनी चाहिये। (मं. ३)

धाईकी सहायता

१ प्रसूतिके समय धाईकी सहायता आवश्यक होती है। यह धाई भी प्रसूत होनेवाली स्त्रीको उक्त सूचनाएं देती रहे और धीरज देती रहे। " परमेश्वर तेरा सहायक है और सब देव तेरे गर्भमें हैं अतः उनकी भी सहायता तुझे मिलेगी। " इत्यादि वाक्योंसे उसका धीरज बढावे।

२ आवश्यकता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे खुला करे। (मं. ३)

३ जेलीके अंदर गर्भ होता है। गर्भके साथ जेली नाल आदि सब बाहर आजाय और कोई उसका पदार्थ माताके गर्भाशयमें न रह जाय इस विषयमें धाई दक्षतासे अपना कार्य करे। उस पदार्थके अंदर रहनेसे बहुतही दुःखका होना संभव है। (मंत्र ४)

४ प्रसूतिके समय गर्भमार्ग, योनि और पिछले अवयव खुले करने चाहिये। उनको यथायोग्य रीतिसे ढीला करें, ताकि प्रसूति सुखसे होवे। (मंत्र ५)

५ प्रसूति होते ही माताके पाससे पुत्रको अलग करके उस-परके जेलीका वेष्टन हटाकर जो अवश्य कार्य करना हो वह सब योग्य रीतिसे करे। (मंत्र ५)

सूचना

यह विषय शारीरशास्त्रका है, केवल पांडित्यका नहीं है। इस सूक्तके शब्दोंका अर्थ भी शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकरणके अनुकूल ही समझना उचित है। इसलिये जो वैद्य या डाक्टर हैं, जिन्होंने सुख-प्रसूतिशास्त्रका विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्रके ज्ञानके साथ अच्छा अनुभव भी है, उनको इस सूक्तका अधिक विचार करना चाहिये। वे ही इस सूक्तके " सिस्रतां विजिहतां, व्यूर्णोतु " आदि शब्दों-को ठीक प्रकार समझते हैं और वे ही इस सूक्तकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं।

रक्तस्राव बन्द करना

कां. १, सू. १७

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- योषितः धमन्यश्च ।)

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः । अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे । कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही ॥ २ ॥
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् । अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥
परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत् । तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (इव) जिस प्रकार (अ-भ्रातरः) विना भाईके (हत-वर्चसः) निस्तेज बनी (जामयः) बहिनें ठहर जाती हैं उसी प्रकार (अमूः याः) यह जो (लोहित-वाससः) रक्त-लाल कपडे पहनी हुई (योषितः) स्त्रियां हैं अर्थात् लाल रंगका खून ले जानेवाली (हिराः) धमनियां शरीरमें हैं वे (तिष्ठन्तु) ठहर जांय अर्थात् चलना बंद करें ॥ १ ॥

(अवरे तिष्ठ) हे नीचेकी नाडी ! तू रुक । (परे तिष्ठ) हे ऊपरवाली नाडी ! तू भी रुक (उत मध्यमे) और बीचवाली (त्वं तिष्ठ) तू भी रुक जा। (कनिष्ठिका च तिष्ठति) छोटी नाडी भी रुकती है तथा (धमनिः इत् तिष्ठात्) बडी नाडी भी रुक जावे ॥ २ ॥

(धमनीनां शतस्य) सैकडों धमनियोंके और (हिराणां सहस्रस्य) हजारों नाडियोंके बीचमें (इमाः मध्यमाः अस्थुः) ये मध्यम नाडियां रुक गई हैं। (साकं) साथ साथ (अंताः) अंत भाग भी (अरंसत) ठीक हो गए हैं ॥ ३ ॥

(बृहती धनूः) बडे धनुष्यने (वः परि अक्रमीत्) तुझपर हमला किया है, अतः (सिकतावतीः तिष्ठत) रेतवाली अथवा शर्करावाली बनकर ठहर जा, जिससे (कं) सुख (सु इलयत) प्राप्त करेगी । ॥ ४ ॥

भावार्थ— शरीरमें लाल रंगका रक्त शरीरभरमें पहुंचानेवाली धमनियां हैं। जब कहीं घाव लग जावे तब उनकी गति रोक देनी चाहिये, जिस प्रकार दुर्भाग्यको प्राप्त हुई भाई रहित बहिनोंकी गति रुक जाती है ॥ १ ॥

नीचेवाली, ऊपरवाली तथा बीचवाली छोटी और बडी सब नाडियोंको बंद कर देना चाहिये ॥ २ ॥

सैंकडों और हजारों नाडियोंमेंसे आवश्यक नाडियां ही बंद की जावें अर्थात् उनके फटे हुए अंतिम भाग ठीक किये जावें ॥ ३ ॥

बडे मनुष्यके बडे बाणोंसे धमनियोंपर हमला होनेके कारण नाडियां फट गई हैं, उनका शर्कराके साथ संबंध करनेसे शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

रक्तस्राव बंद करना

घाव और रक्तस्राव

शरीर शस्त्रादिसे घाव होनेपर घावकेऊपरकी और नीचेकी नाडियोंको बांध देनेसे रक्तका स्राव बंद हो जाता है। घाव देखकर ही निश्चय करना चाहिये, कि कौनसे भागपर बंद लगाना चाहिये। यदि रक्तस्राव इस प्रकार बंद किया जाय तो रोगीको शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्तके बहुत स्राव होनेके कारण मनुष्य मर भी सकता है। इसलिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये।

" सिकतावती " अर्थात् रेतवाली अथवा शर्करावाली धमनी करनेसे रक्तस्राव बंद होता है। बारीक मिश्रीका बारीक चूर्ण लगानेसे स्राव बंद हो सकता है, यह कथन विचार करने योग्य है।

दुर्भाग्यकी स्त्री

(हत-वर्चसः जामयः) जिनका तेज नष्ट हुआ है है ऐसी स्त्रियां, दुर्भाग्यको प्राप्त हुई स्त्रियां अर्थात् पति मरनेके कारण जिनकी भाग्यहीन अवस्था हुई है ऐसी स्त्रियां पिता, माता अथवा भाईके घर जाकर रहें, किसी अन्य स्थानपर न जावें, यह उपदेश पूर्व आये चतुर्दश सूक्त (कां. १, सू. १४) में कहा है। परंतु यदि वही स्त्रियां (अ-भ्रातरः) भ्रातासे हीन हों अर्थात् उनके भाई न हो तो उनकी गति रुक जाती है, अर्थात् ऐसी स्त्रियां कहीं भी जा नहीं सकती। जिस प्रकार पतिके जीवित रहनेपर स्त्रियां बडे बडे समारंभोंमें और उत्सवोंमें जा सकती हैं, उस प्रकार पति मर जानेके पश्चात् वे जा नहीं सकती अर्थात् उनकी गति रुक जाती है। पहले उनकी गति सर्वत्र होती थी, परंतु दुर्भाग्य-वश होनेके पश्चात् उनका भ्रमण नहीं हो सकता।

यहां स्त्रीविषयक एक वैदिक मर्यादाका पता लगता है, कि पति मरनेके पश्चात् स्त्री उस प्रकार नहीं घूम सकती कि जैसी कि पतिके होनेके समय घूम सकती है। घरमें रहना, उत्सवोंके आनंद प्रसंगोंमें न जाना, मंगलोत्सवोंमें भाग न लेना इत्यादि मृतपति स्त्रीके व्यवहारकी रीति यहां प्रतीत होती है।

मृतपतिकी स्त्री भाईके होनेपर भाईके घर जा सकती है, भाईके न रहनेपर किंवा पिता माताके न रहनेपर उनको दुःखमें ही रहना होता है। इस समय वह दुर्भाग्यवती स्त्री परमेश्वर भक्तिसे अपना समय गुजारे और परोपकारका कार्य करे।

विधवाके वस्त्र

हतवर्चसः जामयः लोहितवाससः योषितः।

ये शब्द विधवा स्त्रीके कपडोंका लाल रंग होना बता रहे हैं। " निस्तेज दुर्भाग्यमय बहिनें लाल वस्त्र पहननेवाली स्त्रियाँ " ये शब्द दुर्भाग्यमय स्त्रियोंके लाल रंगके कपडे होनेकी सूचना दे रहे हैं। दक्षिण भारतमें इस समय भी यह वैदिक प्रथा जारी है, इसलिये विधवा स्त्रियां यहां केवल लाल रंगके कपडे पहनती है। पतियुक्त स्त्रियां केवल लाल रंगका कपडा नहीं पहनती, परंतु अन्य रंगोंकी लकीरोंसे युक्त कपडे अर्थात् लालके साथ अन्यान्य रंग मिले जुले हों तो वैसे सब रंगके कपडे पहनती हैं। केवल श्वेत वस्त्र भी विधवा स्त्रियां पहनती हैं, यह श्वेत वस्त्रका रिवाज संपूर्ण भारतवर्षमें एक जैसा ही है।

रक्तस्राव बन्द करनेकी औषधि

कां. ६, सू. ४४

(ऋषिः- विश्वामित्रः। देवता- वनस्पतिः।)

अस्थाद् द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत्। अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद्रोगो अयं तव ॥ १ ॥
शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च। श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥ २ ॥
रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः। विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ॥ ३ ॥

अर्थ— (द्यौः अस्थात्) द्युलोक स्थिर है, (पृथिवी अस्थात्) यह सब जगत् स्थिर है, (ऊर्ध्व-स्वप्नाः वृक्षाः अस्थुः) खडे खडे सोनेवाले वृक्ष भी स्थिर हैं। उसी प्रकार (अयं तव रोगः तिष्ठात्) यह तेरा रोग रुक जावे ॥ १ ॥

(ते या शतं भेषजानि) तेरी जो सौ औषधियां और (सहस्रं संगतानि च) हजारों उनके मेल हैं उनमें यह (श्रेष्ठं आस्रावभेषजं) सबसे श्रेष्ठ रक्तस्रावकी औषध है, यह (वसिष्ठं रोगनाशनं) सबको बसानेवाली और रोगका नाश करनेवाली है ॥ २ ॥

(रुद्रस्य=रुत्+रस्य=मूत्रं) शब्द करनेवाले मेघका मूत्र अर्थात् वृष्टीरूपी जल (अमृतस्य नाभिः असि) अमृत रसका केन्द्र है। तथा (विषाणका नाम वा असि) यह विषाणका औषधी है जो (वातीकृतनाशनी) वात रोगको दूर करनेवाली है और (पितॄणां मूलात् उत्थिता) पितरोंके कारणसे उत्पन्न होनेवाले आनुवंशिक रोगको उखाडनेवाली है ॥ ३ ॥

रक्तस्राव और वातरोग

जिस प्रकार पृथ्वी और आकाश यथास्थान स्थिर हैं, जिस प्रकार वृक्ष स्थिर हैं, उसी प्रकार मनुष्यके रोग दूर जा कर ठहरें अर्थात् हमारे पास न आवें।

वैद्यशास्त्रमें सैंकडों औषधियां हैं और हजारों प्रकारके उनके अनुपान हैं। इन सबमें रक्तस्रावको दूर करनेवाली और सुखपूर्वक मनुष्यको रखनेवाली जो औषध है वह सबमें श्रेष्ठ है।

जो अमृतका केन्द्र है और जो मेघसे वृष्टिद्वारा आता है, वह जलरूपी अमृतरस है, वह सबसे श्रेष्ठ है। विषाणका नामक औषधी वातरोगको दूर करती है और पितामातासे आनेवाले आनुवंशिक रोगोंको हटाती है।

इसमें जलचिकित्सा और विषाणका नामक औषधीकी चिकित्सा कही है। आनुवंशिक वातरोग और रक्तस्रावका रोग दूर करनेके लिये यह उपाय करना उचित है।

वृक्षोंकी निद्रा

प्रथम मंत्रमें " ऊर्ध्व-स्वप्नाः वृक्षाः " कहा है। वृक्ष खडे खडे सोते हैं, अर्थात् जिस समय नहीं सोते उस समय जागते भी हैं। यदि सोना और जागना वृक्षोंका धर्म है, तो डरना और आनंदित होना भी उनके लिये संभवनीय होगा। वृक्षोंमें मनुष्यवत् जीवन रहनेकी बात यहां वेदने कही है।

नवजात बालक

कां. ६, सू. ११०

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- अग्निः।)

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥ १ ॥
ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात्परि पाह्येनम्।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ २ ॥

अर्थ— तू (प्रत्नः हि अध्वरेषु कं ईड्यः) पुरातन और यज्ञोंमें सुखसे स्तुति करने योग्य (सनात् च होता) सनातन कालसे दाता और (नव्यः च सत्सि) नवीन जैसा सर्वत्र विद्यमान् है। हे अग्ने ! तू (स्वां तन्वं अस्मभ्यं पिप्रायस्व) अपने शरीररूपी इस ब्रह्माण्डको हमें पूर्णरूपसे दे और (सौभगं आ यजस्व) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ १ ॥

(ज्येष्ठ-घ्न्यां जातः) ज्येष्ठके नाश करनेवालीमें यह उत्पन्न हुआ है। (वि-चृतोः यमस्य मूलबर्हणात् एनं परि पाहि) विशेष हिंसक यमके मूलछेदनसे इसकी रक्षा कर। (विश्वा दुरितानि एनं अति नेषत्) सब दुःखोंसे इसे पार कर और (दीर्घायुत्वाय शतशारदाय) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिये इसको पहुंचा ॥ २ ॥

भावार्थ— ईश्वर पुरातन, पूजनीय, सुख देनेवाला और नवीन जैसा सर्वत्र वर्तमान है। यह जगत् उसका शरीर है, वह हमें उससे सुख प्रदान करता है और ऐश्वर्य भी देता है ॥ १ ॥

जिस स्त्रीकी पहिली संतान मरती है उस स्त्रीका यह पुत्र है, मानो यमके द्वारमें ही यह है, इसलिये नाल छेदनके समयसे ही इसकी रक्षा कर, इसके सब कष्ट दूर हों और यह दीर्घायु हो ॥ २ ॥

व्याघ्रेऽह्वयजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत्पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥ ३ ॥

अर्थ— (व्याघ्रे अह्नि) क्रूर दिनमें (वीरः अजनिष्ट) वीर पुत्र उत्पन्न हुआ है, (नक्षत्र-जाः जायमानः सुवीरः) योग्य नक्षत्रके समय उत्पन्न हुआ यह उत्तम वीर है। (सः वर्धमानः पितरं मा वधीत्) वह बढता हुआ पिताको न मारे, (जनित्रीं मातरं च मा प्रमिनीत्) उत्पादक माताको भी दुःख न दे ॥ ३ ॥

भावार्थ— किसी अनिष्ट समयमें भी यह लडका उत्पन्न क्यों न हुआ हो, यह उत्पन्न होनेके बाद उत्तम वीर बने और बढता हुआ अपने माता पिताको कोई क्लेश न पहुंचावे ॥ ३ ॥

संतानका सुख

कां. ७, सू. १११

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- वृषभः ।)

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधानं आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् ॥ १ ॥

अर्थ— तू (इन्द्रस्य कुक्षिः असि) इन्द्रका पेट है, तू (सोम-धानः) सोमका धारक है । तू (देवानां मानुषाणां आत्मा) देवों और मनुष्योंकी आत्मा है । (इह प्रजाः जनय) यहां संतान उत्पन्न कर । (याः ते आसु) जो तेरी प्रजाएं इन भूमियोंमें निवास करती हैं (याः अन्यत्र) और जो दूसरे स्थानमें निवास करती हैं । (ते ताः रमन्तां) वे तेरी प्रजाएं सुखसे रहें ॥ १ ॥

मनुष्य इन्द्र अर्थात् इंद्रियोंको शक्ति देनेवाले आत्माका भोग- संग्रह करनेका मानो पेट ही है, इस पेटमें सोमादि वनस्पतिका संग्रह किया जावे, अर्थात् शाकाहार किया जावे। मांसाहार सर्वथा निषिद्ध है। ऐसा परिशुद्ध मनुष्य इस संसारमें उत्तम संतान उत्पन्न करे, प्रजा अपने देशमें रहे या परदेशमें रहे, वह कहीं भी रहे। जहां रहे वहां आनंदसे रहे। सुख और ऐश्वर्य भोगे, सुखपूर्वक रहे।

घरके दो बालक

कां. ७, सू. ८१

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- सावित्री ।)

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ १ ॥

अर्थ— (एतौ शिशू क्रीडन्तौ) ये दो बालक अर्थात् सूर्य और चन्द्र, खेलते हुए (मायया पूर्वापरं चरतः) शक्तिसे आगे पीछे चलते हैं। और (अर्णवं परि यातः) समुद्रतक भ्रमण करते हुए पहुंचते हैं। (अन्यः विश्वा भुवना विचष्टे) उनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और (अन्य, ऋतून् विदधत् नवः जायसे) दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ नया नया बनता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस घरमें दो बालक हैं, वे दोनों एक दूसरेके पीछे अपनी शक्तिसे ही खेलते हैं। खेलते हुए समुद्रतक पहुंचते हैं, उनमेंसे एक सब जगत्को प्रकाशित करता है और दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ स्वयं भी बारंबार नवीन नवीन बनता है ॥ १ ॥

नवोंनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन्प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २ ॥
सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि । अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ॥ ३ ॥
दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ४ ॥
योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ५ ॥
यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥ ६ ॥

अर्थ— (जायमानः नवः नवः भवसि) प्रकट होता हुआ नया नया होता है। एक (अह्नां केतुः) दिनोंको बतानेवाला है वह (उषसां अग्रं एषि) उषःकालोंके बाद प्रकट होता है। (आयन् देवेभ्यः भागं विदधासि) वह आता हुआ देवोंके लिये विभाग समर्पण करता है। तथा (चन्द्रमः दीर्घं आयुः प्र तिरसे) हे चन्द्रमा ! तू दीर्घ आयु अर्पण करता है ॥ २ ॥

हे (युधां पते, सोमस्य अंशः) युद्धोंके स्वामी ! हे सोमके अंश ! (अनूनः नाम वै असि) तू अन्यून अर्थात् महान् यशवाला है। हे (दर्श) दर्शनीय ! (मा प्रजया धनेन च अनूनं कृधि) मुझे प्रजा और धनसे परिपूर्ण कर ॥ ३ ॥

(दर्शः असि) तू दर्शनीय है, तू (दर्शतः असि) दर्शनके लिये योग्य हो। तू (सं अन्तः समग्रः असि) सब अन्तोंसे समग्र हो। (गोभिः अश्वैः प्रजया पशुभिः गृहैः धनेन) गौ, घोडे, संतान, पशु, घर और धनसे मैं (समन्तः समग्रः भूयासं) अन्ततक परिपूर्ण होऊं ॥ ४ ॥

(यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हम सबसे द्वेष करता है (यं वयं द्विष्मः) और जिससे हम सब द्वेष करते हैं, (तस्य प्राणेन आप्यायस्व) उसके प्राणसे तू बढ जा, (गोभिः, अश्वैः, प्रजया, पशुभिः, गृहैः, धनेन वयं आप्याशिषमिहि) गौ, घोडे, संतति, पशु, घर और धनसे हम बढें ॥ ५ ॥

(यं अंशुं देवाः आप्याययन्ति) जिस सोमको देव बढाते हैं, (यं अक्षितं अक्षिताः भक्षयन्ति) जिस अविनाशीको अविनाशी खाते हैं, (तेन) उस सोमसे (अस्मान्) हम सबको (भुवनस्य गोपाः इन्द्रः वरुणः बृहस्पतिः) भुवनके रक्षक इन्द्र, वरुण, बृहस्पति ये देव (आप्याययन्तु) बढावें ॥ ६ ॥

भावार्थ— इनमेंसे एक दिनके समयका चिन्ह है जो उषःकालके अन्तिम समयमें प्रकट होता है और सब देवोंको योग्य विभाग समर्पण करता है। जो दूसरा बालक है वह स्वयं वारंवार नवीन नवीन बनता है और सबको दीर्घ आयु देता है॥ २ ॥

हे युद्धोंके स्वामी ! सोमके अंश ! तू पूर्ण और दर्शनीय हो, अतः मुझे संतान और धनसे परिपूर्ण बना ॥ ३ ॥

तू दर्शनीय और अत्यन्त परिपूर्ण है, मैं भी गाय घोडे आदि पशु, संतति, घर, धन आदिसे पूर्ण बनूंगा ॥ ४ ॥

जो दुष्ट हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उसके प्राणका तू हरण कर और हम धनादिसे परिपूर्ण बनें ॥ ५ ॥

जिस सोमको देव बढाते और भक्षण करते हैं उससे हम पुष्ट हों, त्रिभुवनके रक्षक देव हमारी उन्नति करें ॥ ६ ॥

घरके दो बालक

जगत्‌रूपी घर

यह संपूर्ण जगत् एक बडाभारी घर है, इस घरमें हम सब रहते हैं। इस घरमें दो आदर्श बालक हैं, इन बालकोंका नाम 'सूर्य और चन्द्र' है। हमारे घरमें बालक कैसे हों और मातापिताको प्रयत्न करके अपने घरके बालकोंको किस प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिये और बालक कैसे बनने चाहिये, इस विषयका उपदेश इस सूक्तमें दिया है।

खेलनेवाले बालक

घरमें बालक (क्रीडन्तौ शिशू) खेलनेवाले होने चाहिये, रोनेवाले नहीं। बालक यदि कमजोर, बीमार और दोषी हों, तभी रोते रहते हैं। यदि वे बलवान्, नीरोग और किसी शारीरिक दोषसे दूषित न हों, तो प्रायः रोते नहीं। मातापिताओंको चाहिए कि वे गृहस्थाश्रममें ऐसा योग्य और नियमानुकूल व्यवहार करें कि, जिससे सुदृढ, हृष्टपुष्ट, नीरोग और आनंदी बालक उत्पन्न हों।

अपनी शक्तिसे चलना

बालकोंमें दूसरा गुण यह चाहिये कि वे (मायया पूर्वापरं चरन्तः) अपनी आंतरिक शक्तिसे ही आगे पीछे चलते रहें। दूसरेके द्वारा उठानेपर उठें, दूसरेके द्वारा चलानेपर चलें ऐसे परावलंबी बालक न हों। मातापिता बलवान् हुए और वे नियमानुकूल चलनेवाले रहे, तो उनके ऐसे अपनी शक्तिसे भ्रमण करनेवाले बालक होंगे। जो मातापिता दुर्व्यसनी नहीं हैं, सदाचारी हैं और ऋतुगामी होकर गृहस्थाश्रमका व्यवहार ऐसा करते हैं कि जिसे धार्मिक व्यवहार कहा जाय, उनके सुयोग्य बालक होते हैं। जो नीरोग और सुदृढ बालक होते हैं वे अनेकों कष्ट सहकर भी अपने प्रयत्नसे आगे बढनेका यत्न करते ही रहते हैं।

दिग्विजय

ये आगे बढकर विद्वान् और पुरुषार्थी होकर (अर्णवं परियातः) समुद्रके चारों ओरके देशदेशान्तरमें भ्रमण करते हैं, दिग्विजय करते हैं। अपने ही ग्राममें कूपमण्डूकके समान बैठते नहीं, समुद्रके ऊपरसे अथवा अन्तरिक्षमेंसे संचार करते हैं और देशदेशान्तरमें परिभ्रमण करते हैं और धर्म, सदाचार तथा सुशीलता आदिका उपदेश करते हैं और सब जनताको योग्य आदर्श बनाते हैं।

जगत्‌को प्रकाश देना

इस प्रकार परमपुरुषार्थसे व्यवहार करते हुए उनमेंसे एक (अन्यः विश्वानि भुवनानि विचष्टे) सब जगत्‌को प्रकाश देता है, अन्धकारमें डूबी हुई जनताको प्रकाशमें लाता है। सब देश देशान्तरमें यह इसीलिये भ्रमण करता हुआ जनताको अन्धेरेसे छुडवाकर प्रकाशमें लानेका यत्न करता है।

दूसरा गृहस्थाश्रमी (ऋतून् विधदत्) ऋतुगामी होकर, ऋतुओंके अनुकूल रहकर (नवः जायते) नवीन जैसा होता है। कितनी भी बडी आयु हो तो भी पुनः नवीन तरुण जैसा ही रहता है। ऋतुगामी होने ऋतुके अनुकूल रहने सहने सोमादि औषधियोंका उपयोग करने आदिसे वृद्ध भी तरुणके समान नवीन होता है।

सूर्य और चन्द्रपर यह रूपक प्रथम मंत्रमें है। एक सूर्य जैसा पुत्र होवे जो जगत्‌को प्रकाश देवे और एक चन्द्र जैसा पुत्र होवे कि जो (नवः नवः भवति) नवजीवन प्राप्त करनेकी विद्या संपादन करके नवीन जैसा होवे और (दीर्घं आयुः प्रतिरते) दीर्घायु प्राप्त करे और लोगोंको भी दीर्घायु बनावे।

कर्तव्यका भाग

जो जगत्‌को प्रकाश देता है वह (देवेभ्यः भागं विदधाति) देवोंके लिये भाग्य देता है, अथवा देवोंके लिये कर्तव्यका भाग देता है, अर्थात् यह इस कार्यको करे वह उस कार्यको संभाले, इस प्रकार कार्यविभागके विषयमें आज्ञाएं देता है और विभिन्न कार्यकर्ताओंसे विभिन्न कार्य कराकर एक महान् कार्य परिपूर्ण करा देता है। मनुष्योंको भी यह आदर्श सामने रखना चाहिये। देखिये, इस सृष्टिमें जल शान्ति देनेका कार्य करता है, अग्नि तपानेके कार्यमें तत्पर है, वायु सुखाता है, भूमि आधार देती है इत्यादि देव विभिन्न कार्योंके भाग सिरपर लेकर अपने अपने कार्यमें तत्पर रहकर सब जगत्‌का महान् कार्य निभा रहे हैं। मानो यह मुख्य देव इन गौण देवोंको करनेके लिये कार्यभाग देता है। इसी प्रकार राष्ट्रमें मुख्य नेता अन्य गौण नेताओंको कर्तव्यका भाग बांट देवे और वे उसको योग्य रीतिसे करें, तो सबके अपने अपने कार्यका भाग करनेसे महान् कार्यकी सिद्धि हो जाती है।

पूर्ण हो

एक ' पूर्ण सोम ' होता है, जो पूर्णिमाके दिन प्रकाशता है। दूसरा सोमका अंश होता है। अंश भी हुआ तो भी वह पूर्ण बननेकी शक्ति रखता है, इस कारण वह न्यून नहीं है। इसीलिये उसको (अनूनः असि) अन्यून-परिपूर्ण कहा है। यह सोम अंशरूप हो या पूर्ण हो वह अन्यून ही है, क्योंकि यदि वह आज अंश हुआ तो कुछ दिनोंके बाद वह पूर्ण होगा ही, अतः वह न्यून रहनेवाला नहीं है। न्यून होनेपर भी वह प्रयत्नपूर्वक पूर्ण बनता है, यह पूर्ण बननेका उसका पुरुषार्थ हरएक मनुष्यके लिये अनुकरणीय है, इस लिये उसकी प्रार्थना तृतीय मंत्रमें की जाती है कि (अनूनं मा कृधि) ' अन्यून-परिपूर्ण-मुझे कर, ' क्योंकि तू परिपूर्ण करनेवाला है, मैं पूर्ण बनना चाहता हूं। धन, आरोग्य, प्रजा, गौएं, घोडे आदिसे भी परिपूर्ण मैं होऊं यह अभिप्राय यहां है।

यही भाव चतुर्थ मंत्रमें कहा है। (समन्तः समग्रः असि) तू सब प्रकारसे समग्र अर्थात् पूर्ण है, मैं भी तेरी उपासनासे (समग्रः समन्तः) पूर्ण और समग्र होऊं।

दुष्टका नाश

जो दुष्ट हम सबसे द्वेष करता है और जिस अकेले दुष्टसे हम सब द्वेष करते हैं, उसके दोषी होनेमें कोई संदेह ही नहीं है। यदि ऐसा कोई मनुष्य सब संघका घात करे, तो उसका नियमन करना आवश्यक होता है। यह द्वेष करनेवाला यहां अल्प संख्यावाला कहा है। ' जिस अकेलेसे हम सब द्वेष करते हैं और जो अकेला हम सबसे द्वेष करता है। ' इसमें बहु संख्यक सज्जन और अल्पसंख्यक दुर्जन होनेका उल्लेख है। ऐसे दुष्टोंको दबाना और सज्जनोंकी उन्नतिका मार्ग खुला करना, यही धार्मिक मनुष्यका कर्तव्य है।

दिव्यभोजन

जो देवोंका भोजन होता है उसको देवभोजन अथवा दिव्यभोजन कहते हैं। यह देवोंका भोजन क्या है, इस विषयमें इस सूक्तके षष्ठ मंत्रमें कहा है।

> देवाः अंशुं आप्याययन्ति।
> अक्षिताः अक्षितं भक्षयन्ति॥ (मं. ६)

' देव लोग सोमको बढाते हैं और ये अमर देव इस अक्षय सोमका भक्षण करते हैं। ' सोम यह एक वनस्पति है। इसको बढाना और उसको भक्षण करना, यह देवोंका अन्न है। अर्थात् देव शाकाहारी थे। जो लोग देवोंके लिये मांसका प्रयोग करते हैं, उनको वेदके ऐसे मन्त्रोंका विशेष विचार करना चाहिये। सोम देवोंका अन्न है, इस विषयमें अनेक वेदमन्त्र हैं। और सबका तात्पर्य यही है कि जो ऊपर कहा है।

मुंडन

कां. ६, सू. ६८

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- मन्त्रोक्ताः।)

आयमंगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदुकेनेहिं।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥ १ ॥

अर्थ— (अयं सविता क्षुरेण आ अगन्) यह सविता अपने छुरेके साथ आया है। हे (वायो) वायु ! (उष्णेन उदकेन आ इहि) उष्ण जलके साथ आ। (आदित्याः रुद्राः वसवः सचेतसः उन्दन्तु) आदित्य, रुद्र और वसु देव एकचित्तसे इसके बालोंको भिगावें। हे (प्रचेतसः) ज्ञानी जनो ! तुम (सोमस्य राज्ञः वपत) इस सोम राजका मुण्डन करो॥ १॥

अदि॑तिः श्मश्रु॑ वप॒त्वाप॑ उन्दन्तु॒ वर्च॑सा । चिकि॑त्सतु प्र॒जाप॑तिर्दीर्घायु॒त्वाय॒ चक्ष॑से ॥ २ ॥
येनाव॑पत्सवि॒ता क्षु॒रेण॒ सोम॑स्य॒ राज्ञो॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान् ।
तेन॑ ब्रह्माणो वपते॒दम॒स्य गोमा॒नश्व॑वा॒नय॒म॑स्तु प्र॒जावा॑न् ॥ ३ ॥

अर्थ— (अदितिः श्मश्रु वपतु) अदिति बालोंका वपन करे, (आपः वर्चसा उन्दन्तु) जल तेजके साथ बालोंको गीला करे। (दीर्घायुत्वाय चक्षसे) दीर्घायु और उत्तम दृष्टिके लिये (प्रजापतिः चिकित्सतु) प्रजापालक इसकी चिकित्सा करे ॥ २ ॥

(विद्वान् सविता) ज्ञानी सविता (येन क्षुरेण) जिस छुरेसे (वरुणस्य राज्ञः सोमस्य अवपत्) श्रेष्ठ राजा सोमका वपन करता रहा, हे (ब्रह्माणः) ब्राह्मणो ! (तेन अस्य इदं वपत) उससे इसका यह सिर मूंडो (अयं गोमान्, अश्ववान्, प्रजावान् अस्तु) यह गौवोंवाला, घोडोंवाला और सन्तानवाला होवे ॥ ३ ॥

बालोंका वपन करना अर्थात् हजामत बनवाना हो तो पहिले उष्ण जलसे बालोंको अच्छी प्रकार भीगोना चाहिये। भिगानेवाला विशेष ख्यालसे बाल भिगावे। उस्तरा लानेवाला निर्दोष उस्तुरा लावे, उसको तीक्ष्ण करे। जितने ख्यालसे राजाके सिरका वपन करते हैं, उतनी ही सावधानीसे बालकका भी सिर मुण्डाया जाय। किसी प्रकार असावधानी न हो। जिसका वपन करना हो उसकी आयु बढे और दृष्टि उत्तम हो ऐसी रीतिसे वपन करना चाहिये। वैद्य उस्तरे और जलकी परीक्षा करे जिसकी हजामत होनी है उसकी भी परीक्षा करे। वपनके समय मनका भाव ऐसा रखे कि जिसकी हजामत की जा रही है वह दीर्घायु, स्वस्थ, गौओं और घोडोंका पालनेवाला तथा उत्तम संतानसे युक्त हो। इसके विपरीत भाव मनमें न रहें।

मेखला बंधन

कां. ६, सू. १३३

(ऋषिः– अगस्त्यः। देवता– मेखला।)

य इ॒मां दे॒वो मेख॑लामाब॒बन्ध॒ यः सं॑न॒नाह॒ य उ॑ नो यु॒योज॑ ।
यस्य॑ दे॒वस्य॑ प्र॒शिषा॒ चरा॑म॒ः स पा॒रमि॑च्छा॒त्स स उ॑ नो॒ वि मु॑ञ्चात् ॥ १ ॥
आहु॑तास्य॒भिहु॑त॒ ऋषी॑णाम॒स्यायु॑धम् । पूर्वा॑ व्र॒तस्य॑ प्राश्न॒ती वी॑र॒घ्नी भ॑व मेखले ॥ २ ॥

अर्थ— (यः देवः इमां मेखलां आवबन्ध) जिस आचार्य देवने इस मेखलाको मेरे शरीरपर बांधा है, (यः संननाह) जो हमें तैयार रखता है और (यः उ नः युयोज) जो हमें कार्यमें लगाता है। (यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः) जिस आचार्य देवके आशीर्वादसे हम व्यवहार करते हैं, (सः पारं इच्छात्) वह हमारे दुःखसे पार होनेकी इच्छा करे और (सः उ नः विमुञ्चात) वही हमें बंधनसे छुडावे ॥ १ ॥

हे मेखले ! (आहुता अभिहुता असि) तू सब प्रकारसे प्रशंसित है। तू (ऋषीणां आयुधं असि) ऋषियोंका आयुध है। तू (व्रतस्य पूर्वा प्राश्नती) किसी व्रतके पूर्व बांधी जाती है। तू (वीरघ्नी भव) शत्रुके वीरोंको मारनेवाली हो ॥ २ ॥

भावार्थ— गुरु शिष्यकी कमरमें मेखला बांधता है और उसको सत्कर्म करनेके लिये, मानो, तैयार करता है। ऐसे गुरुके आशीर्वादके साथ जो शिष्य व्यवहार करते हैं वे संपूर्ण दुःखोंसे पार होते हैं और अन्तमें मुक्ति भी प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

मेखलाकी सब प्रशंसा करते हैं, यह मेखला ऋषियोंका शस्त्र है। हरएक कार्य करनेके पूर्व कमर बांधकर तैयार होनेकी शिक्षा इससे मिलती है। इस प्रकार कटिबद्ध होकर कार्य करनेसे सब शत्रु दूर होजाते हैं ॥ २ ॥

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन्भूतात्पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥ ३ ॥
श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४ ॥
यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे । सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥ ५ ॥

अर्थ—(यत् अहं मृत्योः ब्रह्मचारी अस्मि) जिस कारण मैं मृत्युको समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूं, उस कारण मैं (भूतात् पुरुषं यमाय निर्याचन्) मनुष्य प्राणियोंसे एक पुरुषको मृत्युके लिये मांगता हूं और (तं अहं) उस पुरुषको मैं (ब्रह्मणा तपसा श्रमेण) ज्ञान, तप और परिश्रम करनेकी शक्तिके साथ (एनं अनया मेखलया सिनामि) इस मेखलासे बांधता हूं ॥ ३ ॥

यह मेखला (श्रद्धाया दुहिता) श्रद्धाकी दुहिता, (तपसः अधिजाता) तपसे उत्पन्न हुई, (भूतकृतां ऋषीणां स्वसा बभूव) भूतोंको बनानेवाले ऋषियोंकी भगिनी है । हे मेखले ! (सा) वह तू (न मतिं मेधां आधेहि) हमें उत्तम बुद्धि और धारणाशक्ति दे (अथो तपः इन्द्रियं च नः धेहि) और तपशक्ति और उत्तम इंद्रियां हमें प्रदान कर ॥ ४ ॥

हे मेखले ! (यां त्वा पूर्वे भूतकृतः ऋषयः परिबेधिरे) जिस तुझको पूर्वकालके भूतोंको बनानेवाले ऋषि बांधते रहे (सा त्वं दीर्घायुत्वाय मां परिष्वजस्व) वह तू दीर्घायुके लिये मुझे आलिंगन दे ॥ ५ ॥

भावार्थ— मेखला बांधनेका अर्थ कटिबद्ध होना है । विशेष कार्यके लिये मेखला बंधन करनेसे, मानो, वह मृत्युको स्वीकार करनेके लिये ही सिद्ध होता है । सब ब्रह्मचारी मृत्युको स्वीकार करनेके लिये ही तैयार होते हैं । इतना ही नहीं अपितु वे मनुष्योंसेंसे कई मनुष्योंको इस प्रकार मृत्यु स्वीकार करनेके लिये तैयार करते हैं । ज्ञान, तप, परिश्रम और कटिबद्धता इन गुणोंसे वे युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

मेखला श्रद्धासे बांधी जाती है । उससे तप करनेकी प्रवृत्ति होती है । श्रेष्ठ ऋषियोंसे यह कटिबंधनका प्रारंभ हुआ है । यह कटिबंधन सबको उत्तम बुद्धि, धारणाशक्ति, इंद्रियशक्ति और तप देवे ॥ ४ ॥

ऋषिलोग इस मेखलाको बांधते हैं, अतः यह मेखला हमें दीर्घायु देवे ॥ ५ ॥

मेखला बंधन

कटिबद्धता

मेखलाबंधन ' कटिबद्धता ' का सूचक है । हरएक कार्यके लिये कटिबद्ध होना आवश्यक होता है, अन्यथा वह कार्य बन नहीं सकता । भाषामें भी कहते हैं कि कमर कसके वह मनुष्य इस कार्यको करने लगा है, अर्थात् कार्य ठीक करनेके लिये कमर कसनेकी आवश्यकता है । ऋषिलोग तथा ब्रह्मचारीगण मेखला बंधन करते थे इसका अर्थ यही है कि वे कमर कसके धर्मकार्य करनेके लिये सदा तैयार रहते थे । इसी कारण वे यश प्राप्त करते थे ।

साधारण कार्य करनेमें कोई विशेष डर नहीं होता है, परंतु कई ऐसे महान् कार्य होते हैं कि उनके करनेसे प्राण जानेकी भी संभावना होती है । देशहित, राष्ट्रहित या जातिहित करने आदिके महान् कार्योंमें कई मनुष्योंको अपने सर्वस्वकी आहुति भी देनी होती है, इस कार्यके लिये गुरु शिष्योंको तैयार करता है—

इमां मेखलां आबबन्ध, संननाह, नः युयोज ।
(मं. १)

' हमारे गुरुने यह मेखला हमपर बांधी, उसने हमें

तैयार किया और हमें सत्कार्यमें लगाया ' यह गुरुका कार्य है और यही विद्या सीखनेका हेतु है। विद्या पढकर ब्रह्मचारीगण जनपदोद्धार करनेके कार्यके लिये सिद्ध हो जावें और अपने आपको उस कार्यमें तत्परताके साथ लगा देवें। पाठशालामें पढानेवाले गुरु भी ऐसे हों, कि जो अपने विद्यार्थियोंको इस ढंगसे तैयार करें और राष्ट्रीय विद्यापीठकी पढाई भी ऐसी होनी चाहिये कि, जिनमें पढे हुए विद्यार्थी जनहितके कार्य करनेके लिये सदा तैयार हों, सदा कटिबद्ध हों। जो शिष्य इस प्रकार अपने गुरुजीका आशीर्वाद लेकर कार्य करते हैं, उनका बेडा पार हो जाता है—

यस्य प्रशिषा चरामः, स पारं इच्छात्,
स नः विमुञ्चात्। (मं. १)

" जिस गुरुके आशीर्वादको प्राप्त करके हम कार्य करते हैं, वह हमें दुःखसे पार करता है और बंधनोंसे मुक्त भी करता है। " ऐसे गुरु और ऐसे शिष्य जहां होंगे उस देशका सौभाग्य हमेशा ऊंची अवस्थामें रहेगा। इसमें संदेह नहीं है।

यह मेखला इस प्रकार कटिबद्धताकी सूचना देती है इसीलिये सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। हरएक कार्यको प्रारंभ करनेके पूर्व इसी कारण मेखला बांधी जाती है और इसी कारण इससे शत्रुका बल कम होता है।

विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य करनेके समय सर्वस्वनाशका भी भय होता है, मृत्युका भी भय होता है। यदि इस भयकी कल्पना न होगी तो वैसा समय आनेपर मनुष्य डर जायगा और पीछे हटेगा। ऐसा न हो इसलिये प्रारंभसे ही इस विद्यार्थीको यह शिक्षा दी जाती है कि—

अहं मृत्योः ब्रह्मचारी अस्मि। (मं. ३)

" मैं मृत्युको समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूं। " ब्रह्मचारी समझता है कि मैंने मृत्युको ही आलिंगन दिया है। मृत्युको ही स्वीकार किया है। जब कोई मनुष्य आनंदसे मृत्युका अतिथि बनता है, तब और कौनसी अवस्था है कि जिससे उसको डर लगे? जिसने आनंदसे मृत्युको स्वीकार कर लिया, उसका सब डर मिट गया, क्योंकि सबसे बडे भारी डरका उसने मुकाबला किया है। ब्रह्मचारीको इस प्रकारकी शिक्षा मिलनी चाहिये। इस प्रकारका निडर बना ब्रह्मचारी भी—

भूतात् यमाय पुरुषं निर्याचन्। (मं. ३)

" जनतासे मृत्युके लिये एक पुरुषकी याचना करता है। " अर्थात् वह ब्रह्मचारी जैसे स्वयं निर्भय होकर कार्य करता है, उसी प्रकार अन्य मनुष्योंको भी निर्भय बनाता है, ये निर्भय बने हुए मनुष्य—

ब्रह्मणा, तपसा, श्रमेण, मेखलया। (मं. ३)

" ज्ञान, तप अर्थात् शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति, परिश्रम करनेका बल और मेखलाबंधन अर्थात् कटिबद्ध होनेका गुण " इनसे युक्त होते हैं और जो इनसे युक्त होते हैं वे सबसे श्रेष्ठ होते हैं।

मेखलाबंधनसे मति, धारणाबुद्धि, शीतोष्णसहन करनेका सामर्थ्य और सुदृढ इंद्रियकी प्राप्ति होती है, तथा दीर्घायु भी प्राप्त होती है। इस प्रकार मेखलाका महत्त्व है।

कामको वापस भेजो

कां. ६, सू. १३०

(ऋषिः— अथर्वाङ्गिराः। देवता— स्मरः।)

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः। देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति। देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥

अर्थ— (रथजितां राथजितेयीनां अप्सरसां) रथसे जीतनेवाली और रथसे जीती गई अप्सराओंका (अयं स्मरः) यह काम है। हे देवो! (स्मरं प्रहिणुत) इस कामको दूर करो, (असौ मां अनुशोचतु) वह मेरा शोक करे ॥ १ ॥

(असौ मे स्मरतात् इति) यह मुझे स्मरण करे, (प्रियः मे स्मरतात् इति) मेरा प्रिय मुझे स्मरण करे। हे देवो! (स्मरं प्रहिणुत) इस कामको दूर कर। (असौ मां अनुशोचतु) वह मेरा शोक करे ॥ २ ॥

यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ ३ ॥
उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय । अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४ ॥

अर्थ— (यथा असौ मम स्मरात्) जिस प्रकार यह मेरा स्मरण करे, उस प्रकार (अमुष्य अहं कदाचन न) उसका मैं कदापि स्मरण न करूं, हे देवो! (स्मरं०) इस कामको दूर करो, वह मेरा शोक करे ॥ ३ ॥

हे मरुतो! (उन्मादयत) उन्मत्त करो। (अन्तरिक्ष! उन्मादय) हे अन्तरिक्ष! उन्मत्त कर। हे अग्ने! (त्वं उन्मादय) तू भी उन्माद उत्पन्न कर। (असौ मां अनुशोचतु) वह मेरा शोक करे ॥ ४ ॥

कामको लौटा दो

इसका आशय स्पष्ट है। किसीके विषयमें मनमें काम उत्पन्न हो जाय, तो उसको जिसके कारण वह काम उत्पन्न हुआ हो उसके पास वापस करना चाहिये। अपने मनमें उसको स्थान देना नहीं चाहिये। जिस अवस्थामें दूसरे लोग–स्त्री या पुरुष–कामके कारण उन्मत्त, प्रमत्त और बेहोशसे हो जाते हैं, वैसी अवस्था प्राप्त करनेपर भी कामका असर अपने मनपर नहीं होने देना चाहिये। इस प्रकार अपना मन काम विकारसे दूर रखना चाहिये।

कामको वापस भेजो

कां. ६, सू. १३१

(ऋषिः– अथर्वाङ्गिराः। देवता– स्मरः।)

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३ नि तिरामि ते । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥
यद्धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् । ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥ ३ ॥

अर्थ— (ते आध्यः शीर्षतः पत्ततः) तेरी व्यथाएं सिरसे और पांवसे (नि नि नि तिरामि) हटा देता हूं। हे (देवाः) देवो! (स्मरं प्रहिणुत) कामको दूर करो, (असौ मां अनुशोचतु) वह काम मेरे कारण शोक करे ॥ १ ॥

हे (अनुमते) अनुमति! (इदं अनुमन्यस्व) इसको तू अनुकूल मान। हे (आकूते) संकल्प! तू (इदं नमः सं) यह मेरा नमन स्वीकार कर। हे देवो! कामको दूर करो और वह मेरे कारण शोक करे ॥ २ ॥

(यत् त्रियोजनं धावसि) जो तीन योजन दौडता है, अथवा (आश्विनं पञ्चयोजनं) घोडेपरसे पांच योजन जाता है, (ततः त्वं पुनः आयसि) वहांसे तू पुनः आता है (नः पुत्राणां पिता असः) हम पुत्रोंका तू पिता है ॥ ३ ॥

यह सूक्त भी पूर्व सूक्तके समान ही कामविकारको दूर करनेकी सूचना देता है। कामविकारको दूर करना चाहिये। जिस किसीके विषयमें काम विकार उत्पन्न हुआ हो, वह चाहे शोक करता रहे, या तडपता रहे परंतु स्वयं उस कामके वशमें नहीं होना चाहिये।

तृतीय मंत्रका कथन यह है कि चाहे कितना भी दूर–घरसे बहुत दूर–कामकाजके लिये घरके मनुष्य क्यों न जांये, उनको अपने घर अवश्य ही वापस आना चाहिये और घरके बालबच्चोंका पालन करना चाहिये। अर्थात् अपने घरमें आकर सोना चाहिये। बाहर दूसरेके घरमें सोना उचित नहीं। इस मंत्रका अर्थ प्रकरणानुकूल समझना चाहिये, अर्थात् घरमें सोनेसे कामवशताकी संभावना कम होती है।

कामको वापस भेजो

कां. ६, सू. १३२

(ऋषिः- अथर्वाङ्गिराः । देवता- स्मरः ।)

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ १ ॥
यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ २ ॥
यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ३ ॥
यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ४ ॥
यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ५ ॥

अर्थ— (देवाः, विश्वेदेवाः, इन्द्राणी, इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ) देव, सब देव, इन्द्रशक्ति, इन्द्र और अग्नि तथा मित्र और वरुण ये सब देव (यं शोशुचानं स्मरं) जिस शोक करानेवाले कामको (आध्या सह) व्यथाओंके साथ (अप्सु अन्तः असिञ्चन्) जलके प्रतिनिधिभूत वीर्यमें सींचते हैं, (वरुणस्य धर्मणा) वरुण नामक जल देवके धर्मसे (ते तं तपामि) तेरे उस कामको तपाता हूं । अर्थात् उस तापसे वह तप्त होकर दूर होवे और हमें कभी न सतावे ॥ १–५ ॥

सब देवोंने, शरीरके अंदर रहनेवाले रेतमें कामको रखा है । वहां रहता हुआ यह काम मनुष्योंको सताता है और विविध कष्ट देता है । यह काम जो उस रेतके स्थानमें रहता है उसके साथ (आध्या सह) अनेक आधियां अर्थात् मानसिक व्यथाएं रहती हैं । काम जहां होता है वहां मानसिक कष्ट बहुत होते हैं । इसका सिलसिला ऐसा है—

> सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥
> क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
> स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥ (भ. गी. २)

" विषयोंके संगसे काम उत्पन्न होता है, कामसे क्रोध, क्रोधसे मोह, मोहसे भ्रम, भ्रमसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे सर्वस्वनाश होता है । "

इस प्रकार कामके साथ नाश जुडा हुआ है । अतः उसको दूर करना चाहिये । जितना धर्मानुकूल काम हो उतना ही लेना चाहिये । धर्मविरुद्ध कामको छोड देना चाहिये । इसलिये कहा है कि कामके साथ अनेक विपत्तियां जुडी हुई हैं और विपत्तियोंसे मनुष्य (शोशुचान) शोकाकुल हो जाता है । यह काम सबको शोकसागरमें डालनेवाला है । (शुच् धातुके दो अर्थ हैं, तेजस्वी होना और शोकयुक्त होना ।) ये दोनों इसके कर्म हैं । स्वयं तेजस्वी दीखता हुआ सबको शोकमें डाल देता है । इसलिये मनःसंयमसे उसको तपाना या सुखाना चाहिये, जिससे वह दूर हो और कष्ट न दे सके ।

कङ्कणका धारण

कां. ६, सू. ८१

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– आदित्याः, त्वष्टा ।)

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि । प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥ १ ॥
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे । मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥ २ ॥
यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या । त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद्यथा पुत्रं जनादिति ॥ ३ ॥

अर्थ— (यन्ता असि) तू नियामक है, (हस्तौ यच्छसे) दोनों हाथोंका तू नियमन करता है और उनसे (रक्षांसि सेधासि) विघ्नकारियोंको हटाता है। (अयं परिहस्तः) यह कंकण (प्रजां धनं च गृह्णानः) प्रजा और धनका ग्रहण करनेवाला (अभूत्) है ॥ १ ॥

हे (परिहस्त) कंकण ! (गर्भाय धातवे) गर्भको धारण करनेके लिये (योनिं विधारय) योनिको धारण कर। हे (मर्यादे) मर्यादे ! (पुत्रं आधेहि) पुत्रको धारण कर। (तं त्वं आगमे आगमय) उसको तू आगमनके समय बाहर आनेके लिये प्रेरणा कर ॥ २ ॥

(पुत्रकाम्या अदितिः) पुत्रकी इच्छा करनेवाली अदितिने (यं परिहस्तं अबिभः) जिस कंकणको धारण किया था, उस कंकणको (यथा पुत्रं जनात् इति) जिससे पुत्रकी उत्पत्ति हो इसलिये (त्वष्टा तं अस्यै आवध्नात्) त्वष्टाने इस स्त्रीको पहनाया है ॥ ३ ॥

भावार्थ— कंकण नियममें रखता है, उसे हाथोंमें पहननेसे हाथोंका नियमन होता है और विघ्न दूर होते हैं। इसलिये इसको संतानका धारण करनेवाला कहते हैं। तथा यह धनका भी धारक है ॥ १ ॥

गर्भधारणाके योग्य गर्भाशयकी अवस्था यह बनाता है। इसके धारण करनेसे गर्भधारण होता है और योग्य समयमें प्रसूति भी होती है ॥ २ ॥

पुत्रकी इच्छा करनेवाली अदितिने इसको प्रथम धारण किया था। कारीगर इसका निर्माण करे और पुत्रोत्पत्ति होनेकी इच्छासे स्त्रियोंके दोनों हाथोंमें कंकण धारण करावे ॥ ३ ॥

कंकणधारण

स्त्रियां हाथमें कंकण धारण करती हैं। इसका संबंध गर्भाशय ठीक रहने, उत्तम संतान उत्पन्न होने और सुखसे प्रसूति होनेके साथ है। वैद्य लोग इसका विचार शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे करें और निश्चय करें कि, किस प्रकारका कंकण कौनसी स्त्रीको किस विधिसे धारण करना चाहिये। यह शास्त्रदृष्टिसे विचारने योग्य बात है।

मातापिताकी सेवा करो

कां. ६, सू. १२०

(ऋषिः- कौशिकः । देवता- मन्त्रोक्ताः ।)

यदुन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥

भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥ २ ॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥ ३ ॥

अर्थ— (यत् अन्तरिक्षं पृथिवीं उत द्यां) यदि हम अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोककी तथा (यत् मातरं पितरं वा जिहिंसिम) यदि हम माता और पिताकी हिंसा करें, (अयं गार्हपत्यः अग्निः) यह हमारा गार्हपत्य अग्नि (नः तस्मात् इत् सुकृतस्य लोकं उन्नयाति) हमें उस पापसे उठाकर पुण्यलोकमें पहुंचावे ॥ १ ॥

(अदितिः भूमिः माता नः जनित्रं) अदीन मातृभूमि हमारी जननी है। (अन्तरिक्षं भ्राता) अन्तरिक्ष हमारा भाई है और (द्यौः नः पिता) द्युलोक हमारा पिता है। वह (अभिशस्त्याः नः शं भवाति) विपत्तिसे हमें बचाकर कल्याणदायी होवे। (जामिं ऋत्वा पित्र्यात् लोकात्) संबंधीको प्राप्त कर पितृलोकसे (मा अवपत्सि) मत गिर ॥ २ ॥

(यत्र सुहार्दः सुकृतः) जहां उत्तम हृदयवाले पुण्यकर्ता पुरुष (स्वायाः तन्वः रोगं विहाय) अपने शरीरसे रोगको दूर करके (मदन्ति) आनंदित होते हैं, (अंगैः अश्लोणाः अन्हुताः) अंगोंसे अविकृत और अकुटिल होकर (तत्र स्वर्गे पितरौ च पुत्रान् पश्येम) उस स्वर्गमें पितरों और पुत्रोंको देखें ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस संपूर्ण जगत्में हम कहीं भी हों, यदि हम वहां अपने मातापिताको कष्ट पहुंचाएं, तो तेजस्वी देव हमें उस पापसे मुक्त करे और पुण्यलोकमें जाने योग्य पवित्र हमें बनावे ॥ १ ॥

हमारी माता यह भूमि है और हमारा पिता यह द्युलोक है, अन्तरिक्ष हमारा भाई है। इस प्रकार जगत्से हमारा संबंध है। यह सब जगत् हमारा कल्याण करे और हमें विपत्तिसे बचावे। कोई ऐसा संबंधी न होवे कि जिसके कारण हमें पितृलोकसे गिरना पडे ॥ २ ॥

जहां शारीरिक रोग नहीं होते और जहां हृदयके उत्तम भावसे पुण्य करनेवाले लोग आनंदसे रहते हैं, वहां हम पहुंचें और सुदृढ अंगोंसे रहें और अपने पितरों और पुत्रोंको देखें ॥ ३ ॥

कोई मनुष्य अपने मातापिताको किसी प्रकारका कष्ट न देवे। मातापिताको कष्ट देनेवाले गिरते हैं। परंतु जो माता-पिताको सुख देता है वह ऐसे श्रेष्ठ लोकमें पहुंचता है कि जहां कभी रोग नहीं होते और शरीर स्वस्थ रहता है। इसलिये उनको सुख देवे।

धन और सद्बुद्धिकी प्रार्थना

कां. ७, सू. १७

(ऋषिः- भृगुः । देवता- धाता, सविता, मन्त्रोक्ताः ।)

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ १ ॥

धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥ २ ॥

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ ३ ॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

अर्थ— (धाता जगतः पतिः ईशानः) धारणकर्ता, जगत्का स्वामी, ईश्वर (नः रयिं दधातु) हमें धन देवे । (सः नः पूर्णेन यच्छतु) वह हमें पूर्ण रीतिसे देवे ॥ १ ॥

(धाता दाशुषे) धारणकर्ता ईश्वर दाताके लिये (प्राचीं अक्षितां जीवातुं दधातु) प्राप्त करने योग्य अक्षय जीवनशक्ति देवे । (वयं विश्वराधसः देवस्य सुमतिं) हम संपूर्ण धनोंके स्वामी ईश्वरकी सुमतिका (धीमहि) ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

(धाता प्रजाकामाय दाशुषे) धारक ईश्वर प्रजाकी इच्छा करनेवाले दाताके लिये (दुरोणे विश्वा वार्या) उसके घरमें संपूर्ण वरणीय पदार्थोंको (दधातु) देवे । (विश्वे देवाः) सब देव, (सजोषाः अदितिः) प्रीतियुक्त अनंत दैवीशक्ति, तथा (देवाः) अन्य ज्ञानी (तस्मै अमृतं सं व्ययन्तु) उसके लिये अमृत प्रदान करें ॥ ३ ॥

(धाता रातिः सविता) धारक, दाता, उत्पादक, (निधिपतिः अग्निः) निधिका पालक, प्रजारक्षक, प्रकाशरूप देव (नः इदं जुषन्तां) हमें यह देवे । तथा (प्रजया संरराणः त्वष्टा विष्णुः) प्रजाके साथ आनंदमें रहनेवाला सूक्ष्म पदार्थोंको बनानेवाला व्यापक देव (यजमानाय द्रविणं दधातु) यज्ञकर्ताको धन देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— जगत्का धारण और पालन करनेवाला ईश्वर हमें पूर्ण रीतिसे विपुल धन देवे ॥ १ ॥

वह हमें दीर्घ जीवनकी शक्ति देवे । हम उसकी सुमतिका ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

संतानकी इच्छा करनेवाले दाताको उसके घरमें-गृहस्थके घरमें-रहने योग्य सब पदार्थ प्राप्त हों । सब देव दाताको अमरत्वकी प्राप्ति करावें ॥ ३ ॥

सब जगत्का धारक, धनदाता, संपूर्ण विश्वका उत्पादक, संसाररूपी खजानेका रक्षक, सबका पालक, एक प्रकाश स्वरूप देव है, वह हमें सब प्रकारका सुख देवे । सब सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंका निर्माता, व्यापक देव उपासकको धनादि पदार्थ देवे ॥ ४ ॥

यह प्रार्थना सुबोध है, अतः इसके स्पष्टीकरणकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

गृह-निर्माण

कां. ३, सू. १२

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- शाला, वास्तोष्पतिः ।)

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥ १ ॥
इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥
धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥ ३ ॥
इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥ ४ ॥

अर्थ— (इह एव ध्रुवां शालां निमिनोमि) इसी स्थानपर सुदृढ शालाको बनाता हूं। वह शाला (घृतं उक्षमाणा क्षेमे तिष्ठाति) घी सींचती हुई हमारे कल्याणके लिये स्थिर रहे। हे (शाले) घर! (तां त्वा सर्ववीराः अरिष्टवीराः सुवीराः उप संचरेम) तेरे चारों ओर हम सब वीर विनष्ट न होते हुए उत्तम पराक्रमी बनकर फिरते रहें ॥ १ ॥

हे शाले! तू (अश्वावती गोमती सूनृतावती) घोडोंवाली, गौओंवाली और मधुर भाषणोंवाली होकर (इह एव ध्रुवा प्रतितिष्ठ) यहीं स्थिर रह। तथा (ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती) अन्नवाली, घीवाली और दूधवाली होकर (महते सौभगाय उच्छ्रयस्व) बडे सौभाग्यके लिये उंची बनकर खडी रह ॥ २ ॥

हे शाले! (बृहत्-छन्दाः पूतिधान्या) बडे छतवाली और पवित्र धान्यवाली तथा (धरुणी असि) धान्यादि का भण्डार धारण करनेवाली तू है। (त्वा वत्सः कुमारः आ गमेत्) तेरे अंदर बछडा और बालक आवे। (आस्पन्दमाना धेनवः सायं आ) कूदती हुई गौवें सायंकालके समय आजावें ॥ ३ ॥

(इमां शालां) इस शालाका सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति (प्रजानन् नि मिनोति) जानता हुआ निर्माण करे। (मरुतः उद्ना घृतेन उक्षन्तु) मरुत् गण जलसे और घीसे सींचें, तथा (भगः राजा नः कृषिं नि तनोतु) भाग्यवान् राजा हमारे लिये कृषिको बढावे ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस उत्तम स्थानपर मैं उत्तम और सुदृढ घर बनाता हूं, जिसमें घी आदि खाने पीनेके पदार्थ बहुत रहें और जो सब प्रकारके स्वास्थ्य साधनोंसे परिपूर्ण हो। हम सब प्रकारके शौर्यवीर्यादि गुणोंसे युक्त होकर और किसी प्रकार कष्टोंको प्राप्त न होते हुए इस घरके चारों ओर घूमा करें ॥ १ ॥

इस घरमें घोडे, गौ, बैल आदि पशु बहुत हों, यह घर उत्तम मीठे भाषणसे युक्त हो, अन्न, घी, दूध आदि खाद्य पेय इसमें बहुत हों और इसमें रहनेवालोंको बडे सौभाग्यकी प्राप्ति हो ॥ २ ॥

इस घरमें धान्यादिका बडा भण्डार हो, उस भंडारमें शुद्ध और पवित्र धान्य भरा रहे। ऐसे घरमें बालक और बछडे घूमते रहें और सायंकालमें आनंदसे नाचती हुई गौवें आयें ॥ ३ ॥

इस शालाके निर्माणमें सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति ये देव सहायता दें। मरुत् गण इस घरमें विपुल घी देनेमें सहायक हों तथा राजा भग कृषि बढानेमें सहायता देवे ॥ ४ ॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमिताग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥ ५ ॥
ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥ ६ ॥
एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह । एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥ ७ ॥
पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ८ ॥
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ ९ ॥

अर्थ— हे (मानस्य पत्नि) संमानकी रक्षक ! तू (शरणा स्योना देवी) अन्दर आश्रय करने योग्य, सुखदायक, दिव्य प्रकाशमान् ऐसी तू (देवेभिः अग्रे निमिता असि) देवों द्वारा पहले बनायी हुई है। (तृणं वसाना त्वं सुमनाः असः) घासको पहने हुए तू उत्तम मनवाली हो (अथ अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः) और हम सबके लिये वीरोंसे युक्त धन दे ॥ ५ ॥

हे (वंश) बांस ! तू (ऋतेन स्थूणां अधिरोह) अपने सीधेपनसे अपने आधारपर चढ और (उग्रः विराजन् शत्रून् अपवृङ्क्ष्व) उग्र बनकर प्रकाशता हुआ शत्रुओंको हटा दे। (ते गृहाणां उपसत्तारः मा रिषन्) तेरे घरोंके आश्रयसे रहनेवाले हिंसित न होवें। हे शाले ! हम (सर्ववीराः शतं शरदः जीवेम) सब वीरोंसे युक्त होकर सौ वर्ष जीते रहें ॥ ६ ॥

(इमां कुमारः आ) इस शालाके पास बालक आवे, (तरुणः आ) तरुण पुरुष आवे, (जगता सह वत्सः आ) चलने वालोंके साथ बछडा भी आवे। (इमां परिस्रुतः कुम्भः) इसके पास मधुर रससे भरा हुआ घडा (दध्नः कलशैः आ अगुः) दहीके कलशोंके साथ आजावे ॥ ७ ॥

हे (नारि) स्त्री ! (एतं पूर्णं कुम्भं) इस पूर्ण भरे घडेको तथा (अमृतेन संभृतां घृतस्य धारां) अमृतसे भरी हुई घीकी धाराको (प्रभर) अच्छी प्रकार भर कर ला। (पातॄन् अमृतेन सं अङ्ग्धि) पीनेवालोंको अमृतसे अच्छी प्रकार भर दे। (इष्टापूर्तं एनां अभिरक्षाति) यज्ञ और अन्नदान इस शालाकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

(इमाः यक्ष्मनाशनीः अयक्ष्माः आपः) ये रोगनाशक और स्वयं रोगरहित जल (प्र आभरामि) मैं भर लाता हूं। (अमृतेन अग्निना सह) अमृत अग्निके साथ (गृहान् उप प्र सीदामि) घरोंमें जाकर बैठता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थ— घरमें अंदर निवास करने योग्य, सुखदायक है, यह एक संमानका साधन भी है। पहले यह देवों द्वारा बनाया गया था। घासके छप्परसे भी यह बनता है। ऐसे घरसे हमारा मन शुभ संकल्पवाला होवे और हमें वीरोंसे युक्त धन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

सीधे स्तंभ पर सीधे बांस रखे जावें और इस रीतिसे विरोधियोंको दूर किया जावे। घरोंके आश्रयसे रहनेवाले मनुष्य दुःखी, कष्टी या विनष्ट न हों। इसमें रहनेवाले सब वीर होकर सौ वर्षतक जीवित रहें ॥ ६ ॥

इस घरके पास बालक, तरुण आदि सब आवें। बछडे और अन्य घरके पशु पक्षी भी घूमते रहें। इस घरमें शहदके मीठे रससे भरे हुए घडे तथा दहीसे भरे हुए घडे बहुत हों ॥ ७ ॥

स्त्रियां इन घडोंको भर कर लावें और घीके घडे भी बहुत लावें और पीने वालोंको यह दूध, दही, घी आदि सब रस, भरपूर पिलावें। क्योंकि इनका दान ही घरकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

घरमें पीनेके लिये ऐसा जल लाया जावे कि जो रोगनाशक और आरोग्यवर्धक हो। घरमें अंगीठी भी हो जिसके पास जाकर लोग शीतका निवारण करके आनंद प्राप्त करें ॥ ५ ॥

गृह-निर्माण

घरकी बनावट

जो गृहस्थी हैं उसको घर बनाकर रहना आवश्यक है, फिर वह घर घाससे बनी हुई (तृणं वसाना । मं. ५) झोपडीके समान हो अथवा बडा हो। घर किसी भी प्रकारका हो, परंतु गृहस्थीके लिये वह अवश्य चाहिये, नहीं तो गृहस्थका " गृह-स्थ-पन " ही नहीं सिद्ध होगा।

घर बनाने योग्य स्थान

घरके लिये स्थान भी योग्य होना चाहिये, रमणीय होना चाहिये और आरोग्यकारक होना चाहिये, इस विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित निर्देश देखने योग्य हैं—

१ क्षेमे (मं. १)= सुरक्षित, शांति देनेवाला, सुख-कारक, आरोग्यदायक, निर्भय, ऐसा स्थान घरके लिये हो।

२ ध्रुवा (मं. १,२)= स्थिर, सुदृढ, जहां बुनियाद स्थिर और दृढ हो सकती है।

इस प्रकारकी भूमिपर घर बनाना चाहिये और वह घर अपने सामर्थ्यके अनुसार सुदृढ, (ध्रुवा) स्थिर और मजबूत बनाना चाहिये, ताकि वारंवार उसकी मरम्मत करनेका व्यय उठाना न पडे।

घर कैसे बनाया जावे ?

घरके कमरे जहांतक हो सकें वहांतक विस्तीर्ण बनाये जावें। " बृहत्-छंदाः (मं. ३) " अर्थात् बडे बडे छत-वाले कमरोंसे युक्त घर हो। घरमें संकुचित स्थान न हो क्योंकि छोटे छोटे कमरोंमें रहनेवालोंके विचार भी संकुचित बनते जाते हैं। इसलिये अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार जहांतक विस्तीर्ण बनाना संभव हो वहांतक प्रशस्त घर बनाया जावे, जहां बहुत इष्टमित्र अतिथि आदि (शरणा। मं. ५) आवे और (स्योना । मं. ५) विश्राम ले सकें।

संमानका स्थान

घर गृहस्थीके लिये बडा संमानका (शाला मानस्य पत्नी । मं. ५) स्थान है, अपना निजका घर होनेसे वह एक प्रतिष्ठाका स्थान होजाता है। इष्टमित्रोंको सुख पहुंचा-नेका वह एक बडा स्थान होता है। इसलिये पूर्वोक्त प्रकार घर बनाना चाहिये। घर बनते ही घरमें अन्यान्य साधन इकट्ठे करने चाहिये, इस विषयमें निम्नलिखित संकेत विचार करने योग्य हैं—

१ अश्वावती (मं. २)— घरमें घोडे हों, अर्थात् गृहस्थीके पास घोडे, घोडियां हों। यह शौर्यका साधन है।

२ गोमती (मं. २)— घरमें गौएँ हों। यह पुष्टिका साधन है, गौसे दूध मिलता है जिसको पीकर मनुष्य पुष्ट होते हैं। बैलोंसे खेती होती है। धेनवः आस्पन्दमानाः सायं आ (मं. ३)— सायंकालके समय गौवें आनंदसे नाचती हुई घरमें आवें।

३ पयस्वती (मं. २)— घरमें बहुत दूध हो।

४ घृतवती (मं. २)— घरमें विपुल घी हो।

५ घृतं उक्षमाणा (मं. १)— घी देनेवाला, अर्थात् अतिथि आदिके लिये विपुल घी देनेवाला घर हो। घरके लोग अन्नदानमें कंजूसी न करें।

६ ऊर्जस्वती (मं. २)— घरमें बहुत अन्न हो, खान-पानके पदार्थ विपुल हों।

७ धरुणी (मं. ३)— जिसमें धान्यादिका बडा भंडार हो, जिसमें संग्रहस्थान हो और वहां सब प्रकारके पदार्थ उत्तम अवस्थामें मिलें।

८ पूतिधान्या (मं. ६)— घरमें पवित्र धान्य हो, जो रोगादि उत्पन्न करनेवाला न हो, उत्तम अवस्थामें हरएक प्रकारके पदार्थ हों, जिन्हें खानेसे शरीरकी पुष्टि और मनका समाधान हो। घरमें धान्य लानेके समय वह केवल सस्ता मिलता है इसलिये लाया न जाय, परंतु लानेके समय देखा जाय कि यह पवित्र, शुद्ध, नीरोग और पोषक है वा नहीं।

९ परिस्रुतः कुम्भः (मं. ७)— मधुर शहदसे भरा हुआ घडा अथवा अनेक घडे घरमें सदा रहें।

१० दध्नः कलशैः (मं. ७)— दहीसे परिपूर्ण भरे हुए कलश घरमें हों।

११ घृतस्य कुम्भम् (मं. ८)— उत्तम घीसे भरे हुए घट घरमें हों।

१२ अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः आपः (मं. ९)— नीरोग और रोग दूर करनेवाले शुद्ध जल घडोंमें भरकर घरमें रखा जावे।

इत्यादि शब्दों द्वारा इस सूक्तमें घरका वर्णन किया है। इन शब्दोंके मननसे जाना जा सकता है कि घरमें कैसी व्यवस्था रखनी चाहिये और घर कैसा धन धान्यसंपन्न बनाना चाहिये। तथा—

१ वत्सः आगमेत् (मं. ३, ७)— घरमें बछडे खेलते रहें, घरके पास बछडे नाचते रहें।

२ कुमारः आ गमेत् (मं. ३, ७)— घरमें और बाहर बालबच्चे, कुमार और कुमारिकाएं आनंदसे खेल कूद करते रहें।

३ तरुणः आ गमेत् (मं. ७)— युवा, तरुण पुरुष और तरुणियां घरमें और बाहर भ्रमण करें।

प्रसन्नताका स्थान

अर्थात् घर ऐसा हो कि जिसमें बालबच्चे खेलते रहें और तरुण तथा अन्यान्य आयुवाले स्त्री पुरुष अपने अपने कार्यमें आनंदसे दत्तचित्त हों। सबके मुखपर आनंद दीखे और घरका प्रत्येक मनुष्य प्रसन्नताकी मूर्ति दिखाई देवे। हरएक मनुष्य ऐसा कहे कि—

गृहान् उप प्रसीदामि। (मं. ९)

" मैं प्रयत्न करके अपने घरको प्रसन्नताका रमणीय स्थान बनाऊंगा। " यदि घरका प्रत्येक मनुष्य अपने घरको " प्रसन्नताका स्थान " बनानेका प्रयत्न करे तो सचमुच वह घर प्रसन्नताका केन्द्र अवश्यमेव बन जायगा।

अपने प्रयत्नसे अपने घरको " प्रसन्नताका स्थान " बनाना है, यह कार्य दूसरेपर सोंपा नहीं जा सकता, यह तो हरएकको ही करना चाहिये। घरको प्रसन्नताका स्थान बनानेके लिये ऊपर लिखे हुए साधन इकट्ठे तो करने ही चाहिये परंतु केवल इतनोंसे ही वह प्रसन्नता नहीं आवेगी कि जो वेदको अभीष्ट है, इसलिये वेदने और भी निर्देश दिये हैं, देखिये—

१ सूनृतावती (मं. २)— घरमें सभ्यताका सच्चा भाषण हो, प्रेमपूर्वक वार्तालाप होता हो, सच्ची उन्नतिका सत्य भाषण हो। छल, कपट, धोखा आदिके भाषण न हों।

२ सुमनाः (मं. ५)— उत्तम मनसे उत्तम व्यवहार करनेवाले मनुष्य घरमें कार्य करें।

घरको मंगलमय बनानेके लिये जैसे खानपानके अच्छे पदार्थ घरमें बहुत चाहिये उसी प्रकार घरके स्त्रीपुरुषोंके अंतःकरण भी श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त होने चाहिये। तभी तो घर प्रसन्नताका स्थान बन सकता है। घरमें धन दौलत तो बहुत हो पर घरवालोंके मन छली और कपटी हुए तो उस घरको घर कोई नहीं कहेगा, वह तो एक दुःखका स्थान होगा। शीत कालमें तथा वृष्टिके दिनोंमें सर्दी बहुत होती है, इसलिये शीतके निवारणके लिये घरमें अंगीठी रखनी चाहिये जिससे शीतसे त्रस्त मनुष्य आनंद प्राप्त कर सके। दूसरी बात यह है कि ' अमृत अग्नि ' (मं. ९) जो परमेश्वर है उसकी उपासनाका एक स्थान घरमें बनना चाहिये, जहां अग्निहोत्र द्वारा अग्न्युपासनासे लेकर ध्यान-धारणा द्वारा परमात्मोपासनातक सब प्रकारकी उपासना करके मनुष्य परम आनंदको प्राप्त करे। जिस घरमें ऐसी उपासना होती है वही घर सचमुच ' प्रसन्नताका केन्द्र ' हो सकता है।

महते सौभगाय उच्छ्रयस्व। (मं. २)

' बडे शुभमंगलकी प्राप्तिके लिये यह घर बनाया जावे। ' अर्थात् यह घर इस प्रकारसे बडा सौभाग्य प्राप्त करे। जिस घरमें पूर्वोक्त प्रकार अंतर्बाह्य व्यवस्था रहेगी वहां बडा शुभमंगल निवास करेगा इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

वीरतासे युक्त धन

सौभाग्य प्राप्तिके अंदर " भग " अर्थात् धन कमानां भी संमिलित है। परंतु धन कमानेके पश्चात् उसकी रक्षा करनेकी शक्ति चाहिये और उसके शत्रुओंको दूर करनेके लिये शौर्य, धैर्य, वीर्य आदि गुण भी चाहिये। अन्यथा कमाया हुआ धन दूसरे लोग लूट लेंगे। इसलिये इस सूक्तने सावधानीकी सूचना दी है—

अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः। (मं. ५)

" हमारे लिये वीरतासे युक्त धन दे। " धन प्राप्त हो और साथ साथ उसके संभालनेके लिये आवश्यक वीरता भी प्राप्त हो। हमारा घर वीरताके वायुमंडलसे युक्त हो—

१ सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप संचरेम॥ (मं. १)

२ शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः॥ (मं. ६)

' हम सब प्रकारसे वीर, उत्तम वीर, नाशको न प्राप्त होनेवाले वीर, सौ वर्ष जीवित रहकर धर्मकी रक्षा करनेके लिये तैयार रहनेवाले वीर होकर अपने अपने घरोंमें संचार करें। ' ये मंत्र स्पष्ट शब्दों द्वारा कह रहे हैं कि घरोंका वायुमंडल ' वीरताका वायुमंडल ' होना चाहिये। भीरुताका विचारतक वहां आना नहीं चाहिये। घरोंके पुरुष धर्मवीर हों और स्त्रियां वीरांगनाएं हों, ऐसे स्त्री पुरुषोंसे जो संतानें होंगे वे ' कुमार वीर ' ही होंगे इसमें क्या संदेह है? इसीलिये वेदमें पुत्रका नाम ' वीर ' आता है।

अतिथि सत्कार

ऐसे मंगलमय वीरतासे युक्त घरोंमें रहनेवाले धर्मवीर पुरुष अतिथि सत्कार करेंगे ही। इस विषयमें कहा है—

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम् । इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ (मं. ८)

' गृहपत्नी अतिथियोंको परोसनेके लिये घीका घडा लावे, मधुररससे भरा घडा लावे और पीनेवालोंको जितना चाहिये उतना पिलावे, कंजूसी न करे । इस प्रकारका अन्न दान करना ही घरकी रक्षा करता है । '

अतिथि सत्कारमें अन्नपान अथवा अन्य पदार्थोंका दान खुले हाथसे देना चाहिये, उसमें कंजूसी करना योग्य नहीं है । क्योंकि दान ही घरका संरक्षण करता है । जिस घरमें अतिथियोंका सत्कार होता है, उस घरका यश बढता जाता है ।

यहां अतिथियोंके लिये अन्न परोसनेका कार्य करना स्त्रियोंका कार्य लिखा है । यहां पर्दा नहीं है । पर्देवाले घरोंमें अतिथिको भोजन देनेका कार्य या तो नौकर करता है अथवा घरका मालिक करता है । यह अतिथि सत्कारकी अवैदिक प्रथा है । अतिथिके लिये भोजन खान पान आदि गृहपत्नीको देना चाहिये यह वेदका आदेश यहां है ।

देवों द्वारा निर्मित घर

घर देवोंने प्रारंभमें बनाया, इस विषयमें यह निम्नलिखित मंत्र देखना चाहिये—

शरणा स्योना देवी (शाला) देवेभिर्निमिता- स्यग्रे तृणं वसाना सुमनाः ... ... ॥ (मं. ५)

' अंदर आश्रय करने योग्य, सुखदायक, घासके छप्पर- वाला, परंतु उत्तम विचारोंसे युक्त दिव्य घर प्रारंभमें देवोंने बनाया । ' दिव्य वीर पुरुषोंके द्वारा जो पहला घर निर्मित हुआ वह ऐसा था । यद्यपि इसपर घासका छप्पर था तथापि उसके अंदर उत्तम विचार होते थे, अंदर जानेसे आराम मिलता था और सुख भी होता था । इसका तात्पर्य यही है कि घर छप्परका ही क्यों न हो, परंतु वह दिव्य विचारोंका दिव्य घर होना चाहिये वह क्रूर विचारका ' राक्षसभवन ' नहीं होना चाहिये । ' देवोंका घर ' धनसे नहीं होता है, प्रत्युत अंदरकी शांति और प्रसन्नतासे होता है ।

देवोंकी सहायता

घर ऐसे स्थानमें बनाया जावे कि जहां सूर्य, चंद्र, वायु, इन्द्र आदि देवोंसे सहायक शक्ति विपुल प्रमाणमें प्राप्त होती रहे—

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् । उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥ (मं. ४)

' सूर्य, वायु, इन्द्र, बृहस्पति जानते हुए इस घरकी सहा- यता करें । मरुत् नामक बर्साती वायु जलसे सहायता करें और भग राजा कृषि फैलानेमें सहायक हो । '

घरके लिये सूर्य प्रकाश विपुल मिले, शुद्ध वायु मिले, इन्द्र वृष्टि द्वारा सहायता करे, वृष्टि करनेवाले वायु योग्य वृष्टिसे सहायता करें और कृषिका देव भूमिसे कृषिकी योग्य उत्पत्ति करने द्वारा सहायक हो । घर ऐसे स्थानमें अथवा देशमें बनाना चाहिये कि जहां सूर्यादि देवताओं द्वारा योग्य शक्तियोंकी सहायता अच्छी प्रकार मिल जाय, भूमि उप- जाऊ हो, वायु निर्दोष हो, जल आरोग्यदायक और पाचक हो, इस प्रकारके उत्तम देशमें गृहका निर्माण करना चाहिये ।

गृह-निर्माण

कां. ९, सू. ३

(ऋषिः- भृग्वङ्गिराः । देवता- शाला ।)

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत । शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

अर्थ— (विश्ववारायाः शालायाः उपमितां) सब भयके निवारक घरके स्तंभों, (प्रतिमितां) स्तंभोंके जोडों (अथो उत परिमितां) और उत्तम बंधनोंके (नद्धानि वि चृतामसि) ग्रंथियोंको हम बांधते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— बहुत कष्टोंको दूर करनेके लिए घर बनाया जाता है । उस घरके स्तंभों, सहारोंकी लकडियों, डंडियोंकी तथा छप्परकी लकडियोंको हम उत्तम रीतिसे सख्त जोड देते हैं ॥ १ ॥

यत्ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः । बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥ २ ॥
आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् । परूंषि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥ ३ ॥
वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च । पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥
संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च । इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥
यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् ।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥ ६ ॥
हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः । सदो देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (विश्व-वारे) सब दुःखोंका निवारण करनेवाले घर ! (यत् ते नद्धं) जो तेरा बन्धन है, (यः पाशः ग्रन्थिः च कृतः) जो पाश और ग्रंथियां हैं, (बृहस्पतिः वाचा बलं इव) बृहस्पति अपनी वाणीके द्वारा जैसे शत्रु-सैन्यका नाश करता है, उसीप्रकार (तत् विस्रंसयामि) उनको मैं खोलता हूं ॥ २ ॥

(आययाम) इकट्ठा किया, (सं ववर्ह) जोड दिया और (ते दृढान् ग्रंथीन् चकार) तेरे गांठोंको सुदृढ कर दिया है । (परूंषि विद्वान् शस्ता इव) जोडोंको जानकर काटनेवालेके समान (इन्द्रेण विचृतामसि) इन्द्रकी सहायतासे हम बांध देते हैं ॥ ३ ॥

हे (विश्व-वारे) सब कष्टोंके निवारण करनेवाले घर ! (ते वंशानां नहनानां) तेरे बांसों और बंधनों तथा (प्राणाहस्य तृणस्य च) जोडों और घासको तथा (ते पक्षानां नद्धानि) तेरे दोनों ओरके बंधनोंको (वि चृतामसि) मैं बांधता हूं ॥ ४ ॥

(मानस्य पत्न्याः) प्रमाण लेनेवालेके द्वारा पालित हुए घरके (संदंशानां पलदानां) कैंचियोंके और चटाइयोंके (च परिष्वंजल्यस्य) तथा विलासस्थानके (इदं नद्धानि विचृतामसि) इस प्रकारके बंधनोंको मैं बांधतां हूं ॥ ५ ॥

(यानि ते अन्तः शिक्यानि) जो तेरे अन्दर छीकें (रण्याय कं आवेधुः) रमणीयताके लिए सुखसे बांधे गए हैं, (ते तानि प्रचृतामसि) तेरेसे उनको हम बांधते हैं । तू (मानस्य पत्नी) प्रमाण लेनेवालेके द्वारा पालित होने-वाली (उद्धिता) ऊपर उठायी हुई (नः तन्वे शिवा भव) हमारे शरीरके लिए कल्याणकारिणी हो ॥ ६ ॥

हे (शाले देवि) गृहरूपी देवते ! तू (हविर्धानं) हविष्य अन्नका स्थान, (अग्निशालं) अग्निशाला अथवा यज्ञशाला, (पत्नीनां सदनं) स्त्रियोंके रहनेका स्थान, (सदः) रहनेका स्थान और (देवानां सदः) देवताओंका स्थान (असि) है ॥ ७ ॥

भावार्थ— जो बंधन और ग्रंथियां तथा जो और पाश पहिले बांधे थे, उनको मैं अब ढीला करता हूं । जिस प्रकार ज्ञानी अपनी वाणीसे शत्रुसैन्यको ढीला बना देता है ॥ २ ॥

पहिले सब सामान इकट्ठा किया, उसको यथास्थान जोड दिया, उनके जोड बडे मजबूत किये । जोडनेके स्थानोंको यथायोग्य रीतिसे काटनेवाले समान ही काटा और सबको प्रभुत्वके साथ बांधा है ॥ ३ ॥

घरके बांसों, बंधनों, जोडोंके स्थान, घास और दोनों ओरके बंधनोंको योग्य रीतिसे मैं मजबूत बांध देता हूं ॥ ४ ॥

प्रमाणसे बंधे हुए इस घरके कैंचियों, चटाइयों और आन्तरिक स्थानोंके सब बंधनोंको मैं अच्छी प्रकार बांधता हूं ॥ ५ ॥

घरके अन्दर जो छीकें हैं, जिनपर सुख देनेवाले पदार्थ भरकर रखे हुए हैं उनको हम उत्तम रीतिसे बांध देते हैं । इस प्रकार बनाई यह उच्च शाला हमारे शरीरोंको सुख देनेवाली हो ॥ ६ ॥

घरके अन्दर धान्यका स्थान, हवनका कमरा, स्त्रियोंके बैठनेका स्थान, अन्य मनुष्योंके लिए बैठनेका स्थान और देवोंके लिए स्थान होवे ॥ ७ ॥

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति । अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥
यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् । उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥ ९ ॥
अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता । यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ १० ॥
यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् । प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥
नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः । नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥
गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते । विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १३ ॥

अर्थ—(विषूवति ओपशं) आकाश रेखापर आभूषण रूप हुआ हुआ और (विततं सहस्राक्षं अक्षुं) फैला हुआ हजारों छिद्रोंवाला जाल (अवनद्धं अभिहितं) बंधा और तना हुआ है उसे हम (ब्रह्मणा वि चृतामसि) ज्ञानसे बांधते हैं ॥ ८ ॥

हे (मानस्य पत्नि शाले) प्रमाण लेनेवाले द्वारा पालित घर ! (यः त्वा प्रतिगृह्णाति) जो तुझे लेता है, (येन च त्वं मिता असि) जिसने तुझे मापा है, (उभौ तौ) दोनों वे (जरदष्टी जीवतां) वृद्धावस्थातक जीवित रहें ॥ ९ ॥

(यस्याः ते) जिस तेरे (अंगं अंगं परुः परुः) प्रत्येक अंग और प्रत्येक जोडको (विचृतामसि) हमने मजबूत बनाया है, वह तू (अमुत्र दृढा नद्धा परिष्कृता) वहां सुदृढ, बंधी हुई और सुसिद्ध होकर (एनं आगच्छतात्) इसके पास आ ॥ १० ॥

हे शाले ! (यः त्वा निमिमाय) जिसने तुझे बनाया और जिसने (वनस्पतीन् संजभार) वृक्षोंको काटकर जमाया है, हे शाले ! (परमेष्ठी प्रजापतिः) परमेष्ठी प्रजापतिने (त्वा प्रजायै चक्रे) तुझे प्रजाके लिए निर्माण किया है ॥ ११ ॥

(तस्मै दात्रे नमः) उस काटनेवालेको नमस्कार । (शालापतये नमः कृण्मः) शालाके स्वामीको नमस्कार करते हैं । (नमः प्रचरते अग्नये) चलनेवाले अग्निके लिए नमस्कार और (ते पुरुषाय च नमः) तेरे पुरुषके लिए नमस्कार है ॥ १२ ॥

(यत् शालायां विजायते) जो शालामें होते हैं उन (गोभ्यः अश्वेभ्यः नमः) गौओं और घोडोंके लिए नमस्कार । हे (विजावति प्रजावति) उत्पादक और संतानयुक्त घर ! (ते पाशान् वि चृतामसि) तेरे पाशोंको हम बांधते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— ऊपरके भागमें भूषणके समान दिखाई देनेवाला, हजार सुंदर छिद्रोंवाला फैला हुआ जाल हम उत्तम रीतिसे फैलाकर और तानकर बांधते हैं ॥ ८ ॥

यह प्रमाणसे बंधा हुआ घर है, जिसने इसका माप लिया और जिसने यह बनाया वे दोनों दीर्घकालतक जीवित रहें ॥ ९ ॥

इस घरका प्रत्येक भाग और हरएक पुर्जा अच्छी प्रकार सुदृढ बनाया गया है, इस प्रकार सुदृढ बना हुआ यह घर इसके आधीन होवे ॥ १० ॥

प्रजाका पालन करनेकी इच्छा करनेवाले, उच्च स्थानमें स्थिर रहनेवाले बडे कारीगरने इस प्रमाणसे बनाया और उस कार्यके लिये अनेक वृक्षोंको काटा है ॥ ११ ॥

वृक्षोंको काटनेवाले, घरका रक्षण करनेवाले, अग्निको अन्दर रखनेवाले तथा अन्य मनुष्योंके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥

घरमें उत्पन्न होनेवाले सब घोडे और गौओंके लिये मैं नमस्कार करता हूं । इस घरको सुदृढ बनाता हूं ॥ १३ ॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान्पशुभिः सह । विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १४ ॥
अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥
ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता । विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ १६ ॥
तृणैरावृता पलदान्वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥ १७ ॥
इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् । वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥ १८ ॥

अर्थ— (पशुभिः सह पुरुषान्) पशुओंके साथ मनुष्योंको और (अग्निं) अग्निको (अन्तः छादयति) अन्दर गुप्त रखती है । वे (विजावति प्रजावति) उत्पादक और सन्तानयुक्त घर ! तेरे पाशोंको हम बांधते हैं ॥ १४ ॥

(द्यां च पृथिवीं च अन्तरा) द्यु और पृथिवीके मध्यमें (यत् व्यचः) जो विस्तृत अवकाश है, (तेन ते इमां शालां प्रति गृह्णामि) उससे तेरे इस घरको मैं स्वीकार करता हूं । (यत् अन्तरिक्षं रजसः विमानं) जो अन्तरिक्षलोकका बीचमें परिमाण है, (तत् अहं शेवधिभ्यः उदरं कृण्वे) उसे मैं खजानोंके लिए उदर जैसा बनाता हूं । (तेन तस्मै शालां प्रति गृह्णामि) उससे उसके लिए मैं इस घरको स्वीकार करता हूं ॥ १५)

हे शाले ! (ऊर्जस्वती पयस्वती) अन्नयुक्त और रसपानयुक्त तेरा (पृथिव्या निमिता मितां) पृथ्वीपर माप लेकर निर्माण किया गया । (विश्वान्नं बिभ्रती) सब प्रकारके अन्नको धारण करनेवाली तू (प्रतिगृह्णतः मा हिंसीः) लेनेवालेका नाश न कर ॥ १६ ॥

(तृणैः आवृता) घाससे आच्छादित, (पलदान् वसाना) चटाईयोंसे ढकी हुई (मिता शाला) मापी हुई शाला (रात्री इव) रात्रीके समान (जगतः निवेशनी) जगत्को आश्रय देनेवाली तू (पद्वती हस्तिनी इव) उत्तम पांववाली हथिनीके समान (पद्वती पृथिव्यां तिष्ठसि) उत्तम स्तंभोंवाली होकर पृथ्वीपर स्थिर है ॥ १७ ॥

(ते इटस्य अपिनद्धं) तेरी चटाइसे बंधे हुएको (अपऊर्णुवन्) आच्छादित करता हुआ (विचृतामि) मैं बांधता हूं । (वरुणेन समुब्जितां) वरुण द्वारा जलसे सीधी बनायी गई शालाको (मित्रः प्रातः व्युब्जतु) सूर्य सबेरे सीधी बना देवे ॥ १८ ॥

भावार्थ— इस घरके अन्दर मनुष्य, पशु और अग्नि रहते हैं, अतः इस सन्तानयुक्त और उपजाऊ घरके बन्धनोंको मैं सुदृढ करता हूं ॥ १४ ॥

पृथ्वी और द्युलोकमें जो अन्तर है उसमें इस घरका निर्माण हुआ है । इसके मध्यभागमें मैं धनसंग्रह करनेका स्थान बनाता हूं । इस खजानेके स्थानके साथ जो घर होगा उसीको मैं लूंगा ॥ १५ ॥

घरमें सब प्रकारका अन्न, रसपानका साधन, जल आदि सदा उपस्थित हो । घर प्रमाणसे बनाया जावे । सब प्रकारका अन्न उसमें सिद्ध हो । यह घर कभी किसीका नाश नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

इस घरपर घासका छप्पर है, चारों ओर चटाइयोंका वेष्टन है, सब स्थान प्रमाणसे बनाये गए हैं, इस प्रकारका यह घर सुदृढ स्तंभोंपर उसी प्रकार सुरक्षित रहता है, जिस प्रकार हथिनी अपने चार पावोंपर सुरक्षित रहती है ॥ १७ ॥

यह स्थान पहिले चटाईसे आच्छादित था, उसीको अब मैं सुदृढ बनाता हूं । रात्रीके समय इस घरको चन्द्र और दिनके समय सूर्य सरलताका मार्ग दिखाते हैं ॥ १८ ॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् । इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ १९ ॥
कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः । तत्र मर्तो वि जायते यस्माद्विश्वं प्रजायते ॥ २० ॥
या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥ २१ ॥
प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् । अग्निर्ह्य१न्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ २३ ॥
मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव । वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ २४ ॥

अर्थ— (ब्रह्मणा निमितां शालां) ज्ञानीके द्वारा निर्माण की हुई शालाकी और (कविभिः मितां निमितां) कवियों द्वारा प्रमाणसे रची हुई (शालां) शालाकी (अमृता इन्द्राग्नी रक्षतां) अमर इन्द्र और अग्नि रक्षा करें । यह (सौम्यं सदः) सोम-वनस्पतियों-का घर है ॥ १९ ॥

(कुलाये अधि कुलायं) घोसलेपर घोसला और (कोशे कोशः समुब्जितः) कोशपर कोश सीधा रखा हुआ है । (तत्र मर्तः विजायते) वहां मर्त्य उत्पन्न होता है । (यस्मात् विश्वं प्रजायते) जिससे सब उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

(या द्विपक्षा) जो दो पक्षवाली (या चतुष्पक्षा षट्पक्षा निमीयते) और जो चार तथा छः पक्षोंवाली बनायी जाती है, (अष्टापक्षां दशपक्षां) आठ पक्षों तथा दशपक्षोंवाली (मानस्य पत्नीं शालां) प्रमाणसे मापनेवाले के द्वारा पालित शालाका (गर्भः अग्निः इव) गूढस्थानमें स्थित अग्निके समान मैं (आशये) आश्रय लेता हूं ॥ २१ ॥

हे शाले ! (प्रतीचीनः) पश्चिमकी ओर मुख करनेवाला मैं (प्रतीचीं अहिंसतीं त्वा प्रैमि) पश्चिमाभिमुख खडी और न हिंसा करनेवाली तुझ शालाके पास आता हूं । (अग्निः आपः च अन्तः) अग्नि और जल अन्दर हैं जो (ऋतस्य प्रथमा द्वाः) यज्ञके पहिले द्वार हैं ॥ २२ ॥

(इमाः अयक्ष्माः यक्ष्मनाशनीः आपः) ये रोगरहित, रोगनाशक जल (प्रभरामि) शालामें भरता हूं । (अमृतेन अग्निना सह) जल और अग्निके साथ (गृहान् उप प्र सीदामि) घरोंके प्रति मैं आता हूं ॥ २३ ॥

हे शाले ! (नः पाशं मा प्रतिमुचः) हमपर पाश न छोड, (गुरुः भारः, लघुः भव) बडे भारको हलका करनेवाली हो । (वधूं इव) वधूके समान (त्वा यत्र कामं भरामसि) तुझे इच्छाके अनुसार भर देते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ— ज्ञानी और कवियोंने इस घरकी रचना प्रमाणमें की है । इसकी रक्षा इन्द्र और अग्नि करें । यह घर शान्ति देनेवाला हो ॥ १९ ॥

घोसलेपर घोसला अथवा कोशपर कोश रखनेके समान यहां पहिले मजलेपर दूसरा मजला बनाया है । इसमें मनुष्य का जन्म होता है, इसीसे सबकी उत्पत्ति होती है ॥ २० ॥

यह घर दो, चार, छः, आठ या दस कक्षावाला होता है, जैसे पेटमें गर्भ सुरक्षित रहता है उसी प्रकार मैं, इसके आश्रयमें रहता हुआ सुरक्षित रहता हूं ॥ २१ ॥

घरके पश्चिमकी ओर मुख करके घरमें मनुष्य प्रवेश करे । घरमें अग्नि और जल सदा रखा जावे । ये ही दो पदार्थ गृहस्थाश्रमके यज्ञको सिद्ध करनेवाले हैं । इस प्रकारका घर सदा सुख देनेवाला होगा ॥ २२ ॥

जहां रोग दूर करनेवाला पानी हो, वहांसे उसे घरमें भरना चाहिये । घरमें जल और अग्नि सदा रहने चाहिये । ऐसे घरमें मनुष्य निवास करे ॥ २३ ॥

इस प्रकारके घरमें रहनेसे संसारका बडा भार बहुत हलका होगा । जिस प्रकार कुलवधूका संरक्षण और पोषण लोग करते हैं, उसी प्रकार ऐसे घरकी रक्षा करनी चाहिये और इस घरमें उत्तमोत्तम पदार्थ लाकर रखने चाहिये ॥ २४ ॥

प्राच्यां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २५ ॥
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २६ ॥
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २७ ॥
उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २८ ॥
ध्रुवायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३० ॥
दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३१ ॥

अर्थ—(शालायाः प्राच्याः दक्षिणायाः) घरकी पूर्व और दक्षिण (प्रतीच्याः उदीच्याः) पश्चिम और उत्तर (ध्रुवायाः ऊर्ध्वायाः) ध्रुव और ऊर्ध्व (दिशोदिशः) दिशा और उपदिशाओंके (महिम्ने नमः) महिमाके लिये नमस्कार हो, तथा (स्वाह्येभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) उत्तम वर्णन करने योग्य देवोंके लिये (स्वाहा= सु+आह) उत्तम प्रशंसा कहते हैं ॥ २५-३१ ॥

घरकी चारों दिशाओं और उपदिशाओंमें जो सुंदर दृश्योंकी महिमा हो, उसको सत्कारपूर्वक प्रसन्नता बढानी चाहिये। उत्तम प्रशंसनीय पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, आदि देवोंकी प्रसन्नता इस घरपर रहे, ऐसा आचार व्यवहार करना चाहिये ॥ २५-३१ ॥

गृह-निर्माण

घरकी प्रसन्नता

गृहनिर्माण करनेका और उसको आनंदित, प्रसन्न तथा उत्तम स्वास्थ्यसंपन्न रखनेका उपदेश इस सूक्तमें है। घर उत्तम प्रमाणसे निर्माण किया जावे उसके स्तंभ, ऊपरकी लकडियां, छप्परका लकडीका सामान सब सुंदर तथा सुव्यवस्थित होवे और सब जोड अच्छे प्रकार मजबूत किये जावें। किसी स्थानपर कमजोरी न रहे। क्योंकि सब घरवालोंका स्वास्थ्य घरकी सुरक्षितता पर निर्भर है। ऐसा सुंदर और मजबूत घर रहनेवालोंके कष्टोंको दूर कर सकता है, परंतु कमजोर और अशक्त तथा बेख्यालसे बनाया गया घर रहनेवालोंका कब नाश करेगा, इसका भी पता नहीं होता।

बढई और अन्य कारीगर ऐसे लगाये जावें कि जो संधिस्थानोंको (परूंषि विद्वान् शस्ता) अच्छी प्रकार काटने और जोडनेकी कला जाननेवाले हों। बांस, लकडियां, घास, चटाइयां आदि जो भी सामान घरमें रखनेका अथवा घरपर लगानेका हो वह सब उत्तम, निर्दोष और सुव्यवस्थासे रखा जावे।

गृहनिर्माण करनेकी विद्या जाननेवालेको ' मानपति ' कहते हैं। यह घरके प्रमाणसे नकशा तैयार करता है और उसी प्रमाणसे भूमिपर रचना करवाता है। इसके लिए प्रमाणोंसे प्रमाणयुक्त जो घर होता है वह सुखदायी होता है। ' मानपति ' (इंजिनियर) को ' सूत्रधार ' भी कहते हैं क्योंकि यह सूत्रसे सबको प्राप्त है। इस ' मानपति ' द्वारा बनाये जानेके कारण इस शालाको ' मान-पत्नी ' कहते हैं।

घरमें छींके टंगे हों और उनपर घृतदुग्धादि पदार्थ रखे जांय। यहां रखनेसे पदार्थ चींटियों और चूहोंसे बचते हैं। और इस कारण आरोग्य देनेवाले होते हैं।

घर (उद्धित) ऊंचे स्थानपर और ऊंचा हो। नीचे न हों क्योंकि ऊंचे घरमें शुद्धवायु आती है जो मनुष्योंको नीरोग बना देती है। अतः कहा है कि—

उद्धिता शाला तन्वे शं भवति। (मं. ६)

' ऊंचा घर शरीरके लिए सुखकारक होता है। ' वैसा नीचा घर नहीं होता। घरमें उपासना करनेका स्थान, संध्या

हवन करनेके योग्य कमरा, भोजनशाला, स्त्रियोंके लिए स्थान, अतिथियों और घरवालोंके रहनेका स्थान, धान्यादिके संग्रह स्थान ऐसे अलग अलग कमरे हों। घरकी छतपर सुन्दर कपडा ताना जावे, जिससे कमरेकी शोभा बढती है। घरमें रहनेवाले ऐसा कहें, कि घरका निर्माण करनेवाला " मानपति " (इंजिनियर) और बनानेवाले कारीगर दीर्घ आयुतक जीवित रहें। यह तभी हो सकता है, जब उसमें रहनेवाले सुखपूर्वक रहें। अतः घर बनानेवाले लोग कुशलता-पूर्वक गृहनिर्माणका कार्य करें और घरमें रहनेवालोंको सुख हो, इस विचारसे घर बनावें। केवल वेतनके लिए बनाया जाय तो यह बात नहीं बनेगी। यह तो एक परस्पर प्रेमका विचार है। इसी विचारसे ग्रामके कारीगर और गृहके स्वामी इनमें परस्पर हितकी बुद्धि जाग्रत रहेगी।

वृक्ष काटनेवाले, विविध लकडियां बनानेवाले, अन्य गृहो-पयोगी सामान संग्रहीत करनेवाले, जोडनेवाले और घरमें रहनेवाले इन सबकी सहकारितासे घरका निर्माण होता है, अतः ग्राममें इनकी सहकारिता होनी चाहिए और एकका हित दूसरेको करना चाहिये, घरका स्वामी धनवान् और प्रतिष्ठित भले ही क्यों न हों, परंतु जिस समय वह लकडी काटनेवालेको मिले, वह (तस्मै दात्रे नमः) उस लकडी काटनेवालेको नमस्कार करे, वह लकडी काटनेवाला निर्धन ही क्यों न हो, परंतु वह घरके मालिकसे मिले तो वह (शालापतये नमः) घरके स्वामीको नमस्कार करे। इस प्रकार ये लोग परस्पर सन्मान करें, एक दूसरेका आदर करें। कोई किसीका निरादर न करे।

यहांतक आदर दर्शाना चाहिए कि घरका स्वामी अपने घोडों, गौवों, बैल आदि पशुओंका भी उत्तम प्रकार आदर सत्कार करे। इस प्रकार जहां सबका सत्कार होता है ऐसे घरमें रहनेवाले मनुष्य उत्तम आनन्दका अनुभव करेंगे, इसमें संदेह ही क्या हो सकता है ?

घर ऐसा बनाया जावे कि जो पीछेके आकाशपर सुंदर दिखाई देवे। घरके आसपासकी शोभा वृक्षादिकोंसे सुंदर दिखाई देवे और प्रयत्नसे अधिक सौंदर्य बनाया जावे। घरके मध्यमें अत्यंत सुरक्षित स्थानमें धन, जेवर आदि रख-नेका स्थान- खजानेका कमरा-बनाया जावे। (शेवधिभ्यः उदरं) जैसे मनुष्यके शरीरमें पेट बीचमें होता है, अति सुरक्षित स्थानपर होता है, उसी प्रकार यहां घरके मध्यमें खजानेका कमरा बनाया जावे। घरमें धान्यके स्थानमें सब प्रकार (ऊर्जः) धान्य, (विश्वान्नं) अन्नकी सामग्री संग्रहीत की जावे, (पयः) जल, पेय पदार्थ, रसपानके साधन घरमें भरपूर हों ऐसा घर सब रहनेवाले पारिवारिक जनोंको सुख देता है।

घरके स्तंभ ऐसे बलवान् हों जैसे हथिनीके पांव होते हैं, क्योंकि इन्हींपर घरका छप्पर आदि रहता है। दूसरी मंजिल बनानी हो तो एकके ऊपर दूसरी बनायी जावे, जैसे (कुलाये अधि कुलायं) घोसला एकपर दूसरा बनाते हैं और (कोशे कोशः) एक कोश पर दूसरा कोश रखा जाता है। नीचेका स्थान मजबूत हो, नहीं तो ऊपरके भारसे निचला स्थान दब जायगा। ऐसे उत्तम घरमें मनुष्यका जन्म होवे। सभी प्राणियोंके लिए ऐसे स्थान बनाये जावें। पक्षी भी प्रसूतिके पूर्व उत्तम घोसले निर्माण करते हैं, पशु भी सुरक्षित स्थान देखते हैं, यह देखकर मनुष्योंको अपने घरोंमें प्रसूतिके लिए उत्तम स्थान बनाने चाहिये।

घरमें दो, चार, छः, आठ, दस कमरे अथवा चौक बनाये जा सकते हैं। अंदर रहनेवाले मनुष्योंकी संख्याके अनुसार तथा उस घरमें होनेवाले कार्योंके अनुसार घर छोटा या बडा होना चाहिए।

अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः। (मं. २२)

" घरमें अग्नि और जल अवश्य रहे, क्योंकि इन्हींसे सब प्रकारके यज्ञ होते हैं। " कोई अतिथि आजाए तो उसको श्रमपरिहारके लिए कमसे कम जलपान दिया जावे और शीतनिवारणके लिए आगके स्थानके पास उसको बिठलाया जावे। ये दो पदार्थ गरीबसे गरीब और धनीसे धनी मनुष्य के घरमें अवश्य रहें और इनसे आदरातिथ्य होवे। मनु-स्मृतिमें भी कहा है कि—

> तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
> एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। (मनु. ३।१०१)

" बैठनेके लिए चटाई, भूमि, जल और मीठा भाषण ये चार बातें अतिथिके आदरके लिए सज्जनोंके घरमें कभी न्यून नहीं होतीं। " यहां उदक है। वेदके ऊपरके मंत्रमें जल पीनेके लिए और आग सेकनेके लिए प्रत्येक घरमें अवश्य रहे ऐसा कहा है। अतिथिके समादरके ये प्रकार ध्यानसे देखने योग्य हैं। घरमें जल रखना हो तो उत्तम निर्दोष रखना चाहिये इस विषयमें सूचना यह है—

> अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः आपः प्रभरामि।
> गृहान् उपप्रसीदामि। (मं. २३)

'मैं घरमें ऐसा जल भरता हूं कि जो स्वयं रोग उत्पन्न करनेवाला न हो और जो रोगोंको दूर करनेवाला हो। इस रीतिसे मैं घरकी प्रसन्नता बढाता हूं।' हरएक गृहस्थी ऐसा ही कहे और अपने घरकी अधिकसे अधिक प्रसन्नता करनेका यत्न करे। (वधूं इव) जैसे स्त्रीकी रक्षा की जाती है, उसी प्रकार गृहकी भी रक्षा करनी योग्य है। यहां वधूकी प्रसन्नता रखना, उसको हृष्टपुष्ट रखना, सुरक्षित रखना आदि बातें जानने योग्य हैं और इस दृष्टांतसे घरकी सुरक्षितताकी बातें भी जानी जाती हैं। शाला (घर) भी एक कुलवधु है ऐसा मानकर उसकी सुरक्षितता और शोभाके बढानेके लिए प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही (गुरुः भारः लघुः) संसारका बडा भारी बोझ बहुत हलका हो जाता है।

जहां ऐसे ढंगसे कुलवधुके समान घरकी सुव्यवस्था की जाती है, वहां घरके चारों ओरकी दिशा और उपदिशाएं प्रसन्न होती हैं और वहां देवताओंके निवासके योग्य स्थान बनता है और घरकी महिमा बढ जाती है।

हरएक गृहस्थी अपने घरकी महिमा इस प्रकार बढावे और अपना घर देवताओंके निवासके योग्य करे और अपने सिरपरका संसारका बोझ हलका करे।

घरकी शोभा

कां. ६, सू. १०६

(ऋषिः- प्रमोचनः। देवता- दूर्वाशाला।)

आय॑ने ते परा॒य॑णे॒ दूर्वा॑ रोहतु पु॒ष्पिणीः॑। उत्सो॑ वा॒ तत्र॒ जाय॑तां ह्र॒दो वा॑ पु॒ण्डरी॑कवान् ॥ १ ॥
अ॒पामि॒दं न्यय॑नं समु॒द्रस्य॑ नि॒वेश॑नम्। मध्ये॑ ह्र॒दस्य॑ नो गृ॒हाः परा॒ची॒ना मुखा॑ कृधि ॥ २ ॥
हि॒मस्य॑ त्वा ज॒रायु॑णा॒ शाले॒ परि॑ व्ययामसि। शी॒तह्र॑दा हि नो॒ भुवो॒ऽग्निष्कृ॑णोतु भेष॒जम् ॥ ३ ॥

अर्थ— (ते आयने परायणे) तेरे घरके आगे और पीछे (पुष्पिणीः दुर्वाः रोहन्तु) फूलोंसे युक्त दूर्वा घास उगे, (तत्र वा उत्सः जायतां) और वहां एक हौद हो, (वा पुण्डरीकवान् ह्रदः) अथवा वहां कमलोंवाला तालाब बने ॥ १ ॥

(इदं अपां न्ययनं) यह जलोंका प्रवाहस्थान होवे, (समुद्रस्य निवेशनं) समुद्रके समीपका स्थान हो, (ह्रदस्य मध्ये नः गृहाः) तालाबके बीचमें हमारे घर हों, (मुखाः पराचीना कृधि) घरके द्वार परस्पर विरुद्ध दिशामें कर ॥ २ ॥

हे शाले! (त्वा हिमस्य जरायुणा) तुझे शीतके आवरणसे (परि व्ययामसि) घेरते हैं। (नः शीतह्रदाः भुवः) हमारे लिये शीतल जलवाले तालाब बहुत हों, और हमारे लिये (अग्निः भेषजं कृणोतु) अग्नि शीत निवारणका उपाय करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— घरके आगे और पीछे दूर्वाका उद्यान हो, उसमें बहुत प्रकारके फूल उत्पन्न हों, वहां पानीका हौद हो व कमलोंवाला तालाब हो ॥ १ ॥

घरके पास जलके प्रवाह चलें, घरका स्थान समुद्रके किनारेपर हो अथवा तालाबके मध्यमें हो और घरके दरवाजे या खिडकियां आमने सामने हों ॥ २ ॥

घरके चारों ओर जल हो, शीत जलके हौद हों और यदि सर्दी अधिक हो तो शीतनिवारणके लिये घरमें अग्नि जलाने-का स्थान हो ॥ ३ ॥

घरके आसपासकी शोभा कैसी हो, यह इस सूक्तने उत्तम रीतिसे बताया है। घरके चारों ओर बाग हो, कमलोंसे भरपूर तालाब हो, जलकी नहरें बहें, उद्यान उत्तम हो और चारों ओर रमणीय शोभा बने। ऐसा सुरम्य घरके आसपासका स्थान होना चाहिये। घरके द्वार और खिडकियां आमने सामने हो, जिससे घरमें शुद्ध वायु विना रोकटोकके आ सके। घरमें अग्नि जलती रहे। शीत लगने पर घरके लोग अग्निके पास जाकर शीतनिवारणका उपाय करें।

रमणीय घर

कां. ७, सू. ६०

(ऋषिः– ब्रह्मा । देवता– गृहाः, वास्तोष्पतिः ।)

ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥ १ ॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः । पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥ २ ॥
येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः । गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥ ३ ॥
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः । अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद्बिभीतन ॥ ४ ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥

अर्थ— (ऊर्जं बिभ्रत् वसुवनिः) अन्नको धारण करनेवाला, धनका दान करनेवाला, (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान् (अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा सुमनाः) शान्त और मित्रकी दृष्टि धारण करनेके कारण उत्तम मनवाला होकर तथा (वन्दमानः) सब श्रेष्ठ पुरुषोंको नमन करता हुआ, मैं (गृहान् एमि) अपने घरके पास प्राप्त होता हूं। यहां तुम (रमध्वं) आनन्दसे रहो, (मत् मा बिभीत) मुझसे मत डरो ॥ १ ॥

(इमे गृहाः) ये हमारे घर (मयो-भुवः ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः) सुखदायी, बलदायक धान्यसे युक्त और दूधसे युक्त हैं। ये (वामेन पूर्णाः तिष्ठन्तः) सुखसे परिपूर्ण हैं, (ते आयतः नः जानन्तु) वे आनेवाले हम सबको जानें ॥ २ ॥

(प्रवसन् येषां अध्येति) अन्दर रहता हुआ जिनके विषयमें जानता है, कि (येषु बहुः सौमनसः) जिनमें बहुत सुख है, ऐसे (गृहान् उपह्वयामहे) घरोंके प्रति हम इष्ट मित्रोंको बुलाते हैं; (ते नः आयतः जानन्तु) वे आनेवाले हम सबको जाने ॥ ३ ॥

(भूरिधनाः स्वादुसंमुदः सखायः उपहूताः) बहुत धनवाले, मीठेपनसे आनन्दित होनेवाले अनेक मित्र बुलाये गए हैं। हे (गृहाः) घरो ! तुम (अक्षुध्याः अ-तृष्याः स्त) क्षुधावाले और तृषावाले न हो, तथा (अस्मत् मा बिभीतन) हमसे मत डरो ॥ ४ ॥

(इह गावः उपहूताः) यहां गौवें बुलाईं गईं तथा (अज-अवयः उपहूताः) बकरियां और भेडें भी लाईं गईं (अथो अन्नस्य कीलालः) और अन्नका सत्वभाग भी (नः गृहेषु उपहूतः) हमारे घरमें लाया गया है ॥ ५ ॥

भावार्थ— मैं स्वयं उत्तम अन्न, विपुल धन, श्रेष्ठ बुद्धि और मित्रकी दृष्टिको धारण करके उत्तम विचारोंके साथ पूजनीयोंका सत्कार करता हुआ घरमें प्रवेश करता हूं, सब लोग यहां आनन्दसे रहें और किसी प्रकार यहां मेरेसे डर उत्पन्न न हो ॥ १ ॥

इन घरोंमें हमें सुख मिले, बल प्राप्त हो, और सब आनन्दसे रहें ॥ २ ॥

इन घरोंमें रह कर हमें सुखका अनुभव हो, हम यहां इष्टमित्रोंको बुलावें और सब आनन्दसे रहें ॥ ३ ॥

बहुत धनी, आनन्दवृत्तिवाले बहुत मित्र घरमें बुलाये गए हैं, उनको यहां जितना चाहे उतना खानपान प्राप्त हो, यहां सबकी विपुलता रहे और कोई भूखा प्यासा न रहे ॥ ४ ॥

हमारे घरमें गौवें, बकरियां और भेडें रहें, सब प्रकारका सत्ववाला अन्न रहे, किसी प्रकारकी न्यूनता न रहे ॥ ५ ॥

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः । अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद्बिभीतन ॥ ६ ॥
इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत । ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (गृहाः) घरो ! तुम (सूनृता-वन्तः सुभगाः) सत्ययुक्त और उत्तम भाग्यवाले, (इरावन्तः हसा-मुदाः) अन्नवान् और हास्य विनोद युक्त तथा (अतृष्याः अक्षुध्याः) क्षुधा और तृषाके भयसे रहित (स्त) होवें। (अस्मत् मा बिभीतन) हमसे मत डरो ॥ ६ ॥

(इह एव स्त) यहीं रहो, (मा अनु गात) हमसे दूर मत भागो, (विश्वा रूपाणि पुष्यत) विविध रूपवाले प्राणियोंको पुष्ट करो, (भद्रेण सह आ ऐष्यामि) कल्याणके साथ मैं तुम्हें प्राप्त होता हूं। (मया भूयांसः भवत) मेरे साथ बहुत हो जाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— घर घरमें सत्य, भाग्य, अन्न, आनन्द, हास्य और खान और पानकी विपुलता रहे ॥ ६ ॥

घर सुदृढ हों, अस्थिर न हों, घरमें सबका उत्तम पोषण होता रहे। कल्याण और सुख सबको प्राप्त हो और हमारी वृद्धि होती रहे ॥ ७ ॥

रमणीय घर कैसा होना चाहिये, यह विषय इस सूक्तमें सुबोध रीतिसे कहा है। घरमें प्रेम रहे, द्वेष न रहे, सब लोग आनन्दसे रहें, परस्पर भय न हो, वहां धनधान्यकी सुख समृद्धि हो, गोरस विपुल हो, किसी प्रकार सुखभोगकी न्यूनता न हो। इष्टमित्र आवें, आनन्द करें, कोई कभी भूखा न रहे, अन्नपान सत्ववाला हो, हरएक हृष्टपुष्ट हो, कोई किसी कारण पीडित न हो। इस प्रकारके घर होने चाहिये। यही गृहस्थाश्रम है।

गाय

कां. ७, सू. ८२

(ऋषिः- शौनकः (संपत्कामः)। देवता- अग्निः।)

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ताम् ॥ १ ॥
मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन । मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥ २ ॥

अर्थ— (सु-ष्टुतिं गव्यं आजिं अभ्यर्चत) उत्तम स्तुति करने योग्य गौ संबंधी प्रगतिकी सीमाका आदर करो। (अस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त) हममें कल्याणकारी धन धारण कराओ। (नः इमं यज्ञं देवता नयत) हमारे इस यज्ञको देवताओंतक पहुंचाओ। (घृतस्य धाराः मधुमत् पवन्तां) घीकी धाराएं मधुरताके साथ बहें ॥ १ ॥

(अग्रे मयि क्षत्रेण वर्चसा बलेन सह अग्निं गृह्णामि) पहिले मैं अपने अन्दर क्षात्रशौर्य, ज्ञानके तेज और बलके साथ रहनेवाले अग्निको ग्रहण करता हूं। (मयि प्रजां) अपने अन्दर प्रजाको, (मयि आयुः) अपने अन्दर आयुको, (मयि अग्निं) अपने अन्दर अग्निको (दधामि) धारण करता हूं, (स्वाहा) यह ठीक कहा है ॥ २ ॥

भावार्थ— गौओंकी उन्नतिका विचार करो, क्योंकि यही उत्तम प्रशंसाके योग्य कार्य है। घीकी मीठी धाराएं विपुल हों अर्थात् घरमें घी विपुल हो, कल्याण करनेवाला विपुल धन प्राप्त करे और इन सबका विनियोग प्रभुकी संतुष्टिके लिए यज्ञमें किया जावे ॥ १ ॥

मेरे अन्दर शौर्य, ज्ञान, बल, संतति, आयु आदि स्थिर रहे ॥ २ ॥

इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥ ३ ॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीनन्नु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ४ ॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत्प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन्प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥ ५ ॥
घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य१ आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥ ६ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! (इह एव रयिं अधिधारय) यहां ही धनको धारण कराओ । (पूर्वचित्ताः निकारिणः त्वा मा निक्रन्) पूर्वकालसे मन लगानेवाले अपकारी लोग तेरे संम्बन्धमें अपकार न करें । हे अग्ने ! (क्षत्रेण तुभ्यं सुयमं अस्तु) क्षात्र बलसे तेरे लिये उत्तम नियमन होवे । (उपसत्ता अनिष्टृतः वर्धतां) तेरा सेवक अहिंसित होता हुआ बढे ॥ ३ ॥

(अग्निः उषसां अग्रं अनु अख्यत्) अग्नि-सूर्य-उषःकालोंके अग्रभागमें प्रकाश करता है । (प्रथमः जातवेदाः अहानि अनु अख्यत्) पहिला जातवेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है । वही (सूर्यः अनु) सूर्य अनुकूलताके साथ (उषसः अनु) उषःकालोंके अनुकूल, (रश्मीन् अनु) किरणोंके अनुकूल, (द्यावापृथिवी अनु आ विवेश) द्युलोक और पृथ्वीलोकके बीचमें अनुकूलताके साथ व्याप्त होता है ॥ ४ ॥

(अग्निः उषसां अग्रं प्रति अख्यत्) अग्नि-सूर्य-उषाओंके अग्रभागमें प्रकाशता है । (प्रथमः जातवेदाः अहानि प्रति अख्यत्) पहिला जातवेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है । (सूर्यस्य रश्मीन् पुरुधा प्रति) सूर्यकी किरणोंको विशेष प्रकार प्रकाशित करता है। तथा (द्यावापृथिवी प्रति आ ततान) द्यावापृथिवीको उसीने फैलाया है ॥५॥

हे अग्ने ! (ते घृतं दिव्ये सधस्थे) तेरा घृत दिव्य स्थानमें है । (मनुः त्वां घृतेन अद्य सं इन्धे) मनुष्य तुझे घीसे आज प्रज्वलित करता है । (नप्त्यः देवीः ते घृतं आवहन्तु) न गिरानेवाली दिव्य शक्तियां तेरे घृतको ले आवें । हे अग्ने ! (गावः तुभ्यं घृतं दुह्रतां) गौवें तेरे लिये घीको देवें ॥ ६ ॥

भावार्थ— मुझे धन प्राप्त हो । अपकारी लोग अपकार न कर सकें। क्षात्रतेजसे सर्वत्र नियमव्यवस्था उत्तम रहे। प्रभुका भक्तसेवक-वृद्धिको प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

सूर्य उषाके पश्चात् प्रकट होता है और दिनमें प्रकाश करता है । वह प्रकाशसे द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें व्याप्त होता है ॥ ४-५ ॥

मनुष्य घीसे अग्निमें यजन करे, क्योंकि घीही उत्तम दिव्य स्थानमें रहनेवाला है । गौवें हवनके लिये उत्तम घी तैयार करें ॥ ६ ॥

इस सूक्तमें गोरक्षाकी महिमाका वर्णन है । साथ ही गौके घृतके हवनका भी माहात्म्य इसमें बताया है । घृतके हवनसे रोगोंके दूर होनेकी बात इससे पूर्व (अथर्व कां० ७६।५) कही है । अतः रोग दूर होनेके बाद दीर्घ आयु, बल, तेजस्विता, ज्ञान, धन आदिका प्राप्त होना संभव है ।

गाय

कां. ४, सू. २१

(ऋषिः– ब्रह्मा । देवता– गावः ।)

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥ १ ॥
इन्द्रो॒ यज्व॑ने गृण॒ते च॒ शिक्ष॑त॒ उपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति ।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् ॥ २ ॥
न ता न॑शन्ति॒ न द॑भाति॒ तस्क॑रो॒ नासा॑मामि॒त्रो व्यथि॒रा द॑धर्षति ।
दे॒वांश्च॒ याभि॒र्यज॑ते॒ ददा॑ति च॒ ज्योगित्ताभि॑ः सचते॒ गोप॑तिः स॒ह ॥ ३ ॥
न ता अर्वा॑ रे॒णुक॑काटोऽश्नुते॒ न सं॑स्कृत॒त्रमुप॑ यन्ति॒ ता अ॒भि ।
उ॒रु॒गा॒यमभ॑यं॒ तस्य॒ ता अनु॒ गावो॒ मर्त॑स्य॒ विच॑रन्ति॒ यज्व॑नः ॥ ४ ॥

अर्थ— (गावः आ अग्मन्) गौवें आगई हैं और (उत भद्रं अक्रन्) उन्होंने कल्याण किया है। (गोष्ठे सदिन्तु) वे गोशालामें बैठें और (अस्मे रणयन्) हमें सुख देवें। (इह प्रजावतीः पुरुरूपा स्युः) यहां वे उत्तम बचोंसे युक्त और बहुत रूपवाली हों (इन्द्राय उषसः पूर्वीः दुहानाः) और परमेश्वरके यजनके लिये उषःकालके पूर्व दूध देनेवाली होवें ॥ १ ॥

(इन्द्रः यज्वने गृणते च शिक्षते) ईश्वर यज्ञकर्ता और सदुपदेश कर्ताको सत्य ज्ञान देता है। वह (इत् उप ददाति) निश्चयपूर्वक धनादि देता है (स्वं न मुषायति) और अपनेको नहीं छिपाता। (अस्य रयिं भूयः भूयः इत् वर्धयत्) इसके धनको अधिकाधिक बढाता है और (देवयुं अभिन्ने खिल्ये निदधाति) देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेको अपनेसे अभिन्न और स्थिर स्थानमें धारण करता है ॥ २ ॥

(ताः न नशन्ति) वह यज्ञकी गौवें नष्ट नहीं होतीं, (तस्करः न दभाति) चोर उनको दबाता नहीं, (आसां व्यथिः न आ दधर्षति) व्यथा देनेवाला शत्रु इनपर अपना अधिकार नहीं चलाता, (याभिः देवान् यजते) जिनसे देवोंका यज्ञ किया जाता है और (ददाति च) दान दिया जाता है (गोपतिः ताभिः सह ज्योक् इत् सचते) गोपालक उनके साथ चिरकालतक रहता है ॥ ३ ॥

(रेणुक-काटः अर्वा ताः न अश्नुते) पांवोंसे धूलि उडानेवाला घोडा इन गौवोंकी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकता। (ताः संस्कृतत्रं न अभि उप यन्ति) वे गौवें पाकादि संस्कार करनेवालेके पास भी नहीं जातीं। (ताः गावः) वे गौवें (तस्य यज्वनः मर्तस्य) उस यज्ञकर्ता मनुष्यकी (उरुगायं अभयं अनु विचरन्ति) बडी प्रशंसनीय निर्भयतामें विचरती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— गौवें हमारे घरमें आगई हैं और उन्होंने हमारा कल्याण किया है। वे गौवें इस गोशालामें बैठें और हमारा आनंद बढावें। वे गौवें यहां बहुत बचोंसे युक्त और अनेक रंगरूपवालीं होकर ईश्वरके यज्ञके लिये प्रातःकाल दूध देनेवाली होवें ॥ १ ॥

ईश्वर सत्कर्मकर्ता और सदुपदेश दाताको उत्तम ज्ञान देता है और धनादि भी देता है तथा उसके सन्मुख अपने आपको प्रकट करता है। वह ईश्वर इस उपासकके धनकी वृद्धि करता है और देवत्वकी इच्छा करनेवाले भक्तको अपने ही अंदरके स्थित स्थानमें धारण करता है ॥ २ ॥

इन गौओंका नाश नहीं होता, चोर उनको नहीं चुराता और न इनको कोई कष्ट ही देता है। इनके दूधसे ईश्वरका यज्ञ किया जाता है। इस प्रकार गौओंका पालनकर्ता गौओंके साथ चिरकाल आनंदमें रहता है ॥ ३ ॥

फुर्तीले घोडेको भी गायकी योग्यता प्राप्त नहीं होती। ये गौवें अन्न पकानेवालेकी पाकशालामें नहीं जातीं। ये गौवें यजमानकी निर्भय रक्षामें विचरती हैं ॥ ४ ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥
प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ७ ॥

अर्थ—(गावः भगः) गौवें धन हैं, (गावः इन्द्रः) गौवें प्रभु हैं, (गावः प्रथमस्य सोमस्य भक्षः) गौवें पहिले सोमरसका अन्न हैं (मे इच्छात्) यह मैं जानता हूं । (इमा या गावः) ये जो गौवें हैं । हे (जनाः) लोगो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है । (हृदा मनसा चित् इन्द्रं इच्छामि) हृदयसे और मनसे निश्चयपूर्वक मैं इन्द्रको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥

हे (गावः) गौओ ! (यूयं कृशं चित् मेदयथ) तुम दुर्बलको भी पुष्ट करती हो, (अ-श्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ) निस्तेजको भी सुंदर बनाती हो । हे (भद्रवाचः) उत्तम शब्दवाली गौवो ! (गृहं भद्रं कृणुथ) घरको कल्याणरूप बनाती हो, इसलिये (सभासु वः बृहत् वयः उच्यते) सभाओंमें तुम्हारा बडा यश गाया जाता है ॥ ६ ॥

(प्रजावतीः) उत्तम बच्चोंवाली (सु-यवसे रुशान्तीः) उत्तम घासके लिये भ्रमण करनेवाली, (सु-प्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) उत्तम जल स्थानमें शुद्धजल पीनेवाली गौवों ! (स्तेनः अघशंसः वः मा ईशत) चोर और पापी तुमपर अधिकार न करे । (वः रुद्रस्य हेतिः परिवृणक्तु) तुम्हारी रक्षा रुद्रके शस्त्रसे चारों ओरसे होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ— गौवें ही मनुष्यके धन, बल और उत्तम अन्न हैं । इसलिये मैं सदा गौवोंकी उन्नति हृदय और मनसे चाहता हूं ॥ ५ ॥

अत्यंत दुर्बल मनुष्यको गौवें अपने दूधसे पुष्ट बनाती हैं । निस्तेज पांडुरोगीको सुंदर तेजस्वी करती हैं । गौवोंका शब्द बडा आल्हाददायक होता है । ये गौवें हमारे घरको कल्याणका स्थान बनाती हैं, इसीलिये सभाओंमें गौओंके यशका वर्णन किया जाता है ॥ ६ ॥

गौवें उत्तम बछडोंसे युक्त हों, वे उत्तम घास खायें, शुद्ध स्थानका पवित्र जल पीयें । कोई पापी या चोर उनका स्वामी न बने और वे सर्वदा सुरक्षित रहें ॥ ७ ॥

गौ

गौका सुंदर काव्य

यह सूक्त गौका अत्यंत सुंदर काव्य है । इतना उत्तम वर्णन बहुत ही थोडे स्थानपर मिलेगा । गौका महत्त्व इस काव्यमें अति उत्तम शब्दों द्वारा बताया है । जो लोग गौका यह काव्य पढेंगे, वे गौका महत्त्व जान सकते हैं । गौ घरकी शोभा, कुटुंबका आरोग्य, बल और पराक्रम तथा परिवारका धन है, यह इस सूक्तमें स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है ।

गौ घरकी शोभा है

इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखिये—

(१) गावः भद्रं अक्रन् । (मं. १)

(२) गावः ! भद्रं गृहं कृणुथ । (मं. ६)

' गौवें घरको कल्याणका स्थान बनाती हैं । ' अर्थात् जिस घरमें गौवें रहती हैं, वह कल्याणका धाम होता है ।

पुष्टि देनेवाली गौ

मनुष्यकी पुष्टि बढानेवाली गौ है, इसलिये हरएक घरमें गौका निवास होना चाहिये। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र-भाग देखिये—

(१) गावः अस्मे रणयन्। (मं. १)
(२) गावः! यूयं कृशं चित् मेदयथ। (मं. ६)
अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ। (मं. ६)

'गौवें हमें रमणीय बनाती हैं। कृश मनुष्यको गौवें पुष्ट बनाती हैं। निस्तेजको सतेज करती हैं।' इसीलिये घरमें गौ रखनी चाहिये और हरएकको उस गौ माताका दूध पीना चाहिये। तथा उसकी उत्तम सेवा करनी चाहिये। हरएक गृहस्थीका यह आवश्यक कर्तव्य है।

गौ ही धन, बल और अन्न है

मनुष्यको धन, बल और अन्न गौ ही देती है। सब यश गौसे प्राप्त होता है, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखिये—

(१) गावः भगः। गावः इन्द्रः।
गावः सोमस्य भक्षः।
इमा याः गावः स इन्द्रः। (मं. ५)

'गौवें धन हैं, गौवें ही इन्द्र (बलके देवता) हैं, गौवें ही (दूध देनेके कारण) अन्न हैं। जो गौवे हैं वही इन्द्र है।' गौवोंको 'धन' कहा ही जाता है। महाराष्ट्रमें गौका नाम 'धण' है, यह धन शब्दका ही अपभ्रष्ट रूप है। धनका देवता वेदमें भग है, वह गौके रूपमें हमारे पास आया है। जो लोग गौको अपने घरमें स्थान नहीं देते, वे मानो, धनको ही अपने घरसे बाहर निकाल देते हैं।

'इन्द्र' देवता बल, पराक्रम और विजयका है। वही गौके रूपमें हमारे घरमें आता है। जो कोई अपने घरमें गौका पालन नहीं करता, वह मानो, बल, पराक्रम और विजयको ही दूर करता है।

अन्नका देवता 'सोम' है। वही गौके रूपमें हमारे पास आता है। गौ स्वयं दूध देती है जिससे दही, छाछ, मक्खन, घी आदि अमृतरूप पदार्थ बनते हैं। बैलके यत्नसे अन्न उत्पन्न होता है। इस प्रकार गौ हमारे अन्नका प्रबंध करती है। ऐसी उपयोगी गौको जो लोग अपने घर नहीं पालते वे, मानो, अन्नको ही दूर करते हैं। इस प्रकार गौके पालनसे धन, बल और अन्न प्राप्त होता है और गौको न पालनेसे दारिद्य, बलहीनत्व और योग्य अन्नका अभाव होता है। यदि बलवान्, धनवान्, यशस्वी और प्रतापी होनेकी इच्छा है, तो गौको पालना चाहिये और गौका दूध प्रतिदिन पीना चाहिये।

यज्ञके लिये गौ

परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ और यज्ञकी पूर्णताके लिये गौ होती है। वैदिकधर्ममें जो कुछ किया जाता है वह परमात्माके नामसे और यज्ञके नामसे ही किया जाता है। सब कर्मका अन्तिम फल मनुष्यकी उन्नति ही है, परंतु उसका सब प्रयत्न 'यज्ञ' के नामसे होता है। गौका दूध तो मनुष्य ही पीते हैं, परंतु घरमें गौका पालन यज्ञकी पूर्णताके लिये किया जाता है, अपना पेट भरनेके लिये नहीं। यह त्यागकी शिक्षा वैदिकधर्ममें इस प्रकार दी जाती है। प्रथम मंत्रमें 'उषाके पूर्व गौ दूध देती है और उस दूधसे इन्द्रके लिए यज्ञ किया जाता है,' ऐसा जो कहा है इसका हेतु यही है। यज्ञका शेष घृत दूध, आदि मनुष्य पीते हैं। परंतु वह भोगके हेतुसे नहीं पीते, अपितु 'ईश्वरका प्रसाद' मानकर पीते हैं। गौ परमेश्वरके यज्ञके लिये है, उसका प्रसाद रूप दूध पिया जाता है। इतने विश्वाससे और भक्तिसे यदि दूध पिया जाय, तो वह निःसन्देह अत्यंत लाभकारी होगा।

इस यज्ञसे 'देव भी मनुष्यके लिये धन, यश, ज्ञान आदि देता है और अपने पासके स्थिर धाममें उसको रखता है।' (मं. २)

यह द्वितीय मंत्रका कथन है। यज्ञके भावसे सब कर्म करनेसे यह लाभ होना स्वाभाविक है। तृतीय मंत्रका कथन है कि 'यज्ञके लिये गौ होती है, इसलिये उसका नाश नहीं होता, रोग उसको कष्ट नहीं देता, चोर उसको चुराता नहीं, शत्रु उसको सताता नहीं, ऐसी सुरक्षित अवस्थामें गौवें यजमानके पास रहती हैं, यजमान देवोंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करता है और उसीसे उसके पास गौवोंकी संख्या बढ जाती है।' चतुर्थ मंत्रमें भी गौके महत्त्वका ही वर्णन किया है। 'घोडा गौ जैसे मनुष्यके लिये उपयोगी नहीं है, गौवें पाकसंस्कार करनेवालेके पास कभी नहीं जाती, वे गौवें यजमानकी विस्तृत रक्षामें रहती हैं और आनंदसे विचरती हैं।' यह सब वर्णन, गौका यज्ञके लिये उपयोग होता है, यही बात बता रहा है।

अवध्य गौ

ऐसी उपयोगी गौ है, इसलिये वह अवध्य होनी ही चाहिये। इस विषयमें शंका नहीं हो सकती। इस चतुर्थ मंत्रमें यही बात विशेष स्पष्टतापूर्वक कही है। देखिये—

तस्य यज्वनः मर्तस्य उरुगायं अभयं ताः गावः अनु विचरन्ति। (मं. ४)

'उस याजक मनुष्यके बहुत प्रशंसनीय निर्भयतामें वे गौवें विचरती हैं।' अर्थात् यज्ञकर्ता यजमानके पास गौवें निर्भयतासे रहती हैं, वहां उनको किसी भी प्रकार कोई पीडा दे नहीं सकता। गौवोंके लिये यदि कोई अत्यन्त निर्भय स्थान हो सकता है, तो वह यजमानका घर ही है। यह वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि 'यजमान गौको काटकर उसके मांसका हवन करता है' यह कल्पना मिथ्या है। गोमेधमें भी गोमांससे हवनका कोई संबंध नहीं है, इस विषयमें इसी मंत्रका तृतीय चरण देखने योग्य है—

ताः गावः संस्कृतत्रं न अभि उपयन्ति। (मं. ४)

'वे गौवें मांससंस्कार करनेवालेके पास नहीं जातीं।' अर्थात् गौके मांसका पाकसंस्कार कोई नहीं करता। यहां 'संस्कृतत्र' शब्द है। 'संस्कृतः' का अर्थ है अच्छी प्रकार 'काटनेवाला' यहां 'कृत्' धातुका अर्थ काटना है। काटे हुए मांसको पकानेवाला जो होता है, उसका नाम 'संस्कृत+त्र' है। जो पशुको काटते हैं और जो पशुको पकाते हैं उनके पास कभी गौ नहीं पहुंचती। अर्थात् गौके मांसका यज्ञमें या पाकमें कहीं भी संस्कार नहीं होता है। गोमांसके हवनका तथा गोमांसके भक्षणका यहां पूर्ण निषेध है। गौवें यजमानकी विस्तृत रक्षामें रहती हैं, इसलिये यज्ञमें गोवध, गोमांस हवन अथवा गोमांससंस्कार भी संभवनीय नहीं है। इस मंत्रने इतनी स्पष्टतासे गोमांस-संस्कारका निषेध किया है कि इसको देखनेके पश्चात् कोई यह नहीं कह सकता कि वेदके गोमेधसे गोमांस हवनका संबंध है।

उत्तम घास और पवित्र जलपान

यजमान यज्ञके लिये गौकी रक्षा करता है इसलिये वह उनके पालनका बडा प्रबंध करता है। यह प्रबंध किस प्रकार किया जाय, इस विषयमें अन्तिम मंत्र देखने योग्य है—

(गावः) सूयवसे रुशन्तीः।
सुप्रपाणे शुद्धा अपः पिबन्तीः॥ (मं. ७)

'गौवें उत्तम घास खावें और उत्तम जलस्थानमें शुद्ध जल पीवें।' शुद्ध घास खाने और शुद्ध जल पीनेसे गौकी उत्तम रक्षा होती है। इस प्रकार गौकी रक्षा करें और गौके दूधसे सब हृष्टपुष्ट, बलिष्ठ, यशस्वी, तेजस्वी, प्रतापी और दीर्घायु हों।

गौकी पालना

गौका पालन कैसे करना चाहिये, इस विषयका उत्तम उपदेश भी इन ही मंत्रोंसे हमें मिलता है। 'उत्तम स्थानका शुद्ध जल गौको पिलाना चाहिये' यह वेदकी आज्ञा है। शुद्ध जल हो और वह उत्तम स्थानका हो। गौ जो खाती है और जो पीती है उसका परिणाम आठ दस घण्टोंमें उसके दूधपर होता है, यह नियम है। जलका भी यह नियम है कि वह स्थानके गुणदोष अपने साथ ले जाता है। हिमालयके पहाडोंसे आनेवाला जल दस्त लानेवाला होता है, कई स्थानोंका कब्ज करनेवाला और कई स्थानोंका ज्वर उत्पन्न करनेवाला होता है। इस कारण गौको अच्छे आरोग्यपूर्ण स्थानका शुद्ध जल ही पिलाना चाहिये, जिससे दूधमें अच्छे अच्छे गुण आयें और उस दूध पीनेवालोंको अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त होवे।

घास भी अच्छी भूमिकी होनी चाहिये और (सु-यवस्) उत्तम जौ आदिकी होनी चाहिये। बुरे स्थानकी बुरे प्रकारसे उत्पन्न हुई नहीं होनी चाहिये। कई लोग गौको ऐसी बुरी चीजें खिलाते हैं कि, उससे अनेक दोषोंसे युक्त दूध उत्पन्न होता है। गौवें मनुष्यके शौच आदिको भी खाती हैं। यह सब दोष उत्पन्न करनेवाला है। उत्तम घास और शुद्ध जल खा पीकर गौसे जो दूध उत्पन्न होगा, वही आरोग्यवर्धक होगा।

वशा गाय

कां. १२, सू. ४

(ऋषिः– कश्यपः । देवता – वशा ।)

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत । वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत्प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥
प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति । य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥२॥
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति । बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥
विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् । तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥
पदोरस्या अधिष्ठानाद्विक्लिन्दुर्नाम विन्दति । अनामनात्सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥
यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते । लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (ददामि इति एव ब्रूयात्) देता हूं ऐसा ही कहे (च एनां अनु अभुत्सत) और इसके विषयमें अनुकूल भाव रखे। (याचद्भ्यः ब्रह्मभ्यः एनां वशां) मांगनेवाले ब्राह्मणोंको यह गौ देवे, (तत् प्रजावत् अपत्यवत्) यह दान प्रजा और संतान देनेवाला हो ॥ १ ॥

(यः याचद्भ्यः आर्षेयेभ्यः देवानां गां न दित्सति) जो मांगनेवाले ऋषिपुत्रोंको देवोंकी गौ नहीं देता, (सः प्रजया विक्रीणीते) वह अपनी प्रजाको ही बेचता है, और (पशुभिः च उपदस्यति) पशुओंके साथ नाशको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

(कूटया अस्य सं शीर्यन्ते) विना सींगके पशुसे भी इस दानरहित मनुष्यके लोग मारे जांयगे और (श्लोणया काटं अर्दति) लंगडी लूलीके द्वारा भी गढेमें इसके लोग गिराये जांयगे । (बण्डया गृहाः दह्यन्ते) विकल गौसे इसके घर जलाये जांयगे और (काणया स्वं दीयते) एक आंखसे हीन गौ द्वारा इसका धन नष्ट किया जायगा ॥ ३ ॥

(विलोहितः शक्नः अधिष्ठानात् गोपतिं विन्दति) रक्तज्वर गोबरके स्थानसे गौके कंजूस स्वामीको पकडता है । (तथा वशायाः संविद्यं) वैसी गौका नाम है (हि दुरदभ्ना उच्यसे) इसी कारण वह दमन करनेके लिये कठिन है, ऐसा कहा जाता है ॥ ४ ॥

(अस्याः पदोः अधिष्ठानात्) इस गौके पांव रखनेके स्थानसे (विक्लिंदुः नाम जायते) विक्लिंदु नामक रोग होता है । (याः मुखेन उपजिघ्रति) जिनको मुखसे सूंघती है वे (अनामनात् संशीर्यन्ते) न जानते हुए ही क्षीण होकर नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

(यः अस्याः कर्णौ आस्कुनोति) जो इस गौके कानोंको दुःख देता है, (सः देवेषु आवृश्चते) वह मानो देवोंपर आघात करता है, जो गायपर (लक्ष्म कुर्वे इति मन्यते) चिह्न करता हूं ऐसा मानता है, वह (स्वं कनीयः कृणुते) अपना धन न्यून करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— हरएक गृहस्थी अथवा मनुष्य 'दान देता हूं' ऐसा ही सदा कहे । दानके विषयमें तथा गौके विषयमें मनमें अनुकूल भाव धारण करे । ज्ञानी मनुष्योंको गौवोंका दान करनेसे दाताका भाग्य बढता है ॥ १ ॥

जो गौका दान विद्वानोंके मांगनेपर भी नहीं करता, उसको कष्ट प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

जहांसे भयका संभव नहीं वहांसे उसको भय प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

गौके गोबरसे रक्तज्वर उत्पन्न होकर वह कंजूस मालिकका नाश करता है । अर्थात् उसे अनेक व्याधियां सताती हैं। अतः गौके विषयमें सदा आदर रखना चाहिये । क्योंकि गौका अपमान क्षमा नहीं किया जाता ॥ ४ ॥

गौके पांवके स्थानमें विक्लिन्दु नामक रोग फैलता है । जिसे गाय सूंघती है, उसे वह होता है और वह मरता है ॥५॥

गौके कानोंपर चिह्न करनेसे जो गौको वेदना होती है, उससे गौके स्वामीका धन कम होता है ॥ ६ ॥

यद॑स्याः कस्मै॑ चि॒द्भोगा॑य बाला॒न्कश्चि॑त्प्रकृ॒न्तति॑ । तत॑ः किशो॒रा म्रि॑यन्ते व॒त्सांश्च॒ घातु॑को॒ वृक॑ः ॥७॥
यद॑स्या गोप॑तौ स॒त्या लोम॒ ध्वाङ्क्षो॒ अजी॑हिडत् । तत॑ः कुमा॒रा म्रि॑यन्ते॒ यक्ष्मो॑ विन्दत्यनाम॒नात् ॥८॥
यद॑स्याः पल्पूल॒नं शकृ॑द्दा॒सी स॒मस्य॑ति । ततोऽप॑रूपं जायते॒ तस्मा॒दव्ये॑ष्य॒देन॑सः ॥ ९ ॥
जाय॑माना॒भि जा॑यते दे॒वान्त्सब्रा॑ह्मणान्व॒शा । तस्मा॑द्ब्र॒ह्मभ्यो॒ देयै॒षा तदा॑हुः॒ स्वस्य॒ गोप॑नम् ॥१०॥
य ए॑नां व॒निमा॒यन्ति॒ तेषां॑ दे॒वकृ॑ता व॒शा । ब्र॒ह्मज्येयं॒ तद॑ब्रुव॒न्य ए॑नां॒ निप्रि॒याय॑ते ॥ ११ ॥
य आ॒र्षेयेभ्यो॒ याच॑द्भ्यो दे॒वानां॒ गां न दित्स॑ति । आ स दे॒वेषु॑ वृश्चते ब्राह्म॒णानां॑ च म॒न्यवे॑ ॥१२॥
यो अ॑स्य॒ स्याद्व॑शाभो॒गो अ॒न्यामि॑च्छेत॒ तर्हि॒ सः । हिंस्ते॒ अद॑त्ता॒ पुरु॑षं याचि॒तां च॒ न दित्स॑ति ॥१३॥

अर्थ— (यत् कश्चित् कस्मैचित् भोगाय) जो किसी भोगविशेषके लिये (अस्याः बालान् प्रकृन्तति) इस गौके बालोंको काटता है, उससे (ततः किशोराः म्रियन्ते) उसके बालक मरते हैं तथा (वृकः वत्सान् च घातुकः) भेडिया बच्चोंका घात करता है ॥ ७ ॥

(यत् अस्याः सत्याः गोपतौ) यदि इसके साथ गोरक्षकके रहते हुए भी यदि (ध्वाङ्क्षः लोम अजीहिडत्) कौवा बालोंको नोचे, तो (ततः कुमाराः म्रियन्ते) उससे बच्चे मर जाते हैं और (अनामनात् यक्ष्मः विन्दति) सहजहीसे क्षयरोग पकड लेता है ॥ ८ ॥

(यत् अस्याः पल्पूलनं शकृत्) इस गौका मूत्र और गोबर (दासी समस्यति) नौकरानी फेंके, तो (ततः तस्मात् एनसः अ-व्येषत्) उस पापसे न छूटनेके कारण वह (अप रूपं जायते) विरूप होता है ॥ ९ ॥

(जायमाना वशा स-ब्राह्मणान् देवान् अभिजायते) उत्पन्न होते ही गौ ब्राह्मणोंके साथ देवोंके लिये होती है । (तस्मात् एषा ब्रह्मभ्यः देवा) इसलिये यह गौ ब्राह्मणोंको देनी चाहिये । (तत् स्वस्य गोपनं आहुः) वह अपनी सुरक्षितता है ऐसा कहते हैं ॥ १० ॥

(ये एनां वनिं आयन्ति) जो ब्राह्मण इस गौको मांगने आते हैं (तेषां देवकृता वशा) उनके लिये ही यह गौ देवोंने बनाई है । (यः एनां नि प्रियायते) जो इसको अपनी प्रिय है करके अपने ही पास रखता है, अर्थात् दान नहीं देता, (तत् ब्रह्मज्येयं अब्रुवन्) वह उसका कृत्य ब्राह्मणोंपर अत्याचार जैसा ही है ॥ ११ ॥

(यः याचद्भ्यः आर्षेयेभ्यः) जो मांगनेवाले ऋषिपुत्रोंको (देवानां गां न दित्सति) देवोंकी गौ नहीं देता, (सः ब्राह्मणानां मन्यवे) वह ब्राह्मणोंके कोपके लिये (देवेषु आवृश्चते) देवोंमें आघात करता है ॥ १२ ॥

(यः अस्य वशाभोगः स्यात्) जो इस गौका उपभोग लेता है, (सः तर्हि अन्यां इच्छेत) वह तो दूसरी गौसे प्राप्त करे । (अदत्ता पुरुषं हिंस्ते) दान न दी हुई गौ उस पुरुषकी हिंसा करती है, कि (याचितां च न दित्सति) जो याचना करनेपर भी नहीं देता ॥ १३ ॥

भावार्थ— यदि कोई मनुष्य अपनी सजावटके लिये गौके बाल काटेगा, तो उसके बालबच्चे मर जांयगे ॥ ७ ॥

यदि ग्वालेके गौकी रखवाली करनेपर भी गौको कौवा कष्ट देवे, तो उस ग्वालेके बच्चे मर जांयेंगे ॥ ८ ॥

यदि गौकी परिचारिका गौका मूत्र और गोबर इधर उधर फेंक देवे, तो उस पापसे उसका रूप बिगड जायगा ॥९॥

गौ जो उत्पन्न होती है वह ब्राह्मणोंके लिये ही उत्पन्न होती है । इसीलिये उसका दान ब्राह्मणोंको देना उचित है । उससे दाताकी ही रक्षा होती है ॥ १९ ॥

ब्राह्मणके याचना करनेके लिये आनेपर उसको गौ प्रदान न करना, उसपर अत्याचार करनेके समान है । क्योंकि देवोंके द्वारा ही उसके लिये वह बनाई हुई होती है ॥ ११ ॥

अतः जो मांगनेपर भी ब्राह्मणोंको गौ नहीं देता, वह मानो देवोंपर ही आघात करता है । उससे उसपर ब्राह्मणोंका कोप और देवोंका संताप होता है ॥ १२ ॥

यदि गौसे किसीको लाभ होता हो, तो दूसरी गौसे वह प्राप्त करे । क्योंकि जो गौको मांगनेपर भी नहीं देता, वह गौ ही उसकी नाशक बनती है ॥ १३ ॥

यथा॑ शेव॒धिर्निहि॑तो ब्राह्म॒णानां॒ तथा॑ व॒शा । ताम॒तदुच्छाय॑न्ति॒ यस्मि॒न्कस्मि॑श्च॒ जाय॑ते ॥१४॥
स्वमे॒तदु॒च्छाय॑न्ति॒ यद्व॒शां ब्रा॑ह्म॒णा अ॒भि । यथै॑नानु॒न्यस्मि॑न् जिनी॒यादे॒वास्या॑ नि॒रोध॑नम् ॥१५॥
चरे॑दे॒वा त्रैहाय॒णादवि॑ज्ञातगदा स॒ती । व॒शां च॑ वि॒द्यान्ना॑रद ब्राह्म॒णास्तर्ह्ये॒ष्याः॑ ॥१६॥
य ए॑ना॒मव॑शा॒माह॑ दे॒वानां॒ निहि॑तं नि॒धिम् । उ॒भौ तस्मै॑ भवाश॒र्वौ प॑रि॒क्रम्येषु॑मस्यतः ॥१७॥
यो अ॑स्या॒ ऊधो॒ न वे॒दाथो॑ अस्या॒ स्तना॑नु॒त । उ॒भये॑नै॒वास्मै॑ दुहे॒ दातुं॒ चेदश॑कद्व॒शाम् ॥१८॥
दु॒र॒द॒भ्नैन॒मा श॑ये या॒चितां॒ च॒ न दित्स॑ति । नास्मै॒ कामाः॒ समृ॑ध्यन्ते॒ याम॒दत्त्वा॒ चिकी॑र्षति ॥१९॥
दे॒वा व॒शाम॑याच॒न्मुखं॑ कृ॒त्वा ब्राह्म॑णम् । तेषां॒ सर्वे॑षा॒मद॑द॒द्धेडं॒ न्ये॑ति॒ मानु॑षः ॥२०॥

अर्थ— (यथा शेवधिः निहितः) जैसे खजाना सुरक्षित होता है, (तथा ब्राह्मणानां वशा) वैसी ही ब्राह्मणोंकी यह गौ है । (यस्मिन् कस्मिन् च जायते) जहां कहीं उत्पन्न हुई हो (एनं अच्छ आयन्ति) उसके पास वे ब्राह्मण पहुंचते ही हैं ॥ १४ ॥

(यत् ब्राह्मणाः वशां अभि) यदि ब्राह्मण गौके पास आते हैं तो (एतत् स्वं अच्छ आयन्ति) वे अपने धनके पास ही आते हैं । (अस्याः निरोधनं) इस गौको प्रतिबंध करना मानो (यथा एनान् अन्यस्मिन् जिनीयात्) इनको दूसरे अर्थमें कष्ट देना ही है ॥ १५ ॥

(अविज्ञात-गदा सती आ त्रैहायणात् चरेत् एव) अज्ञात नामवाली गौ तीन वर्ष होनेतक माताके साथ घूमे । हे नारद ! (वशां विद्यात्, तर्हि ब्राह्मणाः एष्याः) गौ देने योग्य होनेपर उसके लिये ब्राह्मण ढूंढे जांय ॥ १६ ॥

(यः देवानां निहितं निधिं एनां अवशां आह) देवोंके निश्चित खजाने रूप इस गौको न देने योग्य कहे, (भवाशर्वौ परिक्रम्य इषुं अस्यतः) उसे भव और शर्व दोनों घेरकर बाण मारते हैं ॥ १७ ॥

(यः अस्याः ऊधः अथो उत अस्याः स्तनान् न वेद) जो इसके दुग्धाशयको और इसके स्तनोंको नहीं जानता, (चेत् दातुं अशकत्) वह यदि दान देनेमें समर्थ हुआ तो (उभयेन अस्मै दुहे) वह गौ उसे उक्त दोनोंसे दूध देती है ॥ १८ ॥

(याचितां न दित्सति) मांगनेपर भी ब्राह्मणको जो नहीं दी जाती, वह गौ (दुः-अदभ्ना एनं आशये) वश होनेमें कठिन होकर इसके साथ रहती है । (अस्मै कामाः न समृध्यन्ते) इसके मनोरथ सफल नहीं होते (यां अदत्वा चिकीर्षति) जिसे दान न करके कमाना चाहता है ॥ १९ ॥

(ब्राह्मणं मुखं कृत्वा) ब्राह्मणका मुख बना कर (देवाः वशां अयाचन्) देव गौकी याचना करते हैं । (अददत् मानुषः) न देनेवाला मनुष्य (तेषां सर्वेषां हेडं नि एति) उन सबके क्रोधको प्राप्त करता है ॥ २० ॥

भावार्थ— यह गौ ब्राह्मणोंकी ही है जैसे सुरक्षित खजाना होता है वैसी ही यह है । कहीं किसीके पास भी उत्पन्न हुई हो जिसकी वह होगी वे ब्राह्मण उसे मांगने आवेंगे ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस गौको मांगते हैं वह उनकी ही होती है । अतः उनको उस गौका दान न करना अपराध है ॥ १५ ॥

तीन वर्षतक गौको उसका स्वामी पाले, पश्चात् कोई मांगने न आवे तो सुयोग्य ब्राह्मणकी खोज करे और उसे देवे ॥ १६ ॥

गौ देवोंका खजाना है । जो उसे नहीं दान करता, उसका नाश भव और शर्व करते हैं ॥ १७ ॥

जो गौको दान करता है उसको दूध आदि पर्याप्त मिलता है ॥ १८ ॥

जो मांगनेपर भी गौका दान ब्राह्मणोंको नहीं करता, उसके घरमें गौ वशमें नहीं रहती । गौ न देनेवालेकी कामना तृप्त नहीं होती ॥ १९ ॥

ब्राह्मणके मुखसे ही देव मांगते हैं । अतः दान न देनेवाला मनुष्य देवोंके क्रोधको अपने ऊपर लेता है ॥ २० ॥

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्वशाम् । देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥२१॥
यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् । अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥२२॥
य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो दददद्वशाम् । दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥२३॥
देवा वशामयाचन्यस्मिन्नग्रे अजायत । तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥२४॥
अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् । ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥२५॥
अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च । तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥२६॥
यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् । चरेदस्य तावद्गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥२७॥

अर्थ—(मर्त्यः देवानां निहितं भागं निप्रियायते चेत्) मनुष्य देवोंका निश्चित भाग अपने पास यदि रखेगा और (ब्राह्मणेभ्यः वशां अददत्) ब्राह्मणोंको गौ न देगा तो (पशूनां हेडं नि एति) पशुओंके क्रोधको भी प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

(यत् गोपतिं शतं अन्ये वशां याचेयुः) यदि गौके स्वामीके पास दूसरे सौ जाकर गौको मांगे, (अथ एनां देवाः एवं अब्रुवन्) इस विषयमें देवोंने ऐसा कहा है कि (विदुषः वशा ह) विद्वान्‌की ही गौ है ॥ २२ ॥

(यः एवं विदुषे अदत्त्वा) जो इस तरह विद्वान्‌को गौ न देकर (अन्येभ्यः वशां ददत्) दूसरे अविद्वानोंको गौ देवे, (तस्मै अधिष्ठाने सह देवता पृथ्वी दुर्गा) उसके लिये उसके स्थानमें सब देवताओंके साथ पृथ्वी दुःखदायी होती है ॥ २३ ॥

(यस्मिन् अग्रे अजायत) जिसमें गौ पहिले हुई, (देवाः वशां अयाचन्) देवोंने उसीके पास गौकी याचना की। (नारदः विद्यात्) नारद समझे कि (तां एतां देवैः सह उदाजत) उस गौकी देवोंके साथ उन्नति होती है ॥ २४ ॥

(ब्राह्मणैः याचितां एनां नि प्रियायते) ब्राह्मणोंके द्वारा याचना होनेपर भी जो उसको प्रिय समझकर अपने पास रखता है वह (वशा पुरुषं अनपत्यं अल्पपशुं कृणोति) गौ उस मनुष्यको संतानहीन और अल्पपशुवाला करती है ॥ २५ ॥

(अग्नी-सोमाभ्यां मित्राय वरुणाय कामाय तेभ्यः) अग्नि, सोम, मित्र, वरुण और काम इनके लिये ही (ब्राह्मणाः याचन्ति) ब्राह्मण गौकी याचना करते हैं, अतः (अददत् तेषु आवृश्चते) न देनेवाला उन देवोंपर आघात करता है ॥ २६ ॥

(यावत् अस्याः गोपतिः) जबतक इस गौका स्वामी (स्वयं ऋचः न उपशृणुयात्) स्वयं ऋचाएं नहीं सुनेगा, (तावत् अस्य गोषु चरेत्) तबतक इसकी गौवोंमें गौ चरा करे, परंतु (श्रुत्वा अस्य गृहे न वसेत्) सुननेके पश्चात् वह गौ उसके घरमें न रहे ॥ २७ ॥

भावार्थ— कोई मनुष्य इस देवोंके भागको ब्राह्मणोंको दान न देगा, तो पशुओंके क्रोधको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

गौके स्वामीके पास सैंकडो याचक गौके लिये आयें तो भी देवोंकी आज्ञा है कि विद्वान् ब्राह्मणको ही गौ देनी चाहिये ॥ २२ ॥

जो विद्वान् ब्राह्मणको गौ न देकर दूसरेको देता है, उसको बडे कष्ट प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

जहां गौ उत्पन्न होती है, मानो वहीं देव उसकी याचना करते हैं और देवोंको गाय देनेसे सबकी उन्नति होती है ॥ २४ ॥

ब्राह्मणोंकी याचना पर भी जो मनुष्य गौका दान नहीं करता, उसके संतान नहीं होती और उसके पास पशु भी कम होजाते हैं ॥ २५ ॥

ब्राह्मण जो गौकी याचना करते हैं, वे केवल अग्नि आदि देवताओंके लिये ही याचना करते हैं, अपने लिये नहीं, अतः उनको न देना देवताओंका अपमान करना है ॥ २६ ॥

जबतक गौका स्वामी यज्ञ वा मंत्रघोष नहीं सुनता, तबतक उसके पास गौ रहे। मंत्रघोष सुननेके पश्चात् उसके घरमें गौ न रहे ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् । आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥२८॥
वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः । आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९॥
आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति । अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्च्याय कृणुते मनः ॥३०॥
मनसा सं कल्पयति तद्देवाँ अपि गच्छति । ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥
स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः । दानेन राजन्योऽ वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥३२॥
वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः । तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥

अर्थ— (यः अस्याः [गोपतिः] ऋचः उपश्रुत्य) जो इस गौका स्वामी ऋचाएं सुनकर (अथ गोषु अचीचरत्) भी गौओंमें ही अपनी गौको चराया करता है, (देवाः हीडिताः तस्य आयुः च भूतिं च वृश्चन्ति) देव क्रोधित होकर उसकी आयु और संपत्तिको विनष्ट करते हैं ॥ २८ ॥

(वशा बहुधा चरन्ती देवानां निधिः निहितः) गौ बहुत स्थानोंमें भ्रमण करती हुई देवोंका सुरक्षित खजाना ही है। (यदा स्थाम जिघांसति) जब वह रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है, तब (रूपाणि आविष्कृणुष्व) अनेक रूप प्रकट करती है ॥ २९ ॥

(यदा स्थाम जिघांसति) जब रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है, तब (आत्मानं आविः कृणोति) अपने आपको प्रकट करती है। (अथो ह ब्रह्मभ्यः याञ्च्याय मनः कृणुते) ब्राह्मणोंकी याचनाके लिये वह गौ अपना मन करती है ॥ ३० ॥

वह गौ (मनसा संकल्पयति) मनसे संकल्प करती है, (तत् देवान् अपि गच्छति) वह संकल्प देवोंके पास पहुंचता है, (ततः ह ब्रह्माणः वशां याचितुं उप प्रयन्ति) उसके पश्चात् ही ब्राह्मण गौकी याचना करनेके लिये आते हैं ॥ ३१ ॥

(पितृभ्यः स्वधाकारेण) पितरोंके लिये स्वधाकारसे, (देवताभ्यः यज्ञेन) देवताओंके लिए यज्ञसे, तथा (दानेन) दानसे (राजन्यः वशायाः मातुः हेडं न गच्छति) क्षत्रिय गौ माताका क्रोध प्राप्त नहीं करता ॥ ३२ ॥

(वशा राजन्यस्य माता) गौ क्षत्रियकी माता है, (तथा अग्रशः सं भूतं) ऐसा पहिलेसे ही हुआ है। (यत् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते) जो गौ ब्राह्मणोंके लिये दी जाती है (तस्या अनर्पणं आहुः) उसका वह दान नहीं कहलाता (क्योंकि वह गौ ब्राह्मणकी ही होती है) ॥ ३३ ॥

भावार्थ— मंत्रघोष सुननेके पश्चात् भी यदि गौका स्वामी गौ अपने घरमें रखता है तो उसके ऊपर देव क्रोध करते हैं ॥ २८ ॥

गौ यह देवोंका सुरक्षित खजाना है। जब वह अपने स्थानपर जाना चाहती है तब वह अनेक भाव प्रकट करती है ॥ २९ ॥

जब वह गौ अपने स्थानके पास जाना चाहती है, तब अपने भावको प्रकट करती है अर्थात् उसकी ब्राह्मण याचना करें ऐसा भाव मनमें लाती है ॥ ३० ॥

गौ जो संकल्प मनमें लाती है, वह संकल्प देवोंके पास पहुँचता है, देव ब्राह्मणोंको प्रेरणा देते हैं और ब्राह्मण गौको मांगनेके लिये आते हैं ॥ ३१ ॥

स्वधाकारसे पितरोंकी तृप्ति, यज्ञसे देवोंकी संतुष्टता और दानसे अन्योंकी तृप्ति होती है, इसलिये गौका दान करनेसे उसकी माताका क्रोध क्षत्रियपर नहीं होता है ॥ ३२ ॥

गौ क्षत्रियकी माता कही जाती है, इसका ब्राह्मणोंको प्रदान करना दान नहीं है, क्योंकि वह ब्राह्मणोंकी ही होती है ॥ ३३ ॥

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत्स्रुचो अग्नये । एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥३४॥
पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति । सास्मै सर्वान्कामान्वशा प्रददुषे दुहे ॥३५॥
सर्वान्कामान्यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे । अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६॥
प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा । वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥३७॥
यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् । अप्यस्य पुत्रान्पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥३८॥
महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि । अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥३९॥
प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते । अथो वशायास्तत्प्रियं यद्देवत्रा हविः स्यात् ॥४०॥

अर्थ— (यथा अग्नये प्रगृहीतं आज्यं स्रुचः आलुंपेत्) जैसे अग्निके लिये लिया हुआ घी स्रुचासे गिरता है, (एवा वशां ब्रह्मभ्यः अददत्) ऐसे ही गौ ब्राह्मणोंको न देनेवाला (अग्नये अवृश्चत्) अग्निके लिये अपराधी होता है ॥ ३४ ॥

(पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोके अस्मै उपतिष्ठाति) अन्नरूपी बच्चा जिसके पास है, ऐसी उत्तम दूध देनेवाली गौ परलोकमें इस दाताके पास आकर खडी होती है। (सा वशा अस्मै प्रददुषे सर्वान् कामान् दुहे) वह गौ इस दाताके लिये सब कामनाएं पूर्ण करती है ॥ ३५ ॥

(वशा यमराज्ये प्रददुषे सर्वान् दुहे) गौ यमराज्यमें दाताके लिये सब कामनाएं देती है; (अथ याचितां निरुन्धानस्य नारकं लोकं आहुः) और याचना करनेपर भी न देनेवालेके लिए नरक लोक है, ऐसा कहते हैं ॥ ३६ ॥

(प्रवीयमाना वशा गोपतये क्रुद्धा चरति) सन्तान उत्पन्न करनेवाली गौ अपने स्वामीके लिये क्रुद्ध होकर विचरती है। वह कहती है कि (मा वेहतं मन्यमानः मृत्योः पाशेषु बध्यतां) मुझे गर्भपातिनी कहनेवाला मृत्युके पाशोंसे बांधा जावे ॥ ३७ ॥

(यः वशां वेहतं मन्यमानः) जो गौको गर्भ गिरानेवाली मानकर (अमा च वशां पचते) घरमें गौको पकाता है (अस्य पुत्रान् पौत्रान् अपि बृहस्पतिः याचयते) इसके पुत्रों और पौत्रोंसे बृहस्पति भीख मंगवाता है ॥ ३८ ॥

(गोषु वशा गौ चरन्ती अपि) गौओंमें गौ चरती हुई भी (एषा महत् अवतपति) यह बडा ताप देती है। (अथो अददुषे गोपतये विषं दुहे) मानो दान न करनेवाले गौके स्वामीके लिये यह विष देती है ॥ ३९ ॥

(यत् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते) जो ब्राह्मणोंके लिये दी जाती है, वह (पशूनां प्रियं भवति) पशुओंके लिए भी हितकारिणी होती है (अथो) और (यत् देवत्रा हविः स्यात्) जो देवोंके लिये हवि दी जाती है (वशायाः तत् प्रियं) वह गौके लिये भी प्रिय होती है ॥ ४० ॥

भावार्थ— जैसे स्रुचासे घी अग्निमें गिरता है, वैसे ही गौका दान न करनेवाला गिरता है ॥ ३४ ॥
दानमें दी हुई गौ दाताकी परलोकमें हरएक प्रकारकी कामना सफल करती है ॥ ३५ ॥
गोदान करनेवालेकी समस्त कामनाएं यमराज्यमें सफल होती हैं, परंतु दान न देनेवालेको तो नरक ही प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥
गौका अपमान करनेवालेको गौ क्रुद्ध होकर शाप देती है, कि वह मृत्युके पाशोंसे बांधा जावे ॥ ३७ ॥
जो गौको वंध्या मानकर उसे अपने घरमें पकाता है, उसके पुत्र-पौत्रोंसे ईश्वर भीख मंगवाता है ॥ ३८ ॥
जो गौका दान नहीं करता उसके लिये उसकी गौ विष दुहती है ॥ ३९ ॥
गौका दान करनेसे पशुओंका हित होता है, गौओंका हित होता है। क्योंकि गौसे हव्यपदार्थ देवताओंके लिये मिलते हैं ॥ ४० ॥

या व॒शा उ॒दक॑ल्पय॒न्दे॒वा य॒ज्ञादु॒देत्य॑ । तासां॑ विलि॒प्त्यं॑ भी॒मामु॒दाकु॑रुत नार॒दः ॥४१॥
तां दे॒वा अ॑मीमांसन्त व॒शेया३ मव॒शेति॑ । ताम॑ब्रवीन्नार॒द ए॒षा व॒शानां॑ व॒शत॒मेति॑ ॥४२॥
कति॒ नु व॒शा ना॑रद॒ यास्त्वं वेत्थ॑ मनुष्य॒जाः । तास्त्वा॑ पृच्छामि वि॒द्वांसं॒ कस्या॒ नाश्नी॑या॒दब्रा॑ह्मणः ॥४३॥
वि॒लि॒प्त्या बृ॑हस्पते॒ या च॑ सू॒तव॑शा व॒शा । तस्या॒ नाश्नी॑या॒दब्रा॑ह्मणो॒ य आ॒शंसे॑त॒ भूत्या॑म् ॥४४॥
नम॑स्ते अस्तु नारदानु॒ष्ठु वि॒दुषे॑ व॒शा । क॒त॒मासां॑ भी॒मत॑मा॒ याम॑दत्त्वा परा॒भवे॑त् ॥४५॥
वि॒लि॒प्ती या बृ॑हस्पते॒ऽथो॑ सू॒तव॑शा व॒शा । तस्या॒ नाश्नी॑या॒दब्रा॑ह्मणो॒ य आ॒शंसे॑त॒ भूत्या॑म् ॥४६॥
त्रीणि॒ वै व॑शाजा॒तानि॑ विलि॒प्ती सू॒तव॑शा व॒शा । ताः प्र य॑च्छेद् ब्र॒ह्मभ्यः॒ सो॑ऽनाव्र॒स्कः प्र॒जाप॑तौ ॥४७॥

अर्थ— (याः वशाः देवाः) जिन गौवोंको देवताओंने (यज्ञात् उदेत्य उदकल्पयन्) यज्ञसे आकर संकल्पित किया था (तासां भीमां विलिप्त्यं नारदः उदाकुरुत) उनमें बडी और अधिक घीवाली गौको नारदने प्रकट किया ॥ ४१ ॥

(तां देवाः अमीमांसन्त) उस विषयमें देवोंने विचार किया, (वशा इयं अवशा) यह गौ अपने वशमें रखने योग्य नहीं है। (नारदः तां अब्रवीत्) नारदने उसके विषयमें कहा कि (एषा वशानां वशतमा इति) यह गौवोंमें अधिक वश होनेवाली है ॥ ४२ ॥

हे नारद ! (याः त्वं मनुष्यजाः वेत्थ) जिनको तू मनुष्यमें उत्पन्न हुई समझता है वे (कति नु वशा) गौवें कितनी भली हैं। (त्वा विद्वांसं पृच्छामि) तुझ विद्वान्से मैं पूछता हूं कि (अब्राह्मणः कस्याः न अश्नीयात्) ब्राह्मणेतर अतिथि किस गायका दूध न पीवे ? ॥ ४३ ॥

हे बृहस्पते ! (विलिप्त्या या च सूतवशा वशा) अधिक घी देनेवाली गौ है, जो ग्वालेके ही वशमें आती है, और जो सबके वशमें आती है (तस्याः अब्राह्मणः नाश्नीयात्) ऐसी गायका दूध अब्राह्मण न पीवे, (यः भूत्यां आशंसेत) जो ऐश्वर्य चाहता है ॥ ४४ ॥

हे नारद ! (ते नमः अस्तु) तेरे लिये नमस्कार हो। (अनुष्ठु विदुषे वशा) अनुकूलतासे विद्वान्को गौ प्रदान करनी चाहिये। (आसां कतमा भीमतमा) इनमें कौनसी बडी है (यां अदत्त्वा पराभवेत्) जिसका दान न करनेसे पराभव होगा ? ॥ ४५ ॥

हे बृहस्पते ! (या विलिप्ती अथो सूतवशा वशा) जो अधिक घी देनेवाली और ग्वालेके वशमें आनेवाली और सबके वशमें रहनेवाली गौ है, (तस्याः अब्राह्मणः न अश्नीयात्) उसका अब्राह्मण अन्न न खावे (यः भूत्यां आशंसेत) यदि वह ऐश्वर्यसमृद्धिकी इच्छा करता है ॥ ४६ ॥

(त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा) गौकी तीन जातियां हैं- एक घी देनेवाली, दूसरी नौकरके वशमें रहनेवाली और तीसरी सबके वशमें रहनेवाली, (ताः यः ब्रह्मभ्यः प्रयच्छेत्) उन्हें जो ब्राह्मणोंको देगा, (सः प्रजापतौ अनाव्रस्कः) वह प्रजापतिके पास निरपराधी होता है ॥ ४७ ॥

भावार्थ— यज्ञसे आकर सब देवताओंने मिलकर गौकी रचना की, उनमें जो अधिक घी देनेवाली है उसकी योग्यता विशेष है ॥ ४१ ॥

देवोंने निश्चय किया कि वह स्वामीके वशमें रहने योग्य नहीं है, क्योंकि वह उत्कृष्ट गौ है, अतः वह दानके योग्य है ॥ ४२ ॥

मनुष्योंके पास जो गौवें होती हैं उनमेंसे कौनसी गौका अन्न अब्राह्मण स्वामी न खावे ? ॥ ४३ ॥

निश्चय यह हुआ कि अधिक घी देनेवाली, सर्वदा वशमें रहनेवाली और नौकरके वशमें रहनेवाली, ये तीन गौवें दानके योग्य हैं, अतः इनका अन्न अब्राह्मण स्वामी न खावे ॥ ४४ ॥

जिस गौका दान न करनेसे अधिक हानिकी संभावना है, वह कौनसी गौ है ? ॥ ४५ ॥

गौओंकी तीन जातियां हैं, एक अधिक घी देनेवाली, दूसरी सबके वशमें रहनेवाली और तीसरी नौकरके द्वारा वशमें होनेवाली ये तीन प्रकारकी गौवें हैं जिनका अन्न गौका स्वामी न खावे। स्वामी ये गौएं ब्राह्मणको दान देवे, जिससे वह निर्दोष होता है ॥ ४६-४७ ॥

*

एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः । वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥४८॥

देवा वशां पर्यवदन्न नोऽदादिति हीडिताः । एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराभवत् ॥४९॥

उतैनां भेदो नाददाद्वशामिन्द्रेण याचितः । तस्मात्तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥५०॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः । इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥५१॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति । रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥५२॥

यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् । देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥५३॥

अर्थ— हे ब्राह्मणो ! (याचितः मन्वीत) याचना करनेपर गौका स्वामी कहे कि (एतत् वः हविः) यह आपकी हवि है (एनं वशां चेत् याचेयुः) जब इससे गौकी याचना की जाती है (पर दी नहीं जाती), तब (या भीमा अददुषः गृहे) वह भयंकर होकर अदाताके घरमें रहती है ॥ ४८ ॥

(नः न अदात् इति हीडिताः देवाः) हमें इसने दिया नहीं इस कारण क्रोधित हुए देव (वशां) गौसे (एताभिः ऋग्भिः भेदं पर्यवदन्) इन मंत्रोंके द्वारा भेदके विषयमें कहने लगे (तस्मात् वै सः पराभवत्) इस कारणसे उसका पराभव हुआ ॥ ४९ ॥

(उत एनां वशां इन्द्रेण याचितः भेदः) और इस गौको इन्द्रकी याचना करनेपर भी भेदने (न अददात्) नहीं दिया (तस्मात् आगसः देवाः तं अहमुत्तरे अवृश्चन्) उस पापके कारण देवोंने उसे युद्धमें काट डाला ॥५०॥

(ये परिरापिणः वशायाः अदानाय वदन्ति) जो दुष्ट लोग गौका दान न करनेके लिए कहते, वे (जाल्माः अचित्त्या इन्द्रस्य मन्यवे आवृश्चन्ते) दुष्ट मनुष्य मतिहीनताके कारण इन्द्रके क्रोधके लिये काटे जाते हैं ॥ ५१ ॥

(ये गोपतिं परानीय) जो गोके स्वामीको दूर ले जाकर (अथ आहुः मा दाः इति) कहते हैं कि मत दान कर, (ते अचित्त्या रुद्रस्य अस्तां हेतिं परि यन्ति) वे न समझते हुए रुद्रके फेंके हुए हथियारको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

(यदि हुतां यदि अहुतां) यदि हवन की गई अथवा न की गई (वशां अमा च पचते) गौको अपने घरमें जो पकाता है, वह (स ब्राह्मणान् देवान् ऋत्वा) ब्राह्मणों और देवोंका अपराधी बनकर (जिह्मः) कुटिल होकर (लोकात् निर्ऋच्छति) इस लोकसे गिरता है ॥ ५३ ॥

भावार्थ— मांगनेपर गौका स्वामी कहे कि 'हे ब्राह्मणों ? यह आपका अन्न है।' मांगनेपर भी जो न देवे उसके घरमें वह गौ भयंकर हानि करनेवाली होती है ॥ ४८ ॥

गौका दान न करनेसे देव क्रोधित होकर उसके घरमें भेद करते हैं और इस कारण उसका पराभव होता है ॥ ४९ ॥

गौकी याचना करनेपर भी जो नहीं देता, उसके राज्यमें भेद उत्पन्न होकर युद्धमें उसका पराभव होता है ॥ ५० ॥

जो गौके दान न करनेके विषयमें उपदेश करते हैं उनका भी इन्द्रके क्रोधसे नाश होता है ॥ ५१ ॥

जो लोग गौके स्वामीको दूर ले जाकर गौ दान न करनेका उपदेश देते हैं, उनका नाश रुद्रके शस्त्रसे होता है ॥ ५२ ॥

जो गौके अन्नको घरमें पकाते हैं उनपर देवों और ब्राह्मणोंका क्रोध होता है और वे गिरते हैं ॥ ५३ ॥

वशावर्ती गाय

कां. १०, सू. १०

(ऋषिः– कश्यपः । देवता– वशा ।)

नमस्ते जायमानायै जातायां उत ते नमः । वालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१॥

यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः । शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥२॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः । शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः । वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।

ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥५॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका । वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥६॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा । ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७॥

अर्थ— हे (अघ्न्ये) हनन करनेके अयोग्य गौ ! (ते जायमानायै नमः) उत्पन्न होनेवाली तुझे नमस्कार हो। (उत जातायै ते नमः) उत्पन्न हुई तुझको नमस्कार हो। (ते वालेभ्यः शफेभ्यः रूपाय नमः) तेरे बालों, खुरों और रूपके लिये नमस्कार हो ॥ १ ॥

(यः सप्त प्रवतः विद्यात्) जो सात प्रवाह–जीवनप्रवाह–जानता है (यः च सप्त परावतः विद्यात्) और जो सात अन्तरोंको–स्थानोंको–जानता है, तथा जो (यज्ञस्य शिरः विद्यात्) यज्ञका सिर जानता है, वही (वशां प्रति गृह्णीयात्) वशा गौको स्वीकार करे ॥ २ ॥

(अहं सप्त प्रवतः वेद) मैं सात जीवनप्रवाहोंको-प्राणोंको–जानता हूं, (सप्त परावतः वेद) सात स्थानोंको–इंद्रिय स्थानोंको–भी जानता हूं। (यज्ञस्य शिरः च अहं वेद) यज्ञका शिर भी–यज्ञका मुख्य साध्य भी जानता हूं। (अस्यां विचक्षणं सोमं च वेद) इसमें विशेष चमकनेवाले सोमको भी मैं जानता हूं ॥ ३ ॥

(यया द्यौः पृथिवी इमा आपः च गुपिताः) जिसने द्युलोक, पृथिवी और सब जलोंकी सुरक्षा की है, उस (सहस्रधारां वशां) उस हजारों अमृतधारा देनेवाली वशा गौको (ब्रह्मणा अच्छा वदामसि) ज्ञानद्वारा उत्तम रीतिसे प्रदर्शित करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

(अस्याः अधिपृष्ठे) इसकी रक्षा करनेके लिये इसकी पीठपर (शतं दोग्धारः शतं कंसाः) सौ मनुष्य दूध दोहनेवाले, सौ उत्तम पात्रोंको लेकर, साथ साथ (शतं गोप्तारः) सौ इसके रक्षक भी इस गौके साथ चलते हैं। (ये देवाः तस्यां प्राणन्ति) जो देव उस गौसे जीवित रहते हैं (ते एकधा वशां विदुः) ये एकमतसे गौका महत्त्व यथावत् जानते हैं ॥ ५ ॥

(यज्ञपदी आक्षीरा) यज्ञमें जिसको स्थान प्राप्त हुआ है, जो दूध देती है, (स्वधाप्राणा महीलुका) अन्नरूप प्राणको धारण करनेवाली होनेके कारण इस पृथ्वीपर जो प्रसिद्ध है। यह (पर्जन्यपत्नी वशा) वृष्टि द्वारा घास आदि उत्पन्न होनेसे जिसका पालनपोषण होता है, वह गौ (ब्रह्मणा देवान् अप्येति) ब्रह्मरूप अन्नसे देवोंको प्राप्त करती है ॥ ६ ॥

हे (वशे) गौ ! (त्वा अग्निः अनु–प्राविशत्) तुझे अग्नि प्राप्त हुई है, (सोमः अनु) सोम भी प्राप्त हुआ है। हे (भद्रे) कल्याण करनेवाली गौ ! (ते ऊधः पर्जन्यः) तेरा दूधस्थान पर्जन्य ही है। हे वशा गौ ! (ते स्तनाः विद्युतः) तेरे स्तन विद्युत् हैं। इस तरह अग्न्यादि देवताओंकी शक्तियां तेरे अंदर हैं ॥ ७ ॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे । तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥८॥
यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि । इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद्वशे ॥९॥
यदनूचीन्द्रमैरात्त्व ऋषभोऽह्वयत् । तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे ॥१०॥
यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे । इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥११॥
त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा । अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१२॥
सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता । वशा समुद्रमध्यष्ठाद्गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥१३॥
सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः । वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥१४॥
सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा । वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥
अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि । अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद्वशे त्वा ॥१६॥

अर्थ— हे (वशे) वशा गौ ! (त्वं प्रथमः अपः धुक्षे) तू सबसे प्रथम जलको दुहती-देती है, (अपरा उर्वरा) पश्चात् उपजाऊ भूमिके समान धान्य देती है। (तृतीयं राष्ट्रं धुक्षे) तीसरे राष्ट्रीय शक्ति देती है, (त्वं अन्नं क्षीरं) तू अन्न और क्षीर-दूध-देती है ॥ ८ ॥

हे (वशे) गौ ! हे (ऋतावरि) दूधरूपी अन्न देनेवाली गौ ! (यत् आदित्यैः हूयमाना) जब तू आदित्यों द्वारा शक्ति प्राप्त करती हुई (उपातिष्ठः), समीप आती है, तब (इन्द्रः सहस्रं पात्रान्) इन्द्र हजारों बर्तनोंको लेकर (त्वा सोमं अपाययत्) तुझे सोमरस पिलाता है ॥ ९ ॥

हे (वशे) गौ ! (यत् अनूचीः इन्द्रं ऐः) जब तू अनुकूलतासे इन्द्रको प्राप्त हुई, (त्वा ऋषभः आत् अह्वयत्) तब तुझे वृषभ समीपसे पुकारने लगा। हे वशा गौ ! (तस्मात् क्रुद्धः वृत्रहा) इस कारण क्रोधित हुए इन्द्रने (ते पयः क्षीरं अहरत्) तेरा दूध और जल हर लिया ॥ १० ॥

हे वशा गौ ! (यत् क्रुद्धः धनपतिः) जब क्रोधित हुआ धनपति (ते क्षीरं अहरत्) तेरा दूध लेता है, तब समझो कि (इदं तत् अद्य) यह वह आज (नाकः त्रिषु पात्रेषु रक्षति) स्वर्गधाम ही सोमके रूपसे तीन बर्तनोंमें रखता है ॥ ११ ॥

(यत्र दीक्षितः अथर्वा) जहां दीक्षाको लिये हुए (अथर्ववेदी) यज्ञकर्ता (हिरण्यये बर्हिषि आस्ते) सुवर्णमय आसनपर बैठता है, (तं) उसके पास (त्रिषु पात्रेषु सोमं) तीनों बर्तनोंमें रखा सोम (वशा देवी अहरत्) देवी वशा गौ ले जाती है, दूध रूपसे पहुंचा देती है ॥ १२ ॥

(वशा सोमेन सं आगत) गौ सोम औषधीको प्राप्त हुई और (सर्वेण पद्वता सं उ) सब पांववालों-मनुष्योंको भी प्राप्त हुई। (वशा कलिभिः गंधर्वैः सह) यह गौ कलह करनेवाले गंधर्वोंके साथ (समुद्रं अध्यष्ठात्) समुद्रपर अधिष्ठान करती रही। अर्थात् समुद्रपर भी गौका मान वैसा ही है, जैसा मानवोंमें है ॥ १३ ॥

(वशा ऋचः सामानि बिभ्रती) गौ यज्ञमें ऋचा और सामोंको धारण करती हुई (वातेन सं आगत) वायुसे संगत हुई, (सर्वैः पतत्रिभिः हि सं) सब पांववालोंसे मिलकर (समुद्रे प्रानृत्यत्) समुद्रपर नाचने लगी। इस तरह गौका संमान सर्वत्र होता है ॥ १४ ॥

(वशा सूर्येण सं आगत) गौ सूर्यसे मिली, (सर्वेण चक्षुषा सं उ) सब आंखवालोंसे मिली। (भद्रा वशा ज्योतींषि बिभ्रती) कल्याणकारिणी गौ अनेक तेजोंका धारण करती हुई (समुद्रं अत्यख्यत्) समुद्रके परे देखने लगी। दूरतक उसकी प्रतिष्ठा हुई है ॥ १५ ॥

हे (ऋतावरि) हे अन्नको देनेवाली गौ ! (हिरण्येन अभिवृता यत् अतिष्ठः) सुवर्णभूषणोंसे युक्त होकर जब तू खडी हुई, हे (वशे) गौ ! (त्वा अधि समुद्रः अश्वः भूत्वा अस्कन्दत्) तेरे पास समुद्र अश्व बनकर आया, यह तेरा महत्त्व है ॥ १६ ॥

तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा । अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१७॥
वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव । वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८॥
ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद्ब्रह्मणः ककुदादधि । ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१९॥
आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे । पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥२०॥
ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव । आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१॥
यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे । ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत्स हि नेत्रमवेत्तव ॥२२॥
सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥२३॥
युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद्वशी । तरांसि यज्ञा अभवन्तरसां चक्षुरभवद्वशा ॥२४॥
वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद्वशा सूर्यमधारयत् । वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥२५॥

अर्थ— (यत्र दीक्षितः अथर्वा) जहां जिस यज्ञमें दीक्षित अथर्ववेदी (हिरण्यये बर्हिषि आस्ते) सुवर्णमय आसनपर बैठा वहां (भद्राः समगच्छन्त) भद्र पुरुष इकट्ठे हुए और वहां (वशा देष्ट्री अथो स्वधा) दान देनेवाली गौ स्वयं अन्नरूपमें उपस्थित हुई ॥ १७ ॥

(राजन्यस्य वशा माता) क्षत्रियकी माता गौ है, हे (स्वधे) अन्न ! (तव माता वशा) तेरी भी माता गौ ही है । (वशाया आयुधं जज्ञे) गौसे शस्त्र उत्पन्न हुआ है और (ततः चित्तं अजायत) उससे चित्त बना है । अर्थात् गौसे बल और बुद्धि दोनों पैदा होते हैं ॥ १८ ॥

(ब्रह्मणः ककुदादधि) ब्रह्माके उच्च भागसे (बिन्दुः ऊर्ध्वः उदचरत्) एक बूंद ऊपर चल पडा, हे (वशे) गौ ! (ततः त्वं जज्ञिषे) उससे तू उत्पन्न हुई है । और (ततः होता अजायत) उससे ही पश्चात् होता हवनकर्ता– उत्पन्न हुआ । अर्थात् गौमें ब्रह्मशक्ति अधिक है, क्योंकि वह पहिले हुई है ॥ १९ ॥

हे (वशे) गौ ! (ते आस्नः गाथाः अभवन्) तेरे मुखसे गाथाएं बनीं, (उष्णिहाभ्यः बलं) तेरे गर्दनके भागोंसे बल उत्पन्न हुआ है, (पाजस्यात् यज्ञः जज्ञे) तेरे दुग्धाशयसे यज्ञ हुआ, और (तव) तेरे (स्तनेभ्यः रश्मयः) स्तनोंसे किरणें हुई हैं । इस तरह गौसे यह सब उत्पन्न हुआ है, इतनी गौकी महिमा है ॥ २० ॥

(तव ईर्माभ्यां) तेरे बाहुओंसे तथा (सक्थिभ्यां अयनं जातं) टांगोंसे गति पैदा हुई । हे (वशे) गौ ! तेरे (आन्त्रेभ्यः अत्राः) आंतोंसे अनेक पदार्थ और (उदरात् वीरुधः) पेटसे वनस्पतियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २१ ॥

हे (वशे) गौ ! (यत् वरुणस्य उदरं) जब वरुणके उदरमें तू (अनु प्रविशथाः) प्रविष्ट हुई, (ततः ब्रह्मा त्वा उत् अह्वयत्) तब ब्रह्माने तुझे बुलाया । (सः हि तव नेत्रं अवेत्) वह तेरा नेत्र जानता है । अर्थात् गौका महत्त्व ज्ञानी ही जानता है ॥ २२ ॥

(असूस्वः जायमानात्) प्रसवमें असमर्थ गौकी (गर्भात् सर्वे अवेपन्त) गर्भस्थितिसे सब कांपने लगते हैं । (तां आहुः वशा ससूव इति) उसीको कहते हैं कि यह गौ प्रसवके लिये असमर्थ है । (सः हि ब्रह्मभिः अस्याः बन्धुः क्लृप्तः) वही ब्राह्मणोंने इसका बंधु माना है ॥ २३ ॥

(यः अस्याः इत् एकः वशी) जो इस गौको अकेला ही वशमें कर लेता है । (एकः युधः संजसृति) वही एक योद्धा व्यवस्थाको उत्पन्न करता है । (यज्ञाः तरांसि अभवन्) यज्ञ पार करानेवाले हैं, और (तरसां चक्षुः वशा अभवत्) पार होनेवालोंकी आंख गौ है । गौकी सहायतासे सब लोग दुःखोंसे पार होते हैं ॥ २४ ॥

(वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात्) वशा गौने यज्ञको स्वीकार किया, (वशा सूर्यं अधारयत्) वशा गौने सूर्य धारण किया । (वशायां अन्तः ओदनः अविशत्) गौमें अन्न प्रविष्ट है और वह (ब्रह्मणा सह) ज्ञानके साथ प्रविष्ट हुआ है । गौके आधारसे यज्ञ, अन्न और ज्ञान सुरक्षित रहते हैं ॥ २५ ॥

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते । वशेदं सर्वमभवद्देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥२६॥
य एवं विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात् । तथा हि यज्ञः सर्वपाद्दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥२७॥
तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि । तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥
चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः । आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९॥
वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः । वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥३०॥
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये । ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥
सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते । य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥३२॥
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते । ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥३३॥
वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत । वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥३४॥

अर्थ—(देवाः वशां अमृतं आहुः) देव गौको अमृत कहते हैं, (वशां मृत्युं उपासते) गौकी मृत्यु समझकर उपासना करते हैं। (वशा इदं सर्वं अभवत्) गौ ही यह सब है, अर्थात् (देवाः मनुष्याः असुराः पितर ऋषयः) देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि ये वशाके ही रूप हैं ॥ २६ ॥

(यः एवं विद्यात्) जो यह तत्त्वज्ञान जानता है, (सः वशां प्रतिगृह्णीयात्) वह वशा गौका दान लेवे। तथा वशा गौके दाताको (यज्ञः सर्वपात् अनपस्फुरन् दुहे) यज्ञ सब प्रकारसे सफल होकर विचलित न होता हुआ सुयोग्य फल प्रदान करता है ॥ २७ ॥

(वरुणस्य आसनि अन्तः तिस्रः जिह्वाः) वरुणके मुखमें तीन जिह्वाएं (दीद्यति) चमकती हैं। (तासां मध्ये या राजति) उनके बीचमें जो विशेष चमकती है, (सा वशा) वह वशा गौ ही है, अतः उसे (दुष्प्रतिग्रहा) दानमें स्वीकार करना कठिन है ॥ २८ ॥

(वशायाः रेतः चतुर्धा अभवत्) वशा गौका वीर्य चार प्रकारसे विभक्त हुआ है। (आपः तुरीयं) आप् चतुर्थ भाग है, (अमृतं तुरीयं) अमृत अन्न चौथा भाग है, (यज्ञः तुरीयं) यज्ञ चौथा भाग है और (पशवः तुरीयं) पशु चौथा भाग है। यह सब वशाका चतुर्धा वीर्य है ॥ २९ ॥

(वशा द्यौः) वशा द्यौ है, (वशा पृथिवी) वशा ही पृथिवी है; (वशा प्रजापति विष्णुः) वशा ही प्रजापालक विष्णु है। (ये साध्याः वसवः च) जो साध्य और वसु हैं, वे (वशायाः दुग्धं अपिबन्) वशा गौका दूध पीते हैं ॥ ३० ॥

(ये साध्याः वसवः च) जो साध्य और वसु हैं वे (वशायाः दुग्धं पीत्वा) वशा गौका दुध पीकर (ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि) वे स्वर्गके स्थानमें (अस्याः पयः उपासते) इसके दूधकी प्राप्ति करते हैं ॥ ३१ ॥

(एनां सोमं एके दुह्रे) इससे सोमका कईयोंने दोहन किया है, (एके घृतं उपासते) कई इससे घृतकी प्राप्ति करते हैं। (एवं विदुषे वशां ददुः) जो इस प्रकारके विद्वान्‌को गौ प्रदान करते हैं, (ते दिवः त्रिदिवं गताः) वे स्वर्गमें जाते हैं ॥ ३२ ॥

(ब्राह्मणेभ्यः वशां दत्त्वा) ब्राह्मणोंको वशा गौ देकर (सर्वान् लोकान् सं अश्नुते) सब लोकोंको प्राप्त करते हैं। (अस्य ऋतं ब्रह्म अथो तपः हि आर्पितम्) इसमें ऋत, ज्ञान, तप आश्रित होते हैं ॥ ३३ ॥

(देवाः वशां उपजीवन्ति) देवता वशा गौपर जीवित रहते हैं (उत मनुष्याः वशां) और मनुष्य भी वशा गौपर ही जीवित रहते हैं। (यावत् सूर्यः विपश्यति) जहांतक सूर्यका प्रकाश पहुंचता हैं (वशा इदं सर्वं अभवत्) वशा गौ ही यह सब है ॥ ३४ ॥

वशवर्ती गाय

गाय

दशम सूक्तमें भी ऐसा ही गौका वर्णन है। गौका दान लेनेका अधिकारी कौन है, इस विषयमें द्वितीय मंत्रकी सूचना अत्यंत महत्त्वकी है। जो यज्ञका तत्त्व जानता है, वही गौका दान लेवे। गौ अपने भोगके लिये लेनी नहीं है, प्रत्युत यज्ञके लिये लेनी है, यह जो जानता है, वही दान लेवे और उसीको दान दिया जावे। (मं. १–३)

इस सूक्तमें गौका नाम वशा है। वशा गौ वह है कि जो सुखसे दुही जाती है। दूसरी 'सूतवशा' है, अर्थात् जो नौकरके वशमें रहती है। अन्य गौवें वशमें नहीं रहतीं। वशा गौ सबमें उत्तम है, क्योंकि वह न मारती है, न लातें लगाती है और हर समय दूध देती है।

संपूर्ण पृथ्वी, तथा आप इन सबकी रक्षा यह गौ करती है। सहस्र धाराओंसे दूध देकर यह गौ हरएकका संरक्षण करती है। (मं. ४)

गौका उत्सव

जो उत्तमसे उत्तम गौ होती है, उसका महोत्सव करते हैं। गौ आगे चलायी जाती है, उसके पीछे सौ मनुष्य पात्र लेकर चलते हैं, सौ मनुष्य दोहन करनेवाले चलते हैं, सौ मनुष्य उसकी रक्षा करनेवाले गोपके रूपमें चलते हैं; गौके पीछे इस तरह ३०० मनुष्य बडे आनंदसे चलते हैं। (मं. ५) बाजे बजाये जाते हैं और नगर भरमें इसका यह उत्सव मनाया जाता है। यज्ञ द्वारा गौके दूधसे सबका जीवन उत्तम रीतिसे होता है, इसलिये उत्तम गौका यह वार्षिक उत्सव किया जाता है।

गौको 'यज्ञपदी' अर्थात् यज्ञका आधार कहा जाता है, क्योंकि इसके दूध और घृतसे यज्ञ होता है, पर्जन्यसे घासकी उत्पत्ति होकर इस गौकी रक्षा होती है। (मं. ६) सोमवल्ली गौ खाती है और उसका परिणाम दूधपर होता है, यह दूध पीनेसे मनुष्यमें भी सोमका बल प्राप्त होता है। दूध, दही, घृत तो गौके अधीन ही हैं, परंतु बैलसे खेती होती है, जिससे सब राष्ट्रकी रक्षा होती है, इस तरह गौ ही सबकी रक्षा करती है। (मं. ७–१७)

गौ क्षत्रियकी माता है, अन्नकी भी वही माता है (मं. १८), ब्रह्मकी विशेष बलवत्तर शक्तिसे गौकी उत्पत्ति हुई है (मं. १९), गौके अवयवोंको विशेष बल प्राप्त होता है, उससे सब विश्वका धारण होता है। गौ यज्ञ हीका रूप है। (मं. २०-२५)

गौ अमृतको धारण करती है, जो मृत्युके मार्गपर होते हैं वे गौकी उपासना करके दीर्घजीवी होते हैं। गौ ही सब कुछ बनी है; देव, मानव, असुर, पितर और ऋषि गौके दूधसे ही पुष्ट होते हैं (मं. २६)। इस तरहका सब ज्ञान जो जानता है वही वशा गौका दान लेवे। (मं. २७)

(मं. २८) वरुण राजाकी जिह्वा जैसे बडी तेजस्विनी होती है, कोई उसका विरोध नहीं कर सकता, उसी तरह वशा गौका प्रतिग्रह कठिन होता है। अज्ञानी मनुष्य उसका दान नहीं ले सकता (मं. २९)। विश्वात्माका वीर्य चार वस्तुओंमें विभक्त हुआ, उसमें एक वशाके रूपमें प्रकट हुआ है। अन्य तीन भाग यज्ञ, जल और पशुके रूपमें प्रकट हुए हैं।

साध्य वसु आदि देव वशाका दूध पीकर ही सिद्धिको प्राप्त हुए। वशा गौ ही पृथ्वीपर भूमि, द्यौ और प्रजापतिका कार्य कर रही है (मं. ३०–३१)। यह सब ज्ञान जो जानते हैं वे ज्ञानीको गौ दान देकर स्वर्गके भागी हुए हैं। (मं. ३२–३३)

वशा गौपर देव उपजीवन करते हैं, गौका दूध पीकर मनुष्य भी जीवित रहते हैं। जहांतक सूर्य प्रकाशता है, वहां तकका विश्व मानो वशाका ही रूप है, इतना महत्त्व गौका है।

ब्राह्मणकी गौ

कां. १२, सू. ५

(ऋषिः– अथर्वाचार्यः । देवता– ब्रह्मगवी ।)

श्रमे॑ण॒ तप॑सा सृ॒ष्टा ब्रह्म॑णा वि॒त्तर्ते॑ श्रि॒ता ॥ १ ॥
स॒त्येनावृ॑ता श्रि॒या प्रावृ॑ता॒ यश॑सा॒ परी॑वृता ॥ २ ॥
स्व॒धया॒ परि॑हिता श्र॒द्धया॒ पर्यू॑ढा दी॒क्षया॑ गु॒प्ता य॒ज्ञे प्रति॑ष्ठिता लो॒को नि॒धन॑म् ॥ ३ ॥
ब्रह्म॑ पद॒वा॒यं ब्रा॑ह्म॒णोऽधि॑पतिः ॥ ४ ॥
ताम॒ाद॑दा॑नस्य ब्रह्मग॒वीं जि॑न॒तो ब्रा॑ह्म॒णं क्ष॒त्रिय॑स्य ॥ ५ ॥
अप॑ क्रामति सू॒नृता॑ वी॒र्यं॒ पुण्या॑ ल॒क्ष्मीः ॥ ६ ॥

[२]

ओज॑श्च॒ तेज॑श्च॒ सह॑श्च॒ बलं॑ च॒ वाक्चे॑न्द्रि॒यं च॒ श्रीश्च॒ धर्म॑श्च ॥ ७ ॥
ब्रह्म॑ च क्ष॒त्रं च॑ रा॒ष्ट्रं च॒ विश॑श्च॒ त्विषि॑श्च॒ यश॑श्च॒ वर्च॑श्च॒ द्रवि॑णं च ॥ ८ ॥
आयु॑श्च रू॒पं च॒ नाम॑ च की॒र्तिश्च॑ प्रा॒णश्चा॑पा॒नश्च॒ चक्षु॑श्च॒ श्रोत्रं॑ च ॥ ९ ॥
पय॑श्च॒ रस॒श्चान्नं॑ चा॒न्नाद्यं॑ च॒र्तं च॑ स॒त्यं चे॒ष्टं च॑ पू॒र्तं च॑ प्र॒जा च॑ प॒शव॑श्च ॥ १० ॥
तानि॒ सर्वा॒ण्यप॑ क्रामन्ति ब्रह्मग॒वीमा॒ददा॑नस्य जिन॒तो ब्रा॑ह्म॒णं क्ष॒त्रिय॑स्य ॥ ११ ॥

अर्थ— (श्रमेण तपसा सृष्टा) श्रम और तपसे उत्पन्न हुई (ब्रह्मणा वित्ता) ज्ञानसे प्राप्त हुई और (ऋते श्रिता) सत्यके आश्रयपर रह रही है ॥ १ ॥

(सत्येन आवृता) सत्यसे आच्छादित (श्रिया प्रावृता) श्रीसे भरी हुई और (यशसा परीवृता) यशसे घिरी हुई है ॥ २ ॥

(स्वधया परिहिता) अपनी अपनी धारणासे सुरक्षित हुई (श्रद्धया पर्यूढा) श्रद्धाभक्तिसे युक्त (दीक्षया गुप्ता) दीक्षाव्रतसे सुरक्षित हुई (यज्ञे प्रतिष्ठिता) यज्ञमें प्रतिष्ठित हुई और (लोकः निधनं) इस लोकमें आश्रयको प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥

जो (ब्रह्म पदवायं) ज्ञानरूप पदसमूह है उसका (आधिपतिः ब्राह्मणः) स्वामी ब्राह्मण है ॥ ४ ॥

(तां ब्रह्मगवीं आददानस्य) उस ब्राह्मणकी गौको लेनेवाले और (ब्राह्मणं जिनतः क्षत्रियस्य) ब्राह्मणका नाश करनेवाले क्षत्रिय की ॥ ५ ॥

(सुनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः अपक्रामति) सत्य वीर्यवती पुण्यमयी लक्ष्मी दूर होती है ॥ ६ ॥

[२] ओज, तेज (सहः) सहनसामर्थ्य, बल, वाणी, इन्द्रियशक्ति, (श्रीः) शोभा, धर्म ॥ ७ ॥

(ब्रह्म) ज्ञान, (क्षत्रं) शौर्य, राष्ट्र, (विशः) प्रजा, (त्विषिः) तेज, यश (वर्चः) पराक्रम, (द्रविणं) धन ॥ ८ ॥

आयु, रूप, नाम, कीर्ति, प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र ॥ ९ ॥

(पयः) दूध, रस, अन्न, (अन्नाद्यं) खाद्य पदार्थ, ऋत, सत्य, (इष्टं च पूर्तं च) इष्ट वस्तु, पूर्णता, प्रजा, पशु ॥ १० ॥

(तानि सर्वाणि) ये सब ३४ पदार्थ (ब्रह्मगवीं आददानस्य ब्राह्मणं जिनतः क्षत्रियस्य अपक्रामन्ति) ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले और ब्राह्मणका नाश करनेवाले क्षत्रियसे दूर होते हैं ॥ ११ ॥

[३]

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यं१घविषा साक्षात्कृत्या कूल्बजमावृता ॥ १२ ॥

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४ ॥

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥ १५ ॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥

तस्माद्वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८ ॥

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३ऽपेक्षमाणा ॥ १९ ॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥

अर्थ— [३] (सा एषा ब्रह्मगवी भीमा) वह यह ब्राह्मणकी गौ भयानक है, यह (अघ-विषा, साक्षात् कृत्या) विषैली और साक्षात् घात करनेवाली (कूल्वजं आवृता) विनाशक पदार्थसे व्याप्त है ॥ १२ ॥

(अस्यां सर्वाणि घोराणि) इसमें सब भयंकरता है (सर्वे च मृत्यवः) इसमें सब मृत्यु हैं ॥ १३ ॥

(अस्यां सर्वाणि क्रूराणि) इसमें सब क्रूरता है (सर्वे पुरुषवधाः) सब पुरुषोंके वध हैं ॥ १४ ॥

(सा ब्रह्मगवी आदीयमाना) यह ब्राह्मणकी गौ पकडी जानेपर (ब्रह्मज्यं देवपीयुं मृत्योः पड्वीशे आद्यतिः) ब्रह्मघाती देवशत्रुको मृत्युके पाशमें डाल देती है ॥ १५ ॥

(सा शतवधा मेनिः) वह सौका घात करनेवाली हथियार ही है (सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिः हि) वह ब्रह्मघातकीका विनाश ही है ॥ १६ ॥

(तस्मात् वै विजानंता ब्राह्मणानां गौः दुराधर्षा) इसलिये ही ज्ञानीको समझना चाहिये कि ब्राह्मणकी गौ धर्षण करनेके लिये कठिन है ॥ १७ ॥

(धावन्ती वज्रः, उद्वीता वैश्वानरः) वह जब दौडती है तब वज्र बनती है, जब उठती है तब वह आग जैसी होती है ॥ १८ ॥

(उफान् उत्खिदन्ती हेतिः) खुरोंसे मारती हुई यह हथियारके समान है और (अपेक्षमाणा महादेवः) देखती हुई महादेवके समान होती है ॥ १९ ॥

(ईक्षमाणा क्षुरपविः) छुरेके समान तीक्ष्ण होती है और (वाश्यमाना अभिस्फूर्जति) शब्द करनेपर गर्जना करनेके समान बनती है ॥ २० ॥

(हिंकृण्वती मृत्युः) हिंकार करनेपर मृत्यु होती है, और (पुच्छं पर्यस्यन्ती उग्रः देवः) पूंछ ऊपर करनेवाली उग्र देवके समान भयंकर होती है ॥ २१ ॥

(कर्णौ वरीवर्जयन्ती सर्वज्यानिः) कान ऊपर करनेपर सबका नाश करनेवाली होती है और (मेहन्ती राजयक्ष्मः) मूत्र करनेपर क्षयरोग ही बनती है ॥ २२ ॥

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥
शरव्याऽ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥

[४]

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८ ॥
देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २९ ॥
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३० ॥
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥
अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्का ॥ ३२ ॥
मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३ ॥

अर्थ— (दुह्यमाना मेनिः) दुष्टों द्वारा दुही जाते समय शस्त्ररूप होती है (दुग्धा शीर्षक्तिः) दुही जानेपर सिरपीडा स्वरूप बनती है ॥ २३ ॥

(उपतिष्ठन्ती सेदिः) पास खडी होनेपर विनाशक होती है और (परामृष्टा मिथोयोधः) स्पर्श होनेपर द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले शत्रुके समान होती है ॥ २४ ॥

(मुखे अपिनह्यमाने शरव्या) मुखमें बांधी जानेपर शरोंके समान और (हन्यमाना ऋतिः) ताडित होनेपर विनाशक होती है ॥ २५ ॥

(निपतन्ती अघविषा) बैठती हुई भयानक विषरूपी और (निपतिता तमः) बैठी होनेपर साक्षात् मृत्युरूपी अन्धकारके समान होती है ॥ २६ ॥

(ब्रह्मगवी अनुगच्छन्ती) ब्राह्मणकी गौ (ब्रह्मज्यस्य प्राणान् उपदासयति) ब्राह्मणघातकीके प्राणोंका नाश करती है ॥ २७ ॥

[४] (विकृत्यमाना वैरं) गौको काट देनेपर वैर करती है और (विभज्यमाना पौत्राद्यं) काटकर विभक्त करनेपर पुत्रादिकोंको खानेवाली होती है ॥ २८ ॥

(ह्रियमाणो देवहेतिः) ले जानेपर देवोंका वज्र बनती है और (हृता व्यृद्धिः) हरण होनेपर विपत्ति बनती है ॥ २९ ॥

(अधिधीयमाना पाप्मा) काबूमें रखनेपर पापसदृश होती है और (अवधीयमाना पारुष्यं) तिरस्कृत होनेपर कठोरता बनती है ॥ ३० ॥

(प्रयस्यन्ती विषं) दुःखी होनेपर विष होती है और (प्रयस्ता तक्मा) सतानेपर ज्वरके समान होती है ॥ ३१ ॥

(पच्यमाना अघं) पकानेपर पाप रूप बनती है और (पक्वा दुष्वप्न्यं) पक जानेपर दुष्ट स्वप्नके समान दुःखदायिनी बनती है ॥ ३२ ॥

(पर्याक्रियमाणा मूलबर्हणी) घुमाई जानेपर मूलका नाश करनेवाली और (पर्याकृता क्षितिः) परोसी जाने पर विनाशक बनती है ॥ ३३ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ३४ ॥
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ३५ ॥
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ३६ ॥
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ ३७ ॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥ ३८ ॥

[५]

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥ ३९ ॥
अस्वगता परिह्णुता ॥ ४० ॥
अग्निः क्रव्याद्भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥ ४१ ॥
सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ४३ ॥
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥

अर्थ— (गन्धेन असंज्ञा) वह गंधसे बेहोश करती है, (उद्ध्रियमाणा शुक्) उठाई जानेपर शोक पैदा करती है और (उद्धृता आशीविषः) उठाई गयी सांपके समान होती है ॥ ३४ ॥

(उपह्रियमाणा अभूतिः) हरे जाने पर विपत्ति बनती है, (उपहृता पराभूतिः) पास बांधके रखनेपर पराभवरूप होती है ॥ ३५ ॥

(पिश्यमाना क्रुद्धः शर्वः) पीली जाते समय क्रोधित रुद्रके समान और (पिशिता शिमिदा) पीसने पर सुखका नाश करनेवाली होती है ॥ ३६ ॥

(अश्यमाना अवर्तिः) खायी जाती हुई विपदा होती है और (अशिता निर्ऋतिः) खाई जानेपर गिरावट बनती है ॥ ३७ ॥

(अशिता ब्रह्मगवी) खाई हुई ब्राह्मणकी गौ (ब्रह्मज्यं अस्मात् अमुष्मात् च लोकात् छिनत्ति) ब्राह्मणघातकीको इस लोकसे और परलोकसे उखाड देती है ॥ ३८ ॥

[५] (तस्याः आहननं कृत्या) उसका वध घात करनेवाला है (आशसनं मेनिः) उसके टुकडे करना वज्रघातके समान है । और (ऊवध्यं वलगः) उसका पक्व अन्न विनाशक होता है ॥ ३९ ॥

वह (परिह्णुता अस्वगता) ली जानेपर भी अपने पास नहीं रहती अर्थात् अपना घात करती है ॥ ४० ॥

(ब्रह्मगवी क्रव्यात् अग्निः भूत्वा ब्रह्मज्यं प्रविश्य अत्ति) ब्राह्मणकी गौ मांसभक्षक आग बनकर ब्राह्मणघातकीमें प्रवेश करके उसे खा जाती है ॥ ४१ ॥

(अस्य सर्वा अंगा पर्वा मूलानि वृश्चति) इसके सब अंगों और मूलोंको काट डालती है ॥ ४२ ॥

(अस्य पितृबन्धु छिनत्ति) इसके पिताके बन्धुओंको काटती है और (मातृबन्धु पराभावयति) माताके बन्धुओंको परास्त करती है ॥ ४३ ॥

(क्षत्रियेण अपुनर्दीयमाना ब्रह्मज्यस्य ब्रह्मगवी) क्षत्रियके द्वारा पुनः वापस न दी गयी ब्राह्मणकी गौ (विवाहान् सर्वान् ज्ञातीन् अपि क्षापयति) क्षत्रियके सब विवाहों और सब जातवालोंका नाश करती है ॥ ४४ ॥

अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ४६ ॥

[६]

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४७ ॥
क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥ ४८ ॥
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४९ ॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत्तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥ ५० ॥
छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५१ ॥
आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥
वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ५३ ॥
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ५५ ॥
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥

अर्थ— (एवं अवास्तुं अस्वगं अप्रजसं करोति) इसे घरके विना, आश्रयरहित और प्रजारहित करती है, (अपरापरणः भवति, क्षीयते) सहायकसे रहित होता है और नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

(यः क्षत्रियः विदुषः ब्राह्मणस्य गां एवं आदत्ते) जो क्षत्रिय विद्वान् ब्राह्मणकी गौको इसी तरह छीनता है ॥ ४६ ॥

[६] (तस्य आहनने गृध्राः क्षिप्रं वै ऐलवं कुर्वते) उस दुष्टके हनन होनेपर गीध शीघ्र ही कोलाहल मचाते हैं ॥ ४७ ॥

(तस्य आदहनं) उसकी जलती चिताको देखकर (केशिनीः पाणिना उरसि आघ्नानाः पापं ऐलवं कुर्वाणाः परिनृत्यन्ति) बाल छोडकर हाथोंसे छातियोंको पीट पीट कर बुरा शब्द करती हुईं स्त्रियां इतस्ततः नाचती हैं ॥ ४८ ॥

(तस्य वास्तुषु वृकाः ऐलवं क्षिप्रं कुर्वते) उसके घरोंमें भेडिये शीघ्र ही अपना शब्द करने लगते हैं ॥ ४९ ॥

(क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति) शीघ्र ही उसके विषयमें पूछते हैं कि (यत् तत् आसीत्) जैसा यह था (इदं नु तत् इति) क्या यह वही है ॥ ५० ॥

(छिन्धि आच्छिन्धि प्रच्छिन्धि) उसको काटो, काट डालो और टुकडे करो । (अपि क्षापय क्षापय) नाश करो, उसका नाश करो ॥ ५१ ॥

हे (आंगिरसि) अंगरसकी शक्ति ! (आददानं ब्रह्मज्यं उपदासय) ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले घातकीका नाश करो ॥ ५२ ॥

तू (वैश्वदेवी हि कृत्या) सब देवोंकी विनाशक शक्ति (कूल्बजं आवृता उच्यसे) विनाशिनी है ऐसा कहते हैं ॥ ५३ ॥

(ओषन्ती समोषन्ती ब्राह्मणः वज्रः) तापदायक नष्ट करनेवाली यह ब्राह्मणकी वज्ररूप शक्ति है ॥ ५४ ॥

(त्वं क्षुरपविः मृत्युः भूत्वा विधाव) तू क्षुरके समान तीक्ष्ण बनकर उसका मृत्यु करनेके लिये दौड ॥ ५५ ॥

(जिनतां वर्चः इष्टं पूर्तं च आशिषः आदत्से) विनाश करनेवालेके तेज इष्टपूर्तता और आशिषोंको तू छीनती है ॥ ५६ ॥

आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन्प्र यच्छसि ॥५७॥
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥५८॥
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥५९॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६०॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥६१॥

[७]

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥६२॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥६३॥
यथायाद्यमसादनात्पापलोकान्परावतः ॥६४॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६५॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥६६॥
प्र स्कन्धान्प्र शिरो जहि ॥६७॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥६८॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥६९॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥७०॥
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥७१॥

अर्थ—(जीतं आदाय अमुष्मिन् लोके) हिंसक घातकी पुरुषको पकडकर परलोकमें (जीताय प्रयच्छासि) उसके घातके लिये तू देती है ॥ ५७ ॥

हे (अघ्न्ये) अवध्य गौ ! तू (ब्राह्मणस्य अभिशस्त्याः पदवीः भव) ब्राह्मणकी प्रशंसासे सबकी प्रतिष्ठा करनेवाली हो ॥ ५८ ॥

तू (मेनिः शरव्या भव) विनाशक शस्त्र बन, (अघात् अघविषा भव) पापसे पापरूपी बन ॥ ५९ ॥

हे (अघ्न्ये) अवध्य गौ ! तू (ब्रह्मज्यस्य कृतागसः देवपीयोः अराधसः शिरः प्रजहि) ब्रह्मघातकी पापी देवनिंदक अदानी पापीका शिर काट डाल ॥ ६० ॥

(त्वया प्रमूर्णं मृदितं दुश्चितं अग्निः दहतु) तेरे द्वारा मारे गये और नष्ट भ्रष्ट हुए दुष्टबुद्धि शत्रुको अग्नि जला दे ॥ ६१ ॥

[७] (वृश्च प्रवृश्च संवृश्च) काट, अधिक काट, अच्छी तरहसे काट, (दह प्रदह संदह) जला, अधिक जला, अच्छी तरहसे जला ॥ ६२ ॥

हे (अघ्न्ये देवि) अहिंसनीय गौ देवि ! (ब्रह्मज्यं आमूलात् अनुसंदह) ब्रह्मघातकीको समूल जला डाल ॥६३॥

(यथा यमसदनात् परावतः पापलोकान् अयात्) जैसा यमसदनसे परले पापी लोकोंके प्रति वह जावे (एवा कृतागसः देवपीयोः अराधसः ब्रह्मज्यस्य) इस तरह पापी देवशत्रु कंजूस ब्रह्मघातकी मनुष्यका (शिरः कन्धान्) सिर और कंधे (शतपर्वणा क्षुरभृष्टिना तीक्ष्णेन वज्रेण प्रजहि) सौ नोकवाले क्षुरके समान धारवाले तीक्ष्ण वज्रसे काट डाल ॥ ६४-६७ ॥

(अस्य लोमानि सं छिन्धि) इसके लोम काट डाल, (अस्य त्वचं वि वेष्टय) इसकी त्वचाको उधेड, (अस्य मांसानि शातय) इसके मांसको काट डाल, (अस्य स्नावानि संवृह) उसके स्नायुओंको कुचल, (अस्थीनि पीडय) इसकी हड्डियोंको पीडा दे, (अस्य मज्जानं निर्जहि) इसकी मज्जाको नाश कर, (अस्य सर्वा पर्वाणि विश्रथय) इसके सब पर्वोंको अलग कर ॥ ६८-७१ ॥

अग्निरेनं क्रव्यात्पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ७२ ॥
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ७३ ॥

अर्थ— (एनं क्रव्याद् अग्निः पृथिव्याः नुदतां) इसको मांसभक्षक अग्नि पृथिवीके बाहर निकाले और (उत् ओषत्) जला देवे, (वायुः महतः वरिम्णः अन्तरिक्षात्) वायु बडे भारी अन्तरिक्षसे दूर करे। (सूर्यः एनं दिवः प्र नुदतां) सूर्य इसे द्युलोकसे दूर कर देवे और (नि ओषतु) जला देवे ॥ ७२-७३ ॥

ब्राह्मणकी गौ

गौका महत्त्व

इस सूक्तमें और अगले सूक्तमें गौका महत्त्व वर्णन किया है इस दृष्टिसे ये दोनों सूक्त मनन करने योग्य हैं। पहिले ही मंत्रमें कहा है कि (ददामि इति एव ब्रूयात् ॥ १ ॥) मैं दान देता हूं ऐसा ही यजमान बोले, दान देनेमें संकोच न हो, न देनेकी अथवा और किसी प्रकार विचार न हो, सदा उपकार करनेका ही विचार मनमें रहे।

ब्राह्मण क्यों याचना करते हैं ?

ब्राह्मणोंका घर एक गुरुकुल होता है, वहां अनेक छात्र होते हैं, उनका पोषण करना और उनको विद्या पढाना उस ब्राह्मणका कर्तव्य होता है। यज्ञयाग करना भी उसका कर्तव्य है इस सबके लिये विद्वान् ब्राह्मणोंको गौकी आवश्यकता होती है। इस परोपकार और जगदुद्धारके कार्यके लिये ब्राह्मण लोग गौओंकी प्रार्थना करते हैं और अन्य लोग उनके न मांगने पर भी सत्पात्र ब्राह्मण देखकर गौ दान करते हैं।

गौका दान तो ऐसे सत्पात्र ब्राह्मणको स्वयं करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते और मांगनेपर भी नहीं देते, उनसे अनजाने ही एक बडा सार्वजनिक पाप होता है। ब्राह्मणोंको जिस राष्ट्रमें मांगनेकी आवश्यकता होती है अर्थात् उनको सहायताकी न्यूनता रहती है, उस राष्ट्रमें बडा पाप होता है। क्योंकि सद्‌ब्राह्मणोंके विद्याप्रचारसे ही राष्ट्रमें संस्कृति और सभ्यता स्थिर रह सकती है। इस तरह विचार करनेसे विदित होगा कि ब्राह्मणोंके मांगनेपर भी न देना कितना राष्ट्रीय पतनका हेतु हो सकता है।

दानका अधिकारी ब्राह्मण

हरएक ब्राह्मण मांगनेका भी अधिकारी नहीं है और गौका दान लेनेका भी अधिकारी नहीं है। इस विषयमें वेदने स्पष्ट दानके अधिकारी ब्राह्मणका लक्षण बताया है—

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम्।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा॥ (मं. २२)

" सैंकडों ब्राह्मण लोग गौकी याचना करते रहें, परंतु उनमें केवल विद्वान्‌को ही गौ देनी चाहिये "। यह वेदका आदेश सदा स्मरण रखने योग्य है। जो चाहे सो ब्राह्मण दानका अधिकारी नहीं है, जो विद्वान् ब्राह्मण होगा वही दान लेनेका अधिकारी होगा। यहां वेदने ब्राह्मण जातिका पक्षपात नहीं किया है, केवल विद्वान् तत्त्वज्ञानी आचार-संपन्न ब्राह्मण जो कि अपने अध्ययन अध्यापनमें मग्न रहते हैं, जिनसे अपने लिये धन कमानेका व्यवसाय नहीं हो सकता, जो कि अपना जीवन ज्ञानवृद्धिके लिये लगाये हुए हैं, जिनके सत्संगमें रहते हुए अनेक छात्र कृतकृत्य हो रहे हैं, ऐसे सुयोग्य विद्वान्‌को ही गौ देनी चाहिये। यह आदेश सब दानोंके लिये है और गौके दानके लिये विशेष ही है।

ऐसे सद्‌ब्राह्मणका ही गौपर अधिकार है यह बात (देवाः अब्रुवन्) देवोंने स्वयं कही है। अतः इसमें कोई किसी प्रकारका पक्षपात नहीं है।

मंत्र २ और ३ में ऐसे विद्वान् ब्राह्मणको गौ न देनेसे कैसी दुर्गति होती है वह बात कही है। विद्वान् ब्राह्मण राष्ट्रमें न रहे तो ज्ञानवृद्धि नहीं होगी और राष्ट्रमें ज्ञान न रहा तो किसी भी प्रकारकी उन्नति होनी असंभव है।

चौथे मंत्रमें ' विलोहित ' ज्वर और पांचवें मंत्रमें ' विक्लन्दु ' नामक रोगका वर्णन है। (या मुखेन उपजिघ्रति) गौ जिसे मुखसे सूंघती है उसे यह रोग होता है और वह मरता है। इस लक्षणसे यह रोग कौनसा है, इसका पता वैद्य लगा सकते हैं।

छठे मंत्रमें कहा है कि कई लोग गौके शरीरपर चिह्न करनेकी इच्छासे कानपर अथवा किसी अन्य भागपर चिह्न करते हैं। यह भी लोगोंकी परिपाटी बहुत बुरी है, क्योंकि इससे भी गौको बडे क्लेश होते हैं। गौको ऐसे क्लेश देना योग्य नहीं है। गौको ऐसी उत्तमतासे रखना चाहिये कि उसको किसी प्रकार भी कोई कष्ट न हो, वह आनन्द प्रसन्न रहे। ऐसी आनन्द प्रसन्न गौ रहेगी, तभी उसके सब गुण प्रकट होंगे और वही गौ उत्तम गोरस देती है, जो कि मनुष्य-मात्रके लिये हितकारी हो सकता है।

गौकी रक्षा

कई लोग गौके बाल काटते हैं। ऐसा करना भी उचित नहीं है ऐसा सातवें मंत्रमें कहा है। आठवें मंत्रमें गौकी रक्षा करनेके संबंधमें एक बडी महत्वपूर्ण बात कही है। ग्वालिये गौवोंको लेकर गोचर भूमिमें जाते हैं और गौवोंको चरनेके लिये छोड देते हैं और स्वयं इधर उधर भटकते रहते हैं। ऐसी दशामें कौवे गौके पीछे पडकर उनको सताते हैं। ऐसा न हो यह सूचना मंत्र ८ वें में है। ग्वाला गौकी योग्य रक्षा करे, कौवे आदिसे कहीं गौको पीडा तो नहीं होती है इस विषयमें सावधान रहे। रघुवंशमें दिलीप राजा जैसे वसिष्ठकी गौकी रक्षा करता था, वैसी रक्षा हरएक गौरक्षक करे। कोई जीवजन्तु गौको पीडा न देवे। ऐसी रक्षा करनेवाला ही सुयोग्य गोरक्षक कहलावेगा।

गोबर और मूत्र

नवम मंत्रमें गौका गोबर और मूत्र इधर उधर न फेंकनेकी आज्ञा कही है। किसी विशेष स्थानमें उनको अर्थात् गोबरको और मूत्रको सुरक्षित रखना चाहिये। क्योंकि यह उत्तम खाद है, जिससे धान्य, फल, फूल, साग आदि उत्तम पैदा हो सकते हैं। इसे इधर उधर फेंकनेसे बडी हानि हो सकती है। ऐसी अवस्था किसी भी गृहस्थीके घरमें न हो इसलिये यह आज्ञा दी है। गोबर और मूत्र इधर उधर फेंकना (एनसः) पाप है, यह पतनका हेतु है। यह पाप कोई न करे।

आगे दशमसे द्वादशतकके मंत्रोंमें फिर कहा है कि यह गौ विद्वान् सुयोग्य सदाचारी ब्राह्मणकी होती है। (आर्षेय) ऋषिप्रणालीके अनुसार आचरण करनेवालेको ही इसका दान करना चाहिये।

तेरहवें मंत्रमें कहा है कि जो भोग्य पदार्थ गौसे प्राप्त होता है उसका विचार दाता गौके दान करनेके समय न करे। क्योंकि उसको वह भोग अन्य रीतिसे भी प्राप्त हो सकता है। कोई भी दाता दान देनेके समय मनमें यह विचार न लावे कि 'अरेरे, मुझे तो इससे यह भोग मिलेगा और मैं इस भोगसे ऐसे सुख प्राप्त करूंगा, इसका दान करनेसे मुझे ये दुःख उठाने पडेंगे इ. इ.।' कोई भी दाता कंजूसीके विचार मनमें न लावें। इस प्रकारके विचार मनमें लानेसे दानका सब महत्त्व नष्ट हो जाता है। दानसे जो मनकी उन्नति होती है, वह इस प्रकारके विचारोंसे समूल दूर हो जायेगी।

सोलहवें मंत्रमें फिर कहा कि 'गौ तो ऐसे सत्पात्र ब्राह्मणोंका ही धन है।' गौके स्वामीके पास तो वह तीन वर्षपर्यंत रहे, उसके पश्चात् वह सुविद्य सत्पात्र ब्राह्मणको दी जाय। योग्य ब्राह्मण प्रार्थना करनेके लिये न आवे तो वैसे ब्राह्मणको ढूंढना चाहिये, परंतु कभी अयोग्यको दान देना नहीं चाहिए।

आगे २१ वें मंत्रतक दानके महत्त्वका ही वर्णन किया है। २२ वें मंत्रमें विद्वान् ब्राह्मणको ही गौका दान करना चाहिये यह बात फिर कही है। सैंकडों अविद्वान् मांगें तो उनको देनी नहीं चाहिये। केवल विद्वान् ही दान लेनेका अधिकारी है, यह बात हरएक दान देनेवालेको स्मरण रखनी चाहिये। इस तरह दान होते रहेंगे, तो जगत्का उद्धार होगा। कुपात्रमें दिये गए दान अधोगति करनेवाले होते हैं।

आगे तेईसवें मंत्रमें विशेष ही बलसे कहा है कि यदि कोई मनुष्य ऐसे विद्वान्को दान न देकर अन्य अविद्वानोंको देगा, तो उसको बडा दुःख होगा।

आगेके तीन मंत्रोंमें कहा है कि ब्राह्मण अग्न्यादि देवताओंके उद्देश्यसे गौके घृतदुग्धादिकी आहुतियां देते हैं और देवताओंको संतुष्ट करते हैं, इसलिये उनको गौका दान करना चाहिये। यदि दान न किया जाए तो यजमानको बडा कष्ट भोगना पडेगा। आगे ३२ वें मंत्रतक यही विषय कहा है।

क्षत्रियकी माता

३३ वें मंत्रमें कहा है कि 'गौ क्षत्रियकी माता है' (वशा राजन्यस्य माता) इसलिये क्षत्रियको उचित है कि वह गौको माता मानकर उसका सत्कार यथायोग्य करे। गौको यदि कोई मनुष्य कष्ट देवे, तो उसे क्षत्रिय अपनी माताको कष्ट देनेवाला समझकर यथायोग्य दण्ड देवे।

आगे ५३ वें मंत्रतक अर्थात् सूक्तकी समाप्ति तक गौका दान सुयोग्य ब्राह्मणको देना चाहिये, दान न देनेका विचार

कोई भी मनमें न धारण करे, दान देनेसे कल्याण और न देनेसे दुःख होता है यही वर्णन है ।

इन मंत्रोंमें कई स्थानोंपर ' गौ–दान न देकर जो स्वयं अपने लिये (पचते वशा) गौको पकाता है ' ऐसे वाक्य हैं । जिनको वेदकी भाषाका परिचय नहीं है वे इससे ऐसा अनुमान करेंगे कि ' गौको पकाना, अर्थात् गोमांसका पकाना ही यहां अभीष्ट है । ' ऐसे मतके निरासके लिये यहां थोडासा लिखनेकी आवश्यकता है ।

वेदमें लुप्ततद्धित शब्दप्रयोग होता है जिससे ' गौ ' शब्द ' गौसे उत्पन्न हुए पदार्थोंका वाचक होता है । अर्थात् ' वशां पचाति ' का अर्थ ' गौसे उत्पन्न दूध, घृत, दही, छाछ ' आदि पकाता है, गोदुग्धसे तैयार करता है, ऐसा है । इसी प्रकार ' गौ ' या ' वशा ' के अर्थ जैसे ' दूध, दही, छाछ, घृत ' आदि पदार्थ हैं, वैसे ही इस शब्दके अर्थ ' मांस, रक्त, हड्डी, चमडा, बाल, गोबर, गोमूत्र, ' आदि भी हैं । हमारे विचारसे ' दूध, दही, छाछ, घृत ' आदि अर्थ ही यहां लेना चाहिये ।

ब्राह्मणकी गौ

कां. ५, सू. १८

(ऋषिः– मयोभूः । देवता– ब्रह्मगवी ।)

नैतां ते॑ दे॒वा अ॑ददु॒स्तुभ्यं॑ नृपते॒ अत्त॑वे । मा ब्रा॑ह्म॒णस्य॑ राजन्य॒ गां जि॑घत्सो अना॒द्याम् ॥ १ ॥
अ॒क्षद्रु॑ग्धो राज॒न्यः॑ पा॒प आ॑त्मपरा॒जि॒तः । स ब्रा॑ह्म॒णस्य॒ गाम॑द्याद॒द्य जी॑वानि॒ मा श्वः ॥ २ ॥
आवि॑ष्टिता॒घवि॑षा पृदा॒कूरि॑व॒ चर्म॑णा । सा ब्रा॑ह्म॒णस्य॑ राजन्य तृ॒ष्टैषा गौर॑ना॒द्या ॥ ३ ॥

अर्थ— हे नृपते ! (ते देवाः एतां तुभ्यं अत्तवे न ददुः) उन देवोंने इस गौको तुम्हारे खानेके लिए नहीं दिया है । हे (राजन्य) क्षत्रिय ! (ब्राह्मणस्य अनाद्यां गां मा जिघत्सः) ब्राह्मणकी न खाने योग्य गौको खानेकी इच्छा मत कर ॥ १ ॥

(अक्ष-द्रुग्धः पापः) जुआडी, पापी (आत्म-पराजितः राजन्यः) अपने कारण पराजित हुआ हुआ क्षत्रिय (ब्राह्मणस्य गां अद्यात्) यदि ब्राह्मणकी गौको खावे, तो (सः अद्य जीवानि, मा श्वः) वह आज ही जीवे, कल नहीं ॥ २ ॥

हे (राजन्य) क्षत्रिय ! (एषा ब्राह्मणस्य गौः अनाद्या) यह ब्राह्मणकी गौ खाने योग्य नहीं है । क्योंकि (सा चर्मणा आविष्टिता) वह चर्मसे ढकी हुई (तृष्टा पृदाकूः इव अघविषा) प्यासी सांपिनके समान भयंकर विषसे भरी होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे क्षत्रिय ! हे राजा ! यह सब तेरे ही उपभोगके लिये तेरे पास देवोंने नहीं दिया है । ब्राह्मणकी भूमि, गाय आदिको बलसे हरण करना तुझे योग्य नहीं है ॥ १ ॥

जो जूएमें हारा हुआ, पापी, दुराचारी और आत्मघातकी क्षत्रिय होगा वही ब्राह्मणकी भूमि और गौ आदिका बलसे हरण करके भोग करेगा, पर वह आज ही जीवित रह सकता है कल नहीं, अर्थात् वह शीघ्र ही मर जाएगा ॥ २ ॥

हे क्षत्रिय ! ब्राह्मणकी भूमि अथवा गौ तेरे उपभोगके लिये नहीं है । चर्मसे ढकी हुई, विषभरी, क्रोधी सांपिनके समान वह गाय तेरे लिये नाशक ही सिद्ध होगी ॥ ३ ॥

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥ ४ ॥
य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥ ५ ॥
न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ऽग्निः प्रियतनोरिव । सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥ ६ ॥
शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्व१द्मीति मन्यते ॥ ७ ॥
जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून्हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥ ८ ॥

अर्थ— (यः ब्राह्मणं अन्नं एव मन्यते) जो क्षत्रिय ब्राह्मणको अपना अन्न ही मानता है, (स तैमातस्य विषस्य पिबति) वह सांपका विष ही पीता है । वह अपमानित ब्राह्मण (क्षत्रं वै निः नयति) क्षत्रियको निःशेष करता है, (वर्चः हन्ति) तेजका नाश करता है, (आरब्धः अग्निः इव) प्रदीप्त हुए अग्निके समान (सर्वं विदुनोति) वह सब कुछ नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

(यः देवपीयुः धनकामः) जो देवशत्रु धनलोभी (एनं मृदुं मन्यमानः न चित्तात् हन्ति) इस ब्राह्मणको कोमल मानता हुआ विना विचारे मारता है । (इन्द्रः तस्य हृदये अग्निं सं इन्धे) इन्द्र उसके हृदयमें अग्नि जला देता है (उभे नभसी चरन्तं एनं द्विष्टः) दोनों भूलोक और द्युलोक विचरते हुए इससे द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

(प्रियतनोः अग्निः इव) प्रियतनुरूप अग्निके समान (ब्राह्मणः न हिंसितव्यः) ब्राह्मणकी हिंसा नहीं करनी चाहिये । (सोमः हि अस्य दायादः) सोम इसका संबंधी है और (इन्द्रः अस्य अभिशस्ति-पाः), इन्द्र इसको शापसे बचानेवाला है ॥ ६ ॥

(यः मल्वः ब्रह्मणां अन्नं) जो नीच पुरुष ' ब्राह्मणोंका अन्न मैं (स्वादु अद्मि इति मन्यते) स्वादसे खाता हूं ' ऐसा समझता है वह (शत-अपाष्ठां निगिरति) सैंकडों प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त होता है और (निःखिदन् तां न शक्नोति) उसको प्राप्त करके वह सहन नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

ब्राह्मणकी (जिह्वा ज्या भवति) जीभ धनुषकी डोरी होजाती है । (वाक् कुल्मलं) वाणी धनुष्यका डण्डा होजाती है (तपसा अभिदिग्धाः दन्ताः नाडीकाः) तपसे तीक्ष्ण बने हुए दांत बाणरूप होजाते हैं और तब (ब्रह्मा) ब्राह्मण (तेभिः देवजूतैः हृद्बलैः धनुर्भिः) उन देवसेवित आत्मबलके धनुष्योंसे (देव-पीयून् विध्यति) देवके शत्रुओंपर आघात करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जो क्षत्रिय विद्वान् ब्राह्मणको अपने भोगका विषय मानता है, वह मानो सांपका विष ही पीता है । उस प्रकार अपमानित हुआ ब्राह्मण क्षत्रियका नाश करता है, उसका तेज नष्ट करता है, और जलती आगके समान सब राष्ट्रको हिला देता है ॥ ४ ॥

जो क्षत्रिय धनलोभसे देवोंका अन्नभाग स्वयं खाता है और ब्राह्मणको निर्बल मानकर उसको कष्ट देता है, उसके हृदयमें अग्नि जलाकर इन्द्र उसका नाश करता है और सब द्यावापृथिवीके निवासी उसकी निन्दा करते हैं ॥ ५ ॥

अग्निके समान ही ब्राह्मण है, जिसको छेडना उचित नहीं है। क्योंकि सोम उसका संबंधी और इन्द्र उसका रक्षक है ॥ ६ ॥

जो पापी क्षत्रिय ब्राह्मणका धन अपने भोगके लिये है ऐसा मानता है और उसका मैं उत्तम भोग करता हूं, ऐसा समझता है, उसपर सैंकडों आपत्तियां आती हैं और उसका सामर्थ्य ही नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

उस समय ब्राह्मणकी जिह्वा डोरी, वाणी धनुष्य और उसके तपसे युक्त दांत बाण हो जाते हैं । इन धनुष्योंसे वह ब्राह्मण देवताओंका अन्न खानेवालेका नाश करता है ॥ ८ ॥

❀

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥ ९ ॥
ये सहस्रमराजन्नासन्दशशता उत । ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥ १० ॥
गौरेव तान्हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत् । ये केसरप्रबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥ ११ ॥
एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥ १२ ॥
देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ १३ ॥

अर्थ— (तीक्ष्ण-इषवः हेतिमन्तः ब्राह्मणाः) तीक्ष्ण बाणोंसे युक्त, अस्त्रोंसे युक्त ब्राह्मण (यां शरव्यां अस्यन्ति) जिस बाणप्रवाहको फेंकते हैं (न सा मृषा) वह प्रवाह व्यर्थ नहीं होता । वे प्रवाह (तपसा च उत मन्युना अनुहाय) तपके और क्रोधके साथ पीछा करके (एनं दूरात् अवभिन्दन्ति) इसको दूरसे ही भेद डालते हैं ॥ ९ ॥

(ये वैत-हव्याः सहस्रं अराजन्) जो देवोंका हव्य खानेवाले सहस्रों राजा हो गये थे (ये उत दशशताः आसन्) और जो दस सौ थे, (ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) वे ब्राह्मणकी गौ खाकर (पराभवन्) पराभवको प्राप्त हुए ॥ १० ॥

(हन्यमाना गौः एव) मारी जाती हुई गौने (तान् वैतहव्यान् अवातिरत्) उन देवताओंका अन्न खानेवालोंका ही विनाश किया है । (ये केसरप्रबन्धायाः चरम-अजां अपेचिरन्) जो केशोंकी रस्सीसे बांधी हुई अन्तिम अजाको भी पचा जाते हैं, हडप कर जाते हैं वे भी विनष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

(ताः जनताः एक-शतं) वे जनताके लोग एकसौ एक थे (याः भूमिः व्यधूनुत) जिन्होंने भूमिको हिला दिया है । (ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा) ब्राह्मणकी प्रजाको कष्ट देकर (असंभव्यं पराभवन्) विना संभावनाके ही ये पराभवको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

(देव-पीयुः गर-गीर्णः मर्त्येषु चरति) देवशत्रु जहर पीये मनुष्यके समान मनुष्योंके बीचमें घूमता है और (अस्थि-भूयान् भवति) वह केवल हड्डी ही हड्डीवाला होता है । (यः देव-बन्धुं ब्राह्मणं हिनस्ति) जो देवोंके बन्धुरूप ब्राह्मणको कष्ट देता है (सः पितृयाणं अपि लोकं न एति) वह पितृयाण लोकको भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

भावार्थ— ये ब्राह्मण बडे तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंवाले होते हैं, इसलिये उक्त अस्त्र ये जिसपर फेंकते हैं वे व्यर्थ नहीं होते । अपने तप और क्रोधसे पीछा करके दूरसे ही ये उसका नाश करते हैं ॥ ९ ॥

देवताओंके उद्देश्यसे अलग रखा हुआ अन्न स्वयं भोग करनेवाले सहस्रों राजा लोग ब्राह्मणकी भूमि अथवा गौ हरण करके, उसका अपने लिये भोग करनेसे पराभूत होगये ॥ १० ॥

वह कष्टको प्राप्त हुई ब्राह्मणकी गाय ही उन देवतान्नभोजी क्षत्रियोंका नाश करनेके लिये कारण होती है ॥ ११ ॥

सैंकडों क्षत्रिय भूमिपर बडा पराक्रम करनेवाले होते हैं, परन्तु यदि उन्होंने ब्राह्मणोंको कष्ट देना शुरू किया तो वे सहज हीमें पराभूत होते हैं ॥ १२ ॥

देवोंका शत्रुरूप बनकर पृथ्वीपर संचार करनेवाला दुष्ट मनुष्य विष पीये अतिकृश मनुष्यके समान निर्बल होता है और जो देवोंके बन्धु ब्राह्मणको हिंसा करता है उसको पितृलोक भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते । हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः ॥ १४ ॥
इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते । सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥ १५ ॥

अर्थ— (अग्निः वै नः पदवायः) अग्नि ही हमारा मार्गदर्शक है । (सोमः दायादः उच्यते) सोम संबंधी है, ऐसा कहा जाता है । (इन्द्रः अभिशस्ता हन्ता) इन्द्र शाप देनेवालेका नाशकर्ता है (तथा वेधसः तत् विदुः) उस प्रकार ज्ञानी वह बात जानते हैं ॥ १४ ॥

हे (नृपते गोपते) नृपते और गायोंके स्वामिन् ! हरण की हुई गाय (इषुः इव दिग्धा) बाणके समान तीक्ष्ण और (पृदाकूः इव) सांपिनके समान भयंकर होती है । (ब्राह्मणस्य सा) ब्राह्मणकी वह गाय (घोरा इषुः) भयंकर बाणके समान होती है । (तया पीयतः विध्यति) उससे हिंसक नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— सब ज्ञानी जानते हैं कि अग्नि हमारा मार्गदर्शक, सोम हमारा संबंधी और इन्द्र हमारा रक्षक है ॥१४॥

अपहरण करनेवालेके लिए गाय भयंकर सांपिनके समान होती है । वह तीक्ष्ण बाणके समान है । जो ब्राह्मणकी गायकी हिंसा करता है, वह हिंसक स्वयं ही नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

शतौदना गौ

कां. १०, सू. ९

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– शतौदना ।)

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥
वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते । एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥
बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये । शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥
यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते । प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (अघायतां मुखानि अपि नह्य) पापी लोगोंके मुख बंद कर । (सपत्नेषु एतं वज्रं अर्पय) शत्रुओंपर यह वज्र फेंक । (इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना) इन्द्रके द्वारा दी हुई पहिली सैंकडों भोजन देनेवाली (भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः) शत्रुका नाश करनेवाली, यजमानका मार्ग दर्शानेवाली गौ ही है ॥ १ ॥

(ते चर्म वेदिः भवतु) तेरा चर्म वेदी बने, (यानि ते लोमानि बर्हिः) जो तेरे रोम हैं वे दर्भ हों (एषा रशना त्वा अग्रभीत्) जो रस्सी तुझे बांधी है, हे (औषधि) सोमवल्ली ! (एषः ग्रावा त्वा अधिनृत्यतु) यह ग्रावा तेरे ऊपर आनंदसे नाचे, तेरा रस निकालनेके लिये वनस्पतिपर पत्थर नाचे ॥ २ ॥

हे (अघ्न्ये) अहिंसनीय गौ ! (ते बालाः प्रोक्षणीः सन्तु) तेरे बाल प्रोक्षणीं होवें, (जिह्वा सं मार्ष्टु) तेरी जिह्वा शोधन करे, (त्वं यज्ञिया शुद्धा भूत्वा) तू पूज्य और शुद्ध होकर, हे शतौदना गौ ! (त्वं दिवं प्रेहि) द्युलोकमें जा ॥ ३ ॥

(यः शतौदनां पचति) जो शतौदनाका परिपाक करता है, (सः कामप्रेण कल्पते) वह संकल्पोंको पूर्ण करता है । (अस्य सर्वे प्रीताः ऋत्विजः) इसके सब संतुष्ट हुए ऋत्विज (यथायथं यन्ति) यथायोग्य मार्गसे वापस जाते हैं ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः । अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥
स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥
ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा । आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥ ८ ॥
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये । ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥
घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान्गमिष्यति । पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

अर्थ— (यः शतौदनां अपूपनाभिं कृत्वा ददाति) जो शतौदनाको मालपूवोंके रूपमें करके दान देता है (सः स्वर्गं आरोहति) वह स्वर्गपर चढता है (यत्र अदः त्रिदिवं दिवः) जहांपर स्वर्गधाम है ॥ ५ ॥

(यः शतौदनां हिरण्यज्योतिषं कृत्वा ददाति) जो शतौदना गौको सुवर्णसे तेजस्वी करके दान देता है (ये दिव्याः ये च पार्थिवाः) जो दिव्य और जो पार्थिव भोग हैं उनको और (तान् लोकान् सः समाप्नोति) उन सब लोकोंको भी वह प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

(ये शमितारः ये च पक्तारः जनाः) जो शमिता और जो पकानेवाले लोग हैं, (ते सर्वे त्वा गोप्स्यन्ति) वे सब तेरी रक्षा करेंगे। हे (शतौदने) सौ मनुष्योंका भोजन देनेवाली गौ ! (एभ्यः मा भैषीः) इनसे तू भय न कर ॥ ७ ॥

(दक्षिणतः त्वा वसवः) दक्षिणकी ओरसे वसुदेव, (उत्तरात् त्वा मरुतः) उत्तरकी ओरसे मरुत् देव, (आदित्याः पश्चात् गोप्स्यन्ति) आदित्य पीछेसे तेरी रक्षा करेंगे, (सा त्वं अग्निष्टोमं अति द्रव) वह तू अग्निष्टोम यज्ञके पार जा ॥ ८ ॥

(ये) जो देव, पितर, मनुष्य और गन्धर्व–अप्सरागण हैं, (ते सर्वे त्वा गोप्स्यन्ति) वे सब तेरी रक्षा करेंगे, (सा अतिरात्रं अति द्रव) वह तू अतिरात्र यज्ञके पार जा ॥ ९ ॥

(यः शतौदनां ददाति) जो शतौदनाको देता है, (सः सर्वान् लोकान् आप्नोति) वह सब लोगोंको प्राप्त करता है, (अन्तरिक्षं दिवं भूमिं आदित्यान्) जो लोक अन्तरिक्ष, द्यु, भूमि, आदित्य, मरुत् और दिशाओंके नामसे प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

(घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी) घीका सिंचन करनेवाली भाग्यवाली देवी (देवान् गमिष्यति) देवताओंको प्राप्त होगी। हे शतौदने (अघ्न्ये) अहिंसनीय गौ ! (पक्तारं मा हिंसी) पकानेवालेकी हिंसा मत कर, (दिवं प्रेहि) स्वर्गको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

(ये दिवि–सदः देवाः) जो द्युलोकमें रहनेवाले देव हैं, (ये च अन्तरिक्ष–सदः) जो अन्तरिक्षमें रहते हैं, (ये च इमे भूम्यां अधि) जो भूमिपर रहते हैं, (तेभ्यः त्वं सर्वदा) उनके लिये तू सर्वदा (क्षीरं सर्पिः अथो मधु धुक्ष्व) दूध, घी और मधु दे ॥ १२ ॥

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥
यत्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत्सहकण्ठिका । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥
यत्ते यकृद्ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥
यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥
यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥
यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥
यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥
यत्ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥
यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २३ ॥
यत्ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये । आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥
क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ । तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥ २५ ॥

अर्थ— (यत् ते शिरः) जो तेरा सिर है, (यत् ते मुखं) जो तेरा मुख है, (यौ च ते कर्णौ) जो तेरे कान हैं, (ये च ते हनू) जो तेरी ठोडी है, वे सब (दात्रे आमिक्षां क्षीरं सर्पिः अथो मधु दुहृतां) दाताको दही, दूध, घी और मधु देवें ॥ १३ ॥

(यौ ते ओष्ठौ) जो तेरे ओठ हैं, (शृंगे अक्षिणी) जो तेरी सींगे और आंख हैं, (ते क्लोमा हृदयं पुरीतत् सह कंठिका) जो फेफडा, हृदय, मलाशय और कण्ठका भाग है, (ते यकृत् मतस्ने आन्त्रं गुदाः) जो तेरा यकृत, गुर्दे, आतें और गुदा हैं, (ते प्लाशिः वनिष्ठुः, कुक्षी, चर्म) जो तेरी आंतके भाग गुदाभाग, कोख और चर्म हैं, (ते मज्जा, अस्थि, मांसं लोहितं) जो तेरी मज्जा, अस्थि, मांस और रुधिर हैं, (ते बाहू दोषणी अंसौ, ककुत्) जो तेरे बाहू, बाजू, कन्धे और कोहनियां हैं, (ते ग्रीवा स्कन्धाः पृष्टीः पर्शवः) जो तेरी गर्दन, कन्धे, पीठ और पसलियां हैं, (ते ऊरू अष्ठीवन्तौ श्रोणी भसत्) जो तेरी जंघाएं, घुटने, कुल्हे और गुह्यांग हैं, (ते पुच्छं बालाः ऊधः स्तनाः) जो तेरी पूंछ, बाल, दुग्धाशय और स्तन हैं, (ते जंघाः कुष्टिकाः ऋच्छराः शफाः) जो तेरी जघाएं, रोम, कलाईके भाग और खुर हैं, (ते चर्म लोमानि) जो तेरे चर्म और लोम हैं, हे (शतौदने) गौ! (दात्रे क्षीरं आमिक्षां०) दाताको दूध, दही, घी और मधु देते रहें ॥ १४-२४ ॥

हे शतौदने गौ! (ते क्रोडौ) तेरे पार्श्वभाग (आज्येन अभिघारितौ पुरोडाशौ स्तां) घी द्वारा सिंचित पुरोडाश हों। हे देवि! (तौ पक्षौ कृत्वा) उनके पंख बनाकर (सा त्वं पक्तारं दिवं वह) वह तू पकानेवालेको स्वर्गपर ले जा ॥ २५ ॥

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २६ ॥
अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥

अर्थ—(उलूखले मुसले) ओखली और मूसल, (चर्मणि शूर्पे च वा यः तण्डुलः कणः) चर्मपर तथा सूर्पमें जो चावलोंके कण रहते हैं, (यं वा वातो मातरिश्वा पवमानः ममाथ) जिसको पवित्र करनेवाले वायुने मथा था, (तत् होता अग्निः सुहुतं कृणोतु) उसे होता अग्नि उत्तम आहुतिरूप बनावे ॥ २६ ॥

(मधुमतीः घृतश्च्युतः देवीः आपः) मधुयुक्त घीको देनेवाली दिव्य जलधाराएं (ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि) ब्राह्मणोंके हाथोंमें अलग अलग देता हूं । (यत् कामः इदं वः अहं अभिषिञ्चामि) जिसकी इच्छा करता हुआ, मैं यह आपका अभिषेक करता हूं, (तत् मे सर्वं संपद्यतां) वह मुझे सब प्राप्त हो, (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम सब धनोंके पति बनें ॥ २७ ॥

शतौदना गौ ।

गौ ।

गौका यहां नाम 'शतौदना' है। सैंकडों मनुष्योंका अन्न देनेवाली गौ शतौदना कहलाती है। कल्पना करिये कि प्रतिदिन १० सेर दूध गौ देती है। इस हिसाबसे प्रतिदिन पांच मनुष्योंका पेट भरती है, एक मासमें १५० मनुष्योंका पेट भरती है और छः सात महिनोंमें एक सहस्र मनुष्योंका पेट पालन करती है। इस हिसाबसे एक आयुमें गौ दस हजार मनुष्योंका पेट पालन कर सकती है और उसकी संतानसे और अधिक। गौका यह महत्त्व है। गौका दूध बीमारों और अशक्तोंको तो अमृत जैसा है, बालकोंके लिये तो गौ माताका स्थान धारण करती है। गौके दूधसे बल, मेधा और बुद्धिकी वृद्धि होती है। शतौदना गौका यह महत्त्व है।

यह गौ स्वर्गीय वस्तु है। कामधेनु कही है। जब भी आवश्यकता पडे तभी दूध देनेवाली गायको 'कामदुधा' कहते हैं। गौ विद्वान् ब्राह्मणको दान देनेसे बडा लाभ है, यह दान अन्न और सुवर्णके साथ, (अपूप, हिरण्य) होना चाहिये। (मं. ७–८) यज्ञके शमिता, अन्नके पाचक, देवोंके वसु, मरुत् और आदित्य ये सब गौके संरक्षक हैं। देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व और अप्सरागण ये सब गौकी रक्षा करनेवाले हैं, क्योंकि गौके दूधसे ही अग्निष्टोम और अतिरात्र ये यज्ञ होते हैं। (मं. ९)

जो शतौदना गौका दान विद्वान्को करता है, उसको अन्तरिक्ष, भूमि, दिशा, मरुत् तथा अन्य सब लोकोंमें उत्तम स्थान प्राप्त होता है। (मं. १०) सबकी पवित्रता करती हुई यह गौ देवोंको यज्ञ द्वारा प्राप्त करती है। त्रिलोकमें जो देवता हैं वे सब गौके दूधसे तृप्त होते हैं, दूध, घी इसीसे उनको प्राप्त होता है। (मं. ११–१२)

आगे मं. १३ से २४ तक कहा है कि इसी तरह गौका वर्णन है कि यह गौके अवयव और गौ दाताका कल्याण करे और दूध, दही, घृत आदि सब वस्तु उसको पर्याप्त हों और दाता स्वर्गको प्राप्त हो।

आगे २७ मंत्रतक ब्राह्मणोंको पृथक् पृथक् गौ दान करनेका वर्णन है।

गौका विश्वरूप

कां. ९, सू. ७

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- गौः ।)

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥
सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥
विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥ ३ ॥
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥
श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं१ बृहस्पतिः ककुद्बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥
देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥
मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥ ७ ॥
इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥
ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥
धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥
चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥

अर्थ— (प्रजापतिः च परमेष्ठी च शृंगे) प्रजापति और परमेष्ठी ये गौके दो सींग हैं, (इन्द्रः शिरः) इन्द्र सिर है, (अग्निः ललाटं) अग्नि ललाट है, (यमः कृकाटं) यम गलेकी घेंटी है ॥ (सोमः राजा मास्तिष्कः) राजा सोम मस्तिष्क है, (द्यौः उत्तरहनुः) द्युलोक ऊपरका जबडा और (पृथ्वी अधरहनुः) पृथ्वी नीचेका जबडा है ॥ १-२ ॥

(विद्युत् जिह्वा) बिजली जीभ है, (मरुतः दन्ताः) मरुत् दांत हैं (रेवतीः ग्रीवा, कृत्तिका स्कन्धाः) रेवती गर्दन और कृत्तिका कन्धे हैं । (घर्मः वहः) उष्णता देनेवाला सूर्य वहनेका ककुदके पासका भाग है । (वायुः विश्वं स्वर्गः लोकः कृष्णद्रं) वायु सब अवयव और स्वर्गलोक कृष्णद्र है और (विधरणी निवेष्यः) धारणशक्ति पृष्ठवंशकी सीमा है ॥ ३-४ ॥

(श्येनः क्रोडः) श्येन उसकी गोद है, (अन्तरिक्षं पाजस्यं) अन्तरिक्ष पेट है, (बृहस्पतिः ककुद्) बृहस्पति ककुद् है, (बृहतीः कीकसाः) बृहस्पति कोहनीका भाग है ॥ (देवानां पत्नीः पृष्टयः) देवोंकी पत्नियां पीठके भाग हैं, (उपसदः पर्शवः) उपसद इष्टियां पसलियां हैं ॥ ५-६ ॥

(मित्रः च वरुणः च अंसौ) मित्र और वरुण कंधे हैं, (त्वष्टा अर्यमा च दोषणी) त्वष्टा और अर्यमा बाहुभाग हैं और (महादेवः बाहू) महादेव बाहु हैं । (इन्द्राणी भसत्) इन्द्रपत्नी गुह्यभाग है, (वायुः पुच्छं) वायु पुच्छ है और (पवमानः बालाः) पवमान वायु बाल हैं ॥ ७-८ ॥

(ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी) ब्राह्मण और क्षत्रिय चूतड हैं, (बलं ऊरू) बल जांघें हैं ॥ (धाता च सविता च अष्ठीवन्तौ) धाता और सविता ये टखने हैं, (गन्धर्वाः जङ्घाः) गन्धर्व जांघें हैं (अप्सरसः कुष्ठिकाः) अप्सराएं खुरभाग हैं, (अदितिः शफाः) अदिति खुर हैं ॥ (चेतः हृदयं) चेतना उसका हृदय है (मेधा यकृत्) मेधाबुद्धि यकृत् है, (व्रतं पुरीतत्) व्रत उसकी आंतें हैं ॥ ९-११ ॥

क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥ १४ ॥

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥ १६ ॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥ १७ ॥

अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन्दक्षिणा तिष्ठन्यमः ॥ २० ॥

प्रत्यङ् तिष्ठन्धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥

अर्थ— (क्षुत् कुक्षिः) क्षुधा कोख है, (इरा वनिष्ठुः) अन्न बडी आंत है, (पर्वताः प्लाशयः) पहाड छोटी आंतें हैं ॥ (क्रोधः वृक्कौ) क्रोध उसके गुर्दे हैं, (मन्युः आण्डौ) उत्साह अण्डकोश है, (प्रजाः शेपः) प्रजा जननेन्द्रिय हैं ॥ १२–१३ ॥

(नदी सूत्री) नदी सूत्रनाडी है, (वर्षस्य पतयः स्तनाः) वर्षापति मेघ उसके स्तन हैं, (स्तनयित्नुः ऊधः) गर्जनेवाला मेघ दूधसे पूर्ण स्तन हैं ॥ (विश्वव्यचाः चर्म) सर्वत्र फैला आकाश चर्म है, (ओषधयः लोमानि) औषधियां लोम हैं, (नक्षत्राणि रूपं) नक्षत्र रूप हैं ॥ १४–१५ ॥

(देवजनाः गुदा) देवजन गुदा हैं, (मनुष्याः आन्त्राणि) मनुष्य आंतें हैं, (अत्रा उदरं) भक्षक प्राणी उदर हैं ॥ (रक्षांसि लोहितं) राक्षस रक्त है; (इतरजना ऊबध्यं) इतर जन अपचित अन्न हैं ॥ (अभ्रं पीबः) मेघ मेदा है (निधनं मज्जा) निधन मज्जा है ॥ (अग्निः आसीनः) अग्नि आसन है और (आश्विनौ उत्थितः) अश्विदेव उत्थान है ॥ १६–१९ ॥

(इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन्) इन्द्र प्राची दिशामें ठहरना है, (यमः दक्षिणा तिष्ठन्) यम दक्षिणदिशामें अवस्थान है, (प्रत्यङ् तिष्ठन् धाता) पश्चिम दिशामें ठहरना धाता है और (सविता उदङ् तिष्ठन्) सविता उत्तर दिशामें ठहरना है ॥ २०–२१ ॥

(सोमः राजा तृणानि प्राप्तः) जब तृणको प्राप्त होता है, तब वह सोम राजा होता है, (ईक्षमाणः मित्रः) अवलोकन करनेवाला सूर्य और (आवृतः आनन्दः) परावृत होनेपर वही आनंद है ॥ (युज्यमानः वैश्वदेवः) जब जोता जाता है तब वह सब देवोंके संबंधका होता है, (युक्तः प्रजापतिः) जोतनेपर प्रजापति और (विमुक्तः सर्वं) छोडनेपर सब कुछ बनता है ॥ २२–२४ ॥

एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥
उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥

अर्थ— (एतत् वै गोरूपं) यह निःसन्देह गौका रूप है, यही (विश्वरूपं सर्वरूपं) गौका विश्वरूप और सर्वरूप है ॥ (यः एवं वेद) जो इस बातको जानता है (एनं) उसके पास (विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवः उपतिष्ठन्ति) विश्वरूपी और सर्वरूपी सब पशु रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

गौका महात्म्य ।

इस सूक्तमें गौका महत्त्व वर्णन किया है । यहां गौ शब्दसे गाय और बैलका ग्रहण करना चाहिये यह स्पष्ट है । गायके अंगोंमें संपूर्ण देवताओंका निवास है और गाय ही सब देवोंका रूप बन जाती है । इतना गायका अधिकार इस सूक्तने वर्णन किया है । वैदिक धर्ममें गायका इतना महत्त्व है । गायका दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ आदि सेवन करनेसे देवताओंका सत्त्व सेवन करनेका श्रेय प्राप्त होता है । इसी प्रकार गोमूत्र और गोमय सेवन करनेसे शरीर शुद्ध होता है । इस तरह गायका महत्त्व जानकर वैदिकधर्मी लोग गायकी सेवा करें ।

बैल

कां. ९, सू. ४

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— ऋषभः ।)

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान्विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन्बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥ १ ॥
अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ २ ॥

अर्थ— (साहस्रः त्वेषः) हजारों शक्तियोंसे युक्त तेजस्वी, (पयस्वान् ऋषभः) दूधवाला बैल (वक्षणासु विश्वा रूपाणि बिभ्रत्) नदी तीरोंपर बहुत रूपोंको धारण करता हुआ (बार्हस्पत्यः उस्रियः) बृहस्पतिके संबंधका यह बैल (दात्रे यजमानाय भद्रं शिक्षन्) दान देनेवाले यजमानके लिए भलाईकी शिक्षा देता हुआ (तन्तुं आतान्) यज्ञके धागेको फैलाता है ॥ १ ॥

(यः अग्रे) जो पहिले (अपां प्रतिमा बभूव) जलोंके मेघकी उपमा हुआ वह (देवी पृथ्वी इव) पृथिवी देवीके समान (सर्वस्मै प्रभूः) सब पर प्रभाव चलानेवाला, (वत्सानां पिता) बच्चोंका स्वामी (अघ्न्यानां पतिः) गौवोंका पति (नः) हमें (साहस्रे पोषे अपि कृणोतु) हजारों प्रकारकी पुष्टिमें करे, रखे ॥ २ ॥

भावार्थ— बैल हजारों शक्तियोंसे युक्त है । बैल ही दूधवाला है । नदियोंके तटोंपर इसके विविध रूप दीखते हैं । इसका दान करनेसे हित होता है और यज्ञका प्रचार होता है ॥ १ ॥

इसको जलदायी मेघोंकी उपमा दी जाती है । पृथ्वी देवीपर यह अधिक प्रभाववाला है, यह बछडोंका पिता और गौवोंका पति है । इससे हमारी हजारों प्रकारकी पुष्टी होती है ॥ २ ॥

*

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान्वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक्पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥ ४ ॥

देवानां भाग उपनाह एषोऽपां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद्यच्छरीरम् ॥ ५ ॥

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् ।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्य१स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ६ ॥

अर्थ— (पुमान् अन्तर्वान्) पुरुष शक्तिका अपने अन्दर धारण करनेवाला, (स्थविरः पयस्वान्) बडा दूधवाला (ऋषभः वसोः कवन्धं बिभर्ति) बैल धनके शरीरको धारण करता है। (देवयानैः पथिभिः हुतं तं) देवयान मार्गोंसे समर्पित हुए हुए उसको (जातवेदाः अग्निः इन्द्राय वहतु) जातवेद अग्नि इन्द्रके लिए ले जाये ॥ ३ ॥

(वत्सानां पिता) बच्चोंका पिता, (अघ्न्यानां पतिः) गौवोंका पति (अथो) और (महतां गर्गराणां पिता) बडे प्रवाहोंका पालक, (वत्सः जरायुः) बच्चा जेरसे बाहर आकर (प्रतिधुक् पीयूषः) प्रतिदिन अमृतका दोहन करता हुआ (आमिक्षा घृतं) दही और घी देता है (तत् उ अस्य रेतः) वह निःसन्देह इसका वीर्य है ॥ ४ ॥

(एषः देवानां उपनाहः भागः) यह देवोंका समीप स्थित भाग है, (अपां ओषधीनां घृतस्य रसः) जलका औषधियोंका और घीका यह रस है, (सोमस्य भक्षं शक्रः अवृणीत) यही सोमका रस इन्द्रने प्राप्त किया, इसका (यत् शरीरं बृहत् अद्रिः अभवत्) जो शरीर था वही बडा मेघ बना है ॥ ५ ॥

(सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि) सोमरससे परिपूर्ण कलशको तू धारण करता है और तू (रूपाणां त्वष्टा) रूपोंका बनानेवाला और (पशूनां जनिता) पशुओंका उत्पादक है, (याः इमाः ते प्रजन्वः) जो ये तेरी सन्तानें हैं वे (शिवाः सन्तु) हमारे लिए शुभ हों। हे (स्वधिते) शस्त्र ! (याः अमूः अस्मभ्यं नि यच्छ) जो वहां हैं वे हमारे लिए दे ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह पुरुष है, इसके अन्दर शक्ति है, यह सामर्थ्यवाला और दूधवाला है। यह धनको धारण करता है। उस समर्पित हुएको जातवेद अग्नि इंद्रके लिये देवयानके मार्गोंसे ले जाता है ॥ ३ ॥

बछडोंका पिता और गौवोंका पति, बडी जलधाराओंका स्वामी, जन्मते ही अमृतका दोहन करके देता है, तथा दही और घी देता है, मानो यह इसीका बल है ॥ ४ ॥

यह दूध देवोंका भाग है, यह औषधियोंका रस है, यह सोमरसके साथ पिया जाता है। इसके शरीरको मेघकी ही उपमा है ॥ ५ ॥

सोमरससे भरा हुआ कलश यह धारण करता है, यह गौ आदिका उत्पन्नकर्ता, विविध रूपोंका बनानेवाला है, इसकी सन्तानें हमें कल्याणदायी हों, शस्त्र इनकी रक्षा करके हमें देवे ॥ ६ ॥

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान्देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥ ७ ॥
इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥
दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ९ ॥
बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १० ॥
य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् । तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥ ११ ॥

अर्थ— (अस्य घृतं आज्यं) इसका घी और आज्य (रेतः बिभर्ति) वीर्यको धारण करता है। (साहस्रः पोषः) जो हजारोंका पोषक है (तं उ यज्ञं आहुः) उसको यज्ञ कहते हैं। (सः दत्तः वृषभः इन्द्रस्य रूपं वसानः) वह दान दिया हुआ बैल इन्द्रका रूप धारण करता हुआ, हे (देवाः) देवो ! (अस्मान् शिवः आ एतु) हमारे पास शुभ होकर प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

(ये धीरासः) जो धैर्यवाले और (ये मनीषिणः कवयः) जो मननशील कवि हैं वे (एतं संभृतं बृहस्पतिं आहुः) इस संभारयुक्तको बृहस्पति कहते हैं तथा यह (इन्द्रस्य ओजः) इन्द्रकी शक्ति, (वरुणस्य बाहू) वरुणके बाहू, (अश्विनोः अंसौ) अश्विदेवोंके कन्धे, (मरुतां इयं ककुद्) मरुतोंकी कोहनी है ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥

तू (पयस्वान् दैवीः विशः आ तनोषि) दूधवाला दिव्यगुणी प्रजाको उत्पन्न करता है। (त्वां इन्द्रं) तुझे इन्द्र और (त्वां सरस्वन्तं आहुः) सारवाला कहते हैं (यः ब्राह्मणः) जो ब्राह्मण (ऋषभं आ जुहोति) बैलका दान करता है (सः एकमुखाः सहस्रं ददाति) वह एक स्थानपर मुख करता हुआ हजारोंका दान करता है ॥ ९ ॥

(बृहस्पतिः सविता) बृहस्पति और सविता (ते वयः दधौ) तेरी आयुको धारण करते हैं। (ते आत्मा) तेरी आत्मा (त्वष्टुः वायोः परि आभृतः) त्वष्टा और वायुसे परिपूर्ण है। (मनसा त्वा अन्तरिक्षे जुहोमि) मनसे तुझे अन्तरिक्षमें अर्पण करता हूं, (उभे द्यावापृथिवी ते बर्हिः स्ताम्) दोनों द्युलोक और भूलोक तेरे आसन हों ॥ १० ॥

(देवेषु इन्द्रः इव) देवोंमें इन्द्रके समान (यः गोषु विवावदत् एति) जो गौओंमें शब्द करता हुआ चलता है। (तस्य ऋषभस्य अंगानि) उस बैलके अंगोंकी (भद्रया ब्रह्मा संस्तौतु) प्रशंसा शुभवाणीसे ब्रह्मा करे ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह घी और वीर्य धारण करता है, हजारों प्रकारकी पुष्टि देता है अतः इसको यज्ञ कहते हैं। यह इन्द्रका रूप धारण करके हमारे लिए शुभ होवे ॥ ७ ॥

जो धैर्ययुक्त कवि और ज्ञानी हैं वे इसको देवताओंकी शक्तियोंसे युक्त मानते हैं, इसमें बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अश्विनौ, मरुत् इनकी शक्तियां हैं ॥ ८ ॥

यह दूध देनेवाला बैल उत्तम प्रजा उत्पन्न करता है, उसको सारवान् इन्द्र कहते हैं। जो बैलका समर्पण करता है उसको हजारों दानोंका श्रेय प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

बृहस्पति और सविताने उसकी आयुको धारण किया है। त्वष्टा और वायुका सत्त्व इसमें है। इसका मनसे अन्तरिक्षमें समर्पण करनेसे भूमिपर और आकाशके नीचे यह रहता है ॥ १० ॥

देवोंमें इन्द्रके समान यह बैल गौवोंमें है। ज्ञानी ही इसके अवयवोंके महत्त्वका कथन कर सकता है ॥ ११ ॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ। अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ १२ ॥
भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः। पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥
गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन्। उत्थातुरब्रुवन्पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥
क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः। देवाः संगत्य यत्सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥
ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्। ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥ १६ ॥
शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा। शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७ ॥
शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः। जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ १८ ॥

अर्थ— (पार्श्वे अनुमत्याः आस्तां) दोनों पासे अनुमतिके हैं, (अनूवृजौ भगस्य आस्तां) पसलियोंके दोनों भाग भगके हैं, (मित्रः अब्रवीत्) मित्रने कहा कि (अष्ठीवन्तौ केवलौ एतौ मम इति) दो घुटने केवल मेरे हैं ॥ १२ ॥

(भसद् आदित्यानां आसीत्) पृष्ठवंशका अन्तिम भाग आदित्योंका है, (श्रोणी बृहस्पतेः आस्तां) कूल्हे बृहस्पतिके हैं, (पुच्छं वातस्य देवस्य) पुच्छ वायु देवका है, (तेन ओषधीः धूनोति) उससे औषधियोंको हिलाता है ॥ १३ ॥

(गुदाः सिनीवाल्याः आसन्) गुदाभाग सिनीवालीके हैं, (त्वचं सूर्याया अब्रुवन्) त्वचा सूर्यप्रभाकी है, ऐसा कहते हैं। (पदः उत्थातुः अब्रुवन्) पैर उत्थाताके हैं ऐसा कहा है, (यत् ऋषभं अकल्पयन्) इस प्रकार बैलकी कल्पना विद्वानोंने की है ॥ १४ ॥

(क्रोडः जामिशंसस्य आसीत्) गोद जामिशंसकी थी, (कलशः सोमस्य धृतः) कलश सोमके द्वारा धारण किया गया है, इस प्रकार (सर्वे देवाः संगत्य) सब देव मिलकर (यत् ऋषभं व्यकल्पयन्) बैलकी कल्पना करते हैं १५

(कुष्ठिकाः सरमायै ते अदधुः) कुष्ठिकोंको सरमाके लिए उन्होंने धारण किया और (शफान् कूर्मेभ्यः) खुरोंको कछुओंके लिए धारण किया। (अस्य ऊबध्यं) इसका अपक अन्न (श्ववर्तिभ्यः कीटेभ्यः अधारयन्) कुत्तेके साथ रहनेवाले कीडोंके लिए रख दिया ॥ १६ ॥

(यः अघ्न्यः गवां पतिः) जो गौवोंका हननके अयोग्य पति अर्थात् बैल है, वह (कर्णाभ्यां भद्रं शृणोति) कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है, (शृंगाभ्यां रक्षः ऋषति) सींगोंसे राक्षसोंको. हटा देता है और (चक्षुषा अवर्तिं हन्ति) आंखसे अकालको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

(यः ब्राह्मणे ऋषभं आजुहोति) जो ब्राह्मणोंको बैलका समर्पण करता है (तं विश्वे देवाः जिन्वन्ति) उसको सब देव तृप्त करते हैं। (सः शतयाजं यजति) वह सैंकडों याजकों द्वारा यज्ञ करता है और (एनं अग्नयः न दुन्वन्ति) इसको अग्नि कष्ट नहीं देते ॥ १८ ॥

भावार्थ— इसके अवयवोंमें अनुमति, भग, मित्र, आदित्य, बृहस्पति, वायु आदि देवताओंका अधिष्ठान है ॥ १२-१३ ॥

सिनीवाली, सूर्यप्रभा, उत्थाता, जामिशंस, सोम इन देवताओंके लिए क्रमशः गुदा, त्वचा, पैर, गोद, कलश ये इसके अवयव माने गये हैं। इस तरह सब देवोंने इस बैलके विषयमें कल्पना की है ॥ १४-१५ ॥

सरमा, कूर्म, श्ववर्ति, क्रिमी आदिके लिए इसके कुष्ठिका, खुर और अपचित् अन्नभाग रखे गए हैं ॥ १६ ॥

बैल गौका पति है। वह कानोंसे उत्तम शब्द सुनता है, सींगोंसे शत्रुओंको हटाता है और आंखसे अकालको दूर करता है ॥ १७ ॥

जो ब्राह्मणको बैल दान देता है, उसकी सब देव तृप्ति करते हैं। वह सैंकडों प्रकारके याजकों द्वारा यज्ञ करता हुआ अग्निके भयसे दूर रहता है ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दुत्वा वरीयः कृणुते मनः । पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥ १९ ॥
गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् । तत्सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ २० ॥
अयं पिपान इन्द्र इद्रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥
पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत्प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥
उपेहोपपर्चनास्मिन्गोष्ठ उप पृञ्च नः । उप ऋषभस्य यद्रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ— (ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं दत्त्वा) ब्राह्मणोंको बैल देकर जो अपना (मनः वरीयः कृणुते) मन श्रेष्ठ बनाता है । (सः स्वे गोष्ठे) वह अपनी गोशालामें (अघ्न्यानां पुष्टिं अव पश्यते) गौओंकी पुष्टि देखता है ॥ १९ ॥

(गावः सन्तु) गौवें हों, (प्रजा सन्तु) प्रजाएं हों (अथो तनूबलं अस्तु) और शारीरिक बल हो । (तत् सर्वं) यह सब (ऋषभदायिने) बैल देनेवालेके लिये (देवाः अनुमन्यन्तां) देव अपनी अनुमतिके साथ देवें ॥ २० ॥

(अयं पिपानः इन्द्रः इत्) यह पुष्ट इन्द्र (चेतनीं रयिं दधातु) चेतना देनेवाले धनको धारण करे । तथा (अयं) यह इन्द्र (सुदुघां) उत्तम दोहने योग्य (नित्यवत्सां) बछडोंके साथ उपस्थित, (वशां दुहां) वशमें रहकर दुहने योग्य, (विपश्चितं धेनुं) ज्ञानयुक्त धेनुको (परः दिवः) श्रेष्ठ द्युलोकसे परेसे धारण करे ॥ २१ ॥

(पिशंगरूपः) लाल रंगवाला, (नभसः) आकाशसे (ऐन्द्रः शुष्मः) इन्द्रके संबंधी बल धारण करनेवाला (विश्वरूपः वयोधाः नः आगन्) समस्त रूपोंसे युक्त अन्नका धारण करनेवाला हमारे पास आया है । वह (आयुः प्रजां च रायः च) आयु, प्रजा और धन (अस्मभ्यं दधत्) हमारे लिए धारण करता हुआ (पोषैः नः अभिसचन्तां) पुष्टियोंसे हमें प्राप्त होवे ॥ २२ ॥

(इह अस्मिन् गोष्ठे) यहां इस गोशालामें (उप उप पर्चन) समीप रह और (नः उपपृञ्च) हमें प्राप्त हो । (ऋषभस्य यत् रेतः) वृषभका जो वीर्य है, हे इन्द्र ! (तव वीर्यं उप) वह तेरा वीर्य हमारे पास आजावे ॥ २३ ॥

भावार्थ— जो ब्राह्मणोंको बैल दान करके अपना मन श्रेष्ठ बनाता है, वह अपनी गोशालामें बहुतसी पुष्ट गौवें देखता है ॥ १९ ॥

बैलका दान करनेवालेको देवोंकी अनुमतिसे गौवें मिलती हैं, प्रजा उत्पन्न होती है और शरीरका बल भी प्राप्त होता है ॥ २० ॥

यह प्रभु चैतन्ययुक्त गोरूपी धन हमें देवे । यह द्युलोकके परेसे ऐसी गौ लावे कि जो उत्तम दूध देनेवाली, नित्य बछडेको साथ रखनेवाली, विना कष्ट दूध देनेवाली और स्वामीको पहचाननेवाली हो ॥ २१ ॥

आकाशसे बैल ऐसा आया है कि जो लाल रंगवाला, बलवान्, अनेक रंगोंसे युक्त, अन्नको देनेवाला है । यह हमें आयु, प्रजा और धन हमारे लिए देवे और हमें पुष्टि देवे ॥ २२ ॥

यह बैल इस गोशालामें रहे, हमारे पास रहे । इस बैलका जो बल है वह इन्द्रकी शक्ति है, वह हमें प्राप्त हो ॥ २३ ॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ २४ ॥

अर्थ— (एतं युवानं वः प्रतिदध्मः) इस युवाको हम आपके लिए समर्पित करते हैं, (अत्र तेन क्रीडन्तीः चरत) यहां उसके साथ खेलती हुईं विचरो और (वशान् अनु) इच्छित स्थानोंके प्रति जाओ। हे (सुभागाः) भाग्ययुक्त गौवो ! (जनुषा मा हासिष्ट) जन्मके साथ हमारा त्याग न करो, (च पोषैः रायः) पुष्टियोंके साथ रहनेवाले धन (नः अभिसचध्वं) हमें दो ॥ २४ ॥

भावार्थ— इन गौवोंके पास हम इस बैलको बांधते हैं। इसके साथ ये गौवें खेलें, कूदें और विचरें। जहां चाहे वहां घूमें। गौवें हमारा त्याग न करें, हमारे पास रहें। पुष्ट हों और हम सबको पुष्ट करें ॥ २४ ॥

बैल

बैलकी महिमा

इस सूक्तमें बैलकी महिमाका वर्णन है। उत्तमसे उत्तम बैलका घरमें पालन करनेसे कितने लाभ होते हैं इसका वर्णन इस सूक्तमें पाठक देखें—

साहस्रस्त्वेषः ऋषभः पयस्वान् । (मं. १)

" हजारों तेजोंसे और बलोंसे युक्त यह बैल है और यह (पयस्वान्) दूध देनेवाला है। " पाठक यहां आश्चर्य करेंगे कि बैल दूध देनेवाला किस प्रकार हो सकता है? प्रथम और तृतीय मन्त्रमें इस बैलको (पयस्वान्) दूधवाला कहा है। अतः इस वर्णनमें कुछ हेतु है। जैसा बैल होता है वैसा उसकी गौरूप संततिमें दूध न्यूनाधिक होता है। अर्थात् गौमें दूध उत्पन्न करनेकी शक्ति बैलपर निर्भर है। कई जातिके बैल कम दूध देनेवाली संतान पैदा करते हैं और कई जातिके बैल विशेष दूध देनेवाली संतान उत्पन्न करते हैं। अतः यदि अधिक दूध देनेवाली गौवें उत्पन्न करानेकी इच्छा हो, तो अधिक दूध देनेवाली गौओंके साथ उस जातिका बैल रखना चाहिये कि जो अधिक दूध देनेवाली जातिका हो। ऐसी गौवें और ऐसे बैल एक स्थानपर रखने चाहिए। अर्थात् कम दूध देनेवाली जातिके बैल अधिक दूध देनेवाली गौके साथ कदापि नहीं रखना चाहियें क्योंकि इससे उत्पन्न होनेवाली गौका दूध घट जायगा। अतः २४ वें मन्त्रमें कहा है—

एतं वो युवानं प्रतिदध्मः तेन अत्र क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु । (मं. २४)

" इस युवा बैलको गौवोंके साथ रखते हैं, इसके साथ ये गौवें खेलें और इष्ट प्रदेशमें विचरें। " अर्थात् यह फलानी जातिका बैल है और ये फलानी जातिकी गौवें हैं, इन दोनोंका संबंध हम करना चाहते हैं। इस संबंधसे विशेष प्रकारकी संतान पैदा होगी। इस प्रकार गौओंमें भी किसी भी गौका किसी भी बैलके साथ संबंध होना इष्ट नहीं है। विशेष जातिकी गौके साथ विशेष जातिके बैलका ही संबंध होना अभीष्ट है। गौवोंमें जातिका संकर होने देना कदापि युक्त नहीं है। यदि भिन्न जातिमें संबंध होना है तो उच्च जातिवाले नरके साथ संबंध हो और नीच जातिवाले नरके साथ सम्बन्ध न हो। यदि दूध बढानेकी इच्छा हो तो अधिक दूध देनेवाली जातिके बैलके साथ गौका सम्बन्ध हो, यदि वाहक शक्तिवाले बैल उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो उत्तम वाहक शक्तिवाले बैलके साथ सम्बन्ध हो। गौओंके अन्दरकी उपजातियोंकी भी रक्षा करना योग्य है और संतान विशेष जातिकी ही उत्पन्न करनेका यत्न होना चाहिये। जातिसंकर होनेसे गुणोंकी न्यूनता होती है और जातिकी शुद्धता रहनेसे गुणोंका संवर्धन हो जाता है। इस सूक्तके इस तरह गौओंकी जातियोंकी रक्षा करके अथवा अनुलोम सम्बन्धसे उच्च नरके साथ सम्बन्ध रखके गौओंका संवर्धन करनेका उपदेश है अतः बैलके रेतमें दूध बढानेका गुण है, यह बात कही है। इसका विचार पाठक करें। अस्तु, यह बैल—

वक्षणासु विश्वा रूपाणि बिभ्रत् । (मं. १)

" नदीके किनारोंपर यह बैल अपने विविध रूपोंको धारण

करता है।" अर्थात् यह नदीके किनारेपर रहकर घास आदि खाकर यथेष्ट पुष्ट होकर विचरता है और गौवोंमें विविध प्रकारके अपने रूपोंका आधान करता है। यदि यह खा पी कर पुष्ट न बने, तो उत्तम संतान निर्माण करनेमें असमर्थ होगा। इसलिए सांडको बडा पुष्ट बनाना चाहिये इस प्रकार—

उस्रियः तन्तुं आतान्। (मं. १)

"अपने प्रजातन्तुको फैलाता है।" अर्थात् गौवोंमें गर्भाधान करके उत्तम संतान उत्पन्न करता है। यही रीति है कि जिससे गौवों और बैलोंका उत्तम निर्माण हो सकता है। ऐसे उत्तम जातिके बैल—

दात्रे भद्रं शिक्षन्। (मं. १)

"दाताके लिए कल्याण देते हैं।" जो मनुष्य ऐसे उत्तम बैल आचार्योंको दान देता है उसका कल्याण होता है। अर्थात् आचार्य, ब्राह्मण आदिके पास बहुत शिष्य होते हैं, अतः उनके आश्रमोंमें अधिक दूध देनेवाली गौवें हों, तो वहांके ब्रह्मचारी दूध पीकर पुष्ट रह सकते हैं। अतः ऐसे उत्तम बैल और उत्तम गौवोंको ऐसे आचार्योंको देना कल्याणप्रद है। इस सूक्तमें इस प्रकारके दानके लिए प्रेरणा इस तरह की है—

सहस्रं स एकमुखा ददाति
यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति। (मं. ९)
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा
यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति। (मं. १८)
ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः॥
(मं. १९)
तत्सर्वमनुमन्यन्तां देवा ऋषभदायिने॥ (मं. २०)

"जो (ब्राह्मणे) ब्राह्मणको बैल समर्पण करता है वह एक रूपमें हजारों दान करता है। उसको सब देव संतुष्ट करते हैं जो (ब्राह्मणे) ब्राह्मणके घरमें बैलका समर्पण करता है। ब्राह्मणोंको बैल दान देकर मन श्रेष्ठ बनाता है। जो बैलका दान करता है उसके लिए सब देव अनुकूल होते हैं।"

विद्वान्, ज्ञानी, सदाचारी आचार्यको उत्तम बैल दान करनेकी प्रेरणा इस सूक्तमें की है। इसका तात्पर्य पूर्व स्थानमें जैसा बताया है वैसा ही समझना चाहिये। यही विषय महाभारतमें निम्नलिखित रीतिसे स्पष्ट किया है—

दत्त्वा धेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां
कल्याणवत्सामपलायिनीं च।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्या-
स्तावद्वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम्॥ ३३॥

तथाऽनड्वाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय
दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम्।
कुलानुजीव्यं वीर्यवन्तं बृहन्तं
भुङ्क्ते लोकान्सम्मितान्धेनुदस्य॥ ३४॥
गोषु क्षान्तं गोशरण्यं कृतज्ञं
वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः।
वृद्धे ग्लाने संभ्रमे वा महार्हे
कृष्यर्थं वा होम्यहेतोः प्रसूत्याम्॥ ३५॥
गुर्वर्थे वा बालपुष्ट्यभिषङ्गां
गां वै दातुं देशकालोऽविशिष्टः।
(म. भा. अनुशा. अ. ७१)

"दान करनेके लिए गौ ऐसी हो कि जो उत्तम स्वभाववाली, बडे कांस्यके बर्तनमें जिसका दोहन होता हो, जिसके बछडे उत्तम होते हों, जो न भागती हो। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको दान करनेके लिए योग्य बैल बोझा ढोनेवाला, उत्तम बलवान्, युवा, वीर्यवान्, बडे शरीरवाला हो। ऐसे बैलका दान करनेवालेको स्वर्गलाभ होता है। गौ ऐसे विद्वान्को देनी चाहिये कि जो गौका भक्त हो, गोपालक हो, गौके विषयमें कृतज्ञ हो, वृत्तिहीन हो। गुरुको शिष्य उत्तम गौ दान देवे।" इस रीतिसे महाभारतमें गौदान और वृषभ दानका विषय कहा है। हरएक ब्राह्मण गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है। इस विषयमें महाभारत और अथर्ववेदके सूक्तोंमें बहुत नियम हैं, उनका विचार पाठक अवश्य करें—

असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने।
हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथंचन॥ १५॥
भिक्षवे बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये।
दत्त्वा दशगवां दाता लोकानाप्नोत्यनुत्तमान्॥१६॥
(म. भा. अनुशा. अ. ६९)

"दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यभाषी, हव्यकव्य न देनेवालेको कभी गौ नहीं देनी चाहिये। भिक्षापर जीविका निर्वाह करनेवाले, बहुत पुत्रवाले, वेदज्ञानी, अग्निहोत्रीको गोदान करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है।" इस प्रकार महाभारतमें वर्णन है। यह देखनेसे पता लगता है कि विद्वान् सदाचारी आचार्यको ही गौ दान करना योग्य है। केवल ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होनेसे गौदान लेनेका अधिकारी नहीं हो सकता। तथा अथर्ववेदमें अन्यत्र भी कहा है देखिये—

यो ददाति शतौदनाम्। (अथर्व. १०।९।५,६,१०)
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्समश्नुते।
(अ. १०।१०।३३)

आपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो
ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक्सादयामि ॥
(अ. १०।९।२७)

'शतौदना गौका दान करता है। ब्राह्मणोंको वशा गौ दान करनेसे सब श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणोंके हाथोंपर दानका उदक पृथक् पृथक् छोडता हूं अर्थात् दान करता हूं।' इन मंत्रोंसे स्पष्ट बोध होता है कि ब्राह्मणोंको गौदान करना चाहिये। यहां विचार करना चाहिए कि कौनसे ब्राह्मणको इस प्रकार गौका दान करना चाहिये। निम्न-लिखित मंत्रोंसे इसका उत्तर मिलता है-

शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात् ।
य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात् ॥
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥
सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥
(अथर्व. १०।१०।१२; २७; ३२; २८)

'जो यज्ञके सिरको अर्थात् मुख्य भागको ठीक प्रकार जानता है वह गौका दान लेवे। जो इस ज्ञानसे युक्त है वह गौका दान लेवे। जो इस प्रकारके ज्ञानीको गौका दान करते हैं वे स्वर्गको प्राप्त करते हैं। अन्योंको अर्थात् जो इस ज्ञानसे युक्त नहीं हैं उनको गौका दान नहीं लेना चाहिए।'

इन मंत्रोंमें विशेष ज्ञानी आत्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको गौका दान करना योग्य है ऐसा स्पष्ट कहा है। इसलिए ब्राह्मणको गौदान करनेमें कोई पक्षपात नहीं है। जो ब्राह्मण राष्ट्रके नवयुवकोंको ज्ञान देता है और जो धर्मकी मूर्ति है, उसको उत्तम गौओंका दान करना योग्य है। ब्राह्मण जातिमें उत्पन्न पापी मनुष्योंको कदापि गौओंका दान करना योग्य नहीं है। गौके और बैलके दानके विषयमें यही समान उप-देश है।

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव
प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी। (मं. २)

" बैलकी उपमा केवल मेघकी है, यह सबका प्रभु है और देवी पृथ्वीके समान यह सबका उपकारक है।' जिस प्रकार जलदान करनेसे मेघ सबको जीवन देता है और अन्न देनेके कारण पुष्टिका हेतु होता है, उस प्रकार बैल भी अन्न उत्पन्न करता है, कृषिका साधक है और गौके द्वारा अमृत रूपी जीवनरस देता है। इसलिए मेघ और बैल समानतया उपकारक हैं। अतः बैलको वेदमें मेघोंकी उपमा दी है। यह बैल हमें—

साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु। (मं. २)

" हजारों प्रकारकी पुष्टिमें रखे।" अर्थात् हमारा उत्तम रीतिसे सहायक बने। इनके आगे मंत्र ३ और ४ में बैलके गुणोंका उत्तम वर्णन है वह अति स्पष्ट है। पंचम मंत्रमें (सोमस्य भक्षः) सोमका अन्न बनानेका वर्णन है। सोमरसके साथ दूध मिलानेसे उत्तम पेय होता है, ऐसा अन्यत्र वेदमें कई स्थानोंमें कहा है। उसी सोमके अन्नका यहां उल्लेख है। (ओषधीनां रसः) औषधियोंके रसके साथ गायके दूध पीनेकी यह वैदिक रीति यहां देखने योग्य है। बैलके कारण गौमें दूध उत्पन्न होता है, इसलिए इस पेयका हेतु बैल है ऐसा यहां कहा है, वह बात युक्तियुक्त है। यह बैल—

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्ति। (मं. ६)

" सोमरससे भरे हुए कलशको धारण करता है।' यह अमृत रसका कलश गौका स्तन या ऊध है, जिसमें विपुल दूध रहता है। गायका दूध भी सोमशक्तिसे युक्त होता है, यह सोमशक्ति सोमादि शुद्ध वनस्पतियोंके भक्षणसे गौमें उत्पन्न होती है। इस रीतिसे देखा जाय तो गौ सोमरसका कलश धारण करती है और यह बैल गौके अन्दर इस सोमरसको धारण करता है, यह बात स्पष्ट होजाती है। इस प्रकार यह सोमरसका आधार बैल—

इन्द्रस्य रूपं वसानः। (मं. ७)

" इन्द्रके रूपको धारण करनेवाला है।" यह बैल इन्द्रकी शक्तिको अपने अन्दर धारण करता है, इसीलिए इसको—

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः
साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः। (मं. ७)

" घीका धारक, वीर्यका स्थान और हजारों प्रकारकी पुष्टियां देनेवाला कहते हैं।" यदि यह बैल गौमें दूध अधिक उत्पन्न करनेका हेतु है, तो यही घी और वीर्यका वर्धक भी निश्चयसे है, क्योंकि जो दूधका बढानेवाला है वही वीर्यका बढानेवाला होता है। गौके दूधको वैद्यक ग्रंथोंमें (सद्यः शुक्रकरं स्वादु) शीघ्र वीर्य बढानेवाला कहा है। हजारों अन्य उपायोंसे जो शरीरका पोषण होता है वह इस अकेले गौके दूधसे हो सकता है। यह सामर्थ्य गायके दूधमें है। गौका और बैलका इतना महत्त्व होनेसे इसका काव्यमय वर्णन इस सूक्तमें आगे किया है। इसके हरएक अवयवमें देवताका अंश है यह बात मं. ८ से मं. १६ तक कही है। प्रत्येक अवयवमें

किस देवताका अंश है यह वर्णन देखनेसे गौका और बैलका शरीर देवतामय है, यह बात स्पष्ट हो जाती है। मानो गौका दूध देवताओंका सत्त्व है। यहां पाठक विचार करें कि वेदने गौके दूधका जो इतना माहात्म्य वर्णन किया है वह इसलिये कि वैदिकधर्मी लोग गायका ही दूध पियें और गायका ही घी आदि सेवन करें। भैंसका दूध कभी न पियें।

१७ वें मंत्रमें कहा है कि यह बैल सींगोंसे राक्षसोंका नाश करता है और आंखसे अकालका नाश करता है। यद्यपि यह आलंकारिक वर्णन है, तथापि यह सत्य है। बैलके मानव जातिपर इतने अनंत उपकार हैं कि उनका यथार्थ वर्णन करना असंभव है। राक्षस नाशक बैलका वर्णन शतपथ ब्राह्मणमें इस प्रकार आता है—

मनोर्ह वा ऋषभ आस। तस्मिन्नसुरघ्नी सपत्नघ्नी वाक्प्रविष्टास। तस्य ह श्वसथाद्रवथादसुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति। ते हासुराः समूदिरे पापं बत नोऽयमृषभः सचते कथं न्विमं दुभ्नुयामिति॰ ॥ (श॰ ब्रा॰ १)

" मनुका एक बैल था, उसमें असुरों और सपत्नोंकी नाशक वाणी प्रविष्ट हुई थी, अतः उसके श्वाससे असुर और राक्षस मर्दित होते हुए नष्ट होजाते थे। वे असुर मिलकर विचार करने लगे कि, ' यह बैल बडा पापी है, इसका कैसा नाश करें ' इत्यादि। यह सब वर्णन आलंकारिक है। इससे यहां इतना ही लेना है कि बैलमें असुरनाशक शक्ति है।

१८ वें मंत्रमें ब्राह्मणको बैल दान करनेका महत्त्व पुनः कहा है। यह एक दान सैंकडों दानोंके समान है यह कथन भी विशेष मननीय है। आगेके तीन मंत्रोंमें बैलके दानका महत्त्व वर्णन किया है, इस विषयमें इससे पूर्व बहुत लिखा गया है। इसी प्रकार अन्तिम तीन मंत्रोंमें बैलकी ऐन्द्री शक्तिका वर्णन है, ऐसे बैलोंको गौवोंके साथ रखनेका उपदेश अन्तिम मंत्रमें किया है। ये सब विचार गौ और बैल का महत्त्व वर्णन कर रहे हैं।

गौशाला

कां. ३, सू. १४

(ऋषिः– ब्रह्मा। देवता– नानादेवता गोष्ठदेवता।)

सं वो॑ गो॒ष्ठेन॑ सु॒षदा॒ सं र॒य्या सं सुभू॑त्या। अह॑र्जातस्य॒ यन्नाम॒ तेना॑ वः॒ सं सृ॑जामसि ॥ १ ॥

सं वः॑ सृजत्वर्य॒मा सं पू॒षा सं बृह॒स्पतिः॑। समिन्द्रो॒ यो ध॑नंज॒यो मयि॑ पुष्यत॒ यद्वसु॑ ॥ २ ॥

अर्थ— हे गौओ! (वः सुषदा गोष्ठेन सं) तुमको उत्तम बैठने योग्य गोशालासे युक्त करते हैं, (रय्या सं) उत्तम जलसे युक्त करते हैं और (सु-भूत्या सं) उत्तम रहने सहनेसे अथवा उत्तम प्रजननसे युक्त करते हैं। (यत् अहर्जातस्य नाम) जो दिनमें श्रेष्ठ वस्तु मिल जाय (तेन वः संसृजामसि) उससे तुमको युक्त करते हैं॥ १॥

(अर्यमा वः संसृजतु) अर्यमा तुमको उत्पन्न करे, (पूषा सं, बृहस्पतिः सं) पूषा और बृहस्पति भी तुम्हें उत्पन्न करे। (यः धनंजयः इन्द्रः सं सृजतु) जो धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र है वह तुमको धनसे संयुक्त करे। (यत् वसु) जो धन तुम्हारे पास है उसे (मयि पुष्यत) मुझमें तुम पुष्ट करो॥ २॥

भावार्थ— गौओंके लिये उत्तम प्रशस्त और स्वच्छ गोशाला बनायी जाय। गौओंके लिये उत्तम जल पीनेको दिया जाय, तथा गौओंसे उत्तम गुणयुक्त संतान उत्पन्न करानेकी दक्षता सदा रखी जाय। गौओंसे इतना प्रेम किया जाय कि दिनके समय गौके योग्य उत्तमसे उत्तम पदार्थ प्राप्त कराकर वह उनको दिया जाय॥ १॥

अर्यमा, पूषा, बृहस्पति तथा धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र आदि सब देवतागण गौओंकी पुष्टि करें। तथा पुष्ट गौओंसे जो पोषक रस मिल सकता है वह दूध मेरी पुष्टिके लिये मुझे मिले॥ २॥

*

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन्गोष्ठे करीषिणीः । बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३ ॥
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥ ४ ॥
शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥ ५ ॥
मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥ ६ ॥

अर्थ-- (अस्मिन् गोष्ठे संजग्मानाः) इस गोशालामें मिलकर रहती हुई, (करीषिणीः) गोबरका उत्तम खाद उत्पन्न करनेवाली तथा (सोम्यं मधु बिभ्रतीः) शांत मधुररस-दूध-को धारण करती हुई हे गौवो ! तुम (अ-बिभ्युषीः) निर्भय होकर (अन्- अमीवाः उपेतन) नीरोग अवस्थामें हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

हे (गावः) गौओ ! (इह एव एतन) यहीं आओ और (इहो शका इव पुष्यत) यहां शागके समान पुष्ट होओ (उत इह एव प्रजायध्वं) और यहींपर बच्चे उत्पन्न करके बढो । (वः संज्ञानं मयि अस्तु) आपका लगन-प्रेम-मुझमें होवे ॥ ४ ॥

(वः गोष्ठः शिवः भवतु) तुम्हारी गोशाला तुम्हारे लिये हितकारी होवे । (शारि-शाका इव पुष्यत) शालिकी शाकके समान पुष्ट होओ । (इह एव प्रजायध्वं) यहींपर प्रजा उत्पन्न करो और बढो । (मया वः संसृजामसि) अपने साथ तुमको भ्रमणके लिये ले जाता हूं ॥ ५ ॥

हे (गावः) गौओ ! (मया गोपतिना सचध्वं) मुझ गोपतिके साथ मिली रहो । (वः पोषयिष्णुः अयं गोष्ठः इह) तुमको पुष्ट करनेवाली यह गोशाला यहां है । (रायः पोषेण बहुलाः भवन्तीः) शोभाकी वृद्धिके साथ बहुत बढती हुई और (जीवन्तीः वः जीवाः उपसदेम) जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ-- उत्तम खादरूपी गोबर उत्पन्न करनेवाली, दूध जैसा मधुर रस देनेवाली, नीरोग और निर्भय स्थानपर विचरनेवाली गौवें इस उत्तम गोशालामें आकर निवास करें ॥ ३ ॥

गौवें इस गोशालामें आवें, यहां बहुत पुष्ट हों और यहां बहुत उत्तम संतान उत्पन्न करें और गौओंके स्वामीके ऊपर प्रेम करती हुई आनंदसे रहें ॥ ४ ॥

गोशाला गौओंके लिये कल्याणकारिणी होवे । यहां गौवें पुष्ट होवें और संतान उत्पन्न करके बढें । गौओंका स्वामी स्वयं गौओंकी व्यवस्था देखे ॥ ५ ॥

गौवें स्वामीके साथ आनन्दसे मिलजुल कर रहें । यह गोशाला अत्यन्त उत्तम है इसमें रहकर गौवें पुष्ट हों। अपनी शोभा और पुष्टि बढाती हुई यहां गौवें बहुत बढें । हम सब ऐसे उत्तम गौवोंको प्राप्त करें और पालें ॥ ६ ॥

गो संवर्धन ।

यह सूक्त अत्यंत सुगम है, इसलिये इसके अधिक विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इसमें जो बातें कहीं हैं उनका सारांश यह है कि ' गौओंके लिये उत्तम गोशाला बनाई जावे और वहां उनके रहने सहने, घास, दाना, पानी आदिका सब उत्तम प्रबंध किया जावे । स्वामी गौवोंसे प्रेम करे और गौवें स्वामीसे प्रेम करें । गौवें निर्भयतासे रहें उनको अधिक भयभीत न किया जावे, क्योंकि भयभीत गौवोंके दूधपर बुरा परिणाम होता है । संतान उत्पन्न करानेके समय अधिक दूधवाली और अधिक नीरोग संतान उत्पन्न करानेके विषयमें दक्षता रखी जाय । गौवोंकी पुष्टि और नीरोगताके विषयमें विशेष दक्षता रखी जाय अर्थात् गौओंको पुष्ट किया जाय और उनसे नीरोग संतान उत्पन्न हो ऐसा सुप्रबंध किया जाय । गोपालनका उत्तमसे उत्तम प्रबंध हो, किसी प्रकारकी उनमें बीमारी उत्पन्न न हो । उनके गोबर आदिसे उत्तम खाद बना कर, उस खादका उपयोग शाली अर्थात् चावल आदि धान्योंके लिये किया जावे । '

गायकी पालना

कां. ७, सू. ७५

(ऋषिः– उपरिबभ्रवः । देवता– अघ्न्याः ।)

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ १ ॥
पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः । उप मा देवीर्देवेभिरेत ।
इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥ २ ॥

अर्थ— (प्रजावतीः) उत्तम बछडोंवाली (सूयवसे चरन्तीः) उत्तम घासके लिये विचरती हुई (सु-प्र-पाने शुद्धाः अपः पिबन्तीः) उत्तम जलस्थानपर शुद्ध जलपान करनेवाली गौवें हों । हे गौवो ! (स्तेनः वः मा ईशत) चोर तुमपर शासन न करे । (मा अघशंसः) पापी भी तुमपर हुकूमत न करे । (रुद्रस्य हेतिः वः परि वृणक्तु) रुद्रका शस्त्र तुम्हारी रक्षा करे ॥ १ ॥

हे (रमतयः) आनन्द देनेवाली गौवो ! (पदज्ञाः स्थ) अपने निवासस्थानको जाननेवाली होवो । (संहिता विश्वनाम्नीः देवीः) इकट्ठी हुई बहुत नामवाली दिव्य गौवों तुम (देवेभिः मा उप एत) दिव्य बछडोंके साथ मेरे पास आओ । (इमं गो-स्थं, इदं सदं) इस गोशालाको और इस घरको तथा (अस्मान्) हम सबको (घृतेन सं उक्षत) घीसे युक्त करो ॥ २ ॥

भावार्थ— गौवें उत्तम घास खानेवाली और शुद्धजल पीनेवाली हों । उनके बहुत बछडे हों । कोई चोर और पापी उनको अपने आधीन न करे । महावीरके शस्त्र उनकी रक्षा करें ॥ १ ॥

गौवें हमें आनंद दें । वे अपने निवासस्थानको पहचानें, मिलकर रहें, अनेक नामवाली दिव्य गौवें अपने बछडोंके साथ हमारे पास आवें । और हमें भरपूर घी देवें ॥ २ ॥

इसमें भी गोपालनके आदेश दिये हैं वे स्मरण रखने योग्य हैं ।

गौको समर्थ बनाना

कां. ७, सू. १०४

(ऋषिः– ब्रह्मा । देवता– आत्मा ।)

कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ १ ॥

अर्थ— (वरुणेन अथर्वणे दत्तां) वरुणके द्वारा अथर्वा अर्थात् निश्चल योगीको दी हुई (सुदुघां नित्यवत्सां पृश्निं धेनुं) सुखसे दुहनेयोग्य वत्सके साथ रहनेवाली विविध रंगवाली गौको, (बृहस्पतिना सख्यं जुषाणः) ज्ञानीके साथ मित्रता करता हुआ (यथावशं तन्वः कः = प्रजापतिः कल्पयाति) इच्छाके अनुसार शरीरके विषयमें प्रजाका पालन करनेवाला ही समर्थ करता है ॥ १ ॥

(यह सूक्त अभीतक स्पष्ट नहीं हुआ । गौके शरीरका सामर्थ्य बढानेका विषय इसमें है । गायकी दूध देनेकी शक्ति तथा अन्य शक्ति बढानेका उपदेश इसमें है । प्रजाका पालक ज्ञानीके साथ मंत्रणा करता हुआ गायको समर्थ करता है । वह आशय यहां दीखता है । परंतु सब मंत्र ठीक प्रकार समझमें नहीं आता है ।)

गौओंपर चिन्ह

कां. ६, सू. १४१

(ऋषिः- विश्वामित्रः । देवता- अश्विनौ ।)

वायुरेनाः समाकरत्त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् । इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद्रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥ १ ॥
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥ २ ॥
यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३ ॥

अर्थ— (वायुः एनाः सं आकरत्) वायु इन गौओंको इकट्ठा करे, (त्वष्टा पोषाय ध्रियतां) त्वष्टा पुष्ट करे, (इन्द्रः आभ्यः अधिब्रवत्) इन्द्र इनको पुकारे और (रुद्रः भूम्ने चिकित्सतु) इद्र इनकी वृद्धिके लिये चिकित्सा करे ॥ १ ॥

(लोहेन स्वधितिना) लोहेकी शलाकासे (कर्णयोः मिथुनं कृधि) कानोंके ऊपर जोडीका चिन्ह कर । (अश्विनौ लक्ष्म अकर्ता) अश्विदेव चिन्ह करें, (तत् प्रजया बहु अस्तु) वह सन्ततिके साथ बहुत हितकारी हो ॥ २ ॥

(यथा देवासुराः चक्रुः) जिस प्रकार देवों और असुरोंने चिन्ह किये (उत यथा मनुष्याः) और जैसे मनुष्य भी करते हैं, हे अश्विनौ ! (एवा सहस्रपोषाय लक्ष्म कृणुतं) इसी प्रकार हजार प्रकारकी पुष्टिके लिये चिन्ह करो ॥ ३ ॥

गौवोंको इकट्ठा किया जावे; उनको यथोचित जल, घास आदि देकर पुष्ट किया जावे और उनको रोगरहित रखा जावे । लोहेके शस्त्रसे गौओंके कानोंपर चिन्ह करना योग्य है । पहचाननेमें सुविधा होती है । यह चिन्ह कानपर सब देशोंमें किया जाता है और इससे बहुत लाभ होते हैं । वेदमें अन्यत्र भी गौओंके कानोंपर चिन्ह करनेका उल्लेख आता है ।

गौ-सुधार

कां. ६, सू. ७०

(ऋषिः- कङ्कायनः । देवता- अघ्न्या ।)

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ १ ॥

अर्थ— (यथा मांसं) जिस प्रकार [मांसभोजीका] मांसमें, (यथा सुर) जैसे [शराबीका] सुरामें (यथा अधिदेवने अक्षाः) जैसे [जुआरीका] जुएके पांसोंमें और (यथा वृषण्यतः पुंसः) जैसे बलवान् पुरुषका (मनः स्त्रियां निहन्यते) मन स्त्रीमें रत रहता है । हे (अघ्न्ये) गौ ! (एवा ते मनः वत्से अधि नि हन्यतां) इसी प्रकार तेरा मन बछडेमें लगा रहे ॥ १ ॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ २ ॥
यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ ३ ॥

अर्थ-- (यथा हस्ती पदेन) जैसे हाथी अपने पांवको (हस्तिन्याः पदं उद्युजे) हाथिनीके पांवके साथ जोडता है, और जैसा बलवान् पुरुषका मन स्त्री पर रत होता है, इसी प्रकार गौका मन बछडे पर स्थिर रहे ॥ २ ॥

(यथा प्रधिः) जैसे लोहेका हाल चक्र पर रहता है, (यथा उपधिः) जैसे चक्र आरोंपर रहता है और (यथा नभ्यं प्रधौ अधि) जैसे चक्रनाभि आरोंके बीच होती है, जैसे बलवान् पुरुषका मन स्त्रीमें रत रहता है, इसी प्रकार गौका मन उसके बछडेमें स्थिर रहे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार मद्यमांस, जुआ, स्त्रीव्यसन आदिमें साधारण मनुष्यका मन रमता है, उसी प्रकार अच्छे मनुष्यका मन श्रेष्ठ कर्मोंमें रमे । गौका मन अपने बछडेमें रमे । गौ नाम इंद्रियोंका माना जाय तो हरएक इंद्रियका बछडा उसका कर्म है । उस शुभ कर्ममें रमें ।
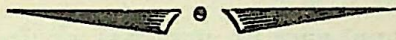
गौ-रस

कां. २, सू. २६

(ऋषिः- सविता । देवता- पशवः ।)

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन्तान्गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥ १ ॥
इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥ २ ॥

अर्थ— (ये परा-ईयुः) जो परे चले गये हैं । (पशवः इह आयन्तु) पशु यहां आजावें । (येषां सहचारं वायुः जुजोष) जिनका साहचर्य वायु करता है । (येषां रूपधेयानि त्वष्टा वेद) जिनके रूप त्वष्टा जानता है । (अस्मिन् गोष्ठे तान् सविता नि यच्छतु) इस गोशालामें उनको सविता बांधकर रखे ॥ १ ॥

(पशवः इमं गोष्ठं संस्रवन्तु) पशु इस गोशालामें मिलकर आ जांय । (बृहस्पतिः प्रजानन् आनयतु) बृहस्पति जानता हुआ उनको ले आवे । (सिनीवाली एषां अग्रं आनयतु) सिनीवाली इनके अग्रभागको ले जावे । हे (अनुमते) अनुमते ! (आ जग्मुषः नियच्छ) आनेवालोंको नियममें रख ॥ २ ॥

भावार्थ— जो पशु शुद्ध जलवायुमें भ्रमणके लिये गये हैं वे मिलकर पुनः गोशालामें आजांय । इनके चिन्होंको त्वष्टा जानता है । सविता उनको गोशालामें बांधकर रखे ॥ १ ॥

सब पशु मिलकर गोशालामें आजांय, जाननेवाला बृहस्पति उनको ले आवे । सिनीवाली अग्रभागको ले चले और अनुमति शेष आनेवालोंको नियममें रखे ॥ २ ॥

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः । सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३॥
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥ ४ ॥
आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम् । आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥ ५ ॥

अर्थ— (पशवः अश्वाः उ पूरुषाः सं सं सं स्रवन्तु) पशु, घोडे और मनुष्य भी मिल जुलकर चलें। (या धान्यस्य स्फातिः सं) जो धान्यकी बढती है वह भी मिलकर बढे । मैं (सं स्राव्येण हविषा जुहोमि) मिलानेवाले हविसे हवन करता हूं ॥ ३ ॥

(गवां क्षीरं सं सिञ्चामि) गौओंका दूध सींचता हूं । (बलं रसं आज्येन सं) बलवर्धक रसको घीके साथ मिलाता हूं । (अस्माकं वीराः संसिक्ताः) हमारे वीर सींचे गये हैं । (मयि गोपतौ गावः ध्रुवाः) मुझ गोपतिमें गौवें स्थिर हों ॥ ४ ॥

(गवां क्षीरं आ हरामि) गौओंका दूध मैं लाता हूं । (धान्यं रसं आहार्षं) धान्य और रस मैं लाता हूं । (अस्माकं वीरा आहृताः) हमारे वीर लाये गये हैं और (पत्नीः इदं अस्तकं आ) पत्नी भी इस घरमें लायी गई है ॥ ५ ॥

भावार्थ— घोडे आदि सब पशु तथा मनुष्य भी मिल जुलकर चलें और रहें । धान्य भी मिलकर बढे । सबको मिलानेवाले हवनसे मैं यज्ञ करता हूं ॥ ३ ॥

मैं गौओंसे दूध लेता हूं तथा बलवर्धक रसके साथ घीको मिलाकर सेवन करता हूं । हमारे वीरों और बालकोंको यही पेय दिया जाता है । इस कार्यके लिये हमारे घरमें गौवें स्थिर रहें ॥ ४ ॥

मैं गौओंसे दूध लेता हूं और वनस्पतियोंसे रस तथा धान्य लेता हूं । अपने वीरों और बालकोंको इकट्ठा करता हूं, घरमें पत्नियां भी लाई जाती हैं और सब मिलकर उक्त पौष्टिक रसका सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

गो--रस

पशुपालन

घरमें बहुत पशु अर्थात् गौवें, घोडे, बैल आदि बहुत पाले जांय । यह एक प्रकारका धन ही है । आज कल रुपयोंको ही धन माना जाता है, परंतु उपयोगकी दृष्टिसे देखा जाय तो गाय आदि पशु ही सच्चा धन है । इनकी पालना योग्य रीतिसे करनेके विषयमें बहुतसे आदेश इस सूक्तके पहले दो मंत्रोंमें दिये हैं । आजकल प्रायः घरमें गौ आदि पशुओंकी पालना नहीं होती है, क्वचित् किसीके घरमें एक दो गौएं होंगी तो बहुत हुआ, नहीं तो प्रायः कोई भी नागरिक पशु पालता ही नहीं । नगरके लोग प्रायः दूध आदि मोल ही लेते हैं । इतना रिवाज बदल जानेके कारण इस सूक्तके आदेश व्यर्थसे प्रतीत होंगे । परंतु ऋषिकालमें ऋषिलोगोंके पास हजारों गौवें होती थीं और उसी प्रमाणसे अन्यान्य पशु भी बहुतसे होते थे । ऐसे घरोंके लिये ये आदेश फलीभूत हो सकते हैं ।

भ्रमण और वापस आना

गाय आदि पशुओंको शुद्ध वायुमें भ्रमणके लिये लेजाना आवश्यक है, उनका भ्रमण होनेके विना न तो उनका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है और न उनका दूध गुणकारी हो सकता है । इसलिये—

येषां सहचारं वायुः जुजोष । (मं. १)

' जिनका साहचर्य वायु करता है ' यह प्रथममंत्रका वाक्य गौओंके आरोग्यके लिये उनका शुद्ध वायुमें भ्रमण अत्यंत आवश्यक है यह बात बता रहा है । तथा—

ये पशवः परा ईयुः ते इह आयन्तु ॥ (मं. १)

'जो पशु भ्रमणके लिये बाहर गये हुए हैं वे मिलकर वापस आजावें।' इस मंत्रभागमें भी वही बात स्पष्टतासे कही है। पशु अपने स्थानसे मिलकर बाहर जांय और मिलकर वापस आजांय। आगे पीछे रहनेसे उनको पुनः ढूंढना पडता है। इस कष्टसे बचानेके लिये सब पशु क्रमपूर्वक जांय और सब इकट्ठे वापस आजांय ऐसा जो इस मंत्रमें कहा है वह बहुत उपयोगी आदेश हैं।

जहां हजारों पशु होंगे वहां एक गोपालसे काम नहीं चल सकता। इस कार्यके लिये अपने अपने कार्यमें प्रवीण बहुतसे गोपाल होने चाहिये। उनका वर्णन सविता आदि नामोंसे इस सूक्तमें किया है—

१ त्वष्टा येषां रूपाणि वेद। (मं. १)
२ सविता अस्मिन् गोष्ठे तान् नियच्छतु। (मं. १)
३ बृहस्पतिः प्रजानन् आनयतु॥ (मं. २)
४ सिनीवाली एषां अग्रं आनयतु। (मं. २)
५ अनुमते! आजग्मुषः नियच्छ। (मं. २)

इन मंत्रोंमें देवताओंके नाम प्रत्येक कार्यके लिये आगये हैं। इन शब्दोंके देवतावाचक अर्थ प्रसिद्ध ही हैं, परंतु इनके मूल धात्वर्थ भी यहां देखिये—

१ त्वष्टा— सूक्ष्म करनेवाला, कुशल कारीगर। (त्वक्ष-तनूकरणे)
२ सविता— प्रेरक। (सु-प्रेरणे)। चलानेवाला।
३ बृहस्पतिः— ज्ञानवान्, (बृहस्) बडेका (पति) स्वामी। पुरोहित, निरीक्षक।
४ सिनीवाली— (सिनी) अन्नके (वाली) बलसे युक्त। अन्नवाली स्त्री।
५ अनु-मतिः— अनुकूल मति रखनेवाली स्त्री।

इन पांच देवतावाचक शब्दोंके ये मूल शब्दार्थ हैं और इन अर्थोंके साथ ही ये शब्द यहां प्रयुक्त हुए हैं। ये मूल अर्थ लेकर इन मंत्र भागोंका अर्थ देखिये—

"१ कुशल कारीगर गाय आदि पशुओंके आकारोंको जानता है। २ प्रेरक उनको गौशालामें क्रमपूर्वक नियममें रखे। ३ उनको जाननेवाला पशुओंको लावे। ४ अन्नवाली स्त्री पशुओंके आगे चले। और ५ अनुकूल कार्य करनेवाली आनेवाले पशुओंके साथ चले।

यहां पशु पालनेके आदेश मिलते हैं। इनका विचार यह है—

(१) पशुओंके पालन कर्ममें एक ऐसा अधिकारी होवे, कि जो पशुओंके सब लक्षण जानता हो।

(२) दूसरा कार्यकर्ता ऐसा हो कि जो निरीक्षण करके देखे कि सब पशु यथा स्थानपर आगये हैं वा नहीं, तथा उनका अन्य खानपानका प्रबंध ठीक हुआ है वा नहीं।

(३) तीसरा निरीक्षक ऐसा होवे कि जो पशुस्वास्थ्य विद्याको अच्छी प्रकार जाननेवाला हो, यही पशुओंको लाने ले जानेका प्रबंध देखे।

(४) जब पशु घरमें आजांय तो उनको खानपान देनेवाली स्त्री हो जो सबसे आगे जावे, उनके साथ पशुओंको देने योग्य अन्न हो।

(५) तथा उसके पीछे चलनेवाली पशुओंके अनुकूल कार्य करनेवाली पीछे पीछे चले।

इस रीतिसे सब पशुओंका योग्य प्रबंध किया जावे। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां प्रेम पूर्वक उत्तम प्रबंध करती हैं इसलिये अंतिम दो कार्योंमें स्त्रियोंको नियुक्त करनेकी सूचना वेदने दी है वह योग्य ही है।

जहां सैंकडों और हजारों गौवें पालीं जाती हों ऐसे स्थानोंमें ऐसा सुयोग्य प्रबंध अत्यंत आवश्यक ही है। आजकल जहां गौवोंका अभाव सा हो गया है वहां ऐसे बडे प्रबंधकी आवश्यकता नहीं है, यह स्पष्ट ही है। यह आजकलकी प्रगति है जो हमें पुष्टिसे दूर रखती है। जिस घरमें दश पांच गौवें कमसे कम हों उस घरके मनुष्य गोरस खा पीकर कैसे हृष्टपुष्ट होते हैं और जिस घरमें गौवें नहीं होतीं, उस घरके मनुष्य कैसे मरियलसे होते हैं इसका विचार करनेसे गौपालनेके साथ तन्दुरुस्तीका संबंध कितना घनिष्ठ है इसका पता लग सकता है। यहां तक पहिले दो मंत्रोंका विचार हुआ। तृतीय मंत्रमें सबके मिलजुलकर रहनेसे लाभ होगा यह बात कही है। पशु क्या और मनुष्य क्या सब मिलजुलकर परस्पर उपयोगी होकर अपनी वृद्धि करें, सब मिलकर धान्य प्राप्त करें अर्थात् खेती करके धान्यकी उत्पत्ति करें। इस प्रकार धान्य, वनस्पतिरस और गोरस विपुल प्रमाणमें प्राप्त करके उसके द्वारा अपनी पुष्टिको बढाते हुए अपनी उन्नति करें। (मं. ३)

दूध और पोषक रस

दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ आदि सब प्रकारके गोरस तथा अन्यान्य पोषक रस विपुल प्रमाणमें प्राप्त करने चाहिये और उनका सेवन भी पर्याप्त प्रमाणमें करना चाहिये, इस विषयमें मंत्र ४ और ५ स्पष्ट शब्दों द्वारा आदेश दे रहे हैं। इन मंत्रोंमें 'वीराः' शब्द है, इस शब्दका प्रसिद्ध अर्थ शूरबीर है, परंतु वेदमें इसका अर्थ, 'पुत्र, बालबच्चे, संतान'

भी है। यहां इन मंत्रोंमें 'पत्नी' के साहचर्यके कारण यही अर्थ विशेषतः अभीष्ट है।

'मैं गौओंसे दूध लाता हूं, वनस्पतियोंका बलवर्धक रस और धान्य लाता हूं, घी भी लाया है। घरमें धर्म-पत्नियां हैं और बालबच्चे भी इकट्ठे हुए हैं अथवा इष्ट मित्र वीर पुरुष भी जमा हुए हैं, इन सबको इच्छाके अनुसार यह सब खाद्यपेय दिया जाता है।' (मं. ४-५)

इन दो मंत्रोंका यह आशय है। 'संसिक्ता अस्माकं वीराः' हमारे वीर या बालबच्चोंके ऊपर यह रस सींचा गया, जिस प्रकार वृष्टिमें जानेसे मनुष्य भीग जाता है। उसी प्रकार बालबच्चोंपर दूध, घी आदि सब रसोंकी वृष्टि की गई है। 'संसिच्' धातुका अर्थ उत्तम प्रकारसे सिंचन करना, भिगोना है। बालबच्चे दूध, दही, मक्खन, घी, रस आदिमें पूरे पूरे भीग जांय इतना गोरस घरमें चाहिये। हृष्टपुष्टता तो तब आसकती है। वैदिक धर्म वैदिक धर्मीयोंको यह उपदेश दे रहा है कि अपनी गृहव्यवस्था ऐसी करो कि जिससे घरमें इतना विपुल गोरस प्राप्त हो और उसका सेवन करके सब बालक हृष्टपुष्ट हों। आजकल नाना प्रकारकी बीमारियां बढनेका कारण ही यह है कि गोरस न्यून होनेके कारण मनुष्यमें जीवनशक्ति ही कम होगई है। सब अन्य आरोग्य जीवनशक्तिकी वृद्धि होनेसे ही प्राप्त होंगे। गोरक्षण, गोवर्धन तथा गोसंशोधन करनेकी कितनी आवश्यकता है और राष्ट्रीय किंवा जातीय जीवनकी दृष्टिसे भी इस विषयकी कितनी आवश्यकता है यह विचारणीय है।

वैदिक आदेश व्यवहारमें लानेका विचार जो लोग कर रहे हैं, उनको इस सूक्तका बहुत मनन करना योग्य है, क्योंकि यह आदेश ऐसा है कि इसके व्यवहारमें लाते ही लाभ होनेका प्रत्यक्ष अनुभव आवेगा।

गाय और यज्ञ

कां. ७, सू. ७३

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- घर्मः, अश्विनौ।)

समि॑द्धो अ॒ग्निर्वृ॑षणा र॒थी दि॒वस्त॒प्तो घ॒र्मो दु॑ह्यते वामि॒षे मधु॑ ।
व॒यं हि वां॑ पुरु॒दमा॑सो अश्विना॒ हवा॑महे सध॒मादे॑षु का॒रवः॑ ॥ १ ॥
समि॑द्धो अ॒ग्निर॑श्विना त॒प्तो वां॑ घ॒र्म आ ग॑तम् ।
दु॒ह्यन्ते॑ नू॒नं वृ॑षणे॒ह धे॒नवो॑ दस्रा॒ मद॑न्ति वे॒धसः॑ ॥ २ ॥

अर्थ— हे (वृषणौ अश्विनौ) दोनों बलवान् अश्विदेवो ! (दिवः रथी अग्निः समिद्धः) प्रकाशके रथ जैसे अग्नि प्रदीप्त हुआ है। यह (घर्मः तप्तः) तपी हुई गर्मी ही है। यह (वां इषे मधु दुह्यते) आप दोनोंके लिये मधुर रसका दोहन करता है। (वयं पुरु-दमासः कारवः सध-मादेषु वां हवामहे) हम सब बहुत घरवाले और कार्य करनेवाले पुरुष साथ साथ मिलकर आनंद करनेके समय तुम दोनोंको बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे (वृषणौ अश्विनौ) बलवान् अश्विदेवो ! (अग्निः समिद्धः) अग्नि प्रदीप्त हुआ है, (वां घर्मः तप्तः) आपके लिये ही यह दूध तप रहा है। इसलिये (आगतं) आओ। (नूनं इह धेनवः दुह्यन्ते) निश्चयसे यहां गौवें दुही जाती हैं। हे (दस्रौ) दर्शनीय देवो ! (वेधसः मदन्ति) ज्ञानी आनंद करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हवनकी अग्नि प्रदीप्त हो चुकी है, गौका दोहन किया जाता है और हम सब ऋत्विज देवताओंको बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे देवो ! अग्नि प्रदीप्त हुई है, दूध तप रहा है, इसलिये यहां आओ, यह गौवें दोही जाती हैं जिससे ज्ञानी आनंदित होते हैं ॥ २ ॥

स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥ ३ ॥
यदुस्त्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥ ४ ॥
तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्त्रियायाः ॥ ५ ॥
उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्त्रियायाः ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥ ६ ॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ७ ॥

अर्थ-- (यः अश्विनोः देवपानः चमसः यज्ञः) जो अश्विदेवोंका देव जिससे रसपान करते हैं ऐसा चमसरूपी यज्ञ है वह (देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः) देवोंके लिए स्वाहा किया हुआ है अतएव पवित्र है। (विश्वे अमृतासः तं उ जुषाणाः) सब देव उसीका सेवन करते हैं और (तं उ गंधर्वस्य आस्ना प्रत्यारिहन्ति) उसीकी गंधर्वके मुखसे पूजा भी करते हैं ॥ ३ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (यत् उस्त्रियासु आहुतं घृतं पयः) जो गौओंमें रखा हुआ घृतमिश्रित दूध है, (अयं सः वां भागः) यह वह आपका भाग है, तुम दोनों (आगतं) आओ। हे (माध्वी) मधुरतायुक्त (विदथस्य धर्तारौ) यज्ञके धारक, (सत्पती) उत्तम पालको ! (दिवः रोचने तप्तं घर्मं पिबतं) द्युलोकके प्रकाशमें तपा हुआ यह दूधरूपी तेज पीओ ॥ ४ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (तप्तः घर्मः वां नक्षतु) तपा हुआ तेजरूपी यह दूध तुम दोनोंको प्राप्त होवे। (स्वहोता पयस्वान् अध्वर्युः वां प्रचरतु) हवनकर्ता और दूध लिये हुए अध्वर्यु तुम दोनोंकी सेवा करे। (तनायाः उस्त्रियायाः मधोः दुग्धस्य पयसः) हृष्टपुष्ट गौके दुहे हुए मधुर दूधको (वीतं पातं) प्राप्त करो और पीओ ॥ ५ ॥

हे (गोधुक्) गायका दोहन करनेवाले ! (पयसा ओषं उपद्रव) दूधके साथ अतिशीघ्र यहां आ, (उस्त्रियायाः पयः घर्मे आसिञ्च) गौका दूध कढाईमें रख और तपा। (वरेण्यः सविता नाकं वि अख्यत्) श्रेष्ठ सविता सुखपूर्ण स्वर्गधामको प्रकाशित करता है और वह (उषसः अनुप्रयाणं विराजति) उषःकालके गमनके पश्चात् विराजता है ॥ ६ ॥

(सुहस्तः एतां सुदुघां धेनुं उपह्वये) उत्तम हाथवाला मैं इस सुखसे दोहनेयोग्य धेनुको बुलाता हूं। (उत गोधुक् एनां दोहत्) और गायका दोहन करनेवाला इसका दोहन करे। (सविता श्रेष्ठं सवं नः साविषत्) सविता यह श्रेष्ठ अन्न हमें देवे। (अभीद्धः घर्मः तत् उ सु प्रवोचत्) प्रदीप्त तेजरूपी दूध यह बतावे ॥ ७ ॥

भावार्थ-- यह यज्ञ ऐसा है कि जिसमें देवतालोग रसपान करते हैं और वे इस पवित्र यज्ञका सेवन करते हैं और सत्कार करते हैं ॥ ३ ॥

गौके दूधमें देवोंका भाग है, इसलिये इस यज्ञमें पधारो और इस तपे हुए मधुर गोरसको पीओ ॥ ४ ॥

हे देवो ! यह तपा हुआ रस तुम्हें प्राप्त हो। गौके इस मधुर गोरसका पान करो ॥ ५ ॥

हे गौका दोहन करनेवाले ! दूध लेकर यज्ञमें आओ। गायका दूध तपाओ। हवन करो, श्रेष्ठ सविताने यह सुखमय स्वर्ग तुम्हारे लिये खुला किया है ॥ ६ ॥

मैं दूध दोहनेमें कुशल हूं और गायको दोहनेके लिये बुलाता हूं। दोहनेवाला इसका दोहन करे। सविताने इस श्रेष्ठ रसको दिया है ॥ ७ ॥

*

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ८ ॥
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ९ ॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ १० ॥
सूयवसाद्भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ११ ॥

अर्थ-- (हिंकृण्वती वसूनां वसुपत्नी) हीं हीं करनेवाली ऐश्वर्योंका पालन करनेवाली (मनसा वत्सं इच्छन्ती नि आगात्) मनसे बछडेकी कामना करती हुई समीप आगई है। (इयं अघ्न्या अश्विभ्यां पयः दुहां) यह गौ दोनों अश्विदेवोंके लिये दूध देवे और (सा महते सौभगाय वर्धतां) वह बडे सौभाग्यके लिये बढे ॥ ८ ॥

(दमूना विद्वान् अतिथिः दुरोणे जुष्टः) दमन किये हुए मनवाला यह ज्ञानी अतिथि घरमें सेवित होकर (नः इमं यज्ञं उपयाहि) हमारे इस यज्ञमें आवे । हे अग्ने ! (विश्वा अभियुजः विहत्य) सब शत्रुओंका वध करके (शत्रूयतां भोजनानि आभर) शत्रुता करनेवालोंके अन्न हमारे पास ला ॥ ९ ॥

हे (शर्ध अग्ने) बलवान् अग्ने ! (तव उत्तमानि द्युम्नानि महते सौभगाय सन्तु) तेरे उत्तम तेज बडे सौभाग्य बढानेवाले हों । (जास्पत्यं सुयमं सं आकृणुष्व) स्त्रीपुरुष संबंध उत्तम संयमपूर्वक होवे । (शत्रूयतां महांसि अभितिष्ठा) शत्रुता करनेवालोंका मुकाबला कर ॥ १० ॥

हे (अघ्न्ये) न मारने योग्य गौ ! तू (सु-यवस-अद् भगवती हि भूयाः) उत्तम घास खानेवाली भाग्यशालिनी हो ! (अधा वयं भगवन्तः स्याम) और हम भाग्यवान् हों। (विश्वदानीं तृणं अद्धि) सदा तृण भक्षण और (आचरन्ती शुद्धं उदकं पिब) भ्रमण करती हुई शुद्ध जल पी ॥ ११ ॥

भावार्थ— हीं हीं करती हुई अर्थात् रंभाती हुई, मनसे बछडेकी इच्छा करनेवाली गौ यहां आई है। यह अहननीय गौ देवोंके लिये दूध देवे और बडे सौभाग्यकी वृद्धि करे ॥ ८ ॥

यह इन्द्रियसंयमी अतिथि विद्वान् हमारे यज्ञमें आवे । हमारे सब शत्रुओंका नाश करके, शत्रुओंके भोग हमारे पास ले आवे ॥ ९ ॥

हे देव ! जो तेरे उत्तम तेज हैं वह हमारा भाग्य बढावे । स्त्रीपुरुषसंबंधमें उत्तम नियमसे रहें, अनियमसे व्यवहार न हो । शत्रुता करनेवालोंका पराभव करो ॥ १० ॥

हे गौ ! तू उत्तम घास खा और भाग्यवान् बन । तुझसे हम भाग्यशाली बनें । गाय घास खावे और इधर उधर भ्रमण करती हुई शुद्ध पानी पीवे ॥ ११ ॥

गाय और यज्ञ

गोरक्षा

गौकी रक्षा कैसे की जाय इस विषयमें इस सूक्तके आदेश स्मरण रखने योग्य हैं। देखिये—

१ सूयवस-अद्— उत्तम घास खानेवाली, अर्थात् बुरा घास अथवा बुरे जौ न खानेवाली गौ हो । गायके दूधमें खाये हुए पदार्थका सत्त्व आता है, इसलिये यदि गाय उत्तम घास खावेगी तो दूध भी नीरोग और पुष्टिकारक होगा । इसलिये यह आदेश स्मरण रखने योग्य है । साधारण अनाडी लोग प्रातःकाल गायको भ्रमणके लिये ले जाते हैं और उस समय गौको मनुष्यका शौच–विष्ठा– भी खिलाते हैं । ऐसे पदार्थ खिलाकर उत्पन्न हुआ दूध कैसा होगा ? विष्ठामें जो बुरे पदार्थ होंगे, जो कृमि होंगे, उन सबका

परिणाम उस दूधपर होगा और वह दूध रोगकारक होगा। अतः यह वेदका संदेश गोपालन करनेवाले लोग अवश्य ध्यानमें धारण करें। (मं. ११)

२ शुद्धं उदकं पिवन्ती— शुद्ध जल पीनेवाली गौ हो। अशुद्ध, मलिन, गंदा, दुर्गंधयुक्त जल गौ न पीवे। इसका कारण भी ऊपर दिये हुए के समान ही समझना चाहिये। (मं. ११)

३ आचरन्ती— भ्रमण करनेवाली। गौ इधर उधर अच्छी प्रकार भ्रमण करे। गौ केवल घरमें बंधी नहीं रहनी चाहिये। वह सूर्यप्रकाशमें भ्रमण करनेवाली हो। सूर्यप्रकाशमें घूमनेवाली गौका दूध ही पीने योग्य होता है। (मं. ११)

४ विश्वदानीं तृणं अद्धि— गौ सदा तृण-घास-ही खावे। दूसरे दूसरे पदार्थ न खावे। जौके खेतमें भ्रमण करे और जौ खावे। इस प्रकारकी गौका दूध उत्तम होता है। (मं. ११)

५ भगवतीः भूयाः— बलवती, प्रेममयी, शुभगुणयुक्त गौ हो। गायपर प्रेम करनेसे वह भी घरवालोंपर प्रेम करती है। इस प्रकार प्रेम करनेवाली गौका दूध पीनेसे पीनेवालेका कल्याण होता है। (मं. ११)

ये शब्द गायका पालन कैसे करना चाहिये, इस बातकी सूचना देते हैं।

६ सुदुघा— जो विना आयास दुही जाती है। दोहन करनेके समय जो कष्ट नहीं देती। (मं. ७)

७ सुहस्तः गोधुक् एनां दोहत्— उत्तम हाथवाला मनुष्य ही गौका दोहन करे। अर्थात् दोहन करनेवाला मनुष्य अपने हाथ पहिले स्वच्छ करे, निर्मल करे और गौको दुहे। हाथमें फोडे फुन्सी तो नहीं हैं, यह देखकर वैसे उत्तम हाथसे दोहन करे। इस आदेशका अत्यंत महत्व है। जो दोष ग्वालेके हाथपर होगा, वह दोष दूधमें उतरेगा और वह सीधा पीनेवालोंके पेटमें जावेगा। अतः हाथ स्वच्छ रखकर गायका दोहन करना चाहिये। (मं. ७)

८ अघ्न्या— गाय अवध्य है, अतः उसका ताडन भी नहीं करना चाहिये। अपनी माताके समान प्रेमसे उसका पालन करना चाहिए है। (मं. ८)

९ सा महते सौभगाय वर्धतां— ऐसी पाली हुई गौ बडे सौभाग्यके साथ बढे। हरएक घरमें ऐसी गोमाता रहे, हमारी भी यही इच्छा है। (मं. ८)

१० वत्सं इच्छन्ती— गौ बछडेवाली हो। मृतवत्सा न हो। मृतवत्सा गौका दूध पीनेसे पीनेवालोंके घरमें भी वही बात बन जायगी। क्योंकि यदि गौके दूधके दोषके कारण उसका बछडा मरा हो, तो वह दोष पीनेवालोंके वीर्यमें भी बढेगा। अतः बछडेवाली गाय हो और बछडेकी इच्छा करनेवाली होकर वह प्रेमसे घरमें आये। (मं. ८)

११ गोधुक् पयसा उपद्रव, उस्रियायाः पयः घर्मे सिंच— गायका दोहन करनेवाला मनुष्य दूध लेकर शीघ्रतासे आवे और वह गायका दूध अग्निपर रखे। इसका मतलब यह है कि बहुत देरतक दूध कच्चा न रखा जावे। चाहे मनुष्य धारोष्ण ही पीवे, निचोडते ही पीवे, परंतु रखना हो तो शीघ्र ही अग्निपर तपाकर रखे। क्योंकि दूधमें नाना प्रकारके क्रिमी हवामेंसे जाकर जम जाते हैं और वहां वे बढते हैं। अतः कच्ची अवस्थामें दूध बहुत देरतक रखना नहीं चाहिये। शीघ्र ही अग्निपर चढाना चाहिये। (मं. ६)

११ मधु दुह्यते— गायका दोहन करके जो निचोडा जाता है वह मधु अर्थात् शहद ही है। क्योंकि वह बडा मीठा होता है। (मं. १)

१३ तप्तं पिबतं— तपा हुआ दूध पीओ। इसका कारण ऊपर दिया ही है। (मं. ४)

इसी प्रकारके दूधका देवोंके लिये समर्पण करना चाहियें। विशेषतः अश्विनी देवोंका भाग गायका दूध और घी ही है, यह बात चतुर्थ मंत्रमें कही है। अश्विनी देव स्वयं देवोंके वैद्य हैं अतः उनको मालूम है कि कौनसा दूध अच्छा है और कौनसा अच्छा नहीं है। अश्विनी देव दूसरा दूध पीते ही नहीं और दूसरा घी भी नहीं सेवन करते। यह बात हम सबको स्मरण रखने योग्य है। अतः मनुष्योंको गायके ही दूध और घीका उपयोग करना चाहिये, भैंसका नहीं, यह बात भी इस प्रकार यहां सिद्ध हुई। इसी प्रकार बाजारका दूध भी नहीं लेना चाहिये, क्योंकि वह दूध इतनी स्वच्छतासे रखा होता है इसमें कोई प्रमाण नहीं है। अतः घरघरमें गौ पालनी चाहिये और उसका दूध यज्ञमें समर्पण करना चाहिये और हुतशेष भक्षण करना चाहिये।

पंचौदन अज

कां. ९, सू. ५

(ऋषिः- भृगुः । देवता- पञ्चौदनोऽजः, मंत्रोक्ताः ।)

आ न॑यै॒तमा र॑भस्व सु॒कृतां॑ लो॒कमपि॑ गच्छतु प्रजा॒नन् ।
ती॒र्त्वा तमां॑सि बहु॒धा म॒हान्त्य॒जो नाक॒मा क्र॑मतां तृ॒तीय॑म् ॥ १ ॥

इन्द्रा॑य भा॒गं परि॑ त्वा नयाम्य॒स्मिन्य॒ज्ञे यज॑मानाय सू॒रिम् ।
ये नो॑ द्वि॒षन्त्यनु॒ तान्र॑भस्वाना॑गसो॒ यज॑मानस्य वी॒राः ॥ २ ॥

प्र प॒दोऽव॑ नेनिग्धि॒ दुश्च॑रितं॒ यच्च॒चार॑ शु॒द्धैः श॒फैरा क्र॑मतां प्रजा॒नन् ।
ती॒र्त्वा तमां॑सि बहु॒धा वि॒पश्य॑न्न॒जो नाक॒मा क्र॑मतां तृ॒तीय॑म् ॥ ३ ॥

अर्थ— (एतं आनय) इसको यहां ला और ऐसे (आरभस्व) कर्मोंका प्रारंभ कर कि जिससे यह (प्रजानन्) मार्गको जानता हुआ (सुकृतां लोकं अपि गच्छतु) सत्कर्म करनेवालोंके स्थानको प्राप्त होवे । मार्गमें (महान्ति तमांसि बहुधा तीर्त्वा) बडे अंधकारोंको बहुत प्रकारसे तरके यह (अजः तृतीयं नाकं आक्रमतां) अजन्मा तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त होवे ॥ १ ॥

(अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें स्थित (इन्द्राय यजमानाय भागं सूरिं त्वा) इन्द्र और यजमानके लिए भागभूत बने तुझ ज्ञानीको (परि नयामि) सब ओर लेजाता हूं । (ये नः द्विषन्ति) जो हमारा द्वेष करते हैं (तान् अनुरभस्व) उनका नाश करना आरंभ कर और (यजमानस्य वीराः अनागसः) यजमानके पुत्र अथवा वीर पापरहित हों ॥ २ ॥

(यत् दुःचरितं चचार) जो दुराचार इसने किया हो, वह सब (पदः प्र अव नेनिग्धि) इसके पांवसे धो डाल । इसके पश्चात् यह (शुद्धैः शफैः प्रजानन् आक्रमतां) शुद्ध पांवोंसे मार्गको जानता हुआ चले । (विपश्यन् तमांसि बहुधा तीर्त्वा) देखता हुआ अंधकारोंको बहुत प्रकारसे तरके, (अजः) यह अजन्मा (तृतीयं नाकं आक्रमतां) तृतीय स्वर्गधामको प्राप्त करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— इसको यहां ले आओ, शुभ कर्मोंका प्रारंभ करो, अपनी उन्नतिके मार्गको जान लो और सत्कर्म करनेवाले जहां जाते हैं उस स्थानको प्राप्त करो । मार्गमें जो बडे अन्धकारके स्थान लगें उनको लांघना चाहिये, इस प्रकार यह अजन्मा आत्मा परम उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

इस यज्ञमें तुझे सब ओर ले जाता हूं । तू ज्ञानी बनकर प्रभुके लिए आत्मसमर्पण कर और यज्ञकर्ताके साथ समभागी बन । जो द्वेष करें उनको दूर कर । इस तरह यज्ञकर्ताके कार्यभाग निष्पाप बनें और वे उत्तम कार्य करें ॥ २ ॥

पूर्व समयमें जो दुराचार हुआ हो, उसको धो डाल, आगे शुद्ध पांवोंसे अपना मार्ग आक्रमण कर। चारों ओर मार्गको देख, सब अंधकारोंको लांघ कर जन्ममरणको दूर करके परम उच्च अवस्थाको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

अनु च्छय श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥ ४ ॥
ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदुकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥
उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥
अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (विशस्तः) विशेष शासक ! तू (एतां त्वचं यथा परु) इस त्वचाको जोडोंके अनुसार (श्यामेन असिना अनुच्छय) काले शस्त्रसे काट डाल । (मा अभि मंस्थाः) अभिमान मत कर, (मा अभि द्रुहः) द्रोह मत कर । (परुशः एनं कल्पय) जोडोंके अनुसार इसको समर्थ बना और (तृतीये नाके एनं अधि विश्रय) तीसरे स्वर्गधाममें इसको स्थापित कर ॥ ४ ॥

(ऋचा कुंभीं अग्नौ अधिश्रयामि) मंत्रसे इस पात्रको मैं अग्निपर रखता हूं । उसमें तू (उदकं आ सिञ्च) जल डाल और (एनं अव धेहि) इसको वहीं स्थापित कर । हे (शमितारः) शान्त करनेवालो ! तुम (अग्निना पर्याधत्त) अग्नि द्वारा चारों ओरसे इसका धारण करो । यह (शृतः गच्छतु) परिपक्व होकर वहां जावे कि (यत्र सुकृतां लोकः) जहां सत्कर्म करनेवालोंका स्थान है ॥ ५ ॥

(अतः तप्तात् चरोः) इस तपे हुए बर्तनसे (अतप्तः) न संतप्त होता हुआ तू (परि उत् क्राम) ऊपर चढ और (तृतीयं नाकं अधि) तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त हो । (अग्नेः अधि) अग्निके ऊपर (अग्निः सं बभूविथ) अग्नि प्रकट होती है, अतः (एतं ज्योतिष्मन्तं लोकं अभिजय) इस तेजस्वी लोकको जीत ॥ ६ ॥

(अजः अग्निः) अजन्मा अग्नि है (अजं उ ज्योतिः आहुः) न जन्मनेवाला तेज है ऐसा कहते हैं । (जीवता अजं ब्रह्मणे देयं आहुः) जीते हुए मनुष्यके द्वारा अपनी अजन्मा आत्मा परब्रह्मके लिए समर्पण करने योग्य है ऐसा कहते हैं । (अस्मिन् लोके अश्रद्दधानेन दत्तः) इस लोकमें श्रद्धा धारण करनेवालेके द्वारा समर्पित की हुई (अजः तमांसि दूरं अप हन्ति) अजन्मा आत्मा अन्धकारोंको दूर भगाती है ॥ ७ ॥

भावार्थ— योग्य शासक किंवा छेदक जोडोंके अनुसार तीक्ष्ण शस्त्रसे शस्त्रप्रयोग करे और रोगादि दोषोंको दूर करे । अभिमान न धरे और किसीका द्रोह भी न करे । प्रत्येक अवयवमें सामर्थ्य उत्पन्न करे और परम उच्च स्थानको प्राप्त करे ॥ ४ ॥

पकानेका बर्तन अग्निपर रखा जाय, उसमें पानी डाला जाय, चारों ओरसे अच्छी प्रकार सेक दिया जावे, पकनेके पश्चात् जहां सुकृत करनेवाले बैठे हों वहां लेजाकर उनको दिया जावे ॥ ५ ॥

तपे बर्तनसे ऐसा बाहर निकलो कि जैसा न तपा हुआ होता है । और परम उच्च अवस्थाको प्राप्त हो । अग्निपर अग्नि अर्थात् आत्मापर परमात्मा विराजमान है । उस तेजोमय लोकको अपने शुभ कर्मसे प्राप्त करो ॥ ६ ॥

अजन्मा आत्मा भी अग्नि कहलाती है, अजन्मा परमात्मा भी तेजोमय है ऐसा ज्ञानी कहते हैं । जीवित देहधारी लोगोंके अन्दर जो अजन्मा जीवात्मा है यह परमात्मा अथवा परब्रह्मके लिये समर्पित होने योग्य है ऐसा ज्ञानी कहते हैं । इस लोकमें श्रद्धासे यदि इसका समर्पण किया जाय, तो वह अजन्मा आत्मा सब अन्धकारोंको दूर कर सकती है ॥ ७ ॥

पञ्चौ॑दनः पञ्च॒धा वि क्र॑मतामाक्रंस्यमा॑न॒स्त्रीणि॒ ज्योतीं॑षि ।
ई॒जा॒नानां॑ सु॒कृतां॒ प्रेहि॒ मध्यं॑ तृ॒तीये॒ नाके॒ अधि॒ वि श्र॑यस्व ॥ ८ ॥

अजा रो॑ह सु॒कृतां॒ यत्र॑ लो॒कः श॑र॒भो न च॒त्तोऽति॑ दु॒र्गाण्येषः॑ ।
पञ्चौ॑दनो ब्र॒ह्मणे॑ दी॒यमा॑नः स दा॒तारं॒ तृप्त्या॑ तर्पयाति ॥ ९ ॥

अ॒जस्त्रि॑ना॒के त्रि॑दि॒वे त्रि॑पृ॒ष्ठे नाक॑स्य पृ॒ष्ठे द॑दि॒वांसं॑ दधाति ।
पञ्चौ॑दनो ब्र॒ह्मणे॑ दी॒यमा॑नो वि॒श्वरू॑पा धे॒नुः का॑म॒दुघा॒स्येका॑ ॥ १० ॥

ए॒तद्वो॒ ज्योतिः॑ पितरस्तृ॒तीयं॒ पञ्चौ॑दनं ब्र॒ह्मणे॒ऽजं द॑दाति ।
अ॒जस्तमां॒स्यप॑ हन्ति दू॒रम॒स्मिँल्लो॒के श्र॒द्दधा॑नेन द॒त्तः ॥ ११ ॥

अर्थ— (त्रीणि ज्योतींषि आक्रंस्यमानः) तीनों तेजोंपर आक्रमण करनेवाला (पञ्चौदनः) पांच भोजनोंवाला अजन्मा (पञ्चधा विक्रमतां) पांच प्रकारसे पराक्रम करे। (ईजनानां सुकृतां मध्यं प्रेहि) यज्ञकर्ता सत्कर्म करनेवालोंके मध्यमें प्राप्त हो। (तृतीये नाके अधिविश्रयस्व) तृतीय स्वर्गधाममें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

(अज ! आरोह) हे अजन्मा ! ऊपर चढ (यत्र सुकृतां लोकः) जहां शुभ कर्म करनेवालोंका स्थान है। (चत्तः शरभः न) छिपे हुए व्याघ्रके समान (दुर्गाणि अति एषः) संकटोंके परे जा, (पञ्चौदनः ब्रह्मणे दीयमानः) पांचोंका भोजन करनेवाली आत्मा परब्रह्मके लिये समर्पित होती हुई (सः) वह (दातारं तृप्त्या तर्पयाति) दाताको तृप्तिसे संतुष्ट करती है ॥ ९ ॥

(अजः) अजन्मा आत्मा (ददिवांसं) आत्मसमर्पण करनेवालेको (त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे) तीनों सुखोंको देनेवाले, तीनों प्रकाशोंसे युक्त, तीन पीठों आधारोंसे युक्त (नाकस्य पृष्ठे) स्वर्गधामके स्थानपर (दधाति) धारण करती है। (पञ्चौदनः ब्रह्मणे दीयमानः) पांच भोजनोंवाला जो परब्रह्मको समर्पित होता है ऐसा तू स्वयं (एका विश्वरूपा धेनुः असि) एक विश्वरूप कामधेनुके समान होता है ॥ १० ॥

हे (पितरः) पितरो ! (वः एतत् तृतीयं ज्योतिः) आपके लिये यह तीसरा तेज है जिसे (पञ्चौदनं अजं ब्रह्मणे ददाति) पञ्च भोजन करनेवाले अजन्मा आत्मा अर्थात् परब्रह्मके लिये समर्पण करना है। (श्रद्धानेन दत्तः अजः) श्रद्धालुद्वारा समर्पित हुई अजन्मा आत्मा (अस्मिन् लोके तमांसि दूरं अपहन्ति) इस लोकमें सब अन्धकारोंको दूर करती है ॥ ११ ॥

भावार्थ— तीन तेजोंको प्राप्त करनेवाली यह आत्मा पांच भोग प्राप्त करनेवाली है। यह पांच कार्यक्षेत्रोंसें पराक्रम करे। यज्ञ करनेवाले शुभकर्म करनेवालोंके मध्यमें प्रमुखस्थान प्राप्त करें और परम उच्च अवस्थामें विराजमान हों ॥ ८ ॥

हे जन्मरहित जीवात्मन् ! उच्च मार्गसे चल और सत्कर्म करनेवाले लोग जहां पहुंचते हैं वहां तू पहुंच। जिस प्रकार छिपा हुआ व्याघ्र होता है, वैसे तू सुरक्षित होकर सब कष्टोंके परे जा। पांच भोजनोंका भोग लेनेवाली जीवात्मा परमात्माके लिये समर्पित होकर समर्पण करनेवालेको संतुष्ट करता है ॥ ९ ॥

अजन्मा आत्मा आत्मसमर्पण करनेवालेको सब प्रकारके उच्च और सुखपूर्ण स्थानके लिए योग्य बनाती है। पांच भोजनोंका भोक्ता जीवात्मा परमात्माके लिए समर्पित होनेपर वह एक कामधेनु जैसा बनती है ॥ १० ॥

जो पांच अन्नोंका भोक्ता जीवात्माका परमात्माको समर्पित करना है वह मानो, सब पितरोंके लिये तृतीय ज्योति देनेके समान है। यह समर्पण यदि श्रद्धासे किए गई तो वह सब अज्ञानान्धकारको दूर करता है ॥ ११ ॥

ई॒जा॒नानां॑ सु॒कृतां॑ लो॒कमीप्स॒न्पञ्चौ॑दनं ब्र॒ह्मणे॒ऽजं द॑दाति ।
स व्या॒प्तिम॒भि लो॒कं ज॑यै॒तं शि॒वो॒३ऽस्मभ्यं॒ प्रति॑गृहीतो अस्तु ॥ १२ ॥
अ॒जो ह्य१॒ग्नेरज॑निष्ट शोका॒द्विप्रो॒ विप्र॑स्य॒ सह॑सो विप॒श्चित् ।
इ॒ष्टं पू॒र्तम॒भिपू॑र्तं॒ वष॑ट्कृतं॒ तद्दे॒वा ऋ॑तु॒शः क॑ल्पयन्तु ॥ १३ ॥
अ॒मोतं॒ वासो॑ द॒द्याद्धिर॑ण्यम॒पि दक्षि॑णाम् ।
तथा॑ लो॒कान्त्सम॑प्नोति॒ ये दि॒व्या ये च॒ पार्थि॑वाः ॥ १४ ॥
ए॒तास्त्वा॒जोप॑ यन्तु॒ धाराः॑ सो॒म्या दे॒वीर्घृ॒तपृ॑ष्ठा मधु॒श्चुतः॑ ।
स्त॒भा॒न पृ॑थि॒वीमु॒त द्यां नाक॑स्य पृ॒ष्ठेऽधि॑ स॒प्तर॑श्मौ ॥ १५ ॥

अर्थ— (ईजानानां सुकृतां लोकं ईप्सन्) यज्ञकर्ताओं और शुभकर्म करनेवालोंके द्वारा प्राप्त किए जानेवाले लोककी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला जो मनुष्य अपनी (पञ्चौदनं अजं ब्रह्मणे ददाति) पञ्च भोजन करनेवाले अजन्मा आत्माको परब्रह्मके लिए समर्पित करता है। (सः व्याप्तिं एतं लोकं जय) वह व्याप्तिवाले इस लोकको जीतता है, यह (प्रतिगृहीतः अस्मभ्यं शिवः अस्तु) प्राप्त किया लोक कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

(अजः अग्नेः शोकात् हि अजनिष्ट) अजन्मा आत्मा अग्निरूप तेजस्वी परमात्माके तेजसे प्रकट हुई है। (विप्रस्य महसः) विशेष ज्ञानी परमात्माकी शक्तिसे (विपश्चित् विप्रः) यह ज्ञानी चेतन प्रकट हुआ है। (इष्टं पूर्तं) इष्ट और पूर्त (अभिपूर्तं वषट्कृतं तत्) संपूर्ण यज्ञके द्वारा समर्पित उसको (देवाः ऋतुशः तत् कल्पयन्तु) देव ऋतुके अनुकूल समर्थ बनाते हैं ॥ १३ ॥

(अमोतं हिरण्ययं वासः) साथ बैठकर बुना हुआ सुवर्णमय वस्त्र और (दक्षिणां अपि दद्यात्) दक्षिणा भी दी जावे। (तथा लोकान् समाप्नोति) इससे वे लोक वह प्राप्त करता है, (ये दिव्याः ये च पार्थिवाः) जो द्युलोकमें और जो इस पृथ्वीपर हैं ॥ १४ ॥

हे (अज) अजन्मा आत्मन् ! (एताः सोम्याः देवीः) ये सोम संबंधी दिव्य (घृतपृष्ठाः मधुश्चुतः) घी और शहदसे युक्त (धाराः त्वा उपयन्तु) रसधाराएं तेरे पास पहुंचें और तू (सप्तरश्मौ अधि) सात किरणोंवाले सूर्यके ऊपर (नाकस्य पृष्ठे द्यां) स्वर्गके पृष्ठभागपर द्युलोकको (उत पृथिवीं तस्तभान) और पृथ्वीको स्थिर कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— जिस लोकको यज्ञ करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष प्राप्त करते हैं, वहां पञ्चभोजनी जीवात्माका परमात्माके लिये समर्पण करनेवाला जाता है। अतः तू इस व्यापक लोकको प्राप्त हो। यह लोक प्राप्त होनेपर सबके लिये कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

परमात्माके तेजसे अजन्मा जीवात्मा प्रकट होती है। महान् ज्ञानी परमात्माकी महिमासे यह चेतन जीवात्मा प्रकट होती है। इसके सब प्रकारके ऋतुओंके अनुकूल सब कर्म सब देव मिलकर पूर्ण करते हैं ॥ १३ ॥

स्वयं बैठकर बुना हुआ वस्त्र सुवर्ण दक्षिणाके साथ दान करना उचित है। इस दानसे भौतिक और अभौतिक लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

ये दिव्य सोमरसकी धाराएं घी और मधुके साथ मिलकर प्राप्त हों इनका सेवन करके तू इस भूमिको सूर्यसे भी परे स्वर्गधाममें स्थापित कर ॥ १५ ॥

अजोऽ३स्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् । तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥ १६ ॥
येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १७ ॥
अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम् ॥ १८ ॥
यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥ १९ ॥
अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥

अर्थ—हे (अज) अजन्मा! (अजः असि) जन्मरहित है, तू (स्वर्गः असि) सुखमय है, (त्वया अंगिरसः लोकं प्रजानन्) तू तैजस् लोकको जाननेवाला है। (तं पुण्यं लोकं प्र ज्ञेषं) उस पुण्यकारक लोकको मैं जानना चाहता हूं ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! (येन सहस्रं वहसि) जिससे तू सहस्रोंको ले जाता है और (येन सर्ववेदसं) जिससे सब ज्ञान तू पहुंचाता है, (तेन) उससे (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवेषु स्वः गन्तवे) देवोंके अन्दर विद्यमान तेजको प्राप्त करनेके लिये (वह) ले चल ॥ १७ ॥

(पञ्चौदनः पक्वः अजः) पञ्च भोजनवाली परिपक्व हुई अजन्मा आत्मा (निर्ऋतिं बाधमानः) दुरवस्थाका नाश करती हुई (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोकमें (दधाति) धारण करती है। (तेन) उससे (सूर्यवतः लोकान् जयेम) सूर्यवाले लोकोंको जीतकर प्राप्त करें ॥ १८ ॥

(यं ब्राह्मणे निदधे) जिसको ब्राह्मणमें रखता हूं, (यं च विक्षु) जिसको प्रजाजनोंमें रखता हूं और (अजस्य ओदनानां याः विप्रुषः) जो अजन्मा आत्माके भोगोंकी पूर्तियां हैं, हे अग्ने ! (नः सर्वं तत्) हमारा वह सब (सुकृतस्य लोके) पुण्य लोकमें, (पथीनां संगमने) मार्गोंके संगममें है, ऐसा (जानीतात्) जानो ॥ १९ ॥

(अतः वै अग्रे इदं व्यक्रमत) अजन्मा आत्मा ही पूर्वकालमें इस संसारमें विक्रम करती रही। (तस्य उरः इयं अभवत्) उसकी छाती यह भूमि बनी और (द्यौः पृष्ठं) द्युलोक पीठ होगया। (अन्तरिक्षं मध्यं) अन्तरिक्ष मध्यभाग और (दिशः पार्श्वे) दिशाएं पार्श्वभाग तथा (समुद्रौ कुक्षी) समुद्र कोख बने ॥ २० ॥

भावार्थ— तू जन्मरहित और सुखपूर्ण है। तू सब तेजस्वी लोकोंको जानता है। उन पुण्यमय लोकोंको मैं भी जानना चाहता हूं ॥ १६ ॥

हे तेजस्वी देव ! जिस शक्तिसे तू सहस्रोंको उच्च अवस्थातक लेजाता है, सब ज्ञान सबको पहुंचाता है, उस अद्वितीय शक्तिसे इस मेरे यज्ञको तू सब देवोंके पास पहुंचा, जिससे मुझे दिव्य तेजकी प्राप्ति होवे ॥ १७ ॥

पञ्चभोजन करनेवाली अजन्मा आत्मा परिपक्व होती हुई अवनति दूर करती है और स्वर्गलोक प्राप्त करती है। हम सब उस परिपक्व आत्माके द्वारा प्रकाशवाले लोक प्राप्त करें ॥ १८ ॥

जो ज्ञानियोंके लिए हम समर्पित करते हैं, जो प्रजाजनोंके लिए अर्पित करते हैं, जो अजन्मा आत्माके भोगोंकी पूर्तियां हैं, ये सब पुण्यलोकमें पहुंचानेवाले मार्गोंके सहायक हैं ऐसा जानो ॥ १९ ॥

इस जगत्में जो विक्रम है वह अजन्मा आत्माका ही है। इस आत्माकी छाती भूमि है, पीठ द्युलोक है, अन्तरिक्ष मध्यभाग है, दिशाएं बगल हैं और कोखें समुद्र हैं ॥ २० ॥

सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥
अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्धे ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥
नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् । सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥
इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥
पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥

अर्थ— (सत्यं च ऋतं च चक्षुषी) सत्य और ऋत ये उसकी आंखें, (विश्वं सत्यं) सब विश्व अस्तित्व, (श्रद्धा प्राणः) श्रद्धा प्राण और (विराट् शिरः) विराट् सिर बना। (यत् पञ्चौदनः अजः) जो पञ्च भोजन अजन्मा आत्मा है वह (एषः वै अपरिमितः यज्ञः) यह सचमुच अपरिमित यज्ञ है ॥ २१ ॥

(यः पञ्चौदनं) जो पांच भोजनोंवाले और (दक्षिणाज्योतिषं अजं ददाति) दक्षिणाके तेजसे प्रकाशित अजन्मा आत्माका समर्पण करता है, वह (अपरिमितं यज्ञं आप्नोति) अपरिमित यज्ञको प्राप्त करता है, तथा (अपरिमितं लोकं अवरुंधे) अपरिमित लोकको अपने आधीन करता है ॥ २२ ॥

(अस्य अस्थीनि न भिंद्यात्) इसकी हड्डियोंको न तोडे, (मज्ज्ञः न निः धयेत्) मज्जाओंको न पीवे, (एनं सर्वं समादाय) इस सबको लेकर (इदं इदं प्रवेशयेत्) इसको इसमें प्रविष्ट करे ॥ २३ ॥

(इदं इदं एव अस्य रूपं भवति) यह यह ही इसका रूप होता है, (तेन एनं संगमयति) उसके साथ इसको मिलाता है। (यः दक्षिणाज्योतिषं पञ्चौदनं अजं ददाति) जो दक्षिणाके तेजके साथ पञ्चभोजनवाले अजन्मा आत्माको समर्पित करता है। (अस्मै इषं महः ऊर्जं दुहे) इसके लिए अन्न, तेज और बल मिलता है ॥ २४ ॥

(यः दक्षिणा०) जो दक्षिणाके तेजके साथ पञ्चभोजनवाले अजन्मा आत्माका समर्पण करता है। (अस्मै) इसके लिए (पञ्च रुक्मा) पांच मोहरें, (पञ्च नवानि वस्त्रा) पांच नये वस्त्र और (पञ्च कामदुघः धेनवः) पांच इष्ट समयमें दूध देनेवाली गौवें (भवन्ति) मिलती हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ— उसकी आखें सत्य और ऋत हैं, उसका अस्तित्व सब विश्व है, उसका प्राण श्रद्धा और सिर संपूर्ण चमकनेवाले लोक हैं। यह पञ्चभोजनी अजन्मा आत्मा अनन्त यज्ञरूप है ॥ २१ ॥

यह पञ्चभोजनी अजन्मा जो समर्पित करता है उसको उक्त कारण अनन्त यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है और वह अनन्त लोगोंको प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

इस यज्ञके लिए किसीकी हड्डियोंको तोडनेकी आवश्यकता नहीं और मज्जाओंको निचोडनेकी भी आवश्यकता नहीं है। अपना सर्वस्व लेकर मनुष्यको इस विशालमें प्रविष्ट होना चाहिए ॥ २३ ॥

यही इस यज्ञका रूप है। उस विशालके साथ इसका संबंध जोडता है। जो पंचभोजनी अजन्मा आत्माका समर्पण करता है, इससे इसको अन्न, बल और तेज प्राप्त होता है ॥ २४

इस समर्पण करनेवालेको पांच सुवर्ण, पांच नवीन वस्त्र और पांच कामधेनु प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥

*

पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥
या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् । पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥ २७ ॥
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २८ ॥
अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् । वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥ २९ ॥
आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् । जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥ ३० ॥

अर्थ—(यः दक्षिणा०) जो दक्षिणाके तेजके साथ पञ्चभोजनवाले अजन्मा आत्माका समर्पण करता है (अस्मै) इसके लिए (पञ्च रुक्मा) पांच सुवर्ण मुद्राएं (ज्योतिः भवन्ति) प्रकाशित होती हैं । । (तन्वे) शरीरके लिए (वर्म वासांसि भवन्ति) कवचरूपी वस्त्र होते हैं और वह (स्वर्ग लोकं अश्नुते) स्वर्ग लोक प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

(या पूर्वं पतिं वित्त्वा) जो पहिले पतिको प्राप्त करके, (अथ अपरं विन्दते) पश्चात् दूसरे अन्यको प्राप्त करती है, (तौ पञ्चौदनं अजं ददतः) वे दोनों पञ्च भोजनवाले अजन्मा आत्माका समर्पण करके (न वियोषतः) वियुक्त नहीं होते ॥ २७ ॥

(यः पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं अजं ददाति) जो पञ्च भोजनवाले दक्षिणाके तेजसे युक्त अजन्मा आत्माका समर्पण करता है वह (अपरः पतिः) दूसरा पति (पुनर्भुवा समानलोकः भवति) पुनर्विवाहित स्त्रीके साथ समान स्थानवाला होता है ॥ २८ ॥

(अनुपूर्ववत्सां धेनुं) क्रमसे पतिवर्ष बछडा देनेवाली गौको और (अनड्वाहं) बैलको तथा (उपबर्हणं वासः हिरण्यं) ओढनी, वस्त्र और सोना (दत्त्वा) देकर (ते उत्तमां दिवं यन्ति) वे उत्तम स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

(आत्मानं पितरं पुत्रं) अपने आपको, पिताको, पुत्रको, (पौत्रं पितामहं) पौत्रको और पितामहको (जायां जनित्रीं मातरं) स्त्री और जननी माताको और (ये प्रियाः तान्) जो इष्ट हैं उनको मैं (उपह्वये) पास बुलाता हूं ॥ ३० ॥

भावार्थ— इस समर्पण करनेवालेको पांच सुवर्ण और पांच प्रकाश प्राप्त होकर शरीरके लिए कवच जैसे वस्त्र प्राप्त होते हैं और स्वर्ग लोक प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

जो पहिले पतिको प्राप्त करके पश्चात् पुनर्विवाहसे दूसरे पतिको प्राप्त करती है, वह इस पञ्चभोजनी अजका समर्पण करके वियुक्त नहीं होती ॥ २७ ॥

जो पञ्चभोजनी अजन्मा आत्माका समर्पण करता है वह दूसरा पति पुनर्विवाहित पतिके समान ही होता है ॥ २८ ॥
प्रतिवर्ष बच्चा देनेवाली गौ, उत्तम बैल, ओढनेका वस्त्र और सुवर्ण इनका दान करनेसे उत्तम स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

अपनी आत्मा, पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, धर्मपत्नी, जन्मदेनेवाली माता और जो हमारे प्रिय है उन सबको मैं बुलाता हूं और यह बात सुनाता हूं ॥ ३० ॥

यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद । एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥३१॥
यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद । कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥
यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद । संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पंचौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना
योऽजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥
यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद । पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ॥
एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पंचौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥
यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद । उद्यतीमुंद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पंचौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना
योऽजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥

अर्थ— (यः पञ्चौदनः अजः) जो पञ्चभोजनी अज है। (एष वै नैदाघः नाम ऋतुः) यह निश्चयसे निदाघ अर्थात् ग्रीष्म ऋतु है (यः वै नैदाघं नाम ऋतुं वेद) जो इस ग्रीष्म ऋतुको जानता है और (यः दक्षिणा-ज्योतिषं पञ्चौदनं अजं ददाति) जो दक्षिणाके तेजसे युक्त पञ्चभोजनी अजका समर्पण करता है वह (अप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं निः दहति) अप्रिय शत्रुके श्रीको सर्वथा जला देता है और वह (आत्मना भवति) अपनी आत्मशक्तिसे प्रभावित होता है ॥ ३१ ॥

(एष वै कुर्वन् नाम ऋतुः यत् अजः०) यह निःसंदेह कर्ता नामक ऋतु है जो अज पञ्चभोजनी है। (यः वै कुर्वन्तं नाम ऋतुं वेद०) कर्ता नामक इस ऋतुको जानता है और जो दक्षिणाके तेजसे युक्त इस पञ्चभोजनी अजका दान करता है, वह (अप्रियस्य भ्रातृव्यस्य) अप्रिय शत्रुके (कुर्वतीं कुर्वतीं एव श्रियं आदत्ते) प्रयत्नमयी श्रीको हर लेता है ॥ ३२ ॥

(एष वै संयत् नाम ऋतुः यत् अजः०) यह संयम नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी अज है। (यः वै संयन्तं नाम ऋतुं वेद०) जो निश्चयसे संयम नामक ऋतुको जानता है और जो दक्षिणाके तेजसे युक्त पञ्चभोजनी अजका समर्पण करता है, वह (अप्रियस्य भ्रातृव्यस्य) अप्रिय शत्रुकी (संयतीं संयतीं एव श्रियं आदत्ते) संयमसे प्राप्त श्रीको हर लेता है ॥ ३३ ॥

(एष वै पिन्वन् नाम ऋतुः यत् अजः०) यह पोषण नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी अज है। (यः वै पिन्वन्तं नाम ऋतुं वेद०) जो निश्चयसे पोषक नामक ऋतुको जानता है और दक्षिणाके तेजसे युक्त पञ्चभोजनी अजका समर्पण करता है, वह (अप्रियस्य भ्रातृव्यस्य पिन्वन्तीं नाम श्रियं आदत्ते) अप्रिय शत्रुकी पोषक श्रीको हर लेता है॥ ३४ ॥

(एष वै उद्यन् नाम ऋतुः यत् अज०) यह निःसंदेह उदय नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी अज है। (यः वै उद्यन्तं नाम ऋतुं वेद०) जो निश्चयसे उदयरूपी ऋतुको जानता है और दक्षिणायुक्त पञ्चभोजनी अजको देता है, वह (अप्रियस्य भ्रातृव्यस्य) अप्रिय शत्रुकी (उद्यतीं उद्यतीं एव श्रियं आदत्ते) उदयको प्राप्त होनेवाली श्रीको हर लेता है ॥ ३५ ॥

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद । अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदज पंचौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥
अजं च पचत पञ्च चौदनान् ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥
तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥

अर्थ— (एष वै अभिभूः नाम ऋतुः) यह निःसन्देह विजय नामक ऋतु है (यत् अजः पञ्चौदनः) जो पञ्चभोजनी अज है। (यः वै अभिभुवं नाम ऋतुं वेद) जो विजय नामक इस ऋतुको जानता है और (यः दक्षिणा) जो दक्षिणाके तेजसे युक्त पञ्चभोजनी अजका समर्पण करता है, वह (अप्रियस्य भ्रातृव्यस्य) अप्रिय शत्रुके (अभिभवन्तीं अभिभवन्तीं एव श्रियं आदत्ते) परास्त करनेवाली शोभाको हर लेता है। इसके (अप्रियस्य०) अप्रिय शत्रुकी श्रीको जला देता है और (आत्मना भवति) अपनी शक्तिसे रहता है ॥ ३६ ॥

(अजं पञ्च ओदनान् च पचत) इस अजन्माको और पांच भोजनोंको परिपक्व करो। (ते एतं) तेरे इस अजको (सर्वाः दिशः) सब दिशाएं (सान्तर्देशाः) आंतरिक प्रदेशोंके साथ (सध्रीचीः संमनसः) सहमत और एक विचारसे युक्त होकर (प्रतिगृह्णन्तु) स्वीकार करो ॥ ३७ ॥

(ताः ते तुभ्यं तव एतं रक्षन्तु) वे तेरी तेरे लिए तेरे इस आत्माकी रक्षा करें। (ताभ्यः इदं आज्यं हविः जुहोमि) उनके लिए इस घी और हवन सामग्रीका हवन करता हूं ॥ ३८ ॥

भावार्थ— उष्णता, कर्म, संयम, पुष्टि, उद्यम और विजय ये छः ऋतु हैं। ये छः ऋतु इस पंचभोजनी अजका रूप है। जो इसका स्वरूप जानता है और इसका समर्पण करता है, वह शत्रुको परास्त करता है और अपने आत्माकी शक्ति बढाता अर्थात् आत्मिक बलसे युक्त होता है ॥ ३१-३६ ॥

इस अजको और इसके पांचों भोगोंको परिपक्व बनाओ, सब दिशा और उपदिशाएं इसको अपनाएं अर्थात् यह सब दिशाओंका बने ॥ ३७ ॥

ये सब आत्माकी रक्षा करें और आत्मरक्षासे तेरी उन्नति हो। इसी उद्देश्यसे इस घीकी आहुति मैं देता हूं, यह एक समर्पणका उदाहरण है ॥ ३८ ॥

पञ्चौदन अज ।

इस सूक्तमें 'पञ्चौदन अज' को स्वर्गधाम कैसे प्राप्त होता है, इसका वर्णन है। सबसे पहिले यह पञ्चौदन अज कौन है इस बातका परिचय प्राप्त करना चाहिए। 'पञ्चौदन अज' (पञ्च+ओदन अज) का अर्थ पांच प्रकारके भोजनों-वाला अज है। अर्थात् पांच प्रकारके अन्नका भोग करनेवाला यह अज है।

'अज' शब्दके अर्थ— "अजन्मा, सदासे रहनेवाला, सर्व शक्तिमान् परमात्मा, जीव, आत्मा चालक, बकरा, धान्य" ये होते हैं। इनमेंसे यहां किसका ग्रहण करना चाहिये यह एक विचारणीय बात है। 'अज' शब्दसे यहां परमात्मा ग्रहण करना अयोग्य है, क्योंकि वह स्वभावसे परम उच्च लोकमें सदा विराजमान ही है उसको उच्च लोकमें जानेकी आवश्यकता ही नहीं है। यहां इस सूक्तमें जिस अज-का वर्णन है उसके विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

सुकृतां लोकं गच्छतु प्रजानन् ॥ (मं. १)
तीर्त्वा तमांसि अजस्तृतीयं नाकं आक्रमताम् ॥ (मं. १, ३)
तृतीये नाक अधि विश्रयैनम् ॥ (मं. ४)

शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ (मं. ५)
तृतीये नाके अधि विश्रयस्व ॥ (मं. ८)

" यह मार्ग जानता हुआ पुण्य कर्म करनेवालोंके लोकको प्राप्त करे। अन्धकार दूर करके तृतीय स्वर्गधामको प्राप्त होवे। परिपक्व होकर पुण्यवानोंके लोकको जावे। तृतीय स्वर्गधाममें आश्रय करे। "

ये मन्त्रभाग ऐसे आत्माके सूचक हैं कि जिसको पहिले स्वर्ग नहीं प्राप्त हुआ है, जो उत्तम लोकमें नहीं पहुचा है, जो अधम लोकमें है पर स्वर्ग जाना चाहता है अर्थात् यहांका अज शब्द परमात्माका वाचक नहीं, अपितु ऐसे आत्माका वाचक है, जो उत्तम लोकको अभीतक प्राप्त नहीं हुआ है। 'अज' शब्दके दूसरे अर्थ 'धान्य' और 'बकरा' ये हैं। इनमें धान्यका स्वर्गधामको प्राप्त होना असंभव है और बकरा स्वर्गधामको जा सकता है वा नहीं, इस विषयमें शंका ही है। क्योंकि स्वर्ग तो (सुकृतां लोकः) सत्कर्म करनेवालोंका लोक है। जो स्वयं सत्कर्म कर सकते हैं, वे ही अपने किये सत्कर्मोंके बलसे स्वर्गधामको जा सकते हैं। अतः धान्य और बकरा स्वयं सत्कर्म करनेमें समर्थ न होनेके कारण सुकृत-लोकको प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं।

यहां कई कहेंगे कि जो बकरा यज्ञमें समर्पित किया जाता है, वह समर्पित होनेके कारण स्वर्गका भागी हो सकता है। यहां विचारणीय बात यह है कि, जो स्वयं स्वेच्छासे दूसरोंकी भलाईके लिये समर्पित होते हैं, जो परोपकारके लिए आत्म-समर्पण कर सकते हैं, वे स्वर्गधाम प्राप्त करनेके अधिकारी माने जा सकते हैं। जो लोग बकरेको पकडते हैं और उसके मांसका हवन करते हैं, वे बकरेकी इच्छाका विचार ही नहीं करते। यदि इस प्रकारकी जबरदस्तीसे स्वर्गधामकी प्राप्ति होनेका संभव हो, तो जो गौवें और बकरियां व्याघ्रके जीवनके लिए समर्पित हो जाती हैं, वे सबकी सब स्वर्गको पहुंचेंगी; इतना ही नहीं, अज संज्ञक धान्य भी यज्ञाग्निमें आहुति द्वारा समर्पित होनेपर सीधा स्वर्गको जायगा, समिधाएं और घी भी वहां पहुंचेगा। यह तो अव्यवस्था है। व्याघ्रने गौको मारा और खाया, तो इसमें गायका आत्मसमर्पण नहीं है। क्रूर राजा प्रजाको लूटकर प्रजाकी धन संपत्ति इकट्ठी करके ले जाता है, यहां भी उस पददलित प्रजाको परोपकार, दान या सर्वस्वका मेध करनेका पुण्य नहीं मिल सकता। फल तब मिलेगा कि जब आत्मसर्वस्वका समर्पण स्वेच्छासे किया गया हो। पूर्वोक्त 'अज' के अर्थोंमें 'धान्य, बकरा' ये आत्म-समर्पणकी बात जान ही नहीं सकते, इसलिए आत्मसमर्पण कर नहीं सकते। और ये स्वर्गधामको प्राप्त नहीं हो सकते। परमात्माके उत्तम लोकमें सदा उपस्थित होनेसे उसके कर्म विशेषसे आत्मसमर्पण द्वारा वह लोक प्राप्त करनेका प्रश्न ही नहीं उठता अतः शेष रहा 'जीव आत्मा', यही अर्थ यहां अपेक्षित है। यह सुकृत करता हुआ स्वर्गधामको प्राप्त करता है और इसी कार्यके लिए संपूर्ण धर्मशास्त्र रचे गये हैं।

इस सूक्तके 'अज' शब्दका प्रसिद्ध अर्थ 'बकरा' लेकर कइयोंने बकरेको काटना, पकाना, उसके अंश सबको देना और उसको स्वर्गको भेजना ऐसे अर्थ किये हैं। वे उक्त कारण युक्तियुक्त नहीं है। अस्तु, इस तरह यहां इस सूक्तमें अज शब्दका अर्थ जीव, आत्मा किंवा जीवात्मा है।

अब देखना है कि इसको 'पञ्चौदन' क्यों कहा है। यह पांच प्रकारका अन्न खाता है इसीलिए इसको 'पञ्च-भोजनी' अज कहा है। इसके पांच भोजन कौनसे है? शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच विषय इसके पांच भोजन हैं, ये परस्पर भिन्न हैं और ये इसके उपभोगके विषय हैं। इस विषयमें कहा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ (ऋ० १।१६४।२०; अथर्व. ९।९। (१४) । २०)

" एक ही (शरीररूपी) वृक्षपर दो पक्षी (दो आत्मा-जीवात्मा और परमात्मा) बैठे हैं। उनमेंसे एक (जीवात्मा) इस वृक्षका मीठा फल खाता है और दूसरा न खाता हुआ केवल प्रकाशता है। "

इस वृक्षमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच भोगरूपी फल लगते हैं। इनका भोग यह अजन्मा आत्मा करता है। इसके पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंसे ये पांच फल इसके पास पहुंचते हैं। मनुष्य ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो, बद्ध हो वा मुक्त हो, जबतक यह आत्मा शरीरमें रहेगी, तबतक इसके पास ये पांच प्रकारके भोग प्राप्त होते ही रहेंगे। बद्ध स्थितिमें रहनेवाली आत्मा आसक्तिसे विषय सेवन करेगी और जीवन-मुक्त स्थितिमें रहनेवाली आत्मा आसक्ति छोडकर उदासीन-तासे दर्शन करेगी। दोनोंको कानोंसे शब्द, त्वचासे स्पर्श, नेत्रसे रूप, जिह्वासे रस और नाकसे गन्ध प्राप्त होगा। ये पांच भोजन इसके पास आवेंगे, कोई भोग करेगा और कोई नहीं यह बात दूसरी है। 'पञ्चौदन अज' का यह अर्थ है और यह हरएक जीवात्माके विषयमें अनुभवमें आसकता है।

इस 'अज' के स्पष्टका निश्चय स्वयं इस सूक्तने किया है, यह अब देखिये—

अजो अग्निः अजमु ज्योतिः आहुः,
अजः तमांसि अपहन्ति ॥ (मं० ७)
अग्नेः अग्निः सं बभूविथ ॥ (मं० ६)
अजः हि अग्नेः शोकात् अजनिष्ट (मं० १३)
विप्रस्य महसः विपश्चित् विप्रः अजनिष्ठ । (मं० ३१)
एष वा अपरिमितो यज्ञः अद्जः पञ्चोदनः ।
(मं० २१)

"अग्निका नाम अज है, ज्योतिका नाम अज है, यह अज अन्धकारको दूर करता है। अग्निसे अग्नि उत्पन्न हुआ है। अग्निके तेजसे अज उत्पन्न हुआ है। ज्ञानीकी महिमासे ज्ञानी विद्वान् जन्मा है। यह पञ्चौदन अज अपरिमित यज्ञ है।" ये सब मंत्र भाग यहां अज शब्दसे आत्माका भाव बताते हैं। क्योंकि आत्मा, ज्योति, अग्नि, ज्ञानी, यज्ञ आदि शब्द जीवात्माके लिए वैदिक वाङ्मयमें आते हैं। येही प्रतिशब्द 'अज' शब्दका अर्थ बतानेके लिए वेदने स्वयं दिये हैं और अज शब्दके अर्थके विषयमें सन्देह निवृत्ति की है। अतः यहां अजका अर्थ "बकरा" करना सर्वथा अनुचित है।

यहां उक्त वचनोंमें कहा है कि इस सूक्तमें जिस अजका वर्णन है, वह अग्निके समान तेजस्वी, ज्योतिके समान प्रकाशमय, दीपके समान अन्धकारको दूर करनेवाला है, परमात्मा-रूप महान् अग्निसे इसकी उत्पत्ति हुई है, जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलित होनेसे उसकी ज्वालासे स्फुलिंग चारों ओर उडते हैं, उसी प्रकार परमात्माकी दीप्तिसे जो स्फुलिंग चारों ओर फैले हैं, वेही अनंत जीवात्मा हैं। परमात्मा चेतनस्वरूप है, उससे यह चेतनस्वरूप जीव आत्मा प्रगट हुई है। यही यज्ञ स्वरूप है। इस प्रकारका वर्णन उक्त मन्त्रभागोंमें है। यह देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यहां अज शब्दसे 'जीव आत्मा' का ग्रहण करना योग्य है।

"बकरा" अर्थ यहांके अज शब्दका लेनेसे इन मन्त्रोंकी सङ्गति भी कैसी लग सकती है? क्या बकरा अग्नि है और ज्योति है, क्या कभी बकरेके द्वारा अंधकार दूर हुआ है? क्या कभी अग्निके प्रकाशसे बकरा प्रकट हुआ है? अर्थात् अज शब्दका अर्थ बकरा करनेपर पूर्वोक्त मन्त्रोंका कोई सरल अर्थ नहीं लग सकता। अतः अज शब्दसे यहां 'जीव आत्मा' अर्थ लेना चाहिए। अब इसकी उच्च गति होनेके विषयमें इस सूक्तमें क्या कहा है, देखिये—

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत् । (मं. २०)
अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति, निर्ऋतिं बाधमानः ।
(मं. १९)
अजं च पचत पञ्च चौदनान् । (मं. ३७)

"यह (अजः) अजन्मा आत्मा जगत्के प्रारम्भसे पराक्रम कर रहा है। यह अजन्मा आत्मा परिपक्व होनेपर अवनतिको दूर करके स्वर्गमें अपने आपको धारण करता है। अजको और पांच अन्नोंको परिपक्व करो।" इस जगत्में जो कुछ भी पराक्रम हुए हैं वे इस आत्माके कारण ही हैं, इस जगत्में जो चल रहा है वह आत्माकी शक्ति ही है। शरीरमें जीवात्मा और विश्वमें परमात्मा कार्य कर रहा है। जीवात्मा प्रारम्भमें अपरिपक्व अवस्थामें होती है, वह शुभ संस्कारों द्वारा परिपक्व बनती है और इसकी जितनी परिपक्वता होती है, उतना यह अपनी ही शक्तिसे अवनतिको दूर करती रहती है। इससे सिद्ध होता है, कि जीवात्माकी दो अवस्थाएं है, कई तो परिपक्व स्थितिको प्राप्त होते हैं, शेष जितने हैं उतने सब अपरिपक्व अवस्थामें हैं अथवा परिपक्व होनेके मार्गमें होते हैं। इसीको मुक्त और बद्ध अवस्था कहते हैं।

यहांके 'अजः पक्वः' ये शब्द देखनेसे 'पकायां हुआ बकरा' ऐसा अर्थ कई लोग करते हैं, परन्तु पकाये हुए बकरेका स्वर्गमें जानेका अनुभव तो नहीं है, वह सीधा मांस भक्षकोंके पेटमें जाता है। परन्तु यहांका परिपक्व हुआ अज सीधा स्वर्गधामको जाता है, अतः यहांका अज अलग है। दूसरी बात यह है कि, 'पक्व' शब्द कई अर्थोंमें प्रयुक्त होता है, मनुष्यके विचार परिपक्व हुए है, उसका ज्ञान पक्व हुआ है, फल परिपक्व हुआ है, इस तरह इसका भाव बडा व्यापक है। यह परिपक्व कैसे होता है इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र भाग देखिए—

नैदाघं...कुर्वन्तं...संयन्तं...पिन्वन्तं... उद्यन्तं...
अभिभुवं...नाम ऋतुं वेद...श्रियं आदत्ते......
आत्मना भवति ॥ (मं. ३१-३६)

"उष्णता, कर्तृत्व, संयम, पोषण, उद्यम और शत्रुजय ये छः आत्माके ऋतु हैं। जो इन ऋतुओंसे काम लेना जानता है वह श्रीको प्राप्त करता है और आत्माकी शक्तिसे युक्त होता है।" ये छः मंत्र आत्माकी उन्नति करनेवाली शक्तियोंके सूचक हैं। सबसे पहिले मनुष्यमें उष्णता-गर्मी चाहिए, हरएक कार्य करनेकी स्फूर्ति इसीसे होती है, पश्चात् कर्म करने चाहिए, क्योंकि शुभ कर्मोंसे ही सुकृत लोक प्राप्त होते हैं। शुभ कर्म करनेके लिए संयम चाहिए। बहुत कर्म करनेके

लिए पुष्टि होनी चाहिए। सतत उद्यम करना चाहिए और बीचमें जो विघ्न आवें उनको दूर हटानेका बल भी चाहिए। इन छः गुणोंके होने और इनके द्वारा योग्य दिशासे प्रयत्न करनेसे मनुष्यकी उन्नति होती है।

वस्तुतः यह अजन्मा आत्मा सुख स्वरूप और स्वर्गका अधिकारी है, यह कोई अनधिकारी नहीं है, यह अग्निका ही स्फुलिंग है, अतः प्रकाशित होनेका अधिकारी है। यह परमात्माका अमृतपुत्र है इसलिए कहा है—

अजोऽसि, अज स्वर्गोऽसि। (मं. १६)

" तू जन्मरहित है, तू स्वयं स्वर्ग है।" तू अपने आपको पतित होने योग्य न मान, जन्ममरण धारण करने योग्य न समझ। तू वस्तुतः जन्म न धारण करनेवाला है और तू ही स्वर्ग है। फिर यह दुःख तुम्हारे ऊपर क्यों आता है? इसका विचार कर, अपने पूर्व कर्म देख और आगे अपनी उन्नतिके लिए उद्यम करके अपनी उन्नतिका साधन कर। इसकी उन्नतिके साधनका मार्ग यह है—

एतं आ नय; आरभस्व; प्रजानन्, सुकृतां लोकं गच्छतु॥ (मं. १)

" इसको उत्तम मार्गसे चला; शुभ कर्मका प्रारंभ कर; उन्नतिके मार्गको जानकर पुण्यलोकको प्राप्त कर।" इस उपदेशमें चार भाग हैं और ये महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहिला भाग धर्ममार्गसे जानेका है, यह तो किसी उत्तम गुरुके आधीन रहकर ही तप किया जा सकता है, अतः पहिला (एतं नय) यह वाक्य गुरुसे कहा कि 'हे गुरो! तू इस शिष्यको सहारा देकर योग्य मार्गसे ले चल।' दूसरा वाक्य ऐसा है कि (आरभस्व) शुभ कर्मोंका प्रारंभ कर, जो पाठ गुरुसे प्राप्त हुआ है उसके अनुसार कर्म करना प्रारंभ कर। यहां कर्मोंका प्रारंभ हो जाता है। कर्म करते करते मनुष्यका ज्ञान बढता है और वह (प्रजानन्) ज्ञानी होकर बढता जाता है। और अन्तमें (सुकृतां लोकं) पुण्य कर्म करनेवालोंके लोकको प्राप्त करता है। सामान्यतः मनुष्यकी उन्नतिका सीधा मार्ग यही है। इस मार्गसे जानेवालेको अपने आपको अजन्मा होनेका तथा स्वयं स्वर्गरूप होनेका अनुभव अन्तमें आजाता है। इस प्रकार यह मार्गका आक्रमण करता हुआ—

अजः महान्ति तमांसि बहुधा तीर्त्वा। (मं. १)
अजः विपश्यन् तमांसि बहुधा तीर्त्वा। (मं. ३)
अजः तमांसि दूरं अपहन्ति (मं. ७, ११)

" यह अजन्मा आत्मा मार्गमें बडे बडे अन्धकारोंको (विपश्यन्) विशेष रीतिसे देखता है और उन सब अन्धकारोंको (बहुधा) अनेक रीतियोंसे (तीर्त्वा) तैर कर, लांघ कर, दूर करके पार हो जाता है।" इस तरह यह अपना मार्ग खुला करता है और आगे बढता है। आगे बढते बढते—

अजः तृतीयं नाकं आक्रमताम्॥ (मं. १, ३)
सुकृतां लोकं गच्छतु॥ (मं. १)
एनं तृतीये नाके अधि विश्रय (मं. ४)
शृतः गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः। (मं. ६)
अतः परि...तृतीयं नाकं उत्क्राम। (मं. ५)
सुकृतां मध्यं प्रेहि: तृतीयं नाके अधि विश्रयस्व। (मं. ८)

'शुभ कर्म करनेवालोंके मध्यमें जा और वे पुण्यशील महात्मा लोग जहां जाते हैं, उस तृतीय स्वर्गधाममें जाकर विराजमान हो।' इस प्रकार इसकी उन्नति होती है। तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त करनेकी योग्यताको प्राप्त करनेके पूर्व पहिले और दूसरे स्वर्गकी योग्यता मनुष्यको प्राप्त करनी चाहिए तभी अन्तमें उसको तृतीय स्वर्गधामकी प्राप्ति संभव है। ये तीन स्वर्ग कौनसे हैं, इसका भी यहां विचार करना चाहिये।

सब जानते हैं कि यह मनुष्यलोक है, जो स्थूल जगत् है इसीको मृत्युलोक कहते हैं, क्योंकि यह परिवर्तनशील है। इससे दूसरा परन्तु इसीमें गुप्त रूपसे स्थित सूक्ष्म लोक है, इस स्थूल जगत्के प्रत्येक पदार्थकी प्रतिकृति इस सूक्ष्म सृष्टिमें रहती है। जागृतिके अन्दर कार्य करनेवाला मन गुप्त होनेपर अनेक और विविध-दृश्य-इससे भी अतितेजस्वी दृश्य देखता है। यह सूक्ष्म सृष्टि है। इसको कामसृष्टि भी कहते हैं। स्थूल जगत्की ही यह प्रतिकृति होनेके कारण जो सुख-दुःख स्थूल सृष्टिमें होते हैं वैसे ही इसमें होते हैं, तथापि स्थूलके बन्धन और प्रतिबंध इसमें न होनेसे इसका महत्त्व स्थूलसे अधिक है। ये दोनों अनुभव जब समाप्त हो जाते हैं और कारण अवस्थामें जब मनुष्य पहुंचकर स्वतंत्रतासे विराजता है, तो उसको स्वर्गधाम प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। इसमें तीन दर्जे हैं। प्रथम, मध्यम और उत्तम ये तीन अवस्थाएं इस स्वर्गमें हैं जिसके जैसे सुकृत होते हैं उसको वैसी अवस्था यहां प्राप्त होती है। सुकृतके अनुसार प्राप्त होनेवाली यह अवस्था होनेके कारण इसमें प्रत्येकका अनुभव सुखात्मक होनेके कारण भिन्न भिन्न होता है। जिस प्रकार सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें ब्रह्मरूपता होती है, परंतु सुषु-

सिकी निम्न कोटिकी और मुक्तिकी उच्च कोटिकी होती है, इसी प्रकार यहां समझना उचित है।

तृतीय स्वर्गधाममें पहुंचनेका आशय यह है। यही उत्तम स्थान, परमधाम, स्वर्ग या जो कुछ धर्मग्रंथोंमें वर्णित है वह यही है। सदाचारसे इसकी प्राप्ति होती है। परिपक्व आत्मा होनेपर साधक इसको प्राप्त कर सकता है, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखने योग्य है—

तस्माद् चरोः अतप्तः (सन्) उत्क्राम। (मं. ६)

'तपे हुए पात्रमें रहता हुआ भी जो तप्त नहीं होता, वह उत्क्रान्त होनेका अधिकारी है।' ये ही विचार भिन्न शब्दोंमें इस प्रकार लिखे जा सकते हैं– 'दुःखी घरमें रहता हुआ भी दुःखसे अलिप्त रहनेवाला, रोगियोंके स्थानमें रहता हुआ भी नीरोग रहनेवाला, परतन्त्र लोगोंमें विचरता हुआ भी जो परतन्त्र नहीं रहता, वही संतप्त प्रदेशमें शान्तिसे रह सकता है।' इसीका नाम तपस्या है।

एक बर्तनमें खिचडी पक रही तो उसमें रहनेवाले सभी चावल और मूंगके दाने उबलने लगते हैं, यदि एकाध दाना वैसा ही कच्चा रह जाता है तो वह किसीके भी पेटमें हजम नहीं होता। इसी प्रकार इस विश्वके बर्तनमें यह सब जगत्की खिचडी पक रही है। इस तपे और उबलते हुए बर्तनमें जो न तपता हुआ और न गलता या न उबलता हुआ रहेगा, वही इसके बाहर फेंका जाता है। यही उसकी उत्क्रान्ति है। आगे अथर्ववेद कां० ११ (३) में ही ब्रह्मौदनके पकनेका इस सृष्टिके विशाल पात्रमें खिचडीके पकनेका मनोरंजक वर्णन अलंकार रूपसे आवेगा। वहां सबका पाक हो रहा है ऐसा कहा है। इस तपे पात्रमें जहां सबको ही संताप दुःख और कष्ट हो रहे हैं, वहां जो शान्त रहेगा उसीको धन्यता प्राप्त हो सकती है! कमलपत्र जैसे पानीमें रहता हुआ भी पानीसे नहीं भीगता, उसी प्रकार परिपक्वताको प्राप्त हुआ मनुष्य इस दुःखी जगत्के दुःखों और कष्टोंसे अलिप्त रहता है। यह उदासीपन, वैराग्य, अलिप्तता, असंगवृत्ती अथवा अनासक्ति उन्नतिका श्रेष्ठ साधन है।

भला जो लोग ' बकरेके मांसको पकानेका भाव ' इन मंत्रोंसे निकालते हैं, वे तपे हुए पात्रसे न तपे हुए बकरेके भागको किस प्रकार उन्नतिका पथ दिखा सकते हैं और तपे हुए पात्रमें कौनसा बकरेका भाग अपक्वताकी स्थितिमें रह सकता है ? वस्तुतः यह वर्णन ही अन्य स्थितिका है। परंतु शब्दोंका भाव न समझनेके कारण कई लोगोंने इसका विपरीत अर्थ कर लिया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें जो असंगभाव और अनासक्तिका उपदेश है वही यहां इस मंत्रमें 'तपे पात्रमें न तपते हुए रहना' इन शब्दोंसे किया है। इस विषयमें आगे आत्मशुद्धिका एक अपूर्व उपाय भी बताया है–

यत् दुश्चरितं चचार, पदः प्र अवनेनिग्धि,
प्रजानन् शुद्धैः शफैः आक्रमताम्॥ (मं. ३)

यदि दुराचार है और यदि पांव मलिन हुए हैं, तो अपने पांव धो डाल और इस बातको जान ले कि इस प्रकार चलनेसे पांव मलिन हो जाते हैं। अतः शुद्ध पांवोंसे आगे बढ।' दुराचारसे पांव मलिन होते हैं उनको धोना चाहिये। अपने पांव स्वच्छ रखकर स्वच्छ भूमिपर पांव रखनेसे आगे दुष्ट आचार होनेकी संभावना नहीं है। यहां उपलक्षणसे (दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं) इस स्मृतिके वचनका ही आशय कहा है। इस प्रकार आत्मशुद्धिका मार्ग बताया है, अथर्ववेदमें पूर्वस्थानपर इसीका वर्णन अन्य रीतिसे किया है—

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः॥
अथर्व. ६।११५।३

'जिस प्रकार बंधनस्तंभसे पशु मुक्त होता है और जैसे मनुष्य स्नानके द्वारा मलसे मुक्त होता है अथवा जैसे छाननीसे घी पवित्र होता है, उसी प्रकार मुझे पापसे पवित्र करो।' इसी मंत्रके उपदेशके अनुसार इस सूक्तके मंत्रमें (शुद्धैः शफैः आक्रमतां) अपने पांव निर्मल करके आगे बढनेको कहा है। अपना शुद्ध चालचलन रखनेका उपदेश इस आशामें है। वेदमें 'चरित्र' शब्दके 'पांव' और 'चालचलन' ऐसे दो अर्थ हैं। अर्थात् पांव (पाद) वाचक शब्दोंका अर्थ चालचलन ऐसा हो सकता है। इस प्रकार आचरण–शुद्धिसे आत्मशुद्धि करनेका उपदेश यहां किया है। इस तरह आत्मशुद्धि होनेके अनंतर इसका परब्रह्मके लिये समर्पण होना चाहिये, यही इसका आत्मसमर्पण है। देखिये, इस विषयमें यह मंत्र विचारणीय है—

जीवता अजं ब्रह्मणे देयं आहुः। (मं. ७)
श्रद्दधानेन दत्तः अजः तमांसि अपहन्ति। (मं. ७)

'जीवित मनुष्यको उचित है कि वह अपने (अ-जं) आत्माका समर्पण (ब्रह्मणे) परब्रह्मके लिये करे। आत्मा परमात्माके लिये समर्पित होवे। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक समर्पित हुआ यह अजन्मा आत्मा सब प्रकारके अज्ञानान्धकार दूर करता है।' समर्पित होनेसे इसकी शक्ति बढती है, समर्पित होनेसे इसका तेज संवर्धित होता है। अब इसके पराक्रमका क्षेत्र देखिये—

पञ्चौदनः पञ्चधा विक्रताम्। (मं. ८)

'उक्त पञ्चभोजनी अजन्मा आत्मा पांच प्रकारके कार्य-क्षेत्रमें पराक्रम करे।' कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, चित्त और बुद्धि ये इसके पांच कार्यक्षेत्र हैं, इन क्षेत्रोंमें यह जीव आत्मा कार्य करता है। इन क्षेत्रोंमें यह खूब विक्रम करे। क्योंकि इसके विक्रम करनेसे ही इसकी उन्नति हो सकती है। विक्रमके विना किसीकी भी उन्नतिकी संभावना नहीं हो सकती। विक्रम करनेसे मनुष्य (**त्रीणि ज्योतींषि आक्रंस्यमानः**। मं. ८) तीन तेजोंकी प्राप्ति करता है। इसमें एक तेज स्थूलका है, दूसरा मनका है और तीसरा तेज आत्मिक है। इन तीनों तेजोंमें उन्नति होती है, अर्थात् इसके ये तेज बढते हैं। परंतु इसमें तेजोंकी वृद्धि तब होती है कि जब इसका परमात्माके लिये समर्पण होता है। तात्पर्य यह है कि, आत्माका समर्पण मुख्य है, यही उन्नतिका मुख्य साधन है। इसके बिना उन्नति असंभव है। यह दर्शानेके लिये—

त्वा इन्द्राय भागं परिनयामि। (मं. २)
पञ्चौदनः ब्रह्मणे दीयमानः। (मं. ९; १०)
पञ्चौदनं अजं ब्रह्मणे ददाति। (मं. ११, १२)
यं ब्रह्मणे निदधे। (मं. १९)

इतने मंत्रोंमें ब्रह्मके लिये अजन्मा आत्माके समर्पण करनेका वारंवार उपदेश किया है। जो बात विशेष महत्त्वपूर्ण होती है, वह वेदमें इस प्रकार वारंवार दुहराई जाती है। अर्थात् वेदमें जो उपदेश वारंवार आता है, वह अधिक महत्वपूर्ण है ऐसा समझना चाहिये।

अब चतुर्थ और पञ्चम मंत्रमें शमिताके कर्मका उल्लेख है। इसमें त्वचाके काटने और जोडोंके अनुसार व्यवस्था करनेका तथा पात्रमें भर देनेका उल्लेख है। इस कियाके करनेसे यह सुकृति लोगोंके मध्यमें जाता है ऐसा कहा है। यदि इन मंत्रोंसे पशुके काटनेका ही उद्देश होता, तो आगे ऐसा निर्देश क्यों होता—

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत्।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्रवेशयेत्॥ (मं. २३)

'इसकी हड्डियां न टूटें, न इसकी मज्जा कोई पीवे या चूवे, इस सबको लेकर इसमें प्रवेश करावे।' यह इसके अवयव न काटनेकी ओर इशारा है, मज्जा भी नहीं पी जावे अर्थात् इसको काटना नहीं चाहिये। इसकी हड्डियां अलग नहीं करनी चाहिये। इसकी मज्जा निकालनी नहीं चाहिये। यह इशारा स्पष्ट है। इसमें कहा है कि इसके सबके सब भागको लेकर इसमें अर्थात् ब्रह्म या परमात्मामें समर्पण करो। यही आशय इसके सब भागको उसमें प्रविष्ट करानेका है। अपने आपको परमात्माकी गोदमें सौंप देना, यही भक्तिभावकी अन्तिम सीमा है।

यदि ऐसा है तो शमिताका त्वचाका काटना और जोडोंके अनुसार उसके अवयवोंको समर्थ बनानेका भाव क्या है, यह शंका यहां आसकती है। इस शंकाके उत्तरमें निवेदन यह है कि पूर्वोक्त मंत्रोंमें जो काटना लिखा है, वह उसी मर्यादातक है कि जिस मर्यादामें उसकी हड्डियां अलग न हों, मज्जा बाहर न चूवे और अवयव अलग न हों, अपितु सब अवयव समर्थ हों। (**मा अभिद्रुहः, परुशः एनं कल्पय**। मं. ५) इससे द्रोह न करो और प्रत्येक जोडमें इसको समर्थ बनाओ। वध करना यदि चतुर्थ और पञ्चम मंत्रको अभीष्ट होता, तो उससे द्रोह न करनेकी आज्ञा उसमें क्यों आती? वधसे अधिक दूसरा द्रोह और क्या हो सकता है? और प्रत्येक अवयवको समर्थ बनाना भी वधसे कैसे होगा? वध न किया तो कदाचित किसी उपायसे उसके अवयव समर्थ बनाये जा सकते हैं, परंतु वध करनेके पश्चात् तो समर्थ बनाना ही असंभव है। अतः यहां वध अभीष्ट नहीं है, यह निश्चय है।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ चमडीके खुरचने और जोडोंमें धमनियोंको शस्त्रोंद्वारा उत्तेजित करनेकी विधि इन मंत्रोंमें लिखी है। जैसे एक प्रकारके संधिवातसे पीडित जोडोंमें सुईके अग्रभाग द्वारा कुछ वनस्पतिरस डालनेसे आराम होता है। ये सुईयां तांबेकी, चांदीकी और सोनेकी होती हैं और इसी प्रकारके कुछ शस्त्रविशेष भी होते हैं। इनसे चर्म कुछ अंशमें हटाकर उसमें विशेष औषधिप्रयोग करनेसे शरीरके अवयव समर्थ होते होंगे। यह विधि अभीतक अज्ञात है, परंतु इसका स्वरूप इस प्रकारका कुछ है इसमें संदेह नहीं है। अस्तु, यह विषय खोजने योग्य है।

यदि कोई मनुष्य यहां इन मंत्रोंमें [अज] बकरेके वधका उल्लेख है, ऐसा ही आग्रह करे, तो वह मं. २० और २१ देखे, इनमें 'अजके विश्वरूपका वर्णन' है। समुद्र जिसकी कोखमें हैं, उर पृथ्वी है, द्युलोक उसकी पीठ है इत्यादि वर्णन कभी बकरेका नहीं हो सकता। यदि किसीका हो सकता है तो वह 'अज' अर्थात् अजन्मा परमात्माका हो सकता है। या फिर इस परमात्माके पुत्र जीवात्माका भी यह वर्णन होसकता है। क्योंकि परमपिताके गुणधर्म अंश-

*

रूपसे पुत्रमें आते हैं और पुत्रके विकास होनेपर पुत्रके भी गुणधर्म पिताके समान होने संभव हैं, अर्थात् जब जीवात्मा उन्नत होता हुआ परमात्मरूप बनता है, उस समय ये ही वर्णन उसमें घट सकते हैं। इसका विचार करने पर इस सूक्तके 'अज' शब्दका अर्थ आत्मा है, इस विषयमें सन्देह नहीं होसकता और जीवात्माका पूर्णतया समर्पण परमात्माके लिए करनेसे ही जब जीवात्मामें परमात्म भाव आजाय, उसी समय इसका भी पृष्ठ भाग द्युलोक और अन्तरिक्ष मध्यभाग और पृथ्वी तलका भाग होसकता है। जैसा कि मं. २० और २१ में कहा है। और इसीलिए इसको आगे—

एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥
[मं. २१]

"यह अपरिमित यज्ञ है जिसका नाम अज अर्थात् अजन्मा आत्मा है।" जीवात्मा–परमात्मामें ही यह अपरिमितता होसकती है, बकरेमें इस प्रकारकी अपरिमितताकी कल्पना करना असंभव प्रतीत होता है। जीवात्माकी शक्ति और उन्नति अपरिमित है, इसीलिए—

अपरिमितं यज्ञं आप्नोति। अपरिमितं लोकं अवरुन्द्धे।
[मं. २२]

"आत्माका समर्पण करनेसे अपरिमित यज्ञ होता है और आत्मसमर्पण करनेसे अपरिमित लोक प्राप्त होते हैं।" अपरिमितके दानसे ही अपरिमित फल प्राप्त हो सकता है। अन्य सब दान परिमित हैं, आत्माका दान ही अपरिमित दान है। इसीलिए अन्य पदार्थके दानसे परिमित लोक प्राप्त होते हैं और इस आत्माके समर्पण करनेसे अपरिमित लोकोंकी प्राप्ति होजाती है।

आत्मसमर्पणके साथ वस्त्र और सुवर्ण दान भी होना चाहिए, इस विषयका विधान मं. २५, २६ और २९ में है। क्योंकि सदा दान दक्षिणाके साथ ही हुआ करता है। दक्षिणाके विना दान फलहीन हुआ करता है। मं. २७ और २८ में "पुनर्विवाहित पतिपत्नी पञ्चौदन अजका दान करेंगे तो वियुक्त नहीं होती" ऐसा कहा है। पाठक यहां देखें कि इन मंत्रोंमें 'ब्रह्मणे' पद नहीं है। अर्थात् यहांका आत्मसमर्पण ब्रह्मके लिए नहीं है। पतिकी पञ्चभोजनी आत्मा पत्नीको समर्पित होवे और पत्नीकी आत्मा पतिके लिए समर्पित होवे। पुनर्विवाहित पति हो अथवा पत्नी हो, वे पूर्व पत्नी या पतिका चिन्तन न करें, वे इस पत्नी या पतिको ही अपना सर्वस्व समझें। पूर्वका स्मरण करते रहनेसे परिवारमें झगडा होसकता है और संसारका सुख दूर होता है, इसलिए कहा है कि, पति पत्नीके लिए आत्मसमर्पण करे और पत्नी पतिके लिए आत्मसमर्पण करे। यहां कई पूछेंगे कि प्रथम वारके पतिपत्नीके विषयमें ऐसा आदेश क्यों नहीं दिया है? इसका कारण इतना ही है कि, प्रथमवारकी पतिपत्नीको सामने रखनेके लिए दूसरी पत्नी या दूसरा पति नहीं होता, इससे उनको परस्पर प्रेम करना क्रमप्राप्त ही है। परंतु पुनर्विवाहित पतिपत्नीको पूर्वसंबंधका स्मरण होना संभव है, इसलिए उस दोषका निवारण करनेके लिए यहां सूचना दी है। और वह नितान्त योग्य है।

उनत्तीसवें मन्त्रमें कहा है कि गौ, वस्त्र और सुवर्णका दान करनेसे स्वर्ग प्राप्ति होती है। सत्पात्रमें दान करनेसे बडा फल होसकता है। इनके दानका महत्त्व अन्यान्य शास्त्रोंमें भी वर्णित हैं। तीसवें मंत्रमें अपने सब संबंधियों और इष्ट-मित्रोंको पुकार कर कहा है कि, पूर्वोक्त उपदेशका वे उत्तम प्रकार स्मरण रखें और उस रीतिसे अपनी उन्नतिकी प्राप्ति करा लेवें।

इस प्रकार इस सूक्तमें आत्मोन्नतिका विषय कहा है। निःसन्देह इसके कुछ मन्त्रभाग कठिण और संदिग्ध हैं, तथापि यहां वर्णन की हुई रीतिके अनुसार विचार करनेसे पाठकोंको इसका आशय समझमें आसकता है।

प्रजाकी पुष्टि

कां. ७, सू. १९

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- प्रजापतिः ।)

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥ १ ॥

अर्थ— (प्रजापतिः इमाः प्रजाः जनयति) प्रजापालक परमेश्वर इन सब प्रजाओंको उत्पन्न करता है और (सुमनस्यमानः धाता दधातु) वही उत्तम मनवाला, धारक देव इनको धारण करता है। इससे प्रजाएं (संजानानाः) ज्ञान प्राप्त करके एक मतसे कार्य करनेवाली, (संमनसः) एक विचारवाली और (सयोनयः) एक उद्देश्यसे बंधी रहती हैं। इन प्रजाओंमें रहनेवाले (मयि) मुझे (पुष्टपतिः पुष्टं दधातु) पुष्टिको देनेवाला ईश्वर पुष्टि देवे ॥ १ ॥

प्रजाकी पुष्टि कैसे होगी अर्थात् प्रजाकी शक्ति कैसे बढ सकती है, इसका उपाय इस सूक्तमें कहा है, इसके नियम निम्नलिखित हैं—

१ सब प्रजाजन एक ईश्वरको मानें और उसी एक देवको सबका उत्पादक समझें।
२ उसी ईश्वरकी शक्तिसे सबकी धारणा होती है ऐसा मानें और उसीको कर्ताधर्ता और हर्ता समझें।
३ (संजानानाः) सब प्रजाजन उत्तम ज्ञानसे युक्त हों और एकमतसे अपना कार्य करें।
४ (संमनसः) उत्तम शुभसंस्कार युक्त मन करके एक विचारसे उन्नतिका कार्य करते जांय।
५ (सयोनयः) एक उद्देश्यका ध्यान करके सबको एक कार्यमें संघटित करें। अपने संघ बनावें और संघके नियमोंके बाहर कोई न जावे।

इस प्रकार संघटना करनेवाले लोगोंको प्रजापोषक ईश्वर सब प्रकारकी पुष्टि देता है।

खेतीसे अन्न

कां. ७, सू. १८

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- पृथिवी, पर्जन्यः ।)

प्र नभस्व पृथिवी भिन्द्धी३दं नभः । उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥ १ ॥
न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित्क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित्तत्र भद्रम् ॥ २ ॥

अर्थ— हे पृथिवि ! तू (प्रनभस्व) उत्तम प्रकार चूर्ण हो। हे (धातः) धारक देव ! तू (ईशानः) हमारा ईश्वर है इसलिये (इदं दिव्यं नभः भिन्धि) इस दिव्य मेघको छिन्नभिन्न कर और (दिव्यस्य उद्नः दृतिं विष्य) दिव्य जलके भरे बर्तनको खोल दे ॥ १ ॥

(घ्रन् न तताप) उष्णता देनेवाला सूर्य नहीं तपाता, (हिमः न जघान) हिम भी पीडित नहीं करता। (जीरदानुः पृथिवी प्र नभतां) अन्न देनेवाली पृथ्वी चूर्ण की जावे। (आपः चित् अस्मै) जल इसके लिये (घृतं इत् क्षरन्ति) घी ही बहायें (यत्र सोमः) जहां सोमादि औषधियां उत्पन्न होती हैं, (तत्र सदं इत् भद्रं) वहां सदा ही कल्याण होता है ॥ २ ॥

भूमि हल आदि चलाकर अच्छी प्रकार तैयार की जावे। इसके बाद ईश्वरकी प्रार्थना की जावे कि, वह उत्तम प्रकार जल वर्षाके हमारी खेती उत्तम होनेमें सहायता देवे। बहुत गर्मी न पडे, न बहुत पाला पडे, भूमिको उत्तम प्रकार तैयार किया जावे, खेतीको पानी घी जैसा दिया जावे, अर्थात् न बहुत अधिक और न बहुत कम। इस प्रकार खेती करनेसे बहुत उत्तम वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं और सब प्राणियोंका कल्याण होता है।
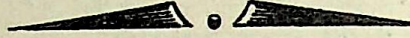
अन्नकी वृद्धि

कां. ६, सू. १४२

(ऋषिः– विश्वामित्रः। देवता– वायुः।)

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव। मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥ १ ॥
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि। तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥ २ ॥
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः। पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥ ३ ॥

अर्थ— हे यव! (स्वेन महसा उच्छ्रयस्व) अपनी महिमासे ऊपर उठ और (बहुः भव) बहुत हो, (विश्वा पात्राणि मृणीहि) सब बर्तनोंको भर दे। (दिव्या अशनिः त्वा मा वधीत्) आकाशकी बिजली तेरा नाश न करे ॥१॥

(आशृण्वन्तं देवं त्वा यवं) हमारी बात सुननेवाले देवरूपी तुझ यवकी (यत्र अच्छावदामसि) सदा हम उत्तम प्रशंसा किया करें, वह यव (द्यौः इव तत् उच्छ्रयस्व) आकाशके समान ऊंचा हो और (समुद्रः इव अक्षितः एधि) समुद्रके समान अक्षय हो ॥ २ ॥

(ते उपसदः अक्षिताः) तेरे पास बैठनेवाले अक्षय हों, (ते राशयः अक्षिताः सन्तु) तेरी राशियां अक्षय हों, (पृणन्तः अक्षिताः सन्तु) तृप्त करनेवाले अक्षय हों और (अत्तारः अक्षिताः सन्तु) खानेवाले भी अक्षय हों ॥३॥

अन्न आदि खाद्य पदार्थोंकी बहुत उत्पत्ति होवे। घरमें धान्य भरनेके पात्र भरे हुए हों और लोग उसको खाकर तृप्त हों, खानेवाले और खिलानेवाले भी उन्नत हों। प्रति वर्ष धान्य विपुल पैदा हो और सब लोग सुखी हों।
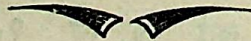
अन्न

कां. ६, सू. ७१

(ऋषिः– ब्रह्मा। देवता– अग्निः, वैश्वानरः, देवाः।)

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ १ ॥

अर्थ— (बहुधा विरूपं यद् अन्नं अद्मि) बहुत करके विविधरूपवाला जो अन्न मैं खाता हूं, तथा (हिरण्यं अश्वं गां अजां उत अविं) सोना, घोडा, गौ, बकरी, भेड (यत् एव किं च अहं प्रति जग्रहाह) जो कुछ मैंने ग्रहण किया है, (होता अग्निः तत् सुहुतं कृणोतु) होता अग्नि उसको उत्तम हवनसे युक्त करे ॥ १ ॥

भावार्थ— मैं जो अनेक प्रकारका अन्न खाता हूं, और सोना, चांदी, घोडा, गौ, बकरी आदि पदार्थ स्वीकार करता हूं, वह ठीक प्रकार यज्ञमें समर्पित हुआ हो ॥ १ ॥

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २ ॥
यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥ ३ ॥

अर्थ— (यत् हुतं अहुतं) जो दिया हुआ या न दिया हुआ (पितृभिः दत्तं) पितरोंसे दिया हुआ, (मनुष्यैः अनुमतं) मनुष्योंसे अनुमोदित हुआ (मा आजगाम) मेरे पास आया है, (यस्मात् मे मनः उत् रारजीति इव) जिससे मेरा मन उत्तम रीतिसे प्रसन्न होता है, (होता अग्नि तत् सुहुतं कृणोतु) होता अग्नि उसे उत्तम रूपसे स्वीकार करे ॥ २ ॥

हे (देवाः) देवो ! (यत् अन्नं अनृतेन अद्मि) जो अन्न मैं असत्य व्यवहारसे खाता हूं, (दास्यन् अदास्यन् उत संगृणामि) दान करता हुआ, अथवा न दान करता हुआ जिसका मैं संग्रह करता हूं; वह (अन्नं) अन्न (महतः वैश्वानरस्य महिम्ना) बडे वैश्वानरकी–परमात्माकी–महिमासे (मह्यं शिवं मधुमत् अस्तु) मेरे लिये कल्याणकारी और मीठा होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ— यज्ञमें समर्पित अथवा असमर्पित, पितृपितामहोंसे प्राप्त, मनुष्योंसे मिला हुआ, जो भी मेरे पास आया है, जिसके ऊपर मेरा मन लगा हुआ है वह उत्तम रीतिसे यज्ञमें समर्पित हुआ हो ॥ २ ॥

जो अन्न या भोग मैं करता हूं, वे सत्यसे प्राप्त हों वा असत्यसे, उनका मैं यज्ञमें दान करता हूं, वे सब यज्ञमें दिये हों वा न दिये हों, परमात्माकी कृपासे वे सब मुझे मधुरता देनेवाले हों ॥ ३ ॥

अन्न

अनेक प्रकारका अन्न

मनुष्य जो अन्न खाता है वह ' वि–रूप ' अर्थात् विविध रंगरूपवाला होता है; दाल, चावल, रोटी, खीर आदिके रंग भी अलग और रूप भी अलग अलग होते हैं। इन अन्नोंके सिवाय दूसरे उपभोगके पदार्थ सोना, चांदी, गाय, घोडे, बैल, बकरी, भेड आदि बहुत हैं। सोना, चांदी, जेवर आदिसे शरीरकी सजावट होती है, घोडे दूर गमनके काम आते हैं, बैल खेतीके काम करते हैं। गाय, बकरी दूध देती हैं। इस प्रकार अनेकानेक पदार्थ मनुष्यके उपयोगमें आते हैं। ये सब यज्ञमें समर्पित हों, अर्थात् मेरे अकेलेके स्वार्थोपभोगमें ही समाप्त न हों, प्रत्युत सब जनताके कार्यमें समर्पित हों।

धनके चार भाग

मनुष्यके पास जो धन आता है उसके कमसे कम चार भाग होते हैं, इनका विवरण देखिये—

१ पितृभि- दत्तं— मातापितासे प्राप्त। जन्मके संस्कारसे जो आता है।

२ मनुष्यैः अनुमतं— मनुष्यों द्वारा अनुमोदित अर्थात् अपने वंशसे भिन्न अन्य मनुष्योंकी संमतिसे प्राप्त हुआ धन।

३ हुतं आजगाम— किसीके द्वारा दानसे प्राप्त हुआ धन।

४ अहुतं आजगाम— किसीके द्वारा दान न देते हुए अन्य रीतिसे प्राप्त।

धन प्राप्त होनेके ये चार प्रकार हैं। इनमेंसे किसी भी रीतिसे प्राप्त हुआ धन हो और उसपर अपना मन भी रत हुआ हो, वह धन यज्ञमें समर्पित होना चाहिये।

जो अन्न खाया जाता है, दान दिया जाता है और संग्रह किया जाता है, वह सब ईश्वरार्पण हो और हमारा उत्तम कल्याण करनेवाला हो।

अन्नभाग

कां. ६, सू. ११६

(ऋषिः- जाटिकायनः । देवता- विवस्वान् ।)

यद्यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥ १ ॥
वैवस्वतः कृणवद्भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन्यद्वा पितापराद्धो जिहीडे ॥ २ ॥
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान्पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥ ३ ॥

अर्थ— (अग्रे कार्षीवणाः निखनन्तः) पहिले कृषि करनेवाले लोगोंने भूमिको खोदते हुए (विद्यया अन्न-विदः न) ज्ञानसे अन्न प्राप्त करनेवालोंके समान (यत् यामं चक्रुः) जो नियम बनाए, (तत् वैवस्वते राजनि जुहोमि) उनको वैवस्वत अर्थात् वसानेवाले राजाको समर्पित करता हूं। (अथ नः यज्ञियं अन्नं मधुमत् अस्तु) अब हमारा यजनीय अन्न मधुर होवे ॥ १ ॥

(वैवस्वतः भागधेयं कृणवत्) सबको वसानेवाला राजा सबको अन्नका विभाग करे, (मधुभागः मधुना सं सृजाति) अन्नका मधुर भाग और अधिक मीठेके साथ संयुक्त होता है। (मातुः इषितं यत् एनः नः आगन्) मातासे प्रेरित हुआ जो पाप हमारे पास आया है, (यद् वा अपराद्धः पिता जिहीडे) अथवा जो हमारे अपराधसे पिताके क्रोधसे हुआ है ॥ २ ॥

(यदि मातुः यदि वा पितुः) यदि मातासे और पितासे (भ्रातुः पुत्रात्) भाईसे और पुत्रसे (इदं एनः नः चेतसः परि आगन्) यह पाप हमारे चित्तके पास आया है, (यावन्तः पितरः अस्मान् सचन्ते) जितने पितर हमसे सम्बन्धित हैं, (तेषां सर्वेषां मन्युः शिवः अस्तु) उन सबका क्रोध हमारे लिये कल्याणकारी होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रारंभमें खेती करनेवाले किसानोंने जो नियम बनाये, वेही राजाके पास संमत हुए, उनके पालनसे सबको अन्न मीठा लगने लगा और यज्ञके लिये भी समर्पित होने लगा ॥ १ ॥

राजाने भूमिसे उत्पन्न हुए अन्नका योग्य भाग बनाया, उसको अधिक मधुर मानकर लोग सेवन करते हैं। उसी प्रकार मातासे और पितासे भी हमारे पास अन्न भाग आता है, उसका भी हम वैसा ही सेवन किया करें ॥ २ ॥

माता, पिता, भाई, पुत्र इनसे हमारे पास जो भाग आता है, यदि उसके साथ उनका क्रोध भी हुआ हो, तो वह हमारे कल्याणके लिये ही होवे ॥ ३ ॥

प्रजाकी संमति

खेती करनेवाले सब प्रजाजन स्वसंमतिसे आपसके बर्तावके नियम बनाए, सब प्रजाने एकमतसे बनाये नियम राजा माने और उसके अनुसार राज्यशासन करे। ऐसा करनेसे राजा और प्रजाका उत्तम कल्याण होगा और सबको अन्नका स्वाद अधिक मिलेगा। राजा अन्नका योग्य भाग करके सबसे लेवे और प्रजामें भी योग्य भाग बांट देवे। जो जिसको प्राप्त हो उसमें वह सन्तुष्ट रहकर उसका भोग आनंदके साथ करे और कोई किसी दूसरेके भागका अन्यायसे हरण न करे। माता-पिता आदिका जो दायभाग आता है, उसी प्रकार उनका क्रोध भी आया, तब भी उससे सन्तानका कभी अहित नहीं होगा, क्योंकि उसमें माता पिताका प्रेम रहनेके कारण उससे सन्तानका हित ही होगा।

धान्यकी सुरक्षा

कां. ६, सू. ५०

(ऋषिः– अथर्वा (अभयकामः)। देवता– अश्विनौ ।)

ह॒तं त॒र्दं स॑म॒ङ्कम॒माखुम॑श्विना छि॒न्तं शिरो॒ अपि॑ पृ॒ष्टीः शृ॑णीतम् ।
यवा॒न्नेदद्रा॒नपि॑ नह्यतं॒ मुख॒मथाभ॑यं कृणुतं धा॒न्या॒य ॥ १ ॥

तर्द॒ है॑ पत॑ङ्ग॒ है॑ जभ्य॒ हा उप॑क्वस । ब्र॒ह्मेवासं॑स्थितं ह॒विरन॑दन्त इ॒मान्यवा॒नहिं॑सन्तो अ॒पोदि॑त ॥ २ ॥

तर्दा॑पते॒ वघा॑पते॒ तृष्ट॑जम्भा॒ आ शृ॑णोत मे ।
य आ॑र॒ण्या व्य॑द्व॒रा ये के च॒ स्थ व्य॑द्व॒रास्तान्त्सर्वा॑ञ्जम्भयामसि ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (तर्द समंकं आखुं हतं) नाश करनेवाले और भूमिमें बिल बनाकर रहनेवाले चूहेको मारो । उसका (शिरः छिन्तं) सिर काटो । (पृष्टीः अपि शृणीतं) उसकी पीठ तोडो । वे चूहे (यवान् न इत् अदान्) जौको कभी न खावें, (मुखं अपि नह्यतं) उनका मुख बंद करो (अथ धान्याय अभयं कृणुतं) और धान्यके लिये निर्भयता करो ॥ १ ॥

(हे तर्द) हे हिंसक ! (हे पतङ्ग) हे शलभ ! (हा जभ्य, उपक्वस) हे वध्य और दुष्ट ! (ब्रह्मा इव असंस्थितं हविः) ब्रह्मा जिस प्रकार असंस्कृत हविको छोडता है, उस प्रकार (इमान् यवान् अनदन्तः अहिंसन्तः) इन जौको न खाते हुए और न नष्ट करते हुए (अपोदित) तुम दूर हट जाओ अर्थात् इसको छोड दो ॥ २ ॥

हे (तर्दापते) महा हिंसक ! हे (वघापते) शलभ ! हे (तृष्टजम्भाः) तीक्ष्ण दंष्ट्रावाले ! (मे आशृणोत) मेरा कहना सुनो । (ये आरण्याः व्यद्वराः) जो जंगली और विशेष खानेवाले हैं और (ये के च व्यद्वराः स्थ) जो कोई भक्षक है (तान् सर्वान् जम्भयामसि) उस सबका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

धान्यके नाशक जीव

चूहे, पतङ्गे, शलभ (टिड्डी) आदि जन्तु ऐसे हैं कि जो धान्यका नाश करते हैं, पौधोंको नष्ट करते हैं और शलभ तो ऐसे हैं कि जो करोडोंकी संख्यामें इकट्ठे मिलकर आते हैं, धान्यों और वृक्षोंपर धावा करते हैं और उसका नाश करते हैं । इनसे धान्यादिका बचाव करना चाहिये । इसलिये चूहों और शलभोंको मारना चाहिये ऐसा प्रथम मंत्रमें कहा है ।

इस सूक्तमें इनके नाश करनेकी विधि नहीं बताई है, केवल नाश करना चाहिये और धान्यका बचाव करना चाहिये इतना ही कहा है। यदि किसी स्थानपर इनके नाश करनेकी विधि मिल जाय, तो किसानोंका बहुत लाभ होगा। चूहे भी हजारोंकी संख्यामें आकर खेतोंका नाश करते हैं और शलभ तो करोडोंकी संख्यामें आते हैं । यदि कोई शोधक इनके नाशका उपाय निकाले, तो अत्युत्तम हो ।

खानपान

कां. ७, सू. ७२

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- इन्द्रः ।)

उत्तिष्ठतावं पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् । यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥ १ ॥
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २ ॥
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३ ॥

अर्थ— (उत् तिष्ठत) उठो और (इन्द्रस्य ऋत्वियं भागं अवपश्यत) प्रभुके ऋतुके अनुकूल भागको देखो। (यदि श्रातं) यदि परिपक्व हुआ हो तो (जुहोतन) स्वीकार करो और (यदि अश्रातं ममत्तन) यदि परिपक्व न हुआ हो तो उसके पकनेतक आनन्द करो ॥ १ ॥

हे (इन्द्र) प्रभो ! (श्रातं हविः ओ सुप्रयाहि) हवि सिद्ध हुआ है, उसके प्रति तू उत्तम प्रकारसे जा, (सूरः अध्वनः मध्यं वि जगाम) सूर्य अपने मार्गके मध्यमें गया है। (कुलपाः व्राजपतिं चरन्तं न) जैसे कुलपालक पुत्र संघपति पिताके विचरते हुए उसके पास आते हैं, (सखायः निधिभिः त्वा परि आसते) समान विचारवाले लोग अपने संग्रहोंके साथ तेरे चारों ओर बैठते हैं ॥ २ ॥

(ऊधनि श्रातं मन्ये) गायके स्तनमें परिपक्व हुआ है ऐसा मैं मानता हूं। तत्पश्चात् (अग्नौ श्रातं) अग्निपर परिपक्व हुआ है अतः (तत् ऋतं नवीयः सुशृतं मन्ये) वह सच्चा नवीन दुग्ध उत्तम प्रकारसे परिपक्व हुआ है ऐसा मैं मानता हूं। हे (पुरुकृत् वज्रिन् इन्द्र) बहुत कर्म करनेवाले वज्रधारी प्रभो ! (जुषाणः) उसका सेवन करता हुआ (माध्यंदिनस्य सवनस्य दध्नः पिब) मध्यदिनके सवनके दहीका पान कर ॥ ३ ॥

भावार्थ— उठो और ईश्वरके द्वारा दिये गए ऋतुके अनुकूल अन्न भागको देखो। जो परिपक्व हुआ हो उसको लो और यदि कुछ अन्नभाग परिपक्व न हुआ हो, तो उसके परिपाक होनेतक आनंदसे रहो ॥ १ ॥

हे प्रभो ! यह अन्नभाग परिपक्व हुआ है, यह सिद्ध है, यहां प्राप्त हो, सूर्य मध्यान्हमें आ गया है। सब मित्र अपने अपने संग्रहोंको लिये हुए प्राप्त हुए हैं। जैसे पुत्र पिताके पास इकट्ठे होते हैं वैसे हम सब तेरे पास इकट्ठे हुए हैं ॥ २ ॥

मैं मानता हूं कि एक तो गायके स्तनोंमें दूध परिपक्व होता है, पश्चात् अग्निपर परिपक्व होता है। नव अन्न इस प्रकार सिद्ध होता है। हे प्रभो ! मध्यदिनके समय इसका सेवन करो और दही पीओ ॥ ३ ॥

खानपान

भोजनका समय

सूर्यके मध्याकाशमें आनेपर भोजन करना चाहिये, यह बात इस सूक्तसे प्रतीत होती है, देखिये—

सूरः अध्वनः मध्यं विजगाम। श्रातं हविः सुप्रयाहि। (मं. २)

" सूर्य मार्गके मध्यमें पहुंच चुका है अतः परिपक्व हुए अन्नके प्रति आनन्दसे जा। " यह वाक्य भोजनका समय दोपहरके बारह बजेका या उसके किंचित पश्चात्का है, इस बातको स्पष्ट करता है। हवि नाम अन्नका है। यह अन्न परिपक्व हुआ हो। अन्न एक तो स्वयं (ऊधनि श्रातं) गायके स्तनोंमें परिपक्व होता है, जिसको हम दूध कहते हैं, यह दूध दुहे जानेके पश्चात् (अग्नौ श्रातं) अग्निपर पकाया जाता है। इसमें एक तो स्वभावतः परिपक्वता होती है पश्चात् अग्निपर परिपक्वता होती है, पश्चात् देवताओंको समर्पित करके भोजन करना होता है। दूधको उबालनेके पश्चात् उसका दही बनाया जाता है। यह दही (माध्य-

न्दिनस्य दध्नः पिब) मध्यान्हके भोजनके समय पीना योग्य है। रात्रीके समय या सबेरे दही पीना उचित नहीं, क्यों कि दही शीतवीर्य होता है इस कारण वह दोपहरके उष्ण समयमें ही पीना योग्य है।

जैसे गायके स्तनसें दूध परिपक्व होता है, उसी प्रकार 'गो' नाम भूमिके अंदर धान्य आदिकी उत्पत्ति होती है। इसको भी परिपक्व दशामें लेना चाहिये, पश्चात् अग्निपर पकाकर या भूनकर उसका सेवन करना चाहिये। यह अन्न दूध हो या अन्य धान्यादि हो वह (ऋतं नवीयः) नया लेना योग्य है। दूध भी ताजा लेना चाहिये और धान्य भी बहुत पुराना लेना योग्य नहीं। अन्न भी पकते ही लेना चाहिये अर्थात् दोचार दिनके वासे पदार्थ लेने योग्य नहीं है। भगवद्गीतामें कहा है कि—

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥
भ. गी. १७।१०

"जिस अन्नको तैयार होकर तीन घण्टे व्यतीत हो गए हो, जो नीरस हो, जो दुर्गंधयुक्त हो, जो उच्छिष्ट हो और अपवित्र हो वह तामस लोगोंको प्रिय होता है।" अर्थात् अन्न पकाकर तीन घंटोंके पश्चात् उसका सेवन करना योग्य नहीं; पकनेके तीन घंटे बाद तक उसको (ऋतं नवीयः) नया या ताजा कहते हैं, इसी अवस्थामें उसका सेवन करन चाहिए।

परमेश्वर (ऋत्वियं भागं) ऋतुके योग्य अन्न भागको देता है। जिस ऋतुमें जो सेवन करने योग्य होता है वह अन्न, फूल, रस आदि देता है। उसको पक्व अवस्थामें प्राप्त करना चाहिये और पश्चात् उसका सेवन करना चाहिये। यदि कोई फल पका न हो तो उसकी प्रतीक्षा आनंदके साथ करनी चाहिये।

सब परिवारके तथा (सखायः) इष्टमित्र अपनी अपनी थालीमें (निधिभिः) अपने अन्न संग्रहको लें और साथ साथ पंक्तिमें बैठें, सब अपने अन्नभागसे कुछ भाग देवताओंके उद्देश्यसे समर्पण करें। सब इष्टमित्र ऐसा मानें की वह ईश्वर अपने बीचमें है अथवा हम उसके चारों ओर हैं और जो अन्न भाग मिले उसका आनंदके साथ सेवन करें।

औषधिरसका पान

कां. ६, सू. १६

(ऋषिः— शौनकः। देवता— चन्द्रमाः मन्त्रोक्तदेवताः।)

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो। आ ते करम्भमद्मसि ॥ १ ॥
विहह्लो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता। स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥ २ ॥
तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत्। बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥ ३ ॥
अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा। नीलागलसाला ॥ ४ ॥

अर्थ— (हे आवयो, आवयो, अनावयो) फैलनेवाली और न फैलनेवाली औषधि ! (ते रसः उग्रः) तेरा रस उग्र है। (ते करंभं आ अद्मसि) तेरे रसका हम पेय बनाते हैं ॥ १ ॥

(ते पिता विहल्हः) तेरा पिता विहल्ह है और (ते माता मदावती नाम) तेरी माता मदावती है। (सः हिन त्वं असि) वही उनसे ही तू बनता है। (यः त्वं आत्मानं आवयः) जो तू अपने आत्माकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

(तौविलिके अव ईलय) प्रगतिके कार्यमें हमें प्रेरित कर। (अयं ऐलबः अव ऐलयीत्) यह भूमिके संबंधमें कार्य करनेवाला प्रेरणा करता है। हे (आल) समर्थ ! (बभ्रुः च बभ्रुकर्णः च) भूरा और भूरे कानवाला (निः अप इहि) हमसे दूर रह ॥ ३ ॥

(पूर्वा अलसाला) पहिले तू आलसियोंको रोकनेवाली है, (उत्तरा सिलांजाला) दूसरी तू अणुओंतक पहुंचनेवाली है। तथा (नीलागलसाला) घर घरमें उपयोगी है ॥ ४ ॥

*

रसपान

इस सूक्तमें " करंभ " शब्द है। दही और सत्तूका आटा मिलाकर बडा उत्तम पेय रस बनता है उसका यह नाम है। यह कब्जीको हटानेवाला और बडी पुष्टि देनेवाला होता है। इसमें कई औषधियोंके रस मिलानेसे इसके गुण अधिक बढ जाते हैं।

" विहल्ह " (पिता) वृक्षका " मदावती " नामक (माता) औषधिपर कलम करनेसे जो औषधि बनती है वह (आत्मानं आवयः) आत्माकी-अपनी-रक्षा करनेवाली होती है। यह द्वितीय मन्त्रका कथन है। यह मातापिताके स्थानकी औषधियां इस समय अप्राप्त हैं।

इसी प्रकार इस सूक्तमें आये अन्यान्य नाम किन वनस्पतियोंके हैं, इसका पता नहीं चलता। आबयु, अनाबयु, विहल्ह (पिता), मदावती (माता), तौविलिका, ऐलब, बभ्रु, बभ्रुकर्ण, आल, अलसाला, (पूर्वा) सिलाञ्जाला, (उत्तरा) नीलागलसाला इत्यादि नाम इस सूक्तमें आये हैं। इनका पता नहीं लगता। इसलिये इनपर अधिक लिखना असंभव है।

ऋणरहित होना

कां. ६, सू. ११७

(ऋषिः- कौशिकः। देवता- अग्निः।)

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान्विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥ १ ॥

इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत्।
अपमित्य धान्यं1 यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥ २ ॥

अर्थ— (यत् अपमित्यं अप्रतीत्तं अस्मि) जिस वापस करने योग्य पदार्थको वापस न करनेके कारण मैं ऋणी हो गया हूं और (यमस्य येन बलिना चरामि) नियन्ताके वशमें जिस ऋणके कारण पहुंचा हूं, हे अग्ने ! (इदं तत् अनृणः भवामि) अब मैं उस ऋणको चुकाकर ऋणरहित हो जाऊं, (त्वं सर्वान् विचृतं पाशान् वेत्थ) तू सब ऋणके खुले हुए पाशोंको जानता है ॥ १ ॥

(इह इव सन्तः एनत् प्रति दद्म) यहीं रहते हुए इस ऋणको चुका देते हैं, (जीवाः जीवेभ्यः एनत् निहरामः) इसी जीवनमें अन्य जीवोंके इस ऋणको हम निःशेष करते हैं। (यत् धान्यं अपमित्य अहं जघस) जो धान्य उधार लेकर खाया है, हे अग्ने ! (इदं तत् अनृणः भवामि) यह वह है और इस रीतिसे मैं ऋणरहित होता हूं ॥२॥

भावार्थ— जो कर्जा लिया होता है उसे समयपर वापस करना चाहिये। यदि वापस न किया तो ऋण लेनेवाला दोषी होता है। इस दोषसे मुक्त होनेके लिये शीघ्र ऋणमुक्त होनेका यत्न करना चाहिये। सब अपने पाश तोड कर पहिले ऋणमुक्त होना चाहिये ॥ १ ॥

इस संसारमें जीवित रहकर ही अपने कर्जोंसे मुक्त होना चाहिये, अर्थात् स्वयं किया हुआ कर्जा अपने बालबच्चोंके लिये छोडना उचित नहीं। धान्यका कर्जा हो अथवा धन आदिका हो उसको शीघ्र वापस करना चाहिये ॥ २ ॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान्पथो अनृणा आ क्षियेम ॥ ३ ॥

अर्थ— (अस्मिन् लोके अनृणाः) इस लोकमें हम ऋणरहित हो जांय, (परस्मिन् अनृणाः) परलोकमें ऋणरहित हो जांय और (तृतीये लोके अनृणाः स्याम) तृतीयलोकमें भी हम ऋणरहित हो जायें; (ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः) जो देवयान और पितृयानके लोक हैं, (सर्वान् पथः अनृणा आक्षियेमः) इन सब मार्गोंमें हम ऋणरहित होकर चलें ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस लोकका ऋण दूर करना चाहिये, परलोकके ऋणसे मुक्त होना चाहिये और अन्य ऋणोंसे भी मुक्त होना चाहिये। देवयान और पितृयानके सब स्थानोंमें ऋणरहित होना योग्य है ॥ ३ ॥

मनुष्यको सब प्रकारके ऋणोंसे मुक्त होना चाहिये । ऋणी रहकर मरना योग्य नहीं है। यह सूक्त सुबोध है, इसलिये अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है ।

ऋणरहित होना

कां. ६ सू. ११८

(ऋषिः– कौशिकः । देवता– अग्निः ।)

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥ १ ॥
उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥ २ ॥

अर्थ— (अक्षाणां गत्नुं उप लिप्समानाः) जुएके स्थानके प्रति जानेकी इच्छा करनेवाले हम (यत् हस्ताभ्यां किल्बिषाणि चकृम) जो हाथोंसे अनेक पाप करते हैं। (तत् वः ऋणं अद्य) वह हमारा ऋण आज (उग्रंपश्ये उग्रजितौ अप्सरसौ अनुदत्तां) उग्रतासे देखनेवालीं और उग्रतासे जीतनेवालीं दोनों अप्सराएं हमसे दिलावें ॥ १ ॥

हे (उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्) उग्रतासे देखनेवाली और हे राष्ट्रका भरणपोषण करनेवाली ! (यत् अक्षवृत्तं) जो जुएबाजीका पाप है और जो (किल्बिषाणि) अन्य पाप हैं; (नः एतत् अनु दत्तं) हमसे यह सब बदला दिया हुआ है। (ऋणात् ऋणं न एर्त्समानः) ऋणीसे ऋणको वापस न प्राप्त करनेपर ऋण देनेवाला (अधिरज्जुः यमस्य लोके नः आयत्) रस्सी लेकर यमके लोकमें हमारे पास आवेगा ॥ २ ॥

भावार्थ— जुएके स्थानपर जाकर जो पाप किया जाता है और अन्यत्र जो पाप होता है, उसी प्रकार जो हम ऋण करते हैं, उस सबको दूर करना चाहिये ॥ २ ॥

जूएका पाप, अन्य पाप और ऋण यदि दूर न किया तो हमें बन्धनमें जाना पडेगा ॥ २ ॥

यस्मा॑ ऋ॒णं यस्य॑ जा॒याम॒पैमि॒ यं याच॑मानो अ॒भ्यैमि॑ देवाः ।
ते वाचं॑ वादिषु॒र्मोत्त॑रां मद्दे॑वपत्नी॒ अप्स॑रसा॒वधी॑तम् ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (देवाः) देवो ! (यस्मै ऋणं) जिसको ऋण वापस करना है, (यस्य जायां उपैमि) जिसकी स्त्रीके पास सहाय्य याचनार्थ जाता हूं, तथा (यं याचमानः अभ्येमि) जिसके पास याचना करता हुआ पहुंचता हूं, (ते मत् उत्तरां वाचं मा वादिषुः) वे मुझसे अधिक कठोर भाषण न करें । हे (देवपत्नी अप्सरसौ) देवपत्नी अप्सराओ ! (अधीतं) स्मरण रखो यह मेरी प्रार्थना ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिससे ऋण लिया है अथवा जिससे कुछ याचना की है वह हमें दुरुत्तर न बोले, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये ॥ ३ ॥

[ये मन्त्र कुछ अंशमें संदिग्ध हैं, इसलिये इनके विषयमें विशेष स्पष्टीकरण करना असंभव है । क्योंकि इनके कई शब्दोंका सम्बन्ध स्पष्टतया प्रतीत नहीं होता ।]

ऋणरहित होना

कां. ६, सू. ११९

(ऋषिः- कौशिकः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः ।)

यददी॑व्यन्नृ॒णम॒हं कृ॒णोम्यदा॑स्यन्नग्न उ॒त सं॑गृ॒णामि॑ ।
वै॒श्वा॒न॒रो नो॑ अधि॒पा वसि॑ष्ठ॒ उदिन्न॑याति सुकृ॒तस्य॑ लो॒कम् ॥ १ ॥
वै॒श्वा॒न॒राय॒ प्रति॑ वेदया॒मि यदृ॒णं सं॑ग॒रो दे॒वता॑सु ।
स ए॒तान्पाशा॑न्वि॒चृतं॑ वेद॒ सर्वा॒नथ॑ प॒क्वेन॑ स॒ह सं भ॑वेम ॥ २ ॥

अर्थ— (यत् अहं अदीव्यन्) जो मैं जुआ न खेलता हुआ (ऋणं) ऋण करूं (उत अदास्यन् संगृणामि) और उसको न चुकाता हुआ चुकानेकी प्रतिज्ञा करता जाऊं, हे अग्ने ! (वैश्वानरः वसिष्ठः अधिपाः) विश्वका नेता सबको वसानेवाला अधिपति (नः सुकृतस्य लोकं इत् उन्नयाति) हमें पुण्यलोकमें जानेके लिए उन्नत करे ॥ १ ॥

(वैश्वानराय यत् ऋणं प्रतिवेदयामि) विश्वके नेताको मैं जो ऋण है वह कहूंगा, तथा (देवतासु यः संगरः) देवताओंमें जो प्रतिज्ञा हुई है, वह भी मैं कहूंगा । (सः एतान् सर्वान् पाशान् विचृतं वेद) वह इन सब पाशोंको खोलनेकी विधि जानता है । (अथ पक्वेन सह संभवेम) अब हम परिपक्कके साथ मिल जांय ॥ २ ॥

भावार्थ— जुआ न खेलता हुआ अन्य कारणसे जो ऋण मैं करता हूं और उसको समयपर वापस न करता हुआ वापस करनेकी प्रतिज्ञा करता रहता हूं, उस दोषसे बचावे और ईश्वर मुझे ऊपर उठावे और पुण्यलोकमें पहुंचावे ॥ १ ॥

जो ऋण मैंने किया और उस सम्बन्धमें जो प्रतिज्ञाएं मैंने कीं उन सबको मैं निवेदन करता हूं । इस प्रकारके पापोंसे ईश्वर मेरा बचाव करे, क्योंकि वही इन बन्धनोंसे दूर करके हमें ऊपर उठानेके उपाय जानता है । हम परिपक्क हुए ज्ञानियोंके साथ रहें, जिससे हमसे दोष नहीं होंगे ॥ २ ॥

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत्संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन्मनसा याचमानो यत्तत्रैनो अप तत्सुवामि ॥ ३ ॥

अर्थ— (पविता वैश्वानरः मा पुनातु) पवित्र करनेवाला विश्वका नेता मुझे पवित्र करे । (यत् संगरं आशां अभिधावामि) जिस प्रतिज्ञाको करता हुआ जिस आशाके पीछे मैं दौडता हूं, (अनाजानन् मनसा याचमानः) न जानता हुआ तथापि मनसे याचना करता हुआ (तत्र यत् एनः) वहां जो पाप होता है (तत् अप सुवामि) उसको मैं दूर करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ— ईश्वर सबको पवित्र करनेवाला है, वह मुझे पवित्र करे । जिस आशाके पीछे पडकर मैं वारंवार प्रतिज्ञा करता हूं और पापको न जानता हुआ जो वारंवार याचना करता रहता हूं; वह सब पाप दूर होवे ॥ ३ ॥

इस सूक्तका भाव स्पष्ट है । ऋण मोचनके ये सब सूक्त यही उपदेश विशेषतया करते हैं कि, कोई मनुष्य ऋण न करे और यदि करे तो उसको ठीक समयपर वापस करे । वृथा असत्य प्रतिज्ञाएं करते न रहें । इत्यादि बोध इन सूक्तोंसे सारांशरूपसे प्राप्त होता है ।

निष्पाप होनेकी प्रार्थना

कां. ७, सू. ३४

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— जातवेदाः ।)

अग्ने जातान्प्र णुदा मे सपत्नान्प्रत्यजातान्जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥ १ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! (मे जातान् सपत्नान् प्रणुद) मेरे उत्पन्न हुए शत्रुओंको दूर कर । हे (जातवेदः) ज्ञानके उत्पादक देव । (अजातान् प्रति नुदस्व) खुले रूपसे शत्रु न बने हुए परंतु अंदर अंदरसे शत्रुता करनेवाले शत्रुओंको एकदम हटा दो । (ये पृतन्यवः अधस्पदं कृणुष्व) जो सेना लेकर हमपर चढाई करते हैं उनको गिरा दे । (वयं अनागसः) हम सब निष्पाप हों और (अदितये स्याम) अदीनताके लिये योग्य हों ॥ १ ॥

ज्ञानी, ज्ञानदाता प्रकाशमय देव हमारे सब शत्रुओंको हमसे दूर करे । शत्रु खुली रीतिसे शत्रुता करनेवाले हों अथवा गुप्त रीतिसे घात करनेवाले हों, सबके सब शत्रु दूर हों । जो सैन्य लेकर हमारे ऊपर चढाई करते हैं, वे भी सब अपने स्थानसे गिर जावे । हम निष्पाप बनें और दीनता हमसे दूर हो जाय । अदीनता, भव्यता तथा स्वतंत्रता हमारे पास रहे ।

कल्याण

कां. ७, सू. २८

(ऋषिः- मेधातिथिः । देवता- वेदः ।)

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥ १ ॥

अर्थ— (वेदः स्वस्ति) ज्ञान कल्याण करनेवाला है। (द्रु-घणः स्वस्ति) लकडी काटनेका कुल्हाडा कल्याण करनेवाला है। (परशुः) परशु कल्याण करनेवाला है। (वेदिः) यज्ञकी वेदि कल्याण करती है। (नः परशुः स्वस्ति) हमारा शस्त्र कल्याण करनेवाला है। (हविष्कृतः यज्ञियाः यज्ञकामाः) हवि बनानेवाले, पूजनीय और यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले (ते देवासः) वे याजक (इमं यज्ञं जुषन्तां) इस यज्ञका प्रेमसे सेवन करें ॥ १ ॥

ज्ञान, सुतारके हथियार, लकडी तोडनेके कुल्हाडे, घास काटनेका हंसिया, समिधा तयार करनेका परसा, वेदी, हवि, हवि तयार करनेवाले लोग, यज्ञ करनेवाले, यज्ञकी इच्छा करनेवाले ये सब कल्याण करनेवाले हैं। इसलिये इनके विषयमें उचित श्रद्धा धारण करनी चाहिये।

विपत्तिको हटाना

कां. ७, सू २३

(ऋषिः- यमः । देवता- दुःस्वप्ननाशनम् ।)

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः । दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ १ ॥

अर्थ— (दौष्वप्न्यं) दुष्ट स्वप्नोंका आना, (दौर्जीवित्यं) दुःखमय जीवन होना, (रक्षः) हिंसकोंका उपद्रव, (अ-भ्वं) अभूति, दरिद्रता, (अराय्यः) विपत्तिके कष्ट, (दुर्णाम्नीः) बुरे नामोंका उच्चार करना, (सर्वाः दुर्वाचः) सब प्रकारके दुष्ट भाषण (ताः अस्मत् नाशयामसि) उन सबको हम अपने स्थानसे नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— बुरे स्वप्न, कष्टका जीवन, हिंसकोंका उपद्रव, विपत्ति, दारिद्य, दुष्ट भाषण, गालियाँ देना आदि जो जो बुराईयां हममें हैं, उनको हम दूर करते हैं ॥ १ ॥

विपत्तियां अनेक प्रकारकी हैं, उनमें कुछ विपत्तियोंकी गणना इस स्थानपर की है। बुरे स्वप्न आना तथा दुःखपूर्ण जीवनका अनुभव होना आदि विपत्तियां आरोग्य न रहनेसे होती हैं। आरोग्य उत्तम रीतिसे रखनेके लिये व्यायाम, योगासनोंका अनुष्ठान, यमनियमपालन, प्राणायाम, योग्य आहारविहार आदि उपाय हैं। इनको योग्य रीतिसे करनेसे ये दो विपत्तियां दूर होती हैं। हिंसकोंका उपद्रव दूर करनेके लिये अपने अंदर शूरवीरता उत्पन्न करना और उस कार्यके लिये उसका प्रयोग करना चाहिये। इससे राक्षसोंके आक्रमणसे हम अपना बचाव कर सकते हैं। (अ-भ्वं) अभूति और अराय्यः) निर्धनता ये दो आर्थिक आपत्तियां उद्योगवृद्धि करने और बेकारी दूर करनेसे दूर होती हैं। मनुष्य हरएक प्रकार आलसी न रहे, कुछ न कुछ उत्पादक काम धंदा करे और अपनी धन संपत्ति सुयोग्य उपायसे बढावे। इस प्रकार उद्योगवृद्धि करनेसे ये आर्थिक आपत्तियां दूर हो जाती हैं। गाली देना, बुरे भाषण करना, बुरे शब्द उच्चारण करना आदि जो आपत्तियां हैं, उनको दूर करनेके लिये अपनी वाणीकी शुद्धि करना चाहिये। निश्चयपूर्वक अपशब्दोंका उच्चार न करनेसे कुछ दिनोंके पश्चात् ये शब्द अपनी वाणीसे स्वयं दूर होते हैं। इस प्रकार आत्मशुद्धि करनेका मार्ग इस सूक्तने बताया है।

भाग्यकी प्राप्ति

कां. ६, सू १२९

(ऋषिः- अथर्वाङ्गिराः । देवता- भगः ।)

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भगिनं मापं द्रान्त्वरातयः ॥ १ ॥
येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥ २ ॥
यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः । तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥ ३ ॥

अर्थ— (शांशपेन भगेन मेदिना इन्द्रेण) शंशप वृक्षकी शोभाके समान आनंद देनेवाले इन्द्रसे (मा भगिनं कृणोमि) मैं अपने आपको भाग्यशाली करता हूं। (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर हों ॥ १ ॥

(येन वृक्षान् अभ्यभवः) जिससे वृक्षोंको पराजित करता है, उस (भगेन वर्चसा सह) भाग्य और तेजके साथ (मा भगिनं कृणु) मुझे भग्यवान् कर और (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर भाग जांये ॥ २ ॥

(यः अन्धः) जो अन्नमय और (यः पुनःसरः) जो वारंवार गतिवाला (भगः वृक्षेषु आहितः) भाग्यका अंश वृक्षोंमें रखा है (तेन मा भगिनं कृणु) उससे मुझे भाग्यवान् कर, (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर भाग जांय ॥३॥

भावार्थ— जिस प्रकार शंशप वृक्ष सुन्दर दीखता है, उस प्रकार ईश्वरकी कृपासे भाग्ययुक्त होकर मेरी सुन्दरता बढे। साथ ही साथ मेरे शत्रु दूर भाग जावें ॥ १ ॥

जिस प्रकार यह वृक्ष अन्य वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर दीखता है, उस प्रकार भाग्य और तेज प्राप्त होकर मेरी शोभा बढे। मेरे शत्रु दूर हो जांय ॥ २ ॥

वृक्षोंमें जो अन्नका भाग और अन्य भाग होता है, उस प्रकार मुझमें पुष्टि और बल आवे और मेरे शत्रु दूर हों ॥३॥

अपने अन्दर पुष्टि, बल, भाग्य, ऐश्वर्य और सौंदर्य बढे और अपने जो घातक शत्रु हैं वे दूर हो जांय। इस प्रकार इस सूक्तका आशय सरल है।

अपनी रक्षा

कां. ७, सू. ३१

(ऋषिः- भृग्वङ्गिराः । देवता- इंद्रः ।)

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवन्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ १ ॥

अर्थ— हे इन्द्र ! (यावत्-श्रेष्ठाभिः बहुलाभिः ऊतिभिः) अतिश्रेष्ठ विविध प्रकारकी रक्षाओंसे (अद्य नः जिन्व) आज हमें जीवित रख। हे (मघवन् शूर) हे धनवान् शूरवीर ! (यः नः द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है (सः अधरः पदीष्ट) वह नीचे गिर जावे। (यं उ द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं (तं उ प्राणः जहातु) उसको प्राण छोड देवे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे धनवान् और शूर प्रभो ! तुम्हारी जो अनेक प्रकारकी अतिश्रेष्ठ रक्षाएं हैं, वे सब हमें प्राप्त हों और उनसे हमारी रक्षा होवे और हमारा जीवन उनकी सहायतासे सुखकर होवे। जो दुष्ट हमारी विना कारण निन्दा करता है, वह गिर जावे और जिस दुष्टसे हम सब द्वेष करते हैं उसका जीवन ही समाप्त हो जावे ॥ १ ॥

हम परमेश्वरकी भक्ति करें और उसकी रक्षा प्राप्त करके सुरक्षित और स्वस्थ होकर आनन्दका उपभोग करें। परंतु जो दुष्ट मनुष्य हम सबसे द्वेष करता है और उस कारण जिस दुष्टसे हम सब द्वेष करते हैं, उसका नाश हो। दुष्टता और द्वेषका समूल नाश हो ॥

दुष्ट स्वप्न

कां. ६, सू. ४५

(ऋषिः– अङ्गिराः प्रचेताः यमश्च । देवता– दुःष्वप्ननाशनम् ।)

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ १ ॥
अवशसा निःशसा यत्पराशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥ २ ॥
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि । प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात्पात्वंहसः ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (मनः पाप) मनके पाप ! (परः अप इहि) दूर हट जा । (अशस्तानि किं शंससि) तू बुरी बातें क्यों कहता है ? (परा इहि) दूर जा । (त्वा न कामये) तुझको मैं नहीं चाहता । (वृक्षान् वनानि संचर) वृक्षों और वनोंमें जाकर संचार कर । (मे मनः गृहेषु गोषु) मेरा मन मेरे घरों और गौवोंमें रहे ॥ १ ॥

(यत् अवशसा निःशसा पराशसा) जो पाप पासकी हिंसासे, निर्दयताकी हिंसासे और दूरकी हिंसासे अथवा (यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम) जो जागते हुए और सोते हुए हमने किया है (अग्निः विश्वानि अजुष्टानि दुष्कृतानि) प्रकाशका देव सब अकरणीय दुष्कर्मोंको (अस्मत् आरे अप दधातु) हम सबसे दूर रक्खे ॥ २ ॥

हे (ब्रह्मणस्पते इन्द्र) ज्ञानी प्रभु ! (यत् अपि मृषा चरामसि) जो भी कुछ पाप असत्याचरणसे हम करें, (अंगिरसः प्रचेताः) सबके अंगरसोंके समान व्यापक विशेष ज्ञानी देव (नः दुरितात् अंहसः पातु) हमें दुराचारके पापसे बचावे ॥ ३ ॥

दुष्ट स्वप्न

पापी विचार

पापी विचारोंको मनसे हटानेका उपदेश इस सूक्तमें कहा है । गृहस्थीका मन—

गृहेषु गोषु मे मनः । (मं. १)

" घरमें और अपने गौ आदिमें ही रमना चाहिये । " अन्य बातोंमें और कुविचारोंमें मनके रमनेसे दुष्ट स्वप्न आते हैं और उससे कष्ट होते हैं । इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह अपनेको शुभ संस्कारयुक्त बनावे और अपने परिवारके हितमें दक्ष रहे । यदि कुविचार मनमें आये भी, तो उससे कहना चाहिये कि—

मनस्पाप ! परः अपेहि, किं अशस्तानि शंससि ?
परेहि, न त्वा कामये । (मं. १)

" हे पापी विचार ! दूर हट, मुझे तू बुरी बातें कहता है, चला जा, मैं तेरी इच्छा नहीं करता । "

इस प्रकार उस पापी विचारको कह कर उसको दूर करना चाहिये । पापी विचार वारंवार मनमें घुसने लगते हैं, परन्तु उनको घुसने देना उचित नहीं है । अपने अन्दर कौनसा विचार आवे और कौनसा न आवे इसका निश्चय स्वयं अपने आपको करना चाहिये और यह शरीर अपना कार्यक्षेत्र है, यह जानकर उस क्षेत्रमें शुभ विचारोंकी परंपरा ही स्थिर रखनी चाहिये । सबको विचार करना चाहिये कि—

यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम । (मं. २)

" जो जागते हुए और सोते हुए हम करते हैं " वही स्वप्नमें परिणत होता है, इसलिये जाग्रतिके हमारे सब व्यवहार उत्तम हुए, तो स्वप्न निःसंदेह ठीक होंगे और किसी प्रकार बुरे स्वप्न नहीं आवेंगे और मनमें कभी अशुभ संस्कार नहीं पडेंगे । इसी प्रकार—

मृषा चरामसि । (मं. ३)

" असत्य व्यवहार करेंगे । " तो उसका भी बुरा परिणाम होगा । सब कुसंस्कार असत्यके कारण उत्पन्न होते हैं । यदि मनुष्य असत्यको छोडकर सत्यका आश्रय करेंगे तो वे निःसन्देह बुराईसे बच सकते हैं ।

दुष्ट स्वप्न

कां. ६, सू. ४६

(ऋषिः- अङ्गिराः प्रचेताः यमश्च । देवता- दुःष्वप्ननाशनम् ।)

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानांममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पितारंरुर्नामासि ॥ १ ॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि ॥ २ ॥
यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥ ३ ॥

अर्थ— हे स्वप्न ! (यः) जो तू (न जीवः असि न मृतः) न तो जीवित ही है और नहीं मरा हुआ ही है, वह तू (देवानां अमृतगर्भः असि) देवोंका अमृत गर्भ है अर्थात् देवोंमें सर्वदा रहनेवाला है । (ते) तेरी (वरुणानी माता) वरुणानी माता है और (यमः पिता) यम पिता है । (अररुः नाम असि) तू अररु नामवाला है ॥ १ ॥

हे स्वप्न ! (ते जनित्रं विद्मः) तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं । तू (देवजामीनां पुत्रोऽसि) देवोंकी पत्नियोंका पुत्र है और (यमस्य करणः) यमके कार्योंका साधक है । तू (अंतकः असि) अंत करनेवाला है । (मृत्युः असि) तू मारनेवाला है । हे स्वप्न ! (तथा तं त्वा) उस प्रकारके विनाशक उस तुझको (सं विद्म) हम अच्छी तरह जानते हैं । (सः) वह तू स्वप्न ! (नः दुष्वप्न्यात्) बुरे स्वप्नसे हमारी (पाहि) रक्षा कर ॥ २ ॥

(यथा कलां यथा शफं) जिस प्रकार कला अर्थात् सोलहवां भाग और जिस प्रकार शफ अर्थात् आठवां भाग (यथा ऋणं सं नयन्ति) ऋणके अनुसार देते हैं (एवा सर्वं दुष्वप्न्यं) इस प्रकार सब दुष्ट स्वप्न (द्विषते संनयामसि) शत्रुके प्रति पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

दुष्ट स्वप्न

दुष्ट स्वप्न यमका पुत्र

देवानां- यहां देवानां का अर्थ इन्द्रियोंका है । स्वप्न इन्द्रियोंमें अमृतरूपसे बसा हुआ है । क्योंकि यह जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंके अनुभवोंसे उत्पन्न वासनाओंसे उत्पन्न होता है । हमारे अन्दर वासनायें स्थायी हैं, अतः स्वप्न उन वासनाओंसे उत्पन्न होनेसे अमृत है । अतएव उसे यहां अमृत गर्भसे उत्पन्न कहा गया है ।

अररुः- पीडा देनेवाला । हिंसक ' ऋ-गतिहिंसनयोः ' से बना है । तै. ब्रा. ३।२।९।४ के अनुसार अररुनामवाला असुर ।

वरुणानी- वरुण अर्थात् अंधकारकी पत्नी ।

इस प्रकार इस मन्त्रमें यमको स्वप्नका पिता कहा गया है । अर्थात् स्वप्न यमका पुत्र है । अतएव कईवार स्वप्नसे मृत्यु भी हो जाती है ।

*

दुष्ट स्वप्नका मृत्युसे संबंध है इसलिये पूर्व सूक्तमें कहा है कि दुष्ट स्वप्नसे बचनेके लिये विचारोंकी शुद्धता करनी चाहिये ।

इस मंत्रमें स्वप्नको देवपत्नियोंका पुत्र कहा गया है । पूर्व मंत्रकी टिप्पणीमें हमने स्वप्नकी उत्पत्ति दर्शाते हुए यह बताया था कि देव अर्थात् इन्द्रियोंके विषयोंसे उत्पन्न वासनाओंसे स्वप्नकी उत्पत्ति होती है । उसी कथनकी पुष्टि इस मन्त्रमें ' देवजामीनां पुत्रः असि ' से की गई है । देवों अर्थात् इन्द्रियोंकी पत्नियां इन्द्रियविषयजन्य वासनायें हैं । उनका स्वप्न पुत्र है । यहां पर विशेष बात कही गई वह यह कि स्वप्नको यमका करण बताया गया है । पाणिनि मुनिने करणका लक्षण अष्टाध्यायीमें किया है कि ' साधकतमं ' (अष्टा. १।४।४२) अर्थात् जो कार्य साधनेमें समीपतम साधन है वह करण है । कार्यसाधक सब साधनोंमें जो साधन अधिक आवश्यक है वह करण कहलाता है । इस लक्षणानुसार यमका स्वप्न करण है, इसका अभिप्राय यह हुआ, कि

यमके मारनेके कार्यमें स्वप्न सबसे अधिक आवश्यक साधन है। स्वप्नके इस विशेषणसे उसकी भयंकरताका अनुमान सहज किया जा सकता है।

इसी मन्त्रके भावको ही नीचे लिखे मन्त्रमें शब्दभेदसे कहा गया है—

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्नः।
स मम यः पापस्तद्द्विषते प्र हिण्मः।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् (अथ. १९।५७।३)

हे (देवानां पत्नीनां गर्भ) देवोंकी पत्नियोंके गर्भरूप तथा (यमस्य कर) यमके हाथ स्वप्न! (यो भद्रः) जो कल्याणकारी तेरा अंश है (सः) वह अंश (मम) मेरा होवे (यः पापः) और जो तेरा पापी अनिष्टकारी अंश है (तत्) उस अंशको (द्विषते) द्वेष करनेवालेके प्रति (प्रहिण्मः) हम भेजते हैं। (तृष्टानां) तृषितों—लोभियों क्रूरोंके बीचमें तू (कृष्णशकुनेः) काले पक्षीके-कौएके— (मुखं) मुखकी तरह (मा असि) हमारे लिये बाधक मत हो, अर्थात् जिस प्रकार लोभियोंको वा क्रूरोंके लिए कौएका मुख अनिष्टकारी होता है उस प्रकार तू हमारे लिए अनिष्टकारी मत हो।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः। (अथर्व. १६।५।१)

हे स्वप्न! (ते जनित्रं विद्म) तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं। तू (ग्राह्याः पुत्रः असि) ग्राहीका पुत्र है और (यमस्य करणः) यमके कार्योंका साधक है।

इस मन्त्रमें स्वप्नको ग्राहीका बेटा कहा है। गठिया आदि शरीरके जकडनेवाले रोग ग्राही कहलाते हैं। उन रोगोंके कारण शरीरमें पीडा बनी रहती है, जिससे निद्रा नहीं आती और यदि आई भी तो स्वप्नकीसी अवस्था बनी रहती है। अतएव स्वप्नको ग्राहीका पुत्र कहा है। यमस्य करणकी व्याख्या ऊपर कर आए हैं।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि। (अथर्व. १६।५।२;१६।५।९)

हे स्वप्न तू (अन्तकः असि) प्राणान्त करनेवाला है। तू (मृत्युः असि) मारनेवाला है।

निद्रा बराबर न आनेसे व रोज स्वप्न आनेसे स्वास्थ्य बिगडकर अन्तमें मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है, अतएव स्वप्न-को यहां अन्तक व मृत्युके नामसे कहा गया है।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि॥ (अथर्व. १६।५।४)

मंत्रका अर्थ हम ऊपर दे आए हैं। वहां पर ऐसा ही मंत्र आया है। इस मंत्रमें स्वप्नको निर्ऋतिका पुत्र कहा गया है। निर्ऋतिसे स्वप्नकी उत्पत्तिका अभिप्राय यह है कि निर्ऋति अर्थात् कष्ट, दुःख आदिसे मनुष्यको निद्रा नहीं आती। स्वप्न वह अवस्था है जिस अवस्थामें कि गाढ निद्राका अभाव होता है और कष्टादिकी दशामें मनुष्यको गाढ निद्रा नहीं आती। इसी अभिप्रायसे स्वप्नको निर्ऋतिका पुत्र कहा है।

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि०॥ (अथर्व. १६।५।४ वत् अथर्व. १६।५।५)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको अभूति अर्थात् अनैश्वर्य-दारिद्र्यका पुत्र कहा है। दरिद्रताके परितापसे भी मनुष्यको निद्रा नहीं आती। इस प्रकार गरीबीसे भी स्वप्न (वास्तविक निद्राका न आने) की उत्पत्ति है। शेष व्याख्या पूर्ववत् ही समझनी चाहिए।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि०॥ (अथर्व. १६।५।६)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको निर्भूतिका पुत्र कहा गया है। निर्भूतिका अर्थ है ऐश्वर्य-सम्पत्तिका निकल जाना, नष्ट हो जाना। सम्पत्तिशालीकी सम्पत्ति नष्ट हो जानेसे उसे भी निद्रा नहीं आती। वह सुखकी निद्रासे नहीं सो सकता। इस प्रकार सम्पत्ति विनाशका भी स्वप्न पुत्र है।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि०॥ (अथर्व. १६।५।७)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको पराभूतिका पुत्र कहा गया है। पराभूतिका अर्थ है पराभव अर्थात् हार जाना, तिरस्कारको प्राप्त होना। पराभवसे वा तिरस्कारसे मनुष्य-को इतना मानसिक कष्ट होता है कि उसके लिए निद्रा हराम हो जाती है और इस प्रकार पराभूतिसे स्वप्नकी उत्पत्ति होती है।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः। (अथर्व. १६।५।८)

हे स्वप्न तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं तू देवोंकी पत्नि-योंका पुत्र है और यमके कार्योंका साधक है। इस मन्त्रका भाव हम पूर्व दर्शा आए हैं। देवपत्नियोंका पुत्र स्वप्न किस प्रकार है यह वहां विशदरूपसे दर्शा आए हैं।

इस प्रकार यह अथर्ववेदके १६ वें काण्डका ५ वां सूक्त सम्पूर्ण यम व स्वप्न विषयक है जो कि हमने ऊपर दिया है। इस सूक्तसे व इससे दिए गए पहिलेके मन्त्रोंसे यम व स्वप्नका सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

वह अपने पिता यमके कार्योंका निकटतम साधक है। इसके अतिरिक्त स्वप्न अर्थात् वास्तविक निद्राका अभाव किन किन कारणोंसे होता है तथा उससे क्या दुष्परिणाम होते हैं, यमका करण किस प्रकार है, इत्यादि बातोंका उल्लेख इस सूक्तमें स्पष्ट रूपसे हमें देखनेको मिला है।

यह सूक्त बहुतसा दुर्बोध है, तथापि अथर्ववेदके अन्य सूक्तोंके साथ इसका विचार यहां करनेसे इसकी दुर्बोधता किंचित् कम हुई है। तथापि यह खोजका विषय है।

दुष्ट स्वप्न न आनेके उपाय

कां. ७, सू. १००

(ऋषिः- यमः। देवता- दुःस्वप्ननाशनम्।)

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात्पापात्स्वप्न्यादभूत्याः। ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥ १ ॥

अर्थ— मैं (पापात् दुष्वप्न्यात् पर्यावर्ते) पापसे दुष्ट स्वप्नसे पीछे हटता हूं। (अभूत्याः स्वप्न्यात्) अवनतिकारक स्वप्नसे पीछे रहता हूं। (अहं अन्तरं ब्रह्म कृण्वे) मैं बीचमें ज्ञानको रखता हूं। (स्वप्नमुखाः शुचः परा) मैं दुःस्वप्न आदि शोकजनक बातोंको दूर करता हूं ॥ १ ॥

पापसे दुष्ट स्वप्न, शारीरिक अवनति, तथा शोकमय स्वभाव बनता है। पाप शारीरिक, इंद्रियविषयक, मानसिक, वाचिक, और बौद्धिक मलोंसे होता है अथवा पापसे इनमें मलसंचय होता है। अतः पूर्वोक्त प्रकार इन स्थानोंके मल दूर करने चाहिये, जिससे पापोंके कम होनेसे दुष्ट स्वप्नोंको आना दूर होगा। शरीरादिकी शुद्धि करनेके उपाय इससे पूर्व कहे गये हैं। अपने और पापके बीचमें (ब्रह्म) अर्थात् ज्ञान किंवा परमेश्वरका भजन रखना चाहिये। इससे निःसंदेह पाप दूर होगा। मानसिक शान्ति प्राप्त होकर बुरे स्वप्न कदापि नहीं आवेंगे।

दुष्ट स्वप्न न आनेके उपाय

कां. ७, सू. १०१

(ऋषिः- यमः। देवता- स्वप्ननाशनः।)

यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते। सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद्दृश्यते दिवा ॥ १ ॥

अर्थ— (यत् स्वप्ने अन्नं अश्नामि) जो स्वप्नमें मैं अन्न खाता हूं वह (प्रातः न अधिगम्यते) सवेरे नहीं प्राप्त होता है। (तत् सर्वं मे शिवं अस्तु) वह सब मेरे लिये शुभ होवे। (तत् दिवा नहि दृश्यते) वह दिनके समय नहीं दीखता ॥ १ ॥

स्वप्नमें भोजनादि भोग भोगनेका जो दृश्य दीखता है, वह सवेरे उठनेपर या दिनमें नहीं दिखाई देता। अतः वह असत्य है। वह केवल मनकी विकृतिके कारण दीखता है। अतः ऐसे स्वप्न न दीखे इसलिये उत्तम ज्ञानपूर्वक यत्न करना चाहिये। जिसका वर्णन इससे पूर्व किया है।

अञ्जन

कां. ७, सू. ३०

(ऋषिः- भृग्वङ्गिराः । देवता- द्यावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च ।)

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् । स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥ १ ॥

अर्थ— (द्यावापृथिवी मे सु-आक्तं) द्युलोक और पृथ्वीलोक मेरी आंखोंको उत्तम अञ्जनसे युक्त करें। (अयं मित्रः स्वाक्तं अकः) यह मित्र मुझे अञ्जनसे युक्त करता है। (ब्रह्मणस्पतिः मे स्वाक्तं) ज्ञानपति देवने मुझे उत्तम अञ्जनसे युक्त किया है। (सविता स्वाक्तं करत्) सविताने भी मेरी आंखोंके लिये उत्तम अञ्जन बनाया है ॥ १ ॥

आंखमें अञ्जन डालकर आंखोंका आरोग्य बढानेकी सूचना इस मंत्रद्वारा मिलती है। द्युलोकसे पृथ्वीतक जो जो सृष्ट्यन्तर्गत सूर्यादि पदार्थ हैं, उनका जो तेजस्वी रूप है, वैसे मेरी आंखें बनें। यह इच्छा इस सूक्तमें स्पष्ट है। यह मन्त्र ज्ञानाञ्जनका भी सूचक माना जा सकता है। जिससे दृष्टि शुद्ध होती है वह अञ्जन होता है, फिर वह साधारण अञ्जन हो, अथवा ज्ञानाञ्जन हो।

मधुविद्या और गोमहिमा

कां. ९, सू. १

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- मधु, अश्विनौ।)

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १ ॥
महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥

अर्थ— (दिवः अन्तरिक्षात् पृथिव्याः) द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी, (समुद्रात् अग्नेः वातात्) समुद्रके जल, अग्नि और वायुसे (मधुकशा जज्ञे) मधुकशा उत्पन्न होती है। (अमृतं वसानां तां चायित्वा) अमृतको धारण करनेवाली उस मधुकशाको सुपूजित करके (सर्वाः प्रजाः हृद्भिः प्रतिनन्दन्ति) सब प्रजाजन हृदयसे आनंदित होते हैं ॥ १ ॥

(अस्याः पयः) इसका दूध (महत् विश्वरूपं) बडा विश्वरूप ही है। (उत त्वा समुद्रस्य रेतः आहुः) और तुझे समुद्रका वीर्य कहते हैं। (यतः मधुकशा रराणा एति) जहांसे यह मधुकशा शब्द करती हुई जाती है, (तत् प्राणः) वह प्राण है, (तत् निविष्टं अमृतं) वह सर्वत्र प्रविष्ट अमृत है ॥ २ ॥

भावार्थ— पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश और प्रकाशसे मधुर दूध देनेवाली गौ माता उत्पन्न हुई है, इस अमृत रूपी दूध देनेवाली गोमाताकी पूजा करनेसे सब प्रजाएं हृदयसे आनंदित होती हैं ॥ १ ॥

इस गौमाताका दूध मानो संपूर्ण विश्वकी बडी शक्ति है। अथवा मानो, यह संपूर्ण जलतत्त्वका सार है। जो यह शब्द करती हुई गौ है, वह सबका प्राण है और उसका दूध प्रत्यक्ष अमृत है ॥ २ ॥

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ ३ ॥
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान्भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥
मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद्विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥ ५ ॥
कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन्मदेत ॥ ६ ॥
स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ । ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

अर्थ— (बहुधा पृथक् मीमांसमानाः नरः) बहुत प्रकारसे पृथक् पृथक् विचार करनेवाले लोग (पृथिव्याः) इस पृथ्वीपर (अस्याः चरितं पश्यन्ति) इसके चरित्रका अवलोकन करते हैं। (मधुकशा अग्नेः वातान् जज्ञे) यह मधुकशा अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है। यह (मरुतां उग्रा नप्तिः) मरुतोंकी उग्र नातिन है ॥ ३ ॥

(आदित्यानां माता) यह आदित्योंकी माता, (वसूनां दुहिता) वसुओंकी दुहिता, (प्रजानां प्राणः) प्रजाओंका प्राण और (अमृतस्य नाभिः) अमृतका केन्द्र है, (हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची) सुवर्णके समान वर्णवाली यह मधुकशा घृतका सिंचन करनेवाली है, यह (मर्त्येषु महान् भर्गः चरति) मर्त्योंमें महान् तेज ही संचार करती है ॥ ४ ॥

(देवाः मधोः कशां अजनयन्त) इस मधुकी कशाको देवोंने बनाया है, (तस्याः विश्वरूपः गर्भः अभवत्) उसका यह विश्वरूप गर्भ हुआ है। (तं तरुणं जातं माता पिपर्ति) उस जन्मे हुए तरुणको वही माता पालती है, (सः जातः विश्वा भुवना विचष्टे) यह होते ही सब भुवनोंका निरीक्षण करता है ॥ ५ ॥

(तं कः प्रवेद) उसे कौन जानता है (तं कः उ चिकेत) उसका कौन विचार करता है ? (अस्याः हृदः) इसके हृदयके पास (यः सोमधानः कलशः अक्षितः) जो सोमरससे भरपूर पूर्ण कलश विद्यमान है, (अस्मिन्) इसमें (सः सुमेधाः ब्रह्मा) वह उत्तम मेधावाला ब्रह्मा (मदेत) आनंद करे ॥ ६ ॥

(सः तौ प्रवेद) वह उनको जानता है, (सः उ तौ चिकेत) वह उनका विचार करता है, (यौ अस्या सहस्रधारौ अक्षितौ स्तनौ) जो इसके सहस्रधारायुक्त अक्षय स्तन हैं वे (अनपस्फुरन्तौ ऊर्जं दुहाते) अविचलित होते हुए बलवान् रसका दोहन करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— विचार करनेवाले मनुष्य इस पृथ्वीपर इस गौका चरित्र देखते हैं। यह मधुर रस देनेवाली गौ अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है, अतः इसको मरुतों–वायुओंकी प्रभावशालिनी नातिन कहते हैं ॥ ३ ॥

यह गौ आदित्योंकी माता, वसुओंकी पुत्री, प्रजाओंका प्राण है और यही अमृतका केन्द्र है। यह उत्तम रंगवाली, घृत देनेवाली और मधुर रसका निर्माण करनेवाली गौ सब मर्त्योंमें एक बडे तेजकी मूर्ति ही है ॥ ४ ॥

देवोंने इस गौका निर्माण किया है, इसको सब प्रकारके रंगरूपका गर्भ होता है, बच्चा होनेके बाद वह उसका प्रेमसे पालन करती है, वह बडा होकर सब स्थानको देखती है ॥ ५ ॥

इस गौके अन्दर सोमरससे परिपूर्ण कलश अक्षयरूपसे रखा हुआ है, उस कलशको कौन जानता है और कौन भला उसका विचार करता है ? इसीके दुग्धरूपी रससे अपनी मेधाका वृद्धि करनेवाला ब्रह्मा आनंदित होता है ॥ ६ ॥

जो इस गौके दो स्तन हजारों धाराओंसे सदा अन्नरस देते हैं उनका महत्त्व कौन जानता है और कौन उनके महत्त्वका विचार करता है ? ॥ ७ ॥

हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन्घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८ ॥
याआपीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥ ९ ॥
स्तनयित्नुस्ते वाक्प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ १० ॥
यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः । एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११ ॥
यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः । एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१२॥
यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः । एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १३ ॥

अर्थ— (या हिंकरिक्रती) जो हिंकार करनेवाली (वयो-धा उच्चैर्घोषा) अन्न देनेवाली उच्च स्वरसे पुकारनेवाली (व्रतं अभ्येति) व्रतके स्थानको प्राप्त होती है। (त्रीन् घर्मान् अभि वावशाना) तीनों यज्ञोंको वशमें रखनेवाली (मायुं मिमाति) सूर्यका मापन करती है और (पयोभिः पयते) दूधकी धाराओंसे दूध देती है ॥ ८ ॥

(ये वृषभाः) जो वर्षासे भरनेवाले बैल (स्वराजः शाक्वराः आपः) तेजस्वी शक्तिशाली जल (या आपीनां उपसीदन्ति) जिस पान करनेवालीके पास पहुंचते हैं (तद्विदे कामं ऊर्जं) तत्त्वज्ञानीको यथेच्छ बल देनेवाले अन्नकी (ते वर्षन्ती) वे वृष्टि करते हैं, (ते वर्षयन्ति) वे वृष्टि कराते हैं ॥ ९ ॥

हे (प्रजापते) प्रजापालक ! (ते वाक् स्तनयित्नुः) तेरी वाणी गर्जना करनेवाला मेघ है, तू (वृषा) बलवान् होकर (भूम्यां अधि शुष्मं क्षिपसि) भूमिपर बलको फेंकता है। (अग्नेः वातात् मधुकशा हि जज्ञे) अग्नि और वायुसे मधुकशा उत्पन्न हुई है, यह (मरुतां उग्रा नप्तिः) मरुतोंकी उग्र नातिन है ॥ १० ॥

(यथाः सोमः प्रातःसवने) जैसे सोमरस प्रातःसवन यज्ञमें (अश्विनौः प्रियः भवति) अश्विनीदेवोंको प्रिय होता है, हे अश्विदेवो ! (एवा मे आत्मनि) इसी प्रकार मेरी आत्मामें (वर्चः ध्रियतां) तेज धारण कराओ ॥ ११ ॥

(यथा सोमः द्वितीये सवने) जैसे सोमरस द्वितीयसवन–माध्यंदिनसवन–यज्ञमें (इन्द्राग्न्योः प्रियः भवति) इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है, हे इन्द्र और अग्नि ! इसी प्रकार मेरी आत्मामें तेज धारण कराओ ॥ १२ ॥

जैसे सोम (तृतीये सवने) तृतीयसवन–सायंसवन–यज्ञमें (ऋभूणां प्रियः भवति) ऋभुओंको प्रिय होता है, हे ऋभुदेवो ! इस प्रकार मेरी आत्मामें तेज धारण कराओ ॥ १३ ॥

भावार्थ— अन्न देनेवाली, उच्च स्वरसे हिंकार करनेवाली यह गौ यज्ञभूमिमें विचरती है, तीनों यज्ञोंका पालन करती हुई यज्ञके द्वारा कालका मापन करती है और यज्ञके लिए अपना दूध देती है ॥ ८ ॥

जो बैल अपने तेज और बलसे पुष्ट गौओंके समीप होते हैं, वे तत्त्वज्ञानीको यथेच्छ बल देनेवाले अन्नकी वृष्टी करते और कराते हैं ॥ ९ ॥

हे प्रजापालक देव ! मेघगर्जना तेरी वाणी है, उससे तू भूमिके ऊपर अपना बल फेंकता है, वही गाय और बैलके रूपसे अग्नि और वायुका सत्वांश लेकर उत्पन्न हुआ है ॥ १० ॥

जिस प्रकार सोम प्रातःसवनमें अश्विनीदेवोंको प्रिय होता है, उसी प्रकार मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बढे ॥ ११ ॥

जैसे सोम माध्यंदिनसवनमें इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है, वैसे ही मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बढे ॥ १२ ॥

जिस तरह सोम सायंसवनमें ऋभुओंको प्रिय होता है, उसी तरह मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बढे ॥ १३ ॥

मधुं जनिषीय मधुं वंशिषीय । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥ १५ ॥
यथा मधुं मधुकृतः संभरन्ति मधावधिं । एवा मे अश्विना वर्चं आत्मनिं ध्रियताम् ॥ १६ ॥
यथा मक्षां इदं मधुं न्यञ्जन्ति मधावधिं । एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥१७॥
यद्गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधुं । सुरायां सिच्यमानायां यत्तत्र मधु तन्मयिं ॥ १८ ॥
अश्विना सारघेणं मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती । यथा वर्चस्वतीं वाचंमावदानि जनाँ अनुं ॥ १९ ॥

अर्थ— (मधु जनिषीय) मिठास उत्पन्न करूं, (मधु वंशिषीय) मिठास प्राप्त करू। हे अग्ने ! (पयस्वान् आगमं) दूध लेकर मैं आगया हूं, (तं मा वर्चसा संसृज) उस मुझको तेजसे संयुक्त कर ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! (मा वर्चसा) मुझे तेजसे (प्रजया आयुषा) प्रजासे और आयुसे (सं सं सं सृज) संयुक्त कर। (अस्य मे देवाः विद्युः) इस मुझे सब देव जानें, (ऋषिभिः सह इन्द्रः विद्यात्) ऋषियोंके साथ इन्द्र भी मुझे जानें ॥ १५ ॥

(यथा मधुकृतः) जैसे मधुमक्खियां (मधौ अधि) अपने मधुमें (मधु संभरन्ति) मधु संचित करती हैं, हे अश्विदेवो ! (एवा मे) इस प्रकार मेरा (वर्चः तेजः बलं ओजः च) ज्ञान, तेज, बल और वीर्य (ध्रियतां) संचित हो, बढता जाय ॥ १६ ॥

(यथा मक्षाः) जैसे मधुमक्षिकाएं (इदं मधु) इस मधुको (मधौ अधि न्यञ्जन्ति) अपने पूर्वसंचित मधुमें संग्रहीत करती हैं, इस प्रकार हे अश्विदेवो ! मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो, बढे ॥ १७ ॥

(यथा गिरिषु पर्वतेषु) जैसे पहाडों और पर्वतोंपर और (गोषु अश्वेषु यत् मधु) गौवों और अश्वोंमें जो मिठास है, (सिच्यमानायां सुरायां) सिंचित होनेवाले वृष्टिजलमें (तत्र मत् मधु) जो मधु है। (यत् महि) वह मुझमें हो ॥ १८ ॥

हे (शुभस्पती अश्विनौ) शुभके पालक अश्विदेवो ! (सारघेण मधुना मा सं अंक्तं) मधुमक्खियोंके मधुसे मुझे युक्त करो। (यथा) जिससे (जनान् वर्चस्वतीं वाचं) लोगोंके प्रति तेजस्वी भाषण (अनु आवदानि) मैं बोलूं ॥ १९ ॥

भावार्थ— मधुरता उत्पन्न करता हूं, मधुरता संपादन करता हूं, हे देव ! मैं दूध समर्पण करनेके लिये आया हूं, अतः मुझे इस तेजसे युक्त कर ॥ १४ ॥

हे देव ! मुझे तेज, प्रजा और दीर्घ आयुसे युक्त कर। देव इस मेरे अभिलषितको जानें और ऋषि भी समझ लें ॥१५

जिस प्रकार मधुमक्खियां अपने मधुस्थानमें स्थान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, उस प्रकार मेरे अन्दर ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो जावे ॥ १६ ॥

जैसे मधुमक्खियां अपने मधुस्थानमें स्थान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, उस प्रकार मेरे अन्दर ज्ञान, तेज, बल और वीर्य भरता रहे ॥ १७ ॥

जैसे पहाडों और पर्वतों, गौओं और घोडों और वृष्टि जलमें मधुरता है, वैसी मधुरता मेरे अन्दर हो जावे ॥ १८ ॥

हे देवो ! मुझे उस मधुमक्खियोंके मधुसे संयुक्त कीजिये। जिससे मैं यह मिठासका संदेश संपूर्ण जनोंके पास पहुंचाऊं ॥ १९

स्तनयित्नुस्ते वाक्प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥ २० ॥
पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत्प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥ २१ ॥
यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान्भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥
मधुमान्भवति मधुमदस्याहार्यं भवति । मधुमतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥ २३ ॥
यद्वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत्प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
तस्मात्प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥ २४ ॥

अर्थ— हे (प्रजापते) प्रजापालक ! तू (वृषा) बलवान् है और (ते वाक् स्तनयित्नुः) तेरी वाणी मेघगर्जना है, तू (भूम्यां दिवि) भूमिपर और द्युलोकमें (शुष्मं क्षिपसि) बलकी वर्षा करता है, (तां सर्वे पशवः उपजीवन्ति) उसपर सब पशुओंकी जीविका होती है और (तेन उ सा इषं उर्जं पिपर्ति) उससे वह अन्न और बलवर्धक रसकी पूर्णता करता है ॥ २० ॥

(पृथिवी दण्डः) पृथिवी दण्ड है, (अन्तरिक्षं गर्भः) अन्तरिक्ष मध्यभाग है, (द्यौः कशा) द्युलोक तन्तु हैं, (विद्युत् प्रकशः) बिजुली उसके धागे हैं और (हिरण्ययः बिन्दुः) सुवर्णमय बिन्दु हैं ॥ २१ ॥

(यः वै कशायाः सप्त मधूनि वेद) जो इस कशाके सात मधु जानता है, वह (मधुमान् भवति) मधुवाला होता है। (ब्राह्मणः च राजा च) ब्राह्मण और राजा, (धेनु च अनड्वान् च) गाय और बैल, (व्रीहिः च यवः च) चावल और जौ तथा (मधु सप्तकं) सातवां मधु हैं ॥ २२ ॥

(यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (मधुमान् भवति) मधुवाला होता है, (अस्य आहार्यं मधुमत् भवति) उसका सब संग्रह मधुयुक्त होता है और (मधुमतः लोकान् जयति) मीठे लोकोंको प्राप्त करता है॥ २३ ॥

(यत् वीध्रे स्तनयति) जो आकाशमें गर्जना होती है, (प्रजापतिः एव तत्) प्रजापति ही वह (प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति) प्रजाओंके लिये, मानो, प्रकट होता है। (तस्मात् प्राचीनोपवीतः तिष्ठे) इसलिए दायें भागमें वस्त्र लेकर खडा होता हूं, हे (प्रजापते) प्रजापालक ईश्वर ! (मा अनु बुध्यस्व) मेरा स्मरण रखो। (यः एवं वेद) जो यह जानता है, (एनं प्रजाः अनु) इसके अनुकूल प्रजाएं होती हैं तथा इसको (प्रजापतिः अनुबुध्यते) प्रजापति अनुकूलतापूर्वक स्मरणमें रखता है ॥ २४ ॥

भावार्थ— हे प्रजापालक देव ! तू बलवान् है और मेघगर्जना तेरी वाणी है। तू ही द्युलोकसे भूलोकतक बलकी वृष्टि करता है, सब जीव उसपर जीवित रहते हैं। वह अन्न और बल हम सबको प्राप्त हो ॥ २० ॥

भूमि दण्ड, अन्तरिक्ष मध्यभाग, द्युलोक बडे बाल और बिजली सूक्ष्म बाल हैं और उसपर सुवर्णका बिंदू भूषणके सदृश है। यह गौका विश्वरूप है ॥ २१ ॥

जो इस गौके सात मीठे रूप जानता है, वह मधुर बनता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, गाय, बैल, चावल और जौ और शहद सातवां है। गौके ये सात मीठे रूप हैं ॥ २२ ॥

जो इस बातको जानता है, वह मधुर होता है, मधुवाला होता है और मीठे स्थान प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

जो आकाशमें गर्जना होती है, मानो वह परमेश्वर संपूर्ण प्रजाओंके लिए प्रकट होकर उपदेश करता है। उस समय लोग ऐसी प्रार्थना करें कि 'हे देव ! हे प्रजापालक ! मेरा स्मरण करे, मुझे न भूल जा।' जो इस प्रकार प्रार्थना करना जानता है, प्रजाजन उसके अनुकूल होते हैं और प्रजापालक परमेश्वर भी उसका भला करता है ॥ २४ ॥

मधुविद्या और गोमहिमा

सात मधु

इस सूक्तमें विशेष कर गौकी महिमा वर्णित है। इस सूक्तका भावार्थ विचारपूर्वक पढनेसे पाठक स्वयं इस सूक्तमें कही गोमहिमा जान सकते हैं। वेदकी दृष्टिसे गौका महत्त्व कितना है, यह बात इस सूक्तके प्रत्येक मंत्रमें सुबोध रीतिसे दर्शायी है।

यह गौ संपूर्ण जगत्का सत्त्व है, यह पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश और प्रकाशका सार है। इस गौमें अमृत रस है जिसका पान करनेसे सब प्रजाजन आनंदित और हृष्टपुष्ट होते हैं। इसका दूध मानो संपूर्ण जगत्के पदार्थोंका वीर्य ही है, वही सबका प्राण और वही अद्भुत अमृत है। विशेष मननशील मनुष्य ही इस गौके महत्त्वको जानते हैं और अनुभव कर सकते हैं। यह गौ देवोंकी माता है और यही सब प्रजाजनोंका प्राण है, क्योंकि इसमें अमृतका मधुर रस भरा है। जो इसका दूध पीते हैं वे माने अपने अंदर अमृत रस लेते हैं और उस कारण वे दीर्घायुषी होते हैं। संपूर्ण अमृत रसका केन्द्र स्रोत इस गौके अंदर है।

अमृतका कलश

यह गौ संपूर्ण देवोंने अपनी दिव्य शक्तियोंसे उत्पन्न की है। उन्होंने इसके दुग्धाशयमें अमृतका घडा रखा है। जो अपनी मेधाबुद्धि बढाना चाहते हैं, वे इस दूधरूपी अमृतको अवश्य पीयें। इस गौके स्तनोंसे जो दुग्धरूपी रस निकलता है, वह मानो अद्भुत बल देनेवाला रस है।

यह अन्नरस देती है, यज्ञ कराती है, व्रत धारण कराती है और अपने दूधसे पुष्ट करती है। बैल भी हम सबको अनंत प्रकारके सुख देता है। जिस प्रकार सोमरस देवोंको प्रिय होता है, उस प्रकार गायका दूध मनुष्योंको प्रिय होवे और उससे मनुष्योंका तेज बढे। जिस प्रकार मधुमक्खियां थोडा थोडा मधु इकट्ठा करती हैं और अपने मधुस्थानमें उसका संग्रह करती हैं, इसी प्रकार मनुष्योंको उचित है कि वे इन मधुमक्खियोंका अनुकरण करें और अपने अन्दर ज्ञान, तेज, बल, वीर्य और पराक्रम बढावें। शनैः शनैः प्रयत्न करनेपर मनुष्य इन बातोंको अपने अन्दर बढा सकता है।

पहाडों पर्वतों और संपूर्ण जगत्में सर्वत्र मधु भरा है, वह मधुरता मेरे अन्दर आवे। इस गौके रूपसे परमेश्वरकी अद्भुत शक्ति ही पृथ्वीपर मनुष्योंकी उन्नतिके लिए आयी है। यह बात स्मरणमें अवश्य रखिये।

इस मधुरताके सात रूप इस पृथ्वीपर हैं, एक मधुरता ब्राह्मणोंमें ज्ञान रूपसे है, दूसरी मधुरता क्षत्रियोंमें पराक्रमके रूपसे विद्यमान है, इसी प्रकार गौ, बैल, चावल, जौ और शहदमें भी मधुरता है। अतः जो मनुष्य यह बात जानता है वह इन सात पदार्थोंसे अपनी उन्नति करता है।

अतिथि सत्कार

कां. ९, सू ६

(ऋषिः- ब्रह्मा। देवता- अतिथिः, विद्या।)

यो वि॒द्याद्ब्रह्म॑ प्र॒त्यक्षं॒ परूं॑षि॒ यस्य॑ संभा॒रा ऋचो॒ यस्या॑नू॒क्य॑म् ॥ १ ॥
सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑नि॒ यजु॒र्हृद॑यमु॒च्यते॒ परि॒स्तर॑ण॒मिद्ध॒विः ॥ २ ॥

अर्थ— (यः प्रत्यक्षं ब्रह्म विद्यात्) जो प्रत्यक्ष ब्रह्मको जानता है, (यस्य परूंषि संभाराः) उसके अवयव यज्ञसामग्री हैं, (यस्य अनूक्यं ऋचः) उसकी रीढ ऋचाएं हैं॥ (यस्य लोमानि सामानि) उसके बाल साम हैं और उसका (हृदयं यजुः उच्यते) हृदय यजु है ऐसा कहा जाता है। तथा उसका (परिस्तरणं इत् हविः) ओढनेका वस्त्र हवि है ॥ १-२ ॥

यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥
यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ॥ ४ ॥
या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥
यत्तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥ ६ ॥
यदावसथान्कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति ॥ ७ ॥
यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥ ८ ॥
यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥ ९ ॥
यत्कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥ १० ॥
यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥ ११ ॥
यत्पुरा परिवेषात्खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥ १२ ॥
यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥ १३ ॥
ये व्रीहयो यवा निरूप्यन्तेंऽशव एव ते ॥ १४ ॥
यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥ १५ ॥

अर्थ—(यत् वै अतिथिपतिः) जो गृहस्थ (अतिथीन् प्रतिपश्यति) अतिथियोंकी ओर देखता है, मानो वह (देवयजनं प्रेक्षते) देवयज्ञको ही देखता है ॥ (यत् अभिवदति दीक्षां उपैति) जो अतिथिसे बात करता है वह यज्ञदीक्षा लेनेके समान है । (यत् उदकं याचति) जो वह जल मांगता है और (अपः प्र णयति) जल उससे आगे धर देता है ॥ वह मानो (याः एव यज्ञे आपः प्रणीयन्ते) जो यज्ञमें जल ले जाते हैं (ताः एव ताः) वही जल है ॥ ३-५ ॥

(यत् तर्पणं आहरन्ति) जो पदार्थ अतिथिकी तृप्ति करनेके लिए ले आते हैं, (यः एव अग्नीषोमीयः पशुः बध्यते स एव सः) वह मानो अग्नि और सोमके लिये पशु बांधा जाता है, वही वह है ॥ (यत् आवसथान् कल्पयन्ति) जो अतिथिके लिए स्थानका प्रबंध करते हैं (सदोहविर्धानानि एव तत् कल्पयन्ति) वह मानो यज्ञमें सद और हविर्धानकी रचना करना ही है ॥ (यत् उपस्तृणन्ति) जो बिछाया जाता है, (बर्हिः एव तत्) वह मानो यज्ञकी कुशा घास ही है ॥ (यत् उपरिशयनं आहरन्ति) जो उसपर बिछौना लाते हैं (तेन स्वर्गं लोकं अवरुन्द्धे) उससे स्वर्ग लोक ही मानो समीप जाते हैं ॥ ६-९ ॥

(यत् कशिपु उपबर्हणं आहरन्ति) जो चादर और सिरहना-अतिथिके लिए ले आते हैं, वह मानो यज्ञके (ते परिधयः एव) परिधि हैं ॥ (यत् आञ्जन-अभ्यञ्जनं आहरन्ति) जो आंखोंके लिए अञ्जन और शरीरके मलनेके लिए तेल लाते हैं, वह मानो (तत् आज्यं एव) वह घृत ही है ॥ १०-११ ॥

(यत् परिवेशात् पुरा) जो भोजन परोसनेके पूर्व अतिथिके लिये (खादं आहरन्ति) खानेके हेतुसे लाते हैं, वह मानो (तौ पुरोडाशौ एव) पुरोडाश हैं ॥ (यत् अशनकृतं ह्वयन्ति) जो भोजन बनानेवालेको बुलाते हैं, वह मानो (हविष्कृतं एव तत् ह्वयन्ति) हविकी सिद्धता करनेवालेको बुलाना है ॥ १२-१३ ॥

(ये व्रीहयो यवा निरूप्यन्ते) जो चावल और जौ देखे जाते हैं (ते अंशवः एव) वे सोमलताके खण्ड ही हैं ॥ (यानि उलूखलमुसलानि) जो ओखली और मुसल अतिथिके लिए धान्य कूटनेके काम आते हैं, मानो (ते ग्रावाणः एव) वे सोमरस निकालनेके पत्थर ही हैं ॥ १४-१५ ॥

शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥ १६ ॥
स्रुग्दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥ १७ ॥

[२]

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३मिति ॥ १८ ॥
यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ १९ ॥
उप हरति हवींष्या सादयति ॥ २० ॥
तेषामासन्नानामतिथिरात्मञ्जुहोति ॥ २१ ॥
स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥ २२ ॥
एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥ २३ ॥
स य एवं विद्वान्न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—(शूर्पं पवित्रं) अतिथिके लिए जो छाज बर्ता जाता है वह यज्ञमें बर्ते जानेवाले पवित्रके समान है, इसी प्रकार (तुषा ऋजीषा) धानके तुष सोमरस छाननेके बाद अवशिष्ट रहनेवाले सोमतन्तुओंके समान हैं। (अभिषवणीः आपः) अतिथिभोजनके लिए प्रयुक्त होनेवाला जल यज्ञके जलके समान है ॥ (दर्वी स्रुक्) कडछी स्रुचाके समान है, (आयवनं ईक्षणं) पकते समय अन्नका हिलाना यज्ञके ईक्षण कर्मके समान है, (कुम्भ्यः द्रोणकलशाः) पकानेके डेगची आदि पात्र यज्ञके द्रोणकलशोंके समान हैं, (पात्राणि वाय = व्यानि) अतिथिके लिए जो अन्य पात्र लाये जाते हैं वे यज्ञके वायव्य पात्र ही हैं और (इयं एव कृष्णाजिनं) यही कृष्णाजिन है ॥ १६–१७ ॥

[२] (इदं भूयाः इदं इति) यह अधिक या यह ठीक है ऐसा जो (आहार्याणि प्रेक्षते) अतिथिको देनेयोग्य पदार्थोंका निरीक्षण करता है, वह (अतिथिपतिः) अतिथिका पालन करनेवाला यजमान (एतत्) इससे मानो (यजमानब्राह्मणं वै कुरुते) यजमानके ब्राह्मणके समान कार्य करता है ॥ १८ ॥

(यत् आह) जो कहता है कि (भूयः उद्धर इति) अधिक परोस कर अतिथिको दो, तो (तेन) इससे वह (प्राणं वर्षीयांसं एव कुरुते) अपने प्राणको चिरस्थायी बनाता है ॥ जो उसके पास अन्नादि (उपहरति) ले जाता है, वह मानो (हवींषि आसादयति) हविके पदार्थ लाता है ॥ १९–२० ॥

(तेषां आसन्नानां) उन लाये पदार्थोंमेंसे कुछ पदार्थोंका (अतिथिः आत्मन् जुहोति) अतिथि अपने अन्दर हवन करता है, वह भोजन स्वीकारता है ॥ (हस्तेन स्रुचा) हाथरूपी स्रुचासे, (प्राणे यूपे) प्राणरूपी यूपमें (स्रुक्कारेण वषट्कारेण) भोजन खानेके 'स्रुक् स्रुक्' ऐसे शब्दरूपी वषट्कारसे वह अपनेमें एक एक आहुति डालता है ॥ (यत् अतिथयः) जो ये अतिथि हैं वे (प्रियाः अप्रियाः च) प्रिय हों अथवा अप्रिय हों, वे (ऋत्विजः) आतिथ्य यज्ञके ऋत्विज यजमानको (स्वर्गं लोकं गमयन्ति) स्वर्गलोकको पहुंचाते हैं ॥ २१–२३ ॥

(यः एवं विद्वान्) इस तत्त्वको जानता हुआ (सः द्विषन् न अश्नीयात्) वह किसीका द्वेष करता हुआ न भोजन करे । (द्विषतः अन्नं न अश्नीयात्) द्वेष करनेवाले भोजन न खावे (न मीमांसितस्य) संशयित आचरणवाले मनुष्यका भोजन न खावे और (न मीमांसमानस्य) न संदेह करनेवालेका अन्न अतिथि खावे ॥ २४ ॥

भावार्थ— अतिथि घरमें आनेपर उसके लिये जो जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे मानो यज्ञके अन्दर प्रयुक्त होनेवाले पदार्थोंके समान ही हैं। अर्थात् अतिथिका सत्कार करना एक यज्ञ करनेके समान ही है ॥ १–१७ ॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥ २५ ॥
सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥ २६ ॥
सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो विततांध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति ॥ २७ ॥
प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ॥ २८ ॥
प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति ॥ २९ ॥
योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन्पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥ ३० ॥

[३]

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३१ ॥
पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३२ ॥
ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३३ ॥
प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३४ ॥
कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३५ ॥
श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३६ ॥

अर्थ—(यस्य अन्नं अश्नन्ति) जिसका अन्न अतिथि लोग खाते हैं, (सर्वः वै एष जग्धपाप्मा) उसके सब पाप जल जाते हैं। तथा (यस्य अन्नं न अश्नन्ति) जिसका अन्न अतिथि नहीं खाते (सर्वः वै एष अजग्धपाप्मा) उसके सब पाप वैसेके वैसे रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

(यः उपहरति) जो गृहस्थ अतिथिकी सेवाके लिए आवश्यक सामग्री उसके पास ले जाता है, वह मानो (सर्वदा वै एषः युक्तग्रावा) वह सदासर्वदा सोमरस निकालनेके पत्थरोंसे रस निकालता ही रहता है, वह सर्वदा (आर्द्र पवित्रः) रस छानता रहता है, जिसकी छाननी सदा गीली रहती है; वह (वितत-अध्वरः) सदा यज्ञ करता है, वह सदा (आहृत, यज्ञ क्रतुः) यज्ञ समाप्त करनेके समान रहता है ॥ २७ ॥

(यः उपहरति) जो अतिथिको समर्पण करता है, वह मानो (एतस्य प्राजापत्यः वै यज्ञः विततः) उसके प्राजापत्य यज्ञका फैलाव हुआ है ॥ (यः उपहरति) जो अतिथिको दान देता है वह मानो (प्रजापतेः विक्रमान् अनु-विक्रमते) प्रजापतिके विक्रमोंका अनुकरण करता है ॥ २८-२९ ॥

(यः अतिथीनां) जो अतिथियोंके शरीरमें पाचक अग्नि है (सः आहवनीयः) वह आहवनीय अग्नि है, (यः वेश्मनि सः गार्हपत्यः) जो घरमें अग्नि होती है वह गार्हपत्य अग्नि है, (यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः) जिसपर अन्न पकाते हैं वह दक्षिणाग्नि है ॥ ३० ॥

[३] (यः अतिथेः पूर्व अश्नाति) जो अतिथिके पूर्व स्वयं भोजन करता है (एष) वह (ग्रहणां इष्टं च वै पूर्तं च अश्नाति) अपने घरके इष्ट और पूर्तको ही खाजाता है ॥ जो अतिथिके भोजन करनेके पूर्व भोजन करता हैं, वह मानो घरके (पयः च रसं च) दूध और रसको; (उर्जां च स्फातिं च) अन्न और समृद्धिको, (प्रजां च पशून् च) प्रजा और पशुको, (कीर्तिं च यशः च) कीर्ति और यशको, (श्रियं च संविदं च) श्री और संज्ञानको (अश्नाति) खाजाता है ॥ ३१-३६ ॥

भावार्थ— अतिथिका योग्य आदर-सत्कार करना मानो बडे बडे यज्ञ करनेके समान है ॥ १८-३० ॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात्पूर्वो नाश्नीयात् ॥ ३७ ॥
अशितावत्यतिथावश्नीयाद्यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥ ३८ ॥
एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ॥ ३९ ॥

[४]

स य एवं विद्वान्क्षीरमुपसिच्योपहरति । यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ४० ॥
स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति । यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ४१ ॥
स य एवं विद्वान्मधूपसिच्योपहरति । यावत्सत्त्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ४२ ॥
स य एवं विद्वान्मांसमुपसिच्योपहरति । यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ४३ ॥
स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ।
प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ ४४ ॥

अर्थ— (एष वै अतिथिः यत् श्रोत्रियः) यह अतिथि निश्चयसे श्रोत्रिय है (तस्मात् पूर्वः न अश्नीयात्) इसलिए उससे पूर्व स्वयं भोजन करना उचित नहीं है ॥ ३७ ॥

(अतिथौ अशितावति अश्नीयात्) अतिथिके भोजन करनेके पश्चात् गृहस्थ स्वयं भोजन करे । (यज्ञस्य सात्मत्वाय) यज्ञकी पूर्णताके लिए (यज्ञस्य अविच्छेदाय) यज्ञका भंग न होनेके लिये (तत् व्रतं) यह व्रत पालन करना गृहस्थीको योग्य है ॥ ३८ ॥

(एतत् वै उ स्वादीयः) वह जो स्वादयुक्त है (यत् अधिगवं क्षीरं वा मांसं वा) जो गौसे प्राप्त होनेवाले दूध या अन्य मांसादि पदार्थ हैं (तत् एव न अश्नीयात्) उसमेंसे कोई पदार्थ अतिथिके पूर्व भी न खावे ॥ ३९ ॥

[४] (यः एवं विद्वान्) जो इस बातको जानता हुआ अतिथिके लिए (क्षीरं उपसिच्य उपहरति) दूध अच्छे पात्रमें रखकर ले जाता है, उसको (यावत् सुसमृद्धेन अग्निष्टोमेन इष्ट्वा अवरुन्धे) जितना उत्तम समृद्ध अग्निष्टोम यज्ञका यजन करनेसे फल मिलता है, (तावत् एतेन अवरुन्धे) उतना इससे मिलता है ॥ ४० ॥

(यः एवं विद्वान्) जो इस बातको जानता हुआ अतिथिके लिए (सर्पिः उपसिच्य उपहरति) घी बर्तनमें रख कर ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है कि जितना किसीको उत्तम (सुसमृद्धेन अतिरात्रेण) समृद्ध अतिरात्र नामक यज्ञ करनेसे प्राप्त हो सकता है ॥ ४१ ॥

जो इस बातको जानता हुआ मनुष्य अतिथिको देनेके लिए (मधु उपसिच्य उपहरति) मधु अर्थात् शहद उत्तम पात्रमें रखकर अतिथिके पास ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है कि जितना किसीको (सुसमृद्धेन सत्त्रसद्येन इष्ट्वा) उत्तम समृद्ध सत्त्रसद्य नामक यज्ञके करनेसे मिलता है ॥ ४२ ॥

जो इस बातको जानता हुआ (मांसं उपसिच्य) मांसको पात्रमें डालकर अतिथिके पास ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है जितना उत्तम समृद्ध (द्वादशाहेन इष्ट्वा) द्वादशाह यज्ञके करनेसे किसीको प्राप्त हो सकता है ॥ ४३ ॥

जो इस बातको जानता हुआ (उदकं उपसिच्य) जल उत्तम पात्रमें डालकर अतिथिके पास ले जाता है, वह (प्रजानां प्रजननाय प्रतिष्ठां गच्छति) प्रजाओंके प्रजनन अर्थात् उत्पत्तिके लिए स्थिरताको प्राप्त होता है और (प्रजानां प्रियः भवति) प्रजाओंके लिए प्रिय होता है ॥ ४४ ॥

भावार्थ— अतिथिका भोजन पहिले होवे, पश्चात् जो अवशिष्ट बचा हो वह घरके मनुष्य खावें । कभी किसी अवस्थामें अतिथिके भोजन करनेके पूर्व घरका कोई मनुष्य भोजन न करे । ऐसा करनेसे गृहस्थ–यज्ञकी पूर्णता होती है । प्रत्येक गृहस्थ इस व्रतका पालन करे ॥ ३१–३९ ॥

जो गृहस्थी उत्तम श्रद्धासे दुग्धादि पदार्थ उत्तम स्वच्छ पात्रमें रखकर अतिथिको समर्पण करनेकी बुद्धिसे उसके पास ले आता है, उसको बडे बडे यज्ञ यथासांग करनेका फल प्राप्त होता है ॥ ४०–४४ ॥

[५]

तस्मा॑ उ॒षा हिङ्कृ॑णोति सवि॒ता प्र स्तौ॑ति ।
बृह॒स्पति॑रू॒र्जयोद्गा॑यति॒ त्वष्टा॑ पु॒ष्ट्या प्रति॑ हरति॒ विश्वे॑ दे॒वा नि॒धन॑म् ।
नि॒धनं॒ भूत्याः॑ प्र॒जायाः॑ प॒शूनां॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ४५ ॥
तस्मा॑ उ॒द्यन्त्सूर्यो॒ हिङ्कृ॑णोति सं॒गवः॒ प्र स्तौ॑ति ।
म॒ध्यन्दि॑न॒ उद्गा॑यत्यपरा॒ह्णः प्रति॑ हरत्यस्तं॒यन्नि॒धन॑म् ।
नि॒धनं॒ भूत्याः॑ प्र॒जायाः॑ प॒शूनां॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ४६ ॥
तस्मा॑ अ॒भ्रो भ॒वन्हिङ्कृ॑णोति स्त॒नय॒न्प्र स्तौ॑ति ।
वि॒द्योत॑मानः॒ प्रति॑ हरति॒ वर्ष॑न्नु॒द्गा॑यत्युद्गृ॒ह्णन् नि॒धन॑म् ।
नि॒धनं॒ भूत्याः॑ प्र॒जायाः॑ प॒शूनां॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ।
अति॑थी॒न्प्रति॑ पश्यति॒ हिङ्कृ॑णोत्य॒भि व॑दति॒ प्र स्तौ॑त्युद॒कं या॑च॒त्युद्गा॑यति ॥ ४७ ॥
उप॑ हरति॒ प्रति॑ हर॒त्युच्छि॑ष्टं नि॒धन॑म् । नि॒धनं॒ भूत्याः॑ प्र॒जायाः॑ प॒शूनां॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ४८ ॥

अर्थ— [५] (यः एवं वेद) जो इस अतिथिसत्कारके व्रतको जानता है (तस्मै) उस मनुष्यके लिये (उषा हिंकृणोति) उषा आनन्द-सन्देश देती है, (सविता प्र स्तौति) सूर्य विशेष प्रशंसा करता है, (बृहस्पतिः ऊर्जया उद्गायति) बृहस्पति बलके साथ उसके गुणोंका गान करता है, (त्वष्टा पुष्ट्या प्रतिहरति) त्वष्टा उसको पुष्टि प्रदान करता है, (विश्वेदेवाः निधनं) सब अन्य देव उसको आश्रय प्रदान करते हैं। अतः वह (भूत्याः प्रजायाः पशूनां निधनं भवति) संपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान बनता है ॥ ४५ ॥

जो इस अतिथि सत्कारके व्रतको जानता है, (तस्मै उद्यन् सूर्यः हिंकृणोति) उसके लिये उदय होता हुआ सूर्य आनन्दका सन्देश देता है, (संगवः प्र स्तौति) प्रभात समय प्रशंसा करता है, (मध्यंदिनः उद्गायति) मध्यदिन उसका गुण गान करता है, (अपराह्णः प्रति हरति) अपराह्ण समय पुष्टि देता है, (अस्तं यत् निधनं) अस्त जाता हुआ सूर्य आश्रय देता है। इस प्रकार संपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान होता है ॥ ४६ ॥

जो इस अतिथिसत्कारके व्रतको जानता है, (तस्मै अभ्रः भवन् हिंकृणोति) उसके लिये उत्पन्न होनेवाला मेघ आनन्द सन्देश देता है, (स्तनयन् प्रस्तौति) गर्जना करनेवाला मेघ प्रशंसा करता है, (विद्योतमानः प्रतिहरति) प्रकाशनेवाला पुष्टि देता है, (वर्षन् उद्गायति) वृष्टि करता हुआ मेघ इसका गुणगान करता है (उद्गृह्णन् निधनं) ऊपर लेनेवाला आश्रय देता है। इस प्रकार यह संपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान होता है ॥ ४७ ॥

जो इस अतिथिसत्कारके व्रतको जानता है वह जब (अतिथीन् पश्यति) अतिथियोंका दर्शन करता है तो मानो वह (हिंकृणोति) आनन्दका शब्द करता है, जब वह अतिथियोंको (अभिवदति) नमस्कार करता है, तो वह कृत्य उसके (प्रस्तौति) प्रस्ताव करनेके समान होता है। जब वह (उदकं याचति) जल मांगता है तो मानो वह (उद्गायति) यज्ञके उद्गाताका कार्य करता है। (उपहरति प्रतिहरति) जब वह पदार्थ अतिथिके पास लाता है, तो वह यज्ञके प्रतिहर्ताका कार्य करता है। (उच्छिष्टं निधनं) जो अन्नादिक अतिथिके भोजन करनेके पश्चात् अवशिष्ट रहता है उसको यज्ञका अन्तिम प्रसाद समझो। इस प्रकार अतिथिसत्कार करनेवाला संपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान बनता है ॥ ४८ ॥

भावार्थ— हिंकार, प्रस्ताव, उद्गान, प्रतिहार और निधन ये पांच अंग सामके हैं। अतिथिसत्कार करनेवालेको ये पांचों इस प्रकार सिद्ध होते हैं। अर्थात् अतिथिसत्कार एक श्रेष्ठ यज्ञका पूर्ण साम है। अतिथिसत्कार ही गृहस्थीका परम पवित्र और श्रेष्ठ कर्म है ॥ ४५-४८ ॥

[६]

यत्क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥४९॥
यत्प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥५०॥
यत्परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥५१॥
तेषां न कश्चनाहोता ॥५२॥
यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥५३॥
यत्सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ॥५४॥
स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यत्पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥५५॥
स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥५६॥
स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यद्दिवि विश्वरूपम् ॥५७॥
स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यद्देवेषु विश्वरूपम् ॥५८॥
स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यल्लोकेषु विश्वरूपम् ॥५९॥
स उपहूत उपहूतः ॥६०॥
आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥६१॥
ज्योतिष्मतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥६२॥

अर्थ— [६] (यत् क्षत्तारं व्हयति) जब वह द्वारपालको बुलाता है, मानो (तत् आश्रावयति एव) वह अभिश्रवण करता है। (यत् प्रतिशृणोति) जब वह सुनता है, मानो (तत् प्रत्याश्रावयति एव) वह प्रत्याश्रवण ही है। जब अतिथिके लिए (पूर्वे च अपरे च परिवेष्टारः पात्रहस्ताः प्रपद्यन्ते) पहिले और बादके परोसनेवाले सेवक पात्र हाथोंमें लेकर उसके पास आते हैं, मानो (ते चमसाध्वर्यव एव) यज्ञके चमसाध्वर्यु हैं॥ (तेषां न कश्चन अहोता) उनमें कोई भी अयाजक नहीं होता है ॥ ४९-५२॥

(यत् वै अतिथिपतिः अतिथीन् परिविष्य) जो गृहस्थी अतिथियोंको भोजन देकर (गृहान् उप उदैति) अपने घरके प्रति जाता है, मानो (तत् अवभृथं एव उप अवैति) वह अवभृथ स्नानके लिये ही जाता है। (यत् सभागयति) जो भेट करता है, मानो वह (दक्षिणाः सभागयति) दक्षिणा प्रदान करता है। (यत् अनुतिष्ठते) जो उसके लिये अनुष्ठान करता है मानो (तत् उदवस्यति एव) वह यज्ञ यथासांग करता है ॥ ५३-५४ ॥

(सः पृथिव्यां उपहूतः) वह इस पृथ्वीपर किसी देशमें आदरसे बुलाये अतिथि (यत् पृथिव्यां विश्वरूपं) जो कुछ इस पृथ्वीपर अनेक रंगरूपवाला अन्न है (तस्मिन् उपहूतः भक्षयति) उसको वहां निमंत्रित होकर खाता है। वह आदरसे बुलाया हुआ अतिथि (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षमें, (दिवि) द्युलोकमें, (देवेषु) देवताओंमें और (लोकेषु) सब लोकोंमें जो (विश्वरूपं) अनेक रंगरूपवाला अन्न होता है, उसको वहां बैठा हुआ (भक्षयति) भक्षण करता है ॥ ५५-५९ ॥

(सः उपहूतः) वह आदरसे निमंत्रित किया हुआ अतिथि बहुत लाभ देता है ॥ अतिथिको आदरके साथ बुलानेवाला गृहस्थी (इमं लोकं आप्नोति) इस लोकको प्राप्त करता है और (अमुं आप्नोति) उस लोकको भी प्राप्त करता है। (यः एवं वेद) जो इस अतिथिसत्कारके व्रतको जानता है वह (ज्योतिष्मतः लोकान् जयति) तेजस्वी लोकोंको प्राप्त करता है ॥ ६०-६२ ॥

अतिथिका आदर

अतिथिका आदरसत्कार प्रेमके साथ करनेका उपदेश करनेके लिये ये ६२ मंत्र इस सूक्तके छः पर्यायोंमें दिये हैं। ये मंत्र सरल होनेसे इनकी व्याख्या विशेष करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अतिथिसत्कारसे विविध प्रकारके यज्ञ यथासांग करनेका फल प्राप्त होता है अर्थात् जो अतिथिसत्कार उत्तम श्रद्धासे करेगा, उसको अन्यान्य यज्ञयाग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ-धर्मका यह प्रधान अंग अतिथिसत्कार है।

इन मंत्रोंमें 'मांस' शब्द आया है। इस मांस शब्दके अन्य अर्थ भी होते होंगे, परंतु यहाँ 'मांस' अर्थ अपेक्षित है ऐसा हमारा मत है और यह लेनेपर भी कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि मांसभोजी मनुष्यके घरमें कोई अतिथि आवे, तो अतिथिके पूर्व वह मांस भी न खावे, इत्यादि भाव यहां लेना योग्य है। वेदमें जैसे निर्मांसभोजी मनुष्योंका वर्णन है वैसे ही मांसभोजियोंका भी वर्णन है।

ब्राह्मणको कष्ट

कां ५, सू. १९

(ऋषिः- मयोभूः। देवता- ब्रह्मगवी।)

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्। भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥ १ ॥
ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन्ब्राह्मणं जनाः। पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥ २ ॥
ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन्ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे। अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान्खादन्त आसते ॥ ३ ॥
ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत्साभि विजङ्गहे। तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥

अर्थ— (सृञ्जयाः) हमला करके जय प्राप्त करनेवाले वीर (अतिमात्रं अवर्धन्त) अत्यन्त बढे, (न दिवं इव उत्स्पृशन्) इतने कि द्युलोकको स्पर्श करने लगे। परंतु वे (वैत-हव्याः) देवोंका अन्न स्वयं भोगने लगे तब (भृगुं हिंसित्वा) भृगुऋषिकी हिंसा करके (पराभवन्) पराभूत होगये ॥ १ ॥

(ये जनाः बृहत्सामानं) जो लोग बडे सामगायक (आंगिरसं ब्राह्मणं आर्पयन्) आंगिरस ब्राह्मणको सताते रहे, (तेषां तोकानि) उनकी संतानोंको (पेत्वः अविः) हिंसक (उभयादं आवयत्) दोनों दांतोंके बीचमें रगडता रहा ॥ २ ॥

(ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन्) जो ब्राह्मणका अपमान करते हैं, (मे वा अस्मिन् शुल्कं ईषिरे) अथवा जो इससे धन छीनना चाहते हैं, (ते अस्नः कुल्यायाः मध्ये) वे रुधिरकी नदीके बीचमें (केशान् खादन्त आसते) केशोंको खाते हुए बैठते हैं ॥ ३ ॥

(सा पच्यमाना ब्रह्मगवी) वह हडप की गई ब्राह्मणकी गौ (यावत् अभि विजङ्गहे) जिस कारण तडपती रहती है, उस कारण उस (राष्ट्रस्य तेजः निर्हन्ति) राष्ट्रका तेज मारा जाता है और वहां (वृषा वीरः न जायते) बलवान् वीर भी उत्पन्न नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ— विजयी क्षत्रिय बहुत बढ गये थे, परंतु जब वे ब्राह्मणोंको सताने लगे और देवोंके लिये दिया हव्य स्वयं भोगने लगे, तब राज्यभ्रष्ट होगये ॥ १ ॥

जिन्होंने सामगायक आंगिरस ब्राह्मणको सताया था, उनके बालबच्चोंको हिंसक पशुओंने दांतोंसे पीसा था ॥ २ ॥

जो ब्राह्मणका अपमान करते हैं और उससे धन छीनते हैं, वे रुधिरकी नदीमें बालोंको खाते रहते हैं ॥ ३ ॥

जो ब्राह्मणकी गाय हडप करता है, उस क्षत्रियके राष्ट्रका तेज नष्ट होता है और उसमें बलवान् वीर नहीं उत्पन्न होते ॥ ४ ॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते । क्षीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम् ॥ ५ ॥
उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति । परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥
अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः । द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥७॥
तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् । ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥ ८ ॥
तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति । यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥ ९ ॥
विषमेतद्देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् । न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥ १० ॥
नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥ ११ ॥

अर्थ— (अस्याः आशसनं क्रूरं) इसको कष्ट देना बडा क्रूरताका कार्य है, (पिशितं तृष्टं अस्यते) मांस तो तृषा बढानेवाला होनेके कारण फेंकने योग्य है। (यत् अस्याः क्षीरं पीयते) जो इस ब्राह्मणकी गौका दूध पीया जाता है (तत् वै पितृषु किल्बिषं) वह निःसंदेह पितरोंमें पाप कहा जाता है ॥ ५ ॥

(यः राजा उग्रः मन्यमानः) जो राजा अपने आपको उग्र मानता हुआ (ब्राह्मणं जिघत्साति) ब्राह्मणको सताता है और (यत्र ब्राह्मणः जीयते) जहां ब्राह्मणको कष्ट पहुंचता है (तत् राष्ट्रं परासिच्यते) वह राष्ट्र बहुत गिर जाता है ॥ ६ ॥

(अष्टापदी चतुरक्षी) आठ पांववाली, चार आंखोंवाली, (चतुः श्रोत्रा चतुर्हनुः) चार कानोंवाली और चार हनुवाली (द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा) दो मुखवाली और दो जिह्वावाली होकर (ब्रह्मज्यस्य राष्ट्रं सा अवधूनुते) ब्राह्मणको सतानेवाले राजाके राष्ट्रको वह हिला देती है ॥ ७ ॥

(यत्र ब्राह्मणं हिंसन्ति) जहां ब्राह्मणको कष्ट पहुंचते हैं (तत् राष्ट्रं दुच्छुना हन्ति) वह राष्ट्र विपत्तिसे मरता है और (तत् वै राष्ट्रं) वह राष्ट्रको उसी प्रकार (आ स्रवति) गिरा देता है, (उदकं भिन्नां नावं इव) जैसे जल टूटी हुई नौकाको बहा देता है ॥ ८ ॥

(नः छायां मा उपगाः इति) हमारी छायामें यह न आवे, इस इच्छासे (तं वृक्षाः अपसेधन्ति) उसको वृक्ष दूर हटा देते हैं। हे नारद ! (यः ब्राह्मणस्य धनं सत् अभिमन्यते) जो ब्राह्मणका धन बलसे अपना मानता है ॥ ९ ॥

(याः नव नवतयः) जो निन्यानवे प्रकारकी प्रजाएं हैं (ताः भूमिः एव वि अधूनुत) उनको भूमिने ही हटा दिया है। वे (कल्याणीं ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा) कल्याण करनेवाली ब्राह्मण प्रजाको कष्ट देकर (असंभव्यं पराभवन्) असंभवनीय रीतिसे परास्त हुए ॥ ११ ॥

(राजा वरुणः अब्रवीत्) वरुण राजाने कहा है कि (एतत् देवकृतं विषं) यह देवोंका बनाया विष है। (ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) ब्राह्मणकी गायको हडप कर (कश्चन राष्ट्रे न जागार) कोई भी राष्ट्रमें नहीं जागता ॥१०॥

भावार्थ— गायको कष्ट देना बडी क्रूरताका कार्य है। दूसरेकी गायका दूध पीना भी विषके समान ही है ॥ ५ ॥

अपने आपको बलवान् मानता हुआ जो राजा ब्राह्मणको सताता है, उसका राष्ट्र गिर जाता है ॥ ६ ॥

ब्राह्मणकी गाय दुःखी होनेपर द्विगुणित मारक सींग आदिसे युक्त होकर उसके राष्ट्रका नाश करती है ॥ ७ ॥

जहां ब्राह्मण सताया जाता है वह राष्ट्र विपत्तिमें गिरता है। टूटी नौकाके समान वह बीचमें ही डूब जाता है ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मणका धन छीनता है उसको वृक्ष भी अपनी छायामें आने नहीं देते ॥ ९ ॥

राजा वरुणने कहा है कि ब्राह्मणकी गौको हडप करना विष पीनेके समान हानिकारक है, उसको स्वीकार करनेसे कोई भी जीवित नहीं रह सकता ॥ १० ॥

निन्यानवे वीर जिन्होंने सब भूमिपर विजय प्राप्त की थी वे जब ब्राह्मणोंको सताने लगे तब वे परास्त होगये ॥ ११ ॥

*

यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् । तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥
अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥
येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥
न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति । नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥ १५ ॥

अर्थ— (यां पदयोपनीं कूद्यं) जिस पादचिन्हको हटानेवाली कांटोंवाली झाडूको (मृताय अनुबध्नन्ति) मृतके साथ बांधते हैं, हे (ब्रह्म-ज्य) ब्राह्मणको सतानेवाले ! (देवाः तत् ते उपस्तरणं अब्रुवन्) देवोंने कहा है कि वह तेरा बिस्तर है ॥ १२ ॥

हे (ब्रह्म-ज्य) ब्राह्मणको सतानेवाले ! (यानि अश्रूणि) जो आंसू (कृपमाणस्य जीतस्य वावृतुः) निर्बल और जीते गये मनुष्यके बहते हैं। (देवाः तं वै ते अपां भागं अधारयन्) देवोंने उसको ही तेरा जलका भाग निश्चय किया है ॥ १३ ॥

हे (ब्रह्मज्य) ब्राह्मणको सतानेवाले ! (येन मृतं स्नपयन्ति) जिससे प्रेतको स्नान कराते हैं, (येन श्मश्रूणि च उन्दते) जिस पानीसे मूंछ दाढीके बाल भिगोये जाते हैं, (तं वै देवाः ते अपां भागं अधारयन्) उसको ही देवोंने तेरा जलभाग निश्चय किया है ॥ १४ ॥

(मैत्रावरुणं वर्षं) मित्रावरुणसे प्राप्त होनेवाली वृष्टि (ब्रह्मज्यं न अभिवर्षति) ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेके ऊपर नहीं गिरती और (अस्मै समितिः न कल्पते) इसको सभा सहमति नहीं देती (न मित्रं वशं नयते) और न मित्र इसके वशमें रहते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ— कांटेकी झाडू जो स्मशानको झाडनेके काममें आती है, उसपर वह मनुष्य सोता है कि जो ब्राह्मणको सताता है ॥ १२ ॥

निर्बल होनेके कारण पराजित हुए मनुष्यकी आंखमें जो आंसू आते हैं, उन आंसूओंका जल उसको पीनेके लिये दिया जाता है, जो ब्राह्मणको सताता है ॥ १३ ॥

जिस जलसे मुर्देको स्नान कराते हैं और जो जल हजामत करनेके समय दाढी मूछ भिगोनेके काम आता है, वह जल उसको मिलता है, कि जो ब्राह्मणको कष्ट देता है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेके राष्ट्रपर अच्छी वृष्टि नहीं होती, राष्ट्रसभा वैसे राजाके लिये अनुकूल नहीं होती और वैसे क्षत्रियका कोई मित्र नहीं रहता ॥ १५ ॥

ब्राह्मणको कष्ट

ज्ञानीका कष्ट

ज्ञानी मनुष्यको दिया हुआ कष्ट राज्यका नाश करता है। जिस राज्य शासनमें ज्ञानी सज्जनोंको कष्ट भोगने पडते हैं वह राज्यशासन नष्ट हो जाता है। जिस राज्यशासनमें ज्ञानी लोगोंकी वाणीपर रोक लगाया जाता है, उनको उत्तम उपदेश देनेसे रोका जाता है, जहां सुविज्ञ ज्ञानी पुरुषोंकी धनसंपत्ति सुरक्षित नहीं होती, जहां अन्य प्रकारसे ज्ञानी सज्जनोंको क्लेश पहुंचते हैं, वह राष्ट्र अधोगतिको प्राप्त होता है।

यह आशय इस सूक्तका है। राष्ट्रमें ज्ञानकी और ज्ञानीकी पूजा होती रहे। क्योंकि ज्ञानोपदेशसे ही राष्ट्रका सच्चा कल्याण हो सकता है। इसलिये हरएक राष्ट्रके लोग ज्ञानीका सत्कार करें और अपनी उन्नतिके भागी बनें।

अन्त्येष्टिकी कुछ बातें

इस सूक्तका विचार करनेसे कुछ बातोंका पता लगता है, देखिये—

(१) मृतं स्नपयन्ति- मृत मनुष्यके शवको स्नान कराते हैं।

(२) मृताय पदयोपनीं कूद्यं अनुबध्नन्ति- मृतके पांवका चिह्न मिटानेवाली झाडूसे अथवा किसी अन्य चीजसे बांधते हैं। (इसमें 'कूद्य' का अर्थ ठीक प्रकार समझमें नहीं आता है। यह खोजका विषय है।)

हजामत

(३) श्मश्रूणि उन्दते-हजामत बनवाने समय बाल भिगोये जाते हैं।

इस सूक्तके कुछ कथनोंका ठीक ठीक भाग समझमें नही आता है, इस कारण यह सूक्त क्लिष्टसा प्रतीत होता है। उन मंत्रोंका अधिक विचार पाठक करें।

पशुको क्लीब बनाना

कां. ६, सू. १३८

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– वनस्पतिः ।)

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे । इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥ १ ॥

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि । अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥ २ ॥

क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् । ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ४ ॥

यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना । एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे ओषधे ! (त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा अभिश्रुता) तू औषधियोंमें सबसे अधिक श्रेष्ठ सर्वत्र प्रसिद्ध है । (अद्य इमं मे पूरुषं) आज इस मेरे पुरुषपशुको (क्लीवं ओपशिनं कृधि) क्लीब और स्त्रीसदृश कर ॥ १ ॥

(क्लीवं ओपशिनं कृधि) क्लीब और स्त्रीसदृश कर। (अथो कुरीरिणं कृधि) और सिरपर बाल रखनेवाला कर। (अथ इन्द्रः ग्रावभ्यां) और इन्द्र दो पत्थरोंसे (अस्य उभे आण्डयौ भिनत्तु) इसके दोनों अण्डकोष छिन्नभिन्न करे ॥ २ ॥

हे क्लीब ! (त्वा क्लीवं अकरं) तुझे क्लीब बना दिया है। हे (वध्रे) निर्बल ! (त्वा वध्रिं अकरं) तुझे निर्बल बना दिया है। हे (अरस) रसहीन ! (त्वा अरसं अकरं) तुझे रसहीन बना दिया है। (अस्य शीर्षणि कुरीरं) इसके सिरपर बाल और उनमें (कुम्बं च अधिनिदध्मसि) आभूषण भी धर देते हैं ॥ ३ ॥

(ये ते देवकृते नाड्यौ) जो तेरी देवों द्वारा बनाई नाडियां हैं, (ययोः वृष्ण्यं तिष्ठति) जिनमें वीर्य रहता है, (ते ते अधिमुष्कयोः अधि) वे तेरे दोनों अण्डकोषोंको (अमुष्या शम्यया भिनद्मि) इस दण्डेसे तोड देता हूं ॥४॥

(यथा स्त्रियः कशिपुने नडं अश्मना भिन्दन्ति) जिस प्रकार स्त्रियां चटाई बनानेके लिये नरकुलेको (घास) पत्थरोंसे कूटती हैं। (एवा असुष्य ते शेपः) इसी प्रकार तेरी इंद्रिय (ते मुष्कयोः अधि भिनद्मि) तेरे अण्ड-कोषोंके उपर कूटता हूं ॥ ५ ॥

बैल घोडा आदि पुरुष पशुओंको पुरुषत्वसे हीन बनानेके लिये वीर्यकी नाडियोंको तोडना, अंडोंको कूटना, नपुंसक बनाना आदिकी विधि इसमें लिखी है। किसी औषधिका प्रयोग भी कहा है, परंतु उस औषधिके नामका पता नहीं लगत है। वीर्य नाडियां काटना, अण्डकोशोंको तोडना, इत्यादि बातें आज भी प्रसिद्ध हैं।
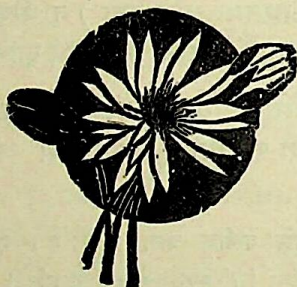
अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद
'गृहस्थाश्रम'
सुभाषित

दम्पती—वरवधूके कर्तव्य (कां. ६; सू. १२२)

१. दम्पती ! अनु आरभेथां, अनु संरभेथां तस्य गुप्तये श्रयेथाम् (३)– हे स्त्रीपुरुषो ! अनुकूलतासे शुभकार्यका प्रारंभ करो, अनुकूलतासे बचत करो और बचे हुए धनकी रक्षा करनेके लिए एक दूसरेका सहारा लो ।

कन्यादान

२. इमाः यज्ञियाः शुद्धाः पूताः योषितः ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि (५)- इस पूज्य और पवित्र स्त्रियोंको ज्ञानियोंके हाथमें पृथक् पृथक् रूपसे देता हूँ ।

(कां. १; सू. १४)

१. वृक्षात् अधिस्रजं इव अस्याः भगं वर्चः आदिषि (१)– जिस प्रकार वृक्षसे माला बनानेके लिए फूल तोडते हैं, उसी प्रकार इस कन्यासे भाग्य और तेज मैं प्राप्त करता हूँ ।

२. आ शीर्ष्णः समोप्यात् पितृषु ज्योक् आस्ताम् (१)– सिर सजाने अर्थात् विवाहके समयतक कन्या माता पिताके घर चिरकालतक रहे ।

(कां. २; सू. ३६)

१. अस्यै पत्या सौभाग्यं अस्तु (१)– उसको पतिके साथ सौभाग्य प्राप्त हो ।

२. वरेषु जुष्टा समनेषु वल्गु (१)– वह वृद्धजनोंमें प्रिय और उत्तम मनवालोंमें मनोरम हो ।

३. इयं नारी पतिं विदेष्ट (३)– यह स्त्री पति प्राप्त करे ।

४. सोमः राजा सुभगां कृणोति (३)– सोमराज उसे सौभाग्यशाली करे ।

५. पुत्रान् सुवामा महिषी भवाति (३)– पुत्रोंको उत्पन्न कर वह घरकी रानी होती है ।

६. सुभागा पतिं गत्वा विराजतु (३)– सौभाग्यवती होकर पतिके पास जाकर विराजे ।

७. पत्या अविराधयन्ती भगस्य जुष्टा इयं नारी संप्रिया अस्तु (४)– पतिसे विरोध न करती हुई वह भाग्यशाली स्त्री पतिको प्रिय हो ।

८. भगस्य नावं आरोह तया उप प्रतारय, यः वरः प्रतिकाम्यः (५)– ऐश्वर्यरूपी नाव पर चढ और अपने लायक पतिके पास जा ।

(कां. ६; सू. ६०)

१. धाता अस्यै अग्रुवै प्रतिकाम्यं पतिं दधातु (३)– सबको आधार देनेवाला देव इस कन्याके लिए इच्छा करनेवाला पति देवे ।

(कां. १४; सू. १)

१. सविता मनसा शंसन्तीं सूर्यां पत्ये अददात् (९)– सविताने जानसे भी प्रिय अपनी कन्या पतिको दी ।

२. इतः बन्धनात् प्रमुंचामि न अमुतः (१७)- इतः प्रमुंचामि न अमुतः सुबद्धां करम् (१८)– पिताके घरसे तुझे मुक्त करता हूँ, पर पतिके कुलसे ऐसी मजबूतीसे बांधता हूं कि तू वहांसे कभी छूट न सके ।

३. ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनम् (१९)- सत्यके और पुण्यशालियोंके स्थानमें जो सुख प्राप्त हो सकता है, वह उसे पतिगृहमें प्राप्त हो ।

४. गृहान् गच्छ, गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं (२०)– पतिके घरमें यह नववधू जाकर वहां सबको वशमें करनेवाली होकर रहे ।

५. अथ जिर्विः विदथं आवदासि (२१)- इस प्रकार अनेक वर्ष पर्यन्त जीवित रहकर गृहस्थाश्रम चलानेके बाद अपने अनुभव दूसरोंको उपदेशके रूपमें दे ।

६. इह ते प्रजायै प्रियं समृध्यतां (२१)- इस घरमें तेरी सन्ततिके लिए प्रिय पदार्थोंकी समृद्धि हो।

७. अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि (२१)- इस घरमें गृहस्थधर्मके पालनके लिए जागृत रहो।

८. एना पत्या तन्वं संस्पृशस्व (२१)- इस पतिके शरीरसे अपने शरीरका स्पर्श कर।

९. इह एव स्तं, मा वि यौष्टं (२२)- यहीं रहो, कभी भी एक दूसरेसे अलग मत होओ।

१०. पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ, मोदमानौ स्वस्तकौ विश्वं आयुः व्यश्नुतं (२२)- तुम दोनों पुत्रों और नातियोंके साथ खेलते हुए, खुश होते हुए तथा घरबारसे युक्त होते हुए सम्पूर्ण आयुका उपभोग करो।

११. शामुल्यं परा देहि (२५)- उत्तम वस्त्रोंका दान करो।

१२. ब्रह्मभ्यः वसु विभज (२५)- ब्राह्मणोंको धनका दान कर।

१३. युवं ऋत-उद्येषु ऋतं वदन्तौ (३१)- तुम दोनों पतिपत्नी सत्य व्यवहार करो और सत्य बोलो।

१४. समृद्धं भगं सं भरतं (३१)- समृद्धि युक्त भाग्य तुम्हें प्राप्त हो।

१५. संभलः एतां चारु वाचं वदतु (३१)- पति पत्नीसे सुन्दर और मधुरतासे बोले।

१६. पन्थानः अनृक्षराः ऋजवः सन्तु (३४)- मार्ग कांटे रहित और सरल व सीधे हों।

१७. धाता भगेन वर्चसा सं सृजातु (३४)- परमेश्वर इस स्त्रीको भाग्य और तेजसे युक्त करे।

१८. वर्चसा इमां अवतं (३५)- तेजसे इस स्त्री की रक्षा करो।

१९. भद्रः रोचनः तं उदचामि (३८)- जो कल्याणमय और तेजस्वी है उसे मैं अपने पास लाता हूँ।

२०. अवीरघ्नी आपः उदजन्तु (३९)- पुत्रोंका नाश न करनेवाले जल उसे मिलते रहें।

२१. हिरण्यं शं आपः शं सन्तु (४०)- सुवर्ण उसका कल्याण करनेवाला हो और जल भी सुखदायक हों।

२२. सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिं आशासाना पत्युः अनुव्रताः भूत्वा अमृताय कं सं नह्यस्व (४२)- उत्तम मन, संतति, सौभाग्य और धनकी इच्छा करनेवाले तू पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली होकर अमृतत्वकी प्राप्तिके लिए तैय्यार हो।

२३. त्वं पत्युः अस्तं परेत्य साम्राज्ञी एधि (४३)- तू पतिके घर जाकर वहां साम्राज्ञी होकर रह।

२४. श्वशुरेषु देवृषु ननान्दुः उत श्वश्र्वाः साम्राज्ञी एधि (४४)- ससुर, देवर, ननंद और सास इन सबमें साम्राज्ञी होकर रह।

२५. याः देवीः अकृन्तन् याः च अवयन् या च तत्निरे या च अन्तान् अभितः अददन्त, ताः त्वा जरसे सं व्ययन्तु, आयुष्मतीदं वासः परिधत्स्व (४५)- जिस देवीने स्वयं सूत काता है, जिसने बुना है, जिसने ताने बाने डाले हैं, जिसने किनारे ठीक किए हैं, वे सब तुझे वृद्धावस्थातक वस्त्र मिलते रहें, इसलिए बुनते रहें, अपनी आयुको दीर्घ करते हुए तू इन वस्त्रोंको पहन।

२६. सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु (४७)- सविता तेरी आयु दीर्घ करें।

२७. ते हस्तं गृह्णामि, मा व्यथिष्ठाः मया सह प्रजया धनेन च (४८)- तेरा हाथ मैं पकडता हूँ, तू दुःखी मत हो, मेरे साथ प्रजा और धनसे युक्त होकर रह।

२८. सोमः राजा सुप्रजसं कृणोतु (४९)- सोम राजा तुझे उत्तम सन्तानसे युक्त करे।

२९. जातवेदाः अग्निः पत्ये सुभगां पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु (४९)- जातवेद अग्नि पतिके लिए इस स्त्रीको वृद्धावस्थातक जीवित रखे।

३०. ते हस्तं सौभगत्वाय गृह्णामि (५०)- तेरा हाथ सौभाग्यके लिए पकडता हूँ।

३१. मया पत्या जरदष्टिः असः (५०)- मुझ पतिके साथ तू वृद्धावस्थातक जीवित रह।

३२. त्वा मह्यं गार्हपत्याय अदुः (५०)- तू मुझे गृहस्थाश्रम चलानेके लिए दी गई है।

३३. त्वं धर्मणा पत्नी असि (५१)- तू धर्मसे मेरी पत्नी हो गई है।

३४. अहं तव गृहपतिः (५१)- मैं तेरे घरका स्वामी हूँ।

३५. इयं मम पोष्या अस्तु (५२)- यह मेरे द्वारा पोषणके योग्य है।

३६. बृहस्पतिः त्वा मह्यं अदात् (५२)- बृहस्पतिने तुझे मेरे लिए दिया है।

३७. हे प्रजावति ! मया पत्या शरदः शतं संजीव (५२)- हे प्रजासे युक्त स्त्री ! मुझ पतिके साथ सौ वर्ष-तक तू अच्छीतरह जीवित रह।

३८. इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु (५४)- इस स्त्रीको प्रजासे बढाओ ।

३९. इमां नारीं पत्ये संशोभयामसि (५५)- इस स्त्रीको हम पतिके लिए अच्छी तरह सुशोभित करते हैं ।

४०. अस्याः रूपं मयि (५७)- इसका रूप केवल मेरे लिए ही है ।

४१. न स्तेयं आश्मि (५७)- मैं चोरीका अन्न नहीं खाता ।

४२. स्वयं पाशान् श्रथ्नानः मनसा उद् अमुच्ये (५७)- मैं स्वयं बन्धन तोडकर मनसे मुक्त होता हूँ ।

४३. अत्र उरुं लोकं सुगं पंथां कृणोमि (५८)- यहां विस्तृत कार्यक्षेत्र और अच्छीतरह जानेके लायक मार्ग तैय्यार करता हूँ ।

४४. उद्यच्छध्वं रक्षः अपहनाथ (५९)- शस्त्रोंको ऊपर उठाकर राक्षसोंको मारो ।

४५. इमां नारीं सुकृते दधात (५९)- इस स्त्रीको पुण्यकर्मोंके लिए स्वीकार करो ।

४६. सा नः सुमंगली अस्तु (६०)- वह हमारा कल्याण करनेवाली हो ।

४७. सुकिंशुकं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं वहतुं आरोह (६१)- उत्तम सुन्दर फूलोंसे सजाए गए, सोनेके समान चमकनेवाले, उत्तम कपडोंसे सजाए गए बैठकवाले तथा उत्तम पहियोंवाले रथमें बैठ ।

४८. अभ्रातृघ्नीं अपतिघ्नीं अपशुघ्नीं पुत्रिणीं अस्मभ्यं वह (६२)- भाईयोंका, पतिका और पशुओंका नाश न करनेवाली तथा पुत्रोंको जन्मदेनेवाली स्त्री हमें प्राप्त हो ।

४९. देव्याः शालायाः द्वारं वधूपथं स्योनं कृण्मः (६३)- गृहरूपी देवताके द्वारपर वधूका मार्ग सुखमय करता हूँ ।

५०. पतिलोके शिवा स्योना विराज (६४)- अपने पतिके घर कल्याण और सुख देनेवाली होकर रह ।

(कां. १४; सू. २)

१. सः नः पतिभ्यः प्रजया सह जायां दाः (१) वह तू हम सबको प्रजाके साथ पत्नियां मिलें ऐसा कर ।

२. आयुषा वर्चसा पत्नीं अग्निः अदात् (२) जीवन और तेजसे युक्त पत्नी अग्निने दी है ।

३. अस्याः पतिः दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति (२)- इसका पति दीर्घायुवाला होकर सौ वर्ष तक जीवित रहे ।

४. सा मन्दसाना शिवेन मनसा सर्ववीरं वचस्यं रयिं धेहि (६)- आनन्दसे रहनेवाली वह स्त्री शुभविचार युक्त मनसे सब वीर पुत्रोंके साथ रहती है । वह हमें प्रशंसनीय धन देवे ।

५. पथिष्ठां स्थाणुं दुर्मतिं हतं (६)- मार्गमें रहनेवाले और विघ्नकारी दुष्टोंको मार ।

६. प्रजावतिं त्वा पत्ये रक्षसः रक्षन्तु (७)- संतान उत्पन्न करनेवाली तुझ स्त्रीको पतिके लिए राक्षसोंसे सुरक्षित रखे ।

७. इमं सुगं स्वस्तिवाहनं पंथां आरुक्षाम (८)- इस सुगम और कल्याण करनेवाले रास्ते पर हम चलें ।

८. यस्मिन् वीरः न रिष्यति अन्येषां वसु विन्दते (८)- जिसमें पुत्र मरता नहीं और दूसरोंकी अपेक्षा धन अधिक मिलता है ।

९. सुगेन दुर्गं अतीतां (११)- आसानीसे संकटोंको पार कर जा ।

१०. अरातयः अप द्रान्तु (११)- शत्रु दूर भाग जावें ।

११. सविता पतिभ्यः स्योनं कृणोतु (१२)- ईश्वर पतिके लिए सुखदायी करे ।

१२. भगस्य सुमतौ असत् (१५)- भाग्यदेवकी सन्मतिमें रहे ।

१३. अशुनं मा आरतां (१६)- अशुभकी ओर हम न जावें ।

१४. गृहेभ्यः अघोरचक्षुः अपतिघ्नी स्योना, शग्मा, सुशेवा, सुयमा, वीरसूः, देवृकामा, सुमनस्यमाना त्वया एधिषीमहि (१७)- यह स्त्री पतिके घर आकर आनन्दसे रहे, क्रोध न करे, पतिका हित करनेवाली हो, धर्म नियमका पालन करे, सबको सुख देवे, अपनी सन्तानको वीरता की शिक्षा देवे, देवरोंको सन्तुष्ट रखे, अन्तःकरणमें उत्तम भावनायें रखे और ऐसी स्त्रीके कारण हमारा घर सुसम्पन्न हो ।

१५. अदेवृघ्नी, अपतिघ्नी, पशुभ्यः शिवा सुयमा सुवर्चाः प्रजावती वीरसूः देवृकामा स्योना इमं गार्हपत्यं अग्निं सपर्य (१८)- देवरोंका नाश न करनेवाली, पतिका घात न करनेवाली, पशुओंका यथायोग्य पालन करनेवाली, उत्तम नियमोंमें चलनेवाली, तेजस्वी, वीरपुत्रोंवाली देवरके सुखकी इच्छा करनेवाली ऐसी सुखदायिनी तू गार्हपत्य अग्निकी पूजा कर ।

१६. अस्यै नार्यै उपस्तरे पतत् शर्म वर्म (२१)- इस स्त्रीके ओढने एवं बिछानेके कपडे सुख और संरक्षण देनेवाले हों ।

१७. भगस्य सुमतौ असत् (२१)- परमेश्वरकी सम्मतिमें रहें।

१८. एषः देवः सर्व रक्षांसि हन्ति (२४)- यह देव सब राक्षसोंका नाश करता है।

१९. सुमंगली संपत्नी इमं अग्निं उपसीद (२५)- उत्तम मंगल कामना करनेवाली और उत्तम पतिके साथ यह स्त्री अग्निकी उपासना करे।

२०. सुमंगली गृहाणां प्रतरणी पत्ये सुशेवा श्वशुराय शंभुः श्वश्रवै स्योना इमान् गृहान् प्रविश (२६)- उत्तम और मंगल आभूषण धारण करनेवाली, घरके दुःख दूर करनेवाली पतिकी अच्छी प्रकारसे सेवा करनेवाली ससुर को सुख देनेवाली, सासको आनन्द देनेवाली स्त्री इस घरमें प्रवेश करे।

२१. श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः स्योना अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना एषां पुष्टाय भव (२७)- ससुर, पति और कुटुम्बमें सबका हित करनेवाली, सब प्रजाओंको सुख देनेवाली होकर इन सबकी पुष्टि कर।

२२. इयं सुमंगली वधूः दौर्भाग्यै विपरेतन (२८)- इस मंगलयुक्त वधूके दुष्ट भाग्यको दूर करके तुम वापिस जाओ।

२३. सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय आरोहत् (३०)- सूर्या सावित्री महान् सौभाग्यके लिए उन्नत हुई है।

२४. ज्योतिः अग्राः उषसः बुध्यमाना (३१)- सूर्यकी ज्योतिसे पूर्व आनेवाली उषाके आनेसे पहले ही स्त्री उठ जावे।

२५. वयं राया सुमनसः स्याम (३६)- हम धनके साथ उत्तम मनसे युक्त हों।

२६. सविता वां दीर्घं आयुः कृणोतु (३१)-सविता तुम दोनोंकी आयु लम्बी करे।

२७. नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव (४०)- हमारे कुटुम्बीवर्ग, नौकरवर्ग और जानवरोंके लिए कल्याणकारक हो।

२८. यत् पत्नीभिः उतं वासः तत् नः स्योनं उपस्पृशात् (५१)- जो वस्त्र हमारी पत्नियोंने बुना है, वे हमें सुख स्पर्श देनेवाले हों।

२९. मे मतिः दीर्घायुः अस्तु शरदः शतं जीवाति (६३)- मेरा पति दीर्घायु हो और सौ वर्षतक जीवे।

३०. शीर्षण्यं मलं अप अप लिखात् (६८)- सिरके मलको दूर करो।

३१. अरिष्टासू बृहते वाजसातये सचेवहि (७२)- प्राण जब तक हैं, तबतक हम दोनों महान् बलकी प्राप्तिके लिए साथ-साथ रहें।

(कां. ६; सू. ३०)

१. मां कामिनी असः यथा मत् अप-गाः न असः (१)- पत्नी पतिकी इच्छा करनेवाली हो, उससे वह स्त्री दूर न जावे।

२. यत् अन्तरं तत् बाह्यं, यत् बाह्यं तत् अन्तरम् (४)- जो बाहर हो, वही अन्दर हो और जो अन्दर हो वही बाहर हो ऐसा सरल व्यवहार दोनोंका होना चाहिए।

३. विश्वरूपाणां कन्यानां मनः गृभाय (४)- विविधरूपोंवाली कन्याओंके मन इस प्रकार आकर्षित करें।

(कां. ६; सू. ८)

१. यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे, एवा मां परिष्वजस्व, यथा मां कामिनी असः यथा मन्नापगाः असः (१)- जिस प्रकार बेल वृक्षसे लिपटी रहती है, हे स्त्री! उसी प्रकार तू मेरे आश्रयसे रह, मेरी इच्छा करनेवाली हो और तू मुझसे दूर जानेवाली न हो।

२. यथा इमे द्यावापृथिवी सूर्यः सद्यः पर्यैति (३)- जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैलता है।

(कां. ७; सू. ३६)

१. हृदि मां अन्तः कृणुष्व मनः सह असति (१)- पतिपत्नीके मन एक दूसरेसे इस प्रकार मिल जाने चाहिए, कि मानों एक ही मन दोनोंमें कार्य कर रहा हो।

(कां ६; सू. ८९)

१. ते सध्र्यङ् मनः मां एव अन्वेतु (२)- तेरा मन मेरे अनुकूल हो कर रहे।

(कां. १०; सू. ३)

१. देवाः वरणेन असुराणां अभ्याचारं अवारयन्त (२)- देवोंने वरणमणिकी सहायतासे राक्षसोंकी पीडा दूर की।

२. एवा मे वरणोमणिः तेजसा समुक्षतु यशसा सा समनक्तु (२५)- इस प्रकार वह वरणमणि मुझे कीर्ति और तेज देवे।

(कां. ७; सू. ३७)

१. यथा केवलः मम असः अन्यासां न चन कीर्तयाः (१)- तू केवल मेरा ही पति होकर रह दूसरी स्त्रीका नाम भी तू न ले।

२. मम मनुजातेन वाससा त्वा अभि दधामि (१)- अपने विचारोंके साथ बुने हुए वस्त्रसे मैं तुझे बांध देती हूँ।

(कां. १; सू. १८)

१. या भद्रा तानि नः प्रजायै (१)- जो सुन्दर लक्षण हैं, वे सब हमारी सन्तानोंको प्राप्त हो।

२. सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं (३)- वे सब कुलक्षण वाणीसे हम दूर करते हैं।

३. देवस्त्वा सविता सूदयतु (४)- सविता तुम्हें सुलक्षणी करें।

(कां. ६; सू. १३९)

१. समानं हृदयं कृधि (३)- हमारे मन एक समान हों।

(कां. ७; सू. १६)

१. विश्वेदेवाः एनं अनुमदन्तु (१)- सब देवता उसका समर्थन करें।

(कां. ६; सू. १३६)

१. देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे। तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि (१)- हे औषधि! तू दिव्य गुणोंसे युक्त होकर पृथ्वीपर उगती है, हे जमीनपर फैलनेवाली औषधे। बालोंको बलवान् और सुदृढ करनेके लिए मैं तुम्हें खोदता हूँ।

(कां. ६; सू. १३७)

१. केशाः नडाः इव वर्धन्तां शीर्ष्णः ते असिताः परि (२-३)- तेरे सिरपर बाल घासके समान बढें, वे कभी सफेद न हों, हमेशा काले ही रहें।

(कां. ६; सू. ५९)

१. प्रथमं शर्म यच्छ (१)- पहले सुख दे।

(कां. ६; सू. ७८)

१. राष्ट्रेण अभिवर्धतां सहस्त्रवर्चसा रय्या पयसा अभिवर्धतां (२)- ये दोनों दम्पती राष्ट्रकी शक्तिसे बढें, व हजारों तेज, ऐश्वर्य और दूध आदिसे भी सम्पन्न हों।

(कां. ६; सू. ३५)

१. इदं राष्ट्रं सौभगाय पिपृहि (१)- इस राष्ट्रको सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य इनसे भर दे।

२. प्रजा मा अभिभूत् (३)- सन्तान मातापिताका कभी तिरस्कार न करे।

(कां. ४; सू. ३८)

१. सूर्यस्य रश्मीन् अनु याः संचरन्ति मरीचिर्वा या अनुसंचरन्ति (५)- सूर्यकिरणोंमें-प्रकाश और गर्मीमें- अनुकूलतासे घूमते फिरें।

२. कर्की वत्सां इह रक्ष वाजिन् (६)- कर्तृत्वशक्तिसे युक्त पुत्रीकी तू इस जगत्में रक्षा कर।

(कां. ५; सू. १७)

१. ब्राह्मणस्य अपनीता जाया भीमा (६)-ब्राह्मण की भगाई गई स्त्री बडी भयंकर होती है।

(कां ९; सू. २)

१. सपत्नहनं ऋषभं कामं हविषा शिक्षामि (१)- शत्रुका नाश करनेवाले कामको मैं यज्ञ द्वारा शिक्षित करता हूँ।

२. दुरितं अप्रजस्तां अस्वगतां अवर्तिं मुंच (३)- पाप, सन्तान न होना, निर्धनता और विपत्ति इनको दूर कर।

३. सा धेनुः दुहिता उच्यते या कवयो वाचं आहुः (५)- गाय कन्याके समान है, उसका ज्ञानी वर्णन करते हैं।

४. सर्वे देवाः मम इयं हवं आयन्तु (७)- सब देव मेरे हवनमें आवें।

५. उग्रः वाजी कामः मम अध्यक्षः मह्यं असपत्नः कृणोतु (७)- प्रतापी बलवान् काम मेरा अध्यक्ष है, वह मुझे शत्रुओंसे मुक्त करे।

६. मह्यं असपत्नं एव कृण्वन्तः (८)- मुझे शत्रु रहित करो।

७. अवधीत् कामो मम ये सपत्नाः। उरुं लोकमकरन् मह्यमेधतुं। मह्यं नमन्तां प्रदिशाश्चतस्रो, मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु (११)- संकल्प शत्रुओंका नाश करता है, संकल्प वृद्धि करनेके लिए कार्यक्षेत्र है संकल्पके कारण चारों दिशायें मनुष्यके आगे झुकती हैं और संकल्पके कारण ही सब ओरसे घृत आदि उपभोगके पदार्थ मिलते हैं।

८. यत्ते काम शर्म त्रिवरूथं उद्भु ब्रह्मवर्म विततं अनतिव्याध्यं कृतम् (१६)- हे संकल्प! जो तेरा तीनों ओरसे रक्षक उत्कृष्ट शक्तिवाला, फैला हुआ ज्ञानका कवच, शस्त्रोंसे न वेधने योग्य और सुखदायक स्थान है, उसमें हमें स्थापित कर।

९. कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवाः आपुः पितरो न मर्त्याः, ततः त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान्

(१९)- सबसे पहले काम उत्पन्न हुआ इसलिये उसे देव, पितर और मनुष्य पा नहीं सके। इसलिए काम सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ और समर्थ है।

१०. यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्राः याभिः सत्यं भवति, यद्वृणीषे ताभिष्ट्वमस्माँ अभि संविश स्वान्यत्र पापीरपवेशया धियः (२५)- काममें शुभ और कल्याणकारक भाग है, जिसके कारण सब सत्यकी सिद्धि होती है, वह शुभ भाग मुझे प्राप्त हो और पापका भाग दूर हो।

(कां. ३; सू. २१)

१. यो देवो विश्वात् यं उ कामं आहुः (४)- जो अग्नि सब जगत्को जलानेवाला है और जिसको ' काम ' के नामसे पहचाना जाता है।

२. शान्तो अग्निः, क्रव्याद् शान्तः, पुरुषरेषणः अथो यो विश्वदाव्यस्तं क्रव्यादमशीशमम् (९)- यह मांसभक्षक कामरूप अग्नि शान्त हो गया है। यह मनुष्यका नाश करनेवाला कामरूप अग्नि शान्त हो गया है। यह सबको जलानेवाला अग्नि है, उसे मैंने शान्त किया है।

(कां. ३; सू. २९)

१. मृदुः निमन्युः केवली प्रियवादिनी अनुव्रता अक्रतुं चित्तं उपायसि ऋतौ असः (४१६)- धर्मपत्नी शान्त, क्रोध न करनेवाली, पतिव्रता, मीठा बोलनेवाली, पतिकी सहायता करनेवाली, उसके विरुद्ध कुछ भी न करनेवाली और पतिमें ही मन लगाए रखनेवाली हो।

(कां. ३; सू. २३)

१. आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः (२)- तेरा पुत्र दसवें महीनेमें जन्मे और वीर हो।

२. विन्दस्व पुत्रं नारि यः तुभ्यं शं असत् शं उ तस्मै त्वं भव (५)- हे स्त्री ! इस प्रकार तू पुत्रोंको प्राप्त कर। वह पुत्र तुझे सुखदायक हो और तू भी उस पुत्रको सुख दे।

(कां. ८; सू. ६)

१. सूर्यः तान् (रोगबीजानि) अनीनशत् (८)- जो रोगबीज हैं, उनका नाश सूर्य करता है।

२. ये सूर्यं न तितिक्षन्ते (तान्) नाशयामसि (१२)- जो सूर्य प्रकाश सहन नहीं कर सकते, उनका मैं नाश करता हूँ।

३. तं पिंगः हृदयाविधं कृणोतु (१८)- उसका पिंगलवर्ण सूर्य हृदयमें वेध करे।

(कां. ६; सू, ११)

१. शमीं अश्वत्थ आरूढः तत्र पुंसवनं कृतम्। तद् वै पुत्रस्य वेदनम् (१)- शमीवृक्षपर जहां पीपल उगता है, वहीं पुत्रप्राप्तिकी औषधी होती है, पुत्रप्राप्तिका यह उत्तम साधन है।

२. स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसं उ दधत् इह (३)- कन्या उत्पन्न होनेका कार्य दूसरेके घरमें हो, यहां इस घरमें पुत्रका ही जन्म हो।

(कां. ६; सू. ११०)

१. (अग्ने) विश्वा दुरितानि एनं अति नेषत् (२)- हे अग्ने ! तू सब दुःखसे उसकी (मेरी) रक्षा कर।

२. नक्षत्र-जा जायमानः सुवीरः स वर्धमानः पितरं मा वधीत्, जनित्रीं मातरं च मा प्रमिनीत् (३)- उत्तम नक्षत्रमें जन्मा हुआ यह बालक उत्तम वीर हो और मातापिताको दुःख न दे, न मारे।

(कां. ७; सू. ८१)

१. एतौ शिशू क्रीडन्तौ मायया पूर्वापरं चरतः अर्णवं परियातः अन्यः विश्वा भुवनानि विचष्टे, अन्यः ऋतून् विदधत् नवः जायसे (१)- ये दो बालक (सूर्य और चन्द्र) खेलते खेलते अपनी शक्तिसे समुद्रतक पहुंचते हैं, उनमें एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और दूसरा ऋतुओंका निर्माण करते हुए रोज नया होता है।

२. जायमानः नवः नवः भवसि (२)- प्रकट होते हुए तू हमेशा नया ही प्रतीत होता है।

३- अन्हां केतुः उषसां अग्रं एषि (२)- दिनके सूचक सूर्यके आगमनकी सूचना देनेवाली उषाके भी पहले तू आता है।

४. चन्द्रमः दीर्घं आयुः प्रतिरसे (२)- चन्द्रमा आयु दीर्घ करता है।

५. मा प्रजया धनेन च अनूनं कृधि (३)- मुझे प्रजा और धनसे परिपूर्ण कर।

६. योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः तस्य प्राणेन आप्यायस्व (५)- जो दुष्ट हमसे द्वेष करते हैं और जिससे हम द्वेष करते हैं, उनके प्राणसे तू तृप्त हो।

७. देवाः अंशुं आप्याययन्ति आक्षितः अक्षितं भक्षयन्ति (६)- देव सोमको तृप्त करते हैं फिर उसको खाकर अमर बनते हैं।

(कां. ६; सू. १३३)

१. यस्य प्रशिषा चरामः, स पारं इच्छात् सः नः विमुंचात् (१)- जिस गुरुके आशीर्वादसे हम कार्य करते हैं, वह हमें दुःख और बंधनसे मुक्त करे।

२. वीरघ्नी भव मेखले (२)- हे मेखले ! तू शत्रुओंको मारनेवाली हो।

३. अहं मृत्योः ब्रह्मचारी अस्मि (३)- मैं मृत्युको समर्पित हुआ हुआ ब्रह्मचारी हूँ।

४. भूतान् यमाय पुरुषं निर्याचन् (३)- जनतामेंसे मृत्युके लिए एक पुरुषकी याचना करता हूँ।

५. मेखलया ब्रह्मणा तपसा श्रमेण (३)- मेखला बांधनेसे ज्ञान, तप अर्थात् शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति परिश्रम करनेके लिए बल मिलता है और दीर्घायु भी मिलती है।

६. यां त्वा पूर्वे भूतकृतः ऋषयः परिबेधिरे। सा त्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले (५)- हे मेखले ! तुझे प्राचीन कालमें पराक्रम करनेवाले ऋषियोंने बांधी थी। इसलिए मुझे दीर्घायुवाला करनेके लिए मेरे शरीरसे चिपटी रह।

(कां. ६; सू. १२०)

१. अयं गार्हपत्यः अग्निः तस्मात् इत् सुकृतस्य लोकं उन्नयाति (१)- यह हमारा गार्हपत्य घरमें सुरक्षित अग्नि हमें इस पापसे मुक्त करके पुण्यलोकमें पहुंचाता है

(कां. ७; सू. १७)

१. ईशानः जगतः पतिः नः रयिं दधातु (१)- जगत्का स्वामी ईश्वर हमें धन देवे।

२. तस्मै अमृतं संव्ययन्तु (३)- उसके लिए अमृतका प्रदान करो।

(कां. ३; सू. १२)

१. महते सौभगाय उच्छ्रयस्व (२)- महान् शुभमंगलकी प्राप्तिके लिए यह घर खडा हो।

२. धेनवः आ स्पन्दमानाः सायं आ (३)- संध्याकाल गायें नाचती हुई आवें।

३. इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिः निमिनोतु प्रजानन्। उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नु राजा नि कृषिं तनोतु (४)- सूर्य, वायु, इन्द्र बृहस्पति इस घरमें मदद करें, मरुत् नामका मानसून पानीसे सहायता करे और भगराजा खेतीके काममें सहायता करे।

४. अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः (५)- हमें वीरता युक्त धन दो।

५. शरणा स्योना देवी (शाला) देवेभिर्निमिता अग्रे तृणं वसाना सुमनाः (५)- अन्दर शरण लेने योग्य सुखदायक घासफूसके छप्पर, पर उत्तम विचारोंसे युक्त दिव्य घर प्रारम्भमें देवोंने तैय्यार किया।

६. (शाला) मानस्य पत्नी (५)- गृहस्थियोंके लिए अपना सम्मानका कारण होता है।

७. शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः (६)- सब प्रकारके वीर धर्मकी रक्षा करनेके लिए तैय्यार रहनेवाले वीर होकर सौ वर्षतक जीवें।

८. पूर्णं नारि प्रभर कुम्भमेतं घृतस्य धारामभृतेन संभृताम्। इमान् पातॄन् अमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् (८)- गृहपत्नी अतिथियोंको परोसनेके लिए घीका घडा लावे, भरपूर मधुररससे भरा हुआ घडा लावे और पीनेवालोंको यथेच्छ पिलावे, इस प्रकार अन्नदानसे घरका संरक्षण होता है।

९. अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः आपः (९)- निरोगी और रोग दूर करनेवाले पानीसे भरे हुए घडे घरमें रखे जाएं

१०. गृहान् उप प्रसीदामि (९) मैं परिश्रम करके घरको प्रसन्न और रमणीय स्थान बनाऊंगा।

(कां. ९; सू. ३)

१. शाले देवि ! त्वं देवानां सदः असि (७)- हे गृहरूपी देवते ! तू देवताओंका स्थान है।

२. मानस्य पत्नी उद्धिता (शाला) नः तन्वे शिवा भव (६)- मापसे बांधा गया ऊंचा घर हमारे शरीरके लिए सुखदायक हो।

३. यः त्वा प्रतिगृह्णाति येन त्वं मिता असि तौ जरदष्टी जीवताम् (९)- घरमें रहनेवाले और उस घरको मापसे बांधनेवाले दोनों वृद्धावस्थातक जीवित रहें।

४. परमेष्ठी प्रजापतिः त्वा प्रजायै चक्रे (११)- परमेष्ठी प्रजापतिने तुझे प्रजाके लिए बनाया है।

५. अग्निः ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः (२२)- घरमें अग्नि और जल अवश्य रहें, क्योंकि उनसे हर तरहके यज्ञ होते हैं।

६. अयक्ष्माः यक्ष्मनाशनीः आपः प्रभरामि। गृहान् उप प्रसीदामि (२३)- मैं घरमें ऐसा जल भरता हूँ कि जो स्वयं रोग उत्पन्न करनेवाले न होकर रोगोंका निवारण करनेवाले हों। इसप्रकार मैं घरकी प्रसन्नता बढाता हूँ।

(कां. ६; सू. १०६)

१. आयने परायणे पुष्पिणीः दूर्वाः रोहन्तु (१)- घरके आगे पीछे आंगनमें फूलोंके गमले फूलें और घास बढें।

२. तत्र वा उत्सः जायतां वा पुण्डरीकवान् ह्रदः (१)- वहां पानीकी एक टंकी और खिले हुए कमलोंसे युक्त एक छोटा सा तालाब हो।

३. मुखा पराचीना कृधि (२)- घरके दरवाजे परस्पर विरुद्ध दिशामें हों।

(कां. ७; सू. ६०)

१. अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा सुमनाः वन्दमानः गृहान् एमि (१)- शान्त और मित्रकी दृष्टिसे और उत्तम मनसे युक्त होकर श्रेष्ठ पुरुषोंको नमस्कार कर मैं घरमें प्रवेश करता हूँ।

२. मयोभुवः ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः वामेन पूर्णाः तिष्ठन्तः ते नः आयतः जानन्तु (२)- सुखदायक, बलदायक, धान्य और दूधसे युक्त सुखसे यह घर भरपूर है, ऐसा आनेवालोंको प्रतीत हो।

(कां. ७; सू. ८२)

१. अस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त (१)- हम सबमें कल्याणकारक धनोंको स्थापित कर।

२. नः इमं देवता नयत (१)- हमारा यह यज्ञ देवताओंको पहुंचा।

३. अग्ने मयि क्षत्रेण वर्चसा सह अग्निं गृण्हामि (२)- प्रथम मैं अपनेमें क्षात्र, वर्चस्-ज्ञानके तेज और बलसे युक्त अग्निको धारण करता हूँ।

४. उपसत्ताः अनिष्टृतः वर्धतां (३)- तेरे सेवक अहिंसक होकर वृद्धिको प्राप्त हों।

(कां. ४; सू. २१)

१. गावः भद्रं अक्रन् (१) गावः भद्रं गृहं कृणुथ (६)- गाय घरको कल्याणका स्थान बनायें।

२. गावः अस्मे रणयन् (१)- गाय हमें रमणीय बनायें।

३. तस्य यज्वनः मर्त्यस्य उरुगायं अभयं ताः गावः अनु विचरन्ति (४)- याजक मनुष्यकी प्रशंसनीय निर्भयतामें गायें घूमती हैं।

४. ता गावः संस्कृतत्रं न अभि उपयन्ति (४)- वे गायें मांस संस्कार करनेवालेके पास कभी नहीं जाती।

५. इमाः याः गावः स इन्द्रः (५)- जो गायें हैं, वही इन्द्र है।

६. गावः यूयं कृशं चित् मेदयथ, अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ (६)- निर्बलोंको ये गायें पुष्ट करती हैं; निस्तेजको तेजस्वी बनाती हैं।

७. गावः सूयवसे रुशन्तीः सुप्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्ति (७)- गायें उत्तम घास खाएं और उत्तम जलस्थानमें शुद्ध पानी पियें। इससे गायोंका उत्तम पालन होता है।

(कां. १२; सू. ४)

१. ददामि इति ब्रूयात् (१)- मैं दान देता हूँ, ऐसा यजमान कहे।

२. तत् प्रजावत् अपत्यवत् (१)- वह दान प्रजा और सन्तान देनेवाला है।

३. जायमाना वशा स ब्राह्मणान् देवान् अभि जायते (१०)- उत्पन्न होनेके साथ ही गाय ब्राह्मणों और देवोंकी हो जाती है।

४. अथैनां देवाः अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा (२२)- गायका दान केवल विद्वान् ब्राह्मणको ही दिया जाए, ऐसा देवोंने कहा है।

५. वशा राजन्यस्य माता (३३)- गाय क्षत्रियोंकी माता है।

(कां. ५; सू. १८)

१. ते देवाः एतां तुभ्यं अत्तवे न अददुः (१)- देवोंने यह गाय तुझे खानेके लिए नहीं दी है।

२. ब्राह्मणस्य अनाद्यां गां मा जिघत्सः (१)- ब्राह्मणकी गाय खाने योग्य नहीं है।

(कां. १०; सू. ९)

१. दात्रे आमिक्षां क्षीरं सर्पिः अथो मधु दुहतां (१३)- दाताको यहीं दही, दूध, घी और शहद देवें।

२. होता अग्निः सुहुतं कृणोतु (२६)- होता अग्निमें उत्तम आहुतियां डाले।

३. वयं रयीणां पतयः स्याम (२७)- हम सब धन के स्वामी हों।

(कां. ९; सू. ४)

१. साहस्रस्त्वेषः ऋषभः पयस्वान् (१)- हजारों शक्तियोंसे युक्त ऐसा यह बैल देनेवाला है।

२. वक्षणासु विश्वा रूपाणि बिभ्रत् (१)- नदीके किनारे यह बैल अपने विविध रूप धारण करता है।

३. उस्रियः तन्तुं आतान् (१)-अपने प्रजा तन्तुओं को फैलाता है।

४. दात्रे भद्रं शिक्षन् (१)- दाताका कल्याण करता है।

५. अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी (२)- बैलकी उपमा मेघके साथ है।

वह सबका प्रभु है और पृथ्वी देवीके समान सबका उपकारक है।

६. साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु (२)- हजारों प्रकारकी पुष्टि वह हमें देवे।

७. सोमेन पूर्ण कलशं बिभर्षि (६)- सोमरससे भरा हुआ कलश वह धारण करता है।

८. इन्द्रस्य रूपं वसानः (७)- इन्द्रके रूपको धारण करनेवाला है।

९. आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषः तमु यज्ञमाहुः (७)- घी धारण करनेवाला, वीर्यका स्थान और हजारों तरहकी पुष्टि देनेवाला, कहा जाता है।

१०. सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति (९)- जो ब्राह्मणको बैल देता है वह अनेक रूपसे हजारों दान करता है।

११. जिन्वन्ति विश्वे तं देवाः यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति (१८)- जो ब्राह्मणको बैलका दान देता है, उससे सब देव सन्तुष्ट होते हैं।

१२. ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं दत्वा वरीयः कृणुते मनः (१९)- ब्राह्मणको बैल दान करनेवालेका मन श्रेष्ठ होता है।

१३. तत्सर्वं अनुमन्यन्तां देवा ऋषभदायिने (२०)- जो बैलोंका दान करता है, उसके सब अनुकूल होते हैं।

(कां. ३; सू. १४)

१. यत् अर्हजातस्य नाम तेन वः संसृजामासि (१)- दिनभरमें जो श्रेष्ठवस्तु प्राप्त होती है, उसे तुम्हारे लिए रख छोडता हूँ।

(कां. ७, सू. ७५)

१. स्तेनः यः मा ईशत मा अघशंसः (१)- चोर तुम्हारे ऊपर अधिकार न चलाए, कोई पापी भी तुमपर शासन न करे।

(कां. ७; सू. १०४)

१. यथावशं तन्वः कः= प्रजापतिः कल्पयाति (१)- इच्छानुसार शरीरके विषयमें प्रजाका पालन करनेवाला समर्थ हो।

(कां. ६; सू. १४१)

१. त्वष्टा पोषाय ध्रियतां (१)- त्वष्टा पुष्टि करें।

२. रुद्रः भूम्ने चिकित्सतु (१)- रुद्र वृद्धिके लिए चिकित्सा करें।

३. एवा सहस्रपोषाय लक्ष्म कृणुतं (३)- इस प्रकार हजारों तरहकी पुष्टिके लिए चिन्ह करो।

(कां. ६; सू. ७०)

१. यथा वृषण्यतः पुंसः मनः स्त्रियां निहन्यते (१)- जिस प्रकार बलवान् पुरुषका मन स्त्रीमें रमता है।

(कां. ५; सू २६)

१. येषां सहचारं वायुः जुजोष (१)- वायु जिसके सहवासमें रहता है।

२ ये पशवः परा ईयुः ते इह आयन्तु (१)- जो पशु बाहर फिरने गये हों, वे यहां वापस लौट आयें।

३. त्वष्टा एषां रूपधेयानि वेद (१)-कुशल कारीगर पशुओंका आकार जानता है।

४. सविता अस्मिन् गोष्ठे तान् नियच्छतु (१)- प्रेरणा करनेवाला उन्हें गौशालामें नियमसे रखे।

५. बृहस्पतिः प्रजानन् आनयतु (२)- सब पशुओंको पहचाननेवाला उन्हें बाडेमें इकट्ठा करे।

६. सिनीवाली एषां अग्रं आनयतु (२)- उन पशुओंको दानापानी देनेवाली स्त्री उनके आगे चले।

७. अनुमते आजग्मुषः नियच्छ (२)- अनुकूल कार्य करनेवाली स्त्री उनके साथ चले।

८. पशवः अश्वाः उ पूरुषाः सं स्रवन्तु (३)- पशु, घोडे, मनुष्य सब मिल मिलाकर रहें।

९. संसिक्ताः अस्माकं वीराः (४)- अपने बच्चोंको हम उनके दूधसे पालते हैं।

(कां. ७; सू. ७३)

१. तप्तं घर्मं पिबतं (४)- गायका दूध गर्म करके पियें।

२. तनायाः उस्त्रियायाः मधोः दुग्धस्य पयसः वीतं पातं (५)- हृष्टपुष्ट गायका मधुर दूध प्राप्त करो और पियो।

३. सुहस्तः गोधुक् एनां दोहत् (७)- अच्छे हाथोंवाला ग्वाला गायको दुहे।

४. गोधुक् पयसा उपद्रव, उस्त्रियायाः पयः घर्मे सिंच (६)- गायको दुह कर ग्वाला शीघ्र आवे और उस दूधको अग्नि पर गर्म करे।

५. सा महते सौभगाय वर्धतां (८)- पाली हुई गाय अपने स्वामीका सौभाग्य बढावे।

६. विश्वदानीं तृणं अद्धि (११)- गाय हमेशा घास ही खाती है।

(कां. ९; सू. ५)

१. सुकृतां लोकं गच्छतु प्रजानन् (१)- यह मार्ग जानकर पुण्यशालियोंके लोकको प्राप्त कर ।

२. तीर्त्वा तमांसि अजः तृतीयं नाकं आक्रमताम् (१, ३)- अजन्मा अन्धकारको दूर करके तीसरे स्वर्ग-धामको प्राप्त हो ।

३. एतं आनय, आरभस्व, प्रजानन् सुकृतां लोकं गच्छतु (१)- उसको उत्तम मार्गसे चलाओ, शुभ कार्यका आरंभ करो, उन्नतिका मार्ग जानकर पुण्यलोक प्राप्त करो ।

४. त्वा इन्द्राय भागं परिनयामि (२)- मैं तुझे इन्द्रका भाग समझकर अर्पण करता हूँ ।

५. अज विपश्यन् तमांसि बहुधा तीर्त्वा (३)- अजन्मा उस अन्धकारको अनेक प्रकारसे पार कर जाता है ।

६. यत् दुश्चरितं चचार, पदः प्र अवनेनिग्धि, प्रजानन् शुद्धैः शफैः आक्रमताम् (३)- जो दुराचार होगया है और जिससे पैर मलिन होगए हैं, उन पैरोंको धोकर शुद्ध और पवित्र पैरोंसे आगे जा ।

७. तृतीये नाके अधि विश्रयैनाम् (४)- परिपक्व होकर पुण्यवान् लोकोंमें जा ।

८. शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः (५)- परिपक्व होकर सत्कर्म करनेवालोंके स्थानमें जा ।

९. तृतीये नाके अधि विश्रयस्व (८)- तीसरे स्वर्ग धामका आश्रय ले ।

१०. अग्नेः अग्निः सं बभूविथ (६)- अग्निसे अग्नि उत्पन्न हुई है ।

११. अजो अग्निः उ ज्योतिः आहुः अजः तमांसि अपहन्ति (६)- अग्निका नाम अज है, ज्योतिका नाम अज है, यह अज अन्धकारको दूर करता है ।

१२. अजः तमांसि अपहन्ति (७, ११)- अजन्मा अन्धकारको दूर करता है ।

१३. जीवता अजं ब्रह्मणे देयं आहुः (७)- जीवित मनुष्य अपना आत्मसमर्पण परमात्माको करना उत्तम समझता है ।

१४. श्रद्धानेन दत्तः अजः तमांसि अपहन्ति (७)- श्रद्धापूर्वक समर्पित हुई हुई आत्मा सब प्रकारके अन्धेरेको दूर करती है ।

१५. पंचौदनः पंचधा विक्रमताम् (८)- अजन्मा आत्मा पांच प्रकारके क्षेत्रोंमें पराक्रम करे ।

१६. त्रीणि ज्योतींषि आक्रंस्यमानः (८)- तीन तेजोंको प्राप्त करता है ।

१७. पंचौदनः ब्रह्मणे दीयमानः (९, १०)- अजन्माको ब्राह्मण ज्ञानीके लिए समर्पण करना उत्तम है ।

१८. पंचौदनं अजं ब्रह्मणे ददाति (११, १२)- अजन्माको ब्रह्मके लिए समर्पित किया जाता है ।

१९. अजः हि अग्नेः शाकात् विप्रः अजनिष्ट (१३) अग्निके तेजसे अज उत्पन्न हुआ । ज्ञानीके महात्म्य से ज्ञानी विद्वान् उत्पन्न होता है ।

२०. अजोऽसि अज स्वर्गोऽसि (१६)- तू जन्म-रहित है, तू स्वयं स्वर्ग है ।

२१. अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति, निर्ऋतिं बाधमानः (१८)- यह अजन्मा आत्मा परिपक्व होकर अवनतिको दूर करके स्वर्ग जाता है ।

२२. यं ब्राह्मणे निदधे (१९)- जो ब्रह्मको समर्पित करनेके लिए निश्चित किया है ।

२३. अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत (२०)- यह अजन्मा जगत्के आरंभसे पराक्रम करता है ।

२४. एष वा अपरिमितो यज्ञः यदजः पंचौदनः (२१)- पंचौदन यज्ञ अपरिमित है ।

२५. अपरिमितं यज्ञं आप्नोति अपरिमिते लोके अवरुन्धे (२२)- आत्माके समर्पणसे अपरिमित लोक प्राप्त होता है ।

२६. नैदाघं, कुर्वन्तं, संयतं, पिन्वन्तं, उद्यन्तं, अभिभुवं नाम ऋतुं वेदश्रियं आदत्ते आत्मना भवति (३१-३६)- उष्णता कर्तृत्व, संयम, पोषण, उद्यम और शत्रुंजय ये आत्माके ऋतु हैं । जो इन ऋतुओंसे काम लेना जानता है, वह श्री प्राप्त करता है और आत्माकी शक्तिसे युक्त होता है ।

(कां. ७; सू. १९)

१. प्रजापतिः इमाः प्रजाः जनयति (१)- प्रजापालक परमेश्वर सब प्रजाओंको उत्पन्न करता है ।

(कां. ७; सू. १८)

१. दिव्यस्य उद्नः दृतिं विष्य (१)- दिव्य जलसे भरे हुए बर्तन खोलकर रख ।

२. जीरदानुः पृथिवी प्रभतां (२)- अन्न देनेवाली जमीनको उपजाऊ बनाई जाए ।

(कां. ७; सू. ७२)

१. सूरः अध्वनः मध्यं विजगाम श्रातं हविः सुप्र-याहि (२)- सूर्य मध्यान्हमें पहुंच गया है, अतः अन्न पकाए अन्नको खाओ।

२. माध्यंदिनस्य दध्नः पिब (३)- दोपहरके भोजनके साथ दही खावें।

(कां. ६; सू. ११७)

१. अनृणाः अस्मिन् अनृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान्पथो अनृणा आक्षियेम (३)- इस लोक और परलोकमें हम अनृणी हों, तीसरे लोकमें भी हम ऋणरहित हों। जो देवयान और पितृयानमार्ग हैं, उनमें भी हम ऋण-रहित होकर रहें।

(कां. ७; सू. २३)

१. दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वं अराय्यः दुर्णाम्नीः सर्वाः दुर्वाचः ता अस्मन्नाशयामासि (१)- दुष्ट स्वप्न, दुःखमय जीवन राक्षसोंका भय, पीडा, उन्नतिमें रुकावटें निर्धनता, बुरे शब्द बोलनेका स्वभाव ये सब विप-त्तियां हमसे दूर हों।

(कां. ६; सू, १२९)

१. अरातयः अपद्रान्तु (१, २, ३)- शुत्र भाग जावें।

(कां. ७; सू; ३१)

१. यो नो द्वेष्टि अधरः सस्पदीष्ट यं उ द्विष्मः तं उ प्राणो जहातु (१)- जो अकेला ही हम सबसे द्वेष करता है, वह नीचे गिरे, उसी प्रकार जिस अकेलेसे हम सभी द्वेष करते हैं, उसे उसके प्राण छोडकर चले जायें।

(कां. ६; सू. ४५)

१. गृहेषु गोषु मनः (१)- गृहस्थका मन घरमें और गाय आदि पशुओंमें रमना चाहिए।

२. मनस्पाप परा अपेहि किं अशस्तानि शंससि, परेहि न त्वा कामये (१)- हे पापी विचार! दूर जा, मुझे तू बुरी बातें सिखाता है, दूर चला जा, मैं तुझे नहीं चाहता।

३. यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम (२)- जो जाग्रतावस्था या स्वप्नावस्थामें हम करते हैं।

४. मृषा चरामसि (३)- यदि असत्य व्यवहार हम करेंगें तो उसका परिणाम बुरा होगा।

(कां. ७; सू. १००)

१. अहं अन्तरं ब्रह्म कृण्वे (१)- मैं ज्ञानको अपने हृदयमें रखता हूँ।

(कां. ७; सू. १०१)

१. तत् सर्वं मे शिवं अस्तु (१)- वह सब मेरे लिए शुभ हो।

(कां. ९; सू. १)

१. सर्वाः प्रजाः हार्द्भिः प्रतिनन्दन्ति (१)- सब लोग हृदयसे आनन्दित होते हैं।

२. मर्त्येषु महान् भर्गः चराति (४)- मर्त्योंमें महान् तेज ही संचार करता है।

३. यौ अस्याः सहस्रधारौ अक्षितौ स्तनौ अन-पस्फुरन्तौ ऊर्जं दुहाते (७)- जो उसके सहस्र धार युक्त अक्षयस्तन हैं, वे अविचलित होकर बलवान् रसका दोहन करता है।

४. एवा मे वर्चः तेजः बलं ओजः च ध्रियतां (१७)- मेरा तेज, ज्ञान, बल और वीर्य संचित हो, बढता रहे।

(कां. ५; सू. १९)

१. यत्र ब्राह्मणं हिंसन्ति, तत् राष्ट्रं दुच्छुना हन्ति (८)- जहां ब्राह्मणको दुःख दिया जाता है, वह राष्ट्र विपत्तिमें फंसता है।

२. ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा कश्चन राष्ट्रे न जागार (१०)- ब्राह्मणकी गाय खाकर कोई राष्ट्रमें जीवित नहीं रह सकता।

३. वर्षं ब्रह्मज्यं न अभिवर्षति (१५)- ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले पर वृष्टि नहीं होती।

४. न मित्रं वशं नयते (१५)- मित्र भी उसके वशमें नहीं रहते।

अथर्ववेद-- [भाग तीसरा]

' गृहस्थाश्रम '

काण्ड-सूक्त-विषय-मंत्रसंख्या-ऋषि-देवताओंकी

अनुक्रमणिका

अथर्ववेद-- [भाग तीसरा]

' गृ ह स्था श्र म '

काण्ड-क्रमानुसार सूक्तोंकी

अनुक्रमणिका

कांड	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ
६	१२९	३	२५७
	१३०	४	१५६
	१३१	३	१५७
	१३२	५	१५८
	१३३	५	१५४
	१३६	३	९४
	१३७	३	९५
	१३८	५	२७७
	१३९	५	९२
	१४०	३	९३
	१४१	३	२२२
	१४२	३	२४३
७	१६	१	९३
	१७	४	१६१
	१८	२	२४५
	१९	१	२४५
	२३	१	२५६
	२८	१	२५६
	३०	१	२६२
	३१	१	२५७
	३४	१	२५५
	३५	३	९८
	३६	१	७९
	३७	१	८७
	३८	५	८०
७	६०	७	१७४
	७२	३	२५०
	७३	११	२१६
	७५	२	२११
	८१	६	१५०
	८२	६	१७५
	१००	१	२६१
	१०१	१	२६१
	१०४	१	२११
	१११	१	१५०
८	६	२६	१३३
९	१	२४	२६२
	२	२५	१०९
	३	३१	१६६
	४	२४	२११
	५	३८	२३०
	६	६३ (६)	२६७
	७	२६	२०९
१०	३	२५	८३
	९	२७	२०५
	१०	३४	१८९
१२	४	५३	१८१
	५	७३ (७)	१९४
१४	१	६४	२४
	२	७५	३७

अथर्ववेद-- [भाग तीसरा]

' गृ ह स्था श्र म '

वर्णानुक्रम मंत्र-सूची

वर्णानुक्रम मंत्र-सूची

अथर्ववेद-- [भाग तीसरा]

' गृहस्थाश्रम '

उपमासूची

उपमा सूची